वायु पुराण

महर्षि वेदव्यास

वैदिक सनातन

२६	स्वरोत्पत्ति निरूपण	...	९९
२७	महादेव जी के शरीर का वर्णन	....	१०२
२८	ऋषियों के वंश का निरूपण	....	१०६
२९	अग्नि वंश का वर्णन	....	१०८
३०	दक्ष शाप वर्णन	....	१११
३१	देव वंश वर्णन	....	१२४
३२	युग धर्म	....	१२८
३३	स्वायम्भु वंश वर्णन	....	१३१
३४	जम्बू द्वीप का वर्णन	....	१३५
३५	,, ,,	....	१३९
३६	भुवन-विन्यास	....	१४१
३७	,, ,,	....	१४३
३८	,, ,,	....	१४५
३९	,, ,,	....	१४९
४०	,, ,,	....	१५३
४१	,, ,,	....	१५४
४२	,, ,,	....	१५८
४३	,, ,,	....	१६३
४४	,, ,,	....	१६४
४५	,, ,,	....	१६५
४६	,, ,,	....	१७१
४७	,, ,,	....	१७३
४८	,, ,,	....	१७७
४९	,, ,,	....	१७९
५०	,, ,,	....	१८६
५१	ज्योतिष्प्रचार	...	१९३
५२	,,	....	१९६
५३	ज्योतिःसन्निवेश	....	२०१
५४	नीलकण्ठ भगवान की स्तुति	....	२०७
५५	लिंगोद्भव स्तव	....	२१४
५६	पितरों का वर्णन	....	२१८
५७	स्वायम्भुव मन्वन्तर के चार युगों का वर्णन	....	२२४
५८	स्तुति नील कण्ठ	....	२२९
५९	ऋषियों के लक्षण	....	२३३
६०	महा स्थान तीर्थ में वेद शाखाओं का वर्णन	....	२३५

६१	प्रजापति के वंश का वर्णन	....	२३६
६२	पृथ्वी का दुहा जाना	....	२४४
६३	पृथु वंश का वर्णन	....	२५१
६४	वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन	....	२५८
६५	प्रजापति के वंश का वर्णन	....	२६०
६६	कश्यप के संतानों की सृष्टि कथा	....	२७०
६७	कश्यप जो की प्रजाओं की सृष्टि	....	२८१
६८	कश्यप की सन्तानों की सृष्टि	....	२८६
६९	कश्यप की प्रजा सृष्टि	....	२९२
७०	ऋषियों के वंशों का वर्णन	....	३१७
७१	श्राद्ध की प्रक्रिया	....	३२३
७२	श्राद्ध कल्प	....	३२९
७३	,, ,,	....	३३२
७४	,, ,,	...	३३७
७५	,, ,,	....	३४७
७६	,,	....	३४४
७७	,,	....	३४८
७८	,,	....	३५७
७९	,,	....	३६२
८०	श्राद्ध में दान के फल.	....	३६९
८१	विशेष तिथियों में श्राद्ध के करने का फल	....	३७२
८२	विशेष नक्षत्रों में श्राद्ध करने का फल	....	३७५
८३	श्राद्ध में भिन्न २ समय में तृप्ति के साधन, भूत विशेष द्रव्य, गया में श्राद्ध के फल तथा ब्राह्मण की परीक्षा		३७७
८४	श्राद्ध विधि के विषय में वरुण वंश का वर्णन	....	३८८
८५	श्राद्ध के विषय में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन	....	३९३
८६	वैवस्वत मनु के वंश के विषय में गन्धर्वों की मूर्च्छना का कारण	....	३९५
८७	गीतों के अलकारों का वर्णन	....	४००
८८	वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन	....	४०३
८९	,, ,, ,,	....	४२०
९०	चन्द्रमा के वंश का वर्णन	....	४२२
९१	,, ,, ,,	....	४२६
९२	,, ,, ,,	....	४३४
९३	,, ,, ,,	....	४४८

९४	कीर्तिवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति वर्णन	....	४४६
९५	ज्यामघ का वृतान्त	....	४५४
९६	विष्णु वंश का वर्णन	....	४५७
९७	विष्णु माहात्म्य वर्णन	....	४७४
९८	,,	....	४८२
९९	तुर्वसु आदि ययाति के पुत्रों का वश वर्णन	....	४९१
१००	मन्वन्तरों का वर्णन	....	५१९
१०१	भूर्लोकादि की व्याख्या	....	५२८
१०२	प्रतिसर्ग वर्णन	....	५४१
१०३	सृष्टि वर्णन	....	५४९
१०४	व्यास की सन्देह-निवृति	....	५५४
१०५	गया माहात्म्य	....	५६०
१०६	,,	....	५६४
१०७	,,	....	५७२
१०८	,,	....	५७७
१०९	,,	....	५८४
११०	,,	....	५८९
१११	,,	....	५९२
११२	गया माहात्म्य (इति)	....	५९८

हर प्रकार की धार्मिक पुस्तकें मिलने का पता—

ला० श्यामलाल हीरालाल श्याम काशी प्रेस मथुरा।

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

॥ श्री पुराण पुरुषोत्तमायनमः ॥

श्री वायु महापुराण

का

भाषानुवाद

प्रक्रिया-पाद

प्रथम अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जय मुदीरयेत् ॥

श्रीमान् भगवान नारायण एवं नरोत्तम नर तथा देवी सरस्वती और व्यासजी को नमस्कार करने के बाद जय(वायु पुराण)को कहना चाहिये । सत्यवती के हृदय नन्दन, पाराशर के पुत्र श्री भगवान व्यास जी की जय हो, जिनके मुख रूपी कमल से यह अमृतमय समस्त वाङ्मय निकला है उसको सारा संसार पान करता है ।

समस्त जगत के पति, ईशान, नित्य, अचल, अविकारी महात्मा महादेव, लोक कर्ता, सर्वज्ञ, अजित एवं भूत, भविष्य और वर्तमान के प्रभु सबके पति परब्रह्म की मैं शरण में जाता हूँ । जिन जगदीश्वर के अनुपम ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य तथा धर्म साथ ही साथ सिद्ध हैं, जो इन सत् असत् रूप समस्त पदार्थों का पालन करते हैं, जिनमें सभी पदार्थ उत्पन्न होनेके लिये प्रवेश करते हैं तथा जो भुवन भावन, लोकके तत्व को जानने वाले, भगवान योग के बल से स्थावर जंगम और समस्त प्राणियों की सृष्टि करते हैं । पुराण की कथा जानने की इच्छा से मैं उन्हीं अजन्मा, सब कार्य करने वाले, लोक साक्षी जगत्पति शंकर भगवान की शरण में जाता हूँ ! श्री ब्रह्माजी, इन्द्र, वायु, महर्षि

वशिष्ठ और उनके दौहित्र-परम कीर्तिमान जातुकर्ण्य, पुण्यआत्मा श्रीकैष्णापायन व्यास आदि को नमस्कार करके, धर्म अर्थ, काम और मोक्ष से पूर्ण, शास्त्रों से विभूषित, वेदों के समान, ब्रह्मा जी के द्वारा कहे गये वायु पुराण की कथा को अब मैं एकाग्र चित्त होकर कहूंगा।

जिस समय अनुपम कान्ति वाले, अमित पराक्रमी, श्रेष्ठ राजा असीम कृष्ण इस पृथ्वी का धर्म पूर्वक शासन करते थे, उस समय पुण्य जल वाली दृषद्वती नदी के पवित्र तट पर धर्म क्षेत्र कुरुक्षेत्र में सरल, शान्त, दान्त जितेन्द्रिय, रजोगुण से रहित, सत्यव्रती ऋषियों ने एक महान यज्ञ किया। शास्त्र की विधि से उन नैमिषारण्य वासी ऋषियों की दीक्षा हुई थी। वहां उनके दर्शन करने के लिये महाबुद्धिमान पौराणिक प्रवर सूत आये। उनके सुभाषित वचनों को सुन श्रोताओं को रोमांच हो जाता था अतः इस संसार में इस कर्म के अनुसार उनका लोमहर्षण नाम प्रसिद्ध था। वे तपस्या, विद्या तथा आचार के निधान श्री वेद व्यास के बड़े प्रतापी शिष्य थे, तीनों लोकों में उनकी बड़ी प्रसिद्धी थी। समस्त पुराणों, वेदों तथा महाभारत को बढ़ावादेने वाली शक्तिमयी वाणी उनमें विद्यमानथी। जिस प्रकार पृथ्वी में औषधियां भरी हुई हैं उसी प्रकार उनमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की कथायें, सूक्तियां एवं परिभाषायें भरी पड़ी थीं नीति मेधावी सूतजी ने मुनिवरों के पास पहुँचकर नियम से सादर हाथ जोड़ नमस्कार किया और उनको अपनी नम्रता से सन्तुष्ट किया। ये परम तेजस्वी यज्ञकर्ता मुनिगण सदस्यों के साथ बहुत प्रसन्न हुये और यथायोग्य उनकी प्रशंसा और पूजा की गई। उस समय मुनियों के मनमें पुराण सुनने की इच्छा प्रकट हुई।

उस यज्ञ का गृहपति समस्त शास्त्रों का ज्ञाता था उसने परम बुद्धिमान लोमहर्षण को देखकर तथा उन ऋषियों के इङ्गित से उनके मनोभावों को समझकर सूत जी से कहा-"सूतजी! आपने इतिहास और पुराण के निमित्त ब्रह्मज्ञ-वरिष्ट मेधावी व्यास की बड़ी उपासना की है और उनकी बुद्धि से आपने पुराणों की कथा का दोहन कर लिया है।

हे सूक्ष्मबुद्धि ! इन ऋषियों को पुराण सुनने की बड़ी इच्छा है। अतः आपको एवं आपको सुनाना चाहिये। ये सब विभिन्न गोत्रों के महात्मा यहां आये हुए हैं। अपने २ वंशों को पुराणों के द्वारा ये सुनलें। ये लोग इस महान यज्ञ में पुत्रों सहित यहां आये हुए हैं इन्हें प्रसंग की कथायें सुनाइये। यज्ञ की दीक्षा लेने के पूर्व हम लोगों ने आपका स्मरण किया है। ऋषियों तथा गृहपति के इस प्रकार प्रार्थना करने पर लोमहर्षण सूतजी मधुर शब्दों में न्याययुक्त कल्याणकारी वाणी बोलने लगे।

सूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द ! आप लोग स्वयं पुराण जानते हैं और सत्यव्रत का पालन करते हैं। आप लोगों ने जो मुझे पुराण सुनाने की प्रेरणा दी है उससे मैं अत्यन्त पवित्र हो गया हूँ। मेरे ऊपर यह आपने महान कृपा की है। प्राचीन काल में श्रेष्ठ लोगों ने यही अपना धर्म बताया है कि सूत का कार्य यह है कि वह इतिहास पुराणों में बताए हुए देवताओं, ऋषि-मुनियों तथा अमित तेजस्वी राजाओं की वंशावली और महात्माओं की सुनी हुई बातों को धारण करें। सूतों का वेद में कोई अधिकार नहीं है। राजा बेन के पुत्र पृथु के यज्ञ के अवसर पर सर्व प्रथम सुत्यों (अर्थात यज्ञीय औषधियों के कहते समय) सूतजी की उत्पत्ति हुई। इस यज्ञ में इन्द्र को दिए जाने वाले हव्य के साथ गुरु वृहस्पति के हव्य से मिलने से वह आहुति इन्द्रदेव को भूल से देदी गई इस कारण इससे उत्पन्न सूत को वर्णसंकर की संज्ञा दी गई। वेदों में सूत का कोई अधिकार नहीं बताया है। और अन्य कार्यों में प्रायश्चित भी बताया है। शिष्य के हविष्य के साथ मिलने से गुरु के हविष्य का अनादर हुआ। अतः हविष्य की गलती के कारण सूत की वर्णसंकर संज्ञा हुई। सारथि की जीविका अर्थात रथ, हाथी घोड़ों के परिचालन का काम तथा चिकित्सा करना आदि ही उनके धर्म हैं। क्षत्रिय से ब्राह्मण योनि द्वारा पैदा होने पर सूत साधर्म्य से क्षत्रिय धर्म के तुल्य धर्म वाले कहे गये हैं। आज जब आप सबने मुझसे मुनियों के द्वारा पूज्य पुराण की कथा पूछी है तो भला मैं उसे आपसे क्यों न वर्णन करूँ?

षिल्हीश्वरों की मावसी कन्या थी जिसका नाम 'वासवी' था। पितरों ने उसको शाप दे दिया। जिससे वह मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। उसी के गर्भ से श्रेष्ठ महायोगी व्यास जी ने इस प्रकार जन्म धारण किया जिस प्रकार अग्नि के जन्म का निमित्त लकड़ी होती है उन्हीं भृगु मुनि के पथ पर चलने वाले ब्रह्मस्वरूप पुराण पुरुष, श्री विष्णु भगवान और श्री वेद व्यास को नमस्कार करके कथा को कहता हूं। जिन भगवान व्यासदेव के जन्म लेते की समस्त संग्रहों के साथ वेद स्वयं उपस्थित हो गये? जिन्होंने महाभारत जैसा ग्रन्थ अपनी बुद्धि से संसार में चन्द्रमा के समान प्रकाश फैलाया। जिसको प्राप्त कर वेद वृक्ष शाखाओं के साथ वैसे ही शोभायमान हुआ जैसे भूमि, काल और गुणों को पाकर पेड़ों में अनेक टहनियां फूटती हैं। उन सर्वज्ञ समस्त वेदों में पूजित, तेजस्वी, ब्रह्मचारी व्यासजी से मैंने जो पुराण सुना उसे मैं आज आप लोगों को सुनाऊँगा। जिसको प्राचीन कालमें नैमिषारण्य के निवासी ऋषिगणों के पूछने पर वायुदेव ने कहा था। उस वायु पुराण की पावन कथा को मैं कहूँगा।

भगवान महेश्वर, पर, अव्यक्त, चतुर्बाहु, चतुर्मुख, अचिन्त्य, अप्रमेय स्वयंभू, ईश्वर हैं जो सबके हेतु हैं। सत असत रूप, नित्य अव्यक्त, कारण हैं। वे महत तत्व से लेकर विशेष तत्व तक की सृष्टि करते हैं। सबसे पहले हिरण्य, अंड उत्पन्न हुआ। अंड जलसे उत्पन्न हुआ, जलसे तेज, तेज वायु से और वायु आकाश से, आकाश भूतादि से, भूतादिमहत तत्वसे, और महत तत्व अव्यक्त से ढँकाथा, सबसे पहले यहां इसी का वर्णन है इसके बाद यहां समस्त देवताओं तथा ऋषियों का वर्णन है। नदियों, पर्वतों की उत्पत्ति बतायी गयी है और मन्वन्तरों की तथा कल्पों की भी चर्चा है। ब्राह्मण और क्षत्रियों की कथा और ब्राह्मण जन्म बतलाया गया है। फिर ब्रह्मा से सृष्टि के होने तथा प्रजासर्गकी बात है। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्माकी अवस्थायें कल्पों के वर्ष तथा जगत की स्थापना कही गई है। यहां भगवान का शयन तथा पृथ्वी का उद्धार करना, वर्ण और आश्रय के विभाग के साथ २

पुर नगर आदि की संनिवेश स्थापना गृहों के वृत्त तथा सिद्धियों का विनाश मार्ग माप या मार्गों का विस्तार पूर्वक वर्णन है।

पुण्यात्मा पुरुषों के स्वर्ग में अलग अलग स्थान वृक्षों औषधियों और लताओं का कीर्तन यहां है पापी मनुष्यों का मरने पर वृक्ष, नारकीय कीट होना तथा देवताओं और ऋषियों की दो प्रकार की गति बताई गई है। अन्नादि शरीरों की सृष्टि उनको त्यागना तथा ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के पहले पुण्य का स्मरण किया, तब उनके मुख से वेद वेदाङ्ग तथा धर्मशास्त्र निकले। व्रत और नियम पशु एवं पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन उनकी व्याख्या कल्प के साथ वर्णित है। फिर बारह धर्म जो बार बार प्रजा कल्प में ब्रह्मा के अंगों से उत्पन्न होते हैं वह बताये गये हैं। फिर ब्रह्मा के बुद्धि पूर्वक नव सर्ग फिर तीन और बुद्धि पूर्वक सर्ग, नव लोकोंकी सृष्टि, दो कल्पोंका अन्तर। पुनः प्रतिसर्ग तमोगुण से ढकने के कारण ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति और उसके बाद शतरूपा का वर्णन प्रिय व्रत और उत्तानपाद तथा प्रसूत और आकूति जिनसे सृष्टि बढ़ी जिनके याद करने से लोग पवित्र हो जाते हैं—जिनमें लोक विद्यमान हैं उनका वर्णन है रुचि और प्रजापति दोनों की उत्पत्ति के बाद फिर आकूति से मैथुनादिक सृष्टि प्रसूतिसे दक्षकी लड़कियों का जन्म। श्रद्धा आदिसे महात्माओं की उत्पत्ति बताई गई है। सात्विक धर्म की सुखमयी तथा अधर्म की अशुभ तथा हिंसामयी सृष्टि का वर्णन है। सती में महेश्वर की प्रजा सृष्टि और वैसे ही ब्रह्म का कीर्तन किया गया है। मोक्ष की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणों के लिये योगीश्वर ने योगब्रह्म बतलाया है एवं रुद्र के भाग्यशाली अवतार का वर्णन है। तीनों वेदों की कथा, ब्रह्मा और नारायण उत्तम सम्वाद तथा वहां स्तोत्रका भी वर्णन है। इन दोनों की स्तुति से देवेश भगवान शिव सन्तुष्ट हुए और महात्मा रुद्र का ब्रह्मा के शरीर में प्रकाश हुआ महात्मा रुद्र क्यों रोये उसका तथा रुद्र आदि आठों नाम स्वयम्भू के क्यों पड़े उसका कारण बतायागया है। साथ ही साथ इस समय पर अपने को उन्होंने कैसे व्याप्त कर लिया।।

भृगु आदि ऋषियों के प्रजासर्ग का वर्णन है। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के गोत्र का वर्णन तथा अग्नि का स्वाहा से प्रजासर्ग वर्णित है। पितृ-वंश के प्रसङ्ग में दो प्रकार के पितरों तथा फिर स्वधा का वर्णन है। महेश्वर का सती के लिए दक्ष तथा श्रीमान भृगु आदि के प्रति शाप तथा विचित्रकर्मा दक्ष का रुद्र को प्रति शाप देना वर्णित है। दोष दिखाकर वैर का बदला देना, मन्वन्तर के प्रसंग से काल का ज्ञान वर्णित है। कर्दम प्रजापति की शुभ लक्षणों वाली कन्या तथा प्रियव्रत के पुत्रों का विस्तार बतलाया है। इसके बाद वे सब अलग अलग किन किन द्वीपों और देशों में भेजे गये तथा फिर स्वायम्भुव सर्ग का वर्णन है। नाभि तथा महात्मा रजस का सर्ग एवं समुद्रों, द्वीपों और पर्वतों का वर्णन, वर्षों नदियों तथा उन सबके भेदों तथा सातों दीपों के सहस्रों भेद और उपभेद बताये गये हैं। जम्बूदीप और समुद्र के विस्तार तथा उनके मन्डल तथा पर्वतों के साथ योजन मान से उनका चिन्ह बताया गया है। हिमवान हेम कूट निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृंगवान ये वर्ष पर्वत कहाते हैं। इनकी लम्बाई चौड़ाई और ऊँचाई तथा इनके बीच के विष्कमों का परिमाण योजनों में दिया गया है। तथा इनमें निवास करने वालों का भी वर्णन है। भारत वर्ष चल, अचल, नदियों पर्वतों तथा प्राणियों से भरा है। जम्बूद्वीप सात समुद्रों से घिरा है और उसके बाद जलमयी पृथ्वी तथा लोकालोक का वर्णन है। ब्रह्माण्ड के बीच से भू आदि लोक तथा सातों द्वीपों वाली भूमि अपने अपने आकारों के साथ है। इन सबों में जो बड़ा है उनका परिमाण इनके व्यासों के चिन्ह के साथ छोटे रूप में लिखा है। सूर्य तथा चन्द्रमा और पृथ्वी का भी मान सैकड़ों योजन में दिया है। मानस के उत्तर शिखर पर इन्द्र आदि की पुण्य सभायें तथा उनके बाद आतात चक्र की तरह स्वर्ग की चाल बतायी है। नागवीथी तथा अजवीथी के निशान बनाकर योजनों में मण्डलों की काष्ठा और लेखाओं का मान बताया है।

लोकालोक, संध्या, दिन और विषुवत् का भी वर्णन है। पुनः

चारों दिशाओं में लोकपालों के रहने की बात है। पितरों और देवताओं के दक्षिण और उत्तर मार्ग रजोगुण और सत्वगुण के आश्रय से गृहस्थों तथा सन्यासियों के कर्म बताये गये हैं श्री विष्णु का धाम जहां धर्म रहते हैं। सूर्य और चन्द्रमा तथा ग्रह और नक्षत्रों की चाल बताई गई है। ध्रुव के हिम्मत से प्रजाओं का शुभ अशुभ तथा किसी कारण वश ब्रह्मा के बनाये हुये सूर्य के रथ का वर्णन है। जिस रथ से स्वय भगवान आकाश में चलते हैं और जिस पर देवताओं ऋषि गन्धर्व, अप्सरायें ग्रामणी सांप और राक्षस आदि निवास करते हैं उनका वर्णन है और गन्धर्व अप्सरागण तथा ग्रामीण सांप और राक्षसों के साथ जल के सार रूप चन्द्रमा का वर्णन है। सूर्य के कारण चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय होना तथा ध्रुव के साथ सूर्य के रथ का वर्णन है। फिर उस शिशुमार का वर्णन है। जिनकी पूँछ में ध्रुव की स्थिति है। पुनः ग्रहों के साथ तारारूप समस्त नक्षत्रों का वर्णन है। सूर्य की हजारों किरणों से वर्षा, शीत तथा धूप का झरना और उनमें पुण्य आत्मा वाले देवताओं के निवास स्थान बताये गये हैं। नाम कर्म, तथा अर्थ के मतलब से किरणों का हिस्सा तथा सूर्य की अपेक्षा से ग्रहों की चाल और मान बताया गया है। ब्रह्मा की स्तुति से खुश होकर विषपान करने वाले श्री शम्भू भगवान का कन्ठ शीघ्र विष से नीला कैसे होगया, उसका भी वर्णन है। देवताओं ने विष्णु की प्रार्थना की और उन्होंने भगवान महादेव की प्रार्थना की तब सब पापों के नाश करने वाले लिङ्ग की पावन कथा का वर्णन किया गया है।

विश्व रूप भगवान शिव की यह प्रथम प्रकृति का विचित्र परिमाण तथा पुरखा के महात्म्य का वर्णन है। उसने दोनों प्रकार के पितरों का अमृत के द्वारा तर्पण कैसे किया तथा पर्व और उनकी सन्धियों का वर्णन है।

स्वर्ग लोग में पहुँचे हुये प्राणियों का वर्णन तथा उनकी अधोगति का वर्णन, दोनों प्रकार के श्राद्धों का वर्णन तथा उनसे महान

कल्याण होने का वर्णन, युगों की संख्या माना सृत्यु युग तथा त्रेता युग में अपकर्ष के कारण, वर्ण और आश्रमों का वर्णन, इसमें सविस्तार किया गया है। वसु और उसकी अधोगति का वर्णन, स्वायंभू मनु को छोड़ तपस्या की बड़ाई तथा सभी युगों की अवस्थाओं का वर्णन है। कलि और द्वापर युगों का संक्षिप्त वर्णन, युगों के देवता पशु, पक्षी, और मनुष्यों का वर्णन है। युग के सामर्थ्य से आयु और पतन तथा शिष्ट आदि की उत्पत्ति का वर्णन है। मन्ना और ब्राह्मण के विचार ईश्वर, ऋषि, मनु, तथा पितरों के लक्षण बताये हैं। वेद और उनके अंगों का वर्णन तथा शाखाओं की गिनती तथा वेदव्यास इत्यादि बातों का वर्णन है॥ मन्वन्तरों का ह्रास, ह्रास के बाद देवता, ऋषि मुनि और पितरों की उत्पत्ति का वर्णन है। मनुष्य की गिनती से मन्वन्तर का संख्या भी बताई गई है। अतीत और वर्तमान सभी मन्वन्तरों का वर्णन किया गया है।

तीनों मन्वन्तरों, उनके अवसान तथा उनके देवताओं और प्रजापतियों का वर्णन भी किया गया है। दक्ष प्रजापति के दौहित्र, जिनको विद्वान दक्ष ने ही ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न कराया था का वर्णन, सार्वणी आदि मनु जो सुमेरु आदि पर्वतों पर रहने वाले हैं, का वर्णन किया गया है। फिर उत्तानपाद और ध्रुव की प्रजा सृष्टि का वर्णन है।

वेन के पुत्र पृथु से पृथ्वी का दोहन, पात्रों और दूधों तथा वंशों का वर्णन है। इसके पहले भी इस पृथ्वी का दोहन ब्रह्मा आदि दश प्रचेताओं ने किया था फिर साम के अंग से मारिष में श्रीमान् प्रजापति दक्ष की उत्पति का वर्णन है और इन्द्र के भूत भविष्य तथा वर्तमान के शासक होने का वर्णन है। मनु आदि तथा वैवस्वान मनु की भी प्रजा सृष्टि का वर्णन है। वारुण शरीर धारी महादेव के यज्ञ में ब्रह्मा के वीर्य से भृगु आदि का उत्पति बताई गयी है। चाक्षुष मनु के शुभ प्रजासर्ग हो जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर में दक्ष की ध्यान से की गई सृष्टि का वर्णन है। ब्रह्मा के पुत्र प्रियंवद नारद

ने स्वयं शाप पाने के लिए दक्ष के महाबली पुत्रों का विनाश किया तब दक्षने वीरिणी में ही प्रसिद्ध कन्याओं की उत्पत्तिकी। फिरमतिमान कश्यप की धर्म सृष्टि का वर्णनहै। इसके बाद ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एक ही तथा अलग अलग होने तथा उनकी परस्पर विशेषता की बात है। स्वायम्भू ने देवताओं को शाप देकर कैसे ईशत्व से निकाल दिया तथा मरुतों को कैसे मरुत होने का वर मिला तथा दिति से देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन है। उनंचास मरुतों तथा पिता के वाक्य से उनको देवता होना एवं वायु के कन्धे पर रहना बतलाया गया है। दैत्य दानव, गन्धर्व, उरग, राक्षस तथा सभी भूत, पशु, पक्षी एवं लताओं तथा अप्सराओं की उत्पत्ति बड़े विस्तार से बताई गई है समुद्र के संयोग से ऐरावत हाथी के जन्म की कथा है। गरुड़ की उत्पत्ति और उसकी पूजा का एवं भृगु तथा अंगिरा गोत्र वालों का बताया गया है। वहीं कश्यप, पुलस्त्य, महात्मा अत्रि तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का भी वर्णन है। इसके बाद देवताओं और ऋषियों की प्रजाओं की उत्पत्ति का वर्णन है तीन कन्याओं का वर्णन है जिनमें सारे लोक विद्यमान हैं। देवताओं के पिता और दौहित्र बताये गये हैं। तथा देवों की उत्पत्ति पांचों महात्माओं और भगवान के भक्त तुम्हारे जन्म का विस्तार पूर्वक वर्णन है। इला का वर्णन फिर आदित्य का तब विकुक्षि का चरित और धुन्धु का विनाश है। संक्षेप में इक्ष्वाकु से लेकर बृहद्बल पर्यन्त तथा निमि से लेकर जन्हुगण तक राजाओं का, नृपति ययाति एवं यदुवंश तथा हैहयवंश का वर्णन है। इसके बाद क्रोष्टा के वंश का वर्णन तथा ज्यामघ का महात्म्य तथा उनके प्रजासर्ग का वर्णन है। देवावृध अर्क महात्मा वृष्णि के वंश तथा विष्णु का दिव्य वर्णन है। महामति विवस्वान् को मणिरत्न की प्राप्ति तथा महात्मा युधाजित को प्रजा सर्ग कहा गया है। राजर्षि देवमीढुष के जन्म चरित और वंश वर्णन है। कंस की दुष्टता तथा प्रजापति विष्णु वासुदेव का देवकी के गर्भ से अकेले में जन्म लेने की कथा है। इसके बाद विष्णु के प्रजासर्ग

का वर्णन तथा देवासुर के उत्पन्न होने पर विष्णु स्त्री वध करके शुक्र की प्राण रक्षा करने पर भृगुजी का शाप मिलना तथा भृगु का शुक्र की माता के उठाने की कथा का वर्णन है। देवताओं और असुरों के बारह अनोखे नारसिंह आदि प्राण नाशक लड़ाई का किस्सा है। वीर शुक्र ने तपस्या द्वारा शिव की आराधना तथा वरदान के लोभ से उनकी स्तुति की देवताओं और राक्षसों के काम तथा जयन्ती के साथ महात्मा शुक्र के आसक्त होने पर बुद्धिमान बृहस्पति ने शुक्र का रूप धारण करके राक्षसों को मोहित किया और तेजस्वी शुक्र ने असुरों को शाप दिया। इसके बाद विष्णु का महात्म्य तथा विष्णु के जन्म की कथा है पुनः शुक्र की पुत्री देवयानी से यदु के तुर्वसु उत्पन्न। ययाति के पुत्र अनुद्रुह्यु तथा पुरु राजा हुए। वहां उनके वंशज जो श्रेष्ठ महात्मा नरेन्द्र बहुत धन और तेज वाले हुये। उनका पूरा २ हाल तथा विप्रषि कुशिक के धर्म पालन का वर्णन है। बृहस्पति के शाप को सुरभि ने हटाया फिर जन्हु वंश कीर्त्तन तथा शांतनु के वलवीर्य की कथा है। भविष्य में होने वाले राजाओं तथा सात मनुष्यों का वर्णन है। अन्त में कलियुग के खत्म (क्षीण) करने पर पृथ्वी का संहार बताया गया है तथा परार्ध्य और पर के लक्षण कहे हैं। योजन में ब्रह्मा के परिमाण का वर्णन किया गया है तथा नैमित्तिक प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक तीन प्रकार के प्रलय समस्त भूतों के बताये गये हैं। फिर सूर्य से अवर्षण होने तथा घोर संवत्क अग्नि का किस्सा कहा है। एकार्णव मेघ, वायु तथा महात्मा परमात्मा की रात्रि का वर्णन है। विशेष कर ब्रह्मकाल संख्या का लक्षण बतलाया है फिर भू आदि सात लोकों का और पापियों के रौरव आदि नरकों का वर्णन। ब्रह्मलोक के ऊपर शिव का उत्तम स्थान है वहीं प्रलय में समस्त भूतों का संहार होता है। फिर सब जीवों के परिणाम निर्णय तथा ब्रह्मा के प्रलय में सबके संहार का वर्णन है। फिर आठ प्रकार के आठ प्राण बताये गये हैं, एवं धर्म और अधर्मके आश्रयसे ऊर्ध्व एवं अधः गतियों का वर्णन है। महान भूतों का भी प्रत्येक कल्प में

क्षय और तथा दुखों को बताकर ब्रह्मा की भी अनित्यता बताई है। योगी के दोष तथा उसके परिणाम का निश्चय तथा मोक्ष को दुर्ग-लता तथा वैराग्य से दोष देखने की बात कही है। व्यक्त और अशक्त को त्यागना केवल ब्रह्म में स्थिति तथा नानात्व के दर्शन से स्वच्छ होकर सब जीव सत्व के परे जाता है तब वह तीनों नामों से अतीत रूप से रहित नामक निरंजन ब्रह्म का आनन्द कहलाता है। फिर वह किसी से डरता नहीं। फिर पहले जैसी दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि तथा सब पापों को नाश करने वाले ऋषियों के वंशका वर्णन है। पुराण का पूरा वर्णन करके जगत् के सभी प्रलयों और विकारों की कथा है। फिर जीवों की प्रवृत्तियों तथा निवृत्तियों के फल एवं वशिष्ठ के प्रादुर्भाव और शक्ति के जन्म का वर्णन है। पुनः विश्वा-मित्र के द्वारा सौदास से उनका निरादर तथा प्रभु पराशर की उत्पत्ति तथा उनका अन्तर्धान का वर्णन है। पितरों की कन्या से व्यास मुनि के जन्म की कथा तथा पुत्र के सहित शुकदेव के पैदा होने की कथा। पराशर का विश्वामित्र से वैर कैसे हुआ तथा विश्वामित्र के वध की इच्छा से वशिष्ठ ने अरण तैयार की उसे दैवविधि से विश्वामित्र के हितैषी मतिमान् विभुकन्द ने सन्तान की तरह उसका लालन पालन किया। फिर भगवान व्यास ने एक चतुष्पाद वेद को चार भागों में अपनी बुद्धि से कैसे विभाजन किया। इन सबकी कथा का वर्णन है। तत्पश्चात्य उनके शिष्यों ने शाखाका वर्णन किया। षडगुणीय प्रयोगों से स्वयंभू प्रभू ब्रह्माने धर्म की इच्छासे पुण्य प्रदेश पाने की इच्छा करने वाले मुनियोंकी पूछतांछ करनेपर उनकी हितसे सुन्दर नाभि वाला दिव्य रूप नामकशुभ विक्रम अनुत्तम वर्तमान चक्रको बताकर कहा कि आल-स्य छोड़ दृढ़ता पूर्वक पीछे चले जाओ तब कल्याण प्राप्त होगा। जाते जाते जहां इस धर्म चक्र की नेमी (रुकजाय) हो जाय उसी को पुण्य देश समझना और ऐसा बताकर फिर ब्रह्मा अदृश्य होगये

गङ्गा के गर्भ तथा नैमिषेध का वर्णन कर बताया है कि मुनियों ने नैमिषारण्य में यज्ञ किया । शरद्वान के मरने पर नैमिषारण्य के ऋषियों ने बड़ी श्रद्धा से उसका निवारण किया । उसे इस पूरी पृथ्वी का राजा बनाकर ले आये और विधि पूर्वक शास्त्र की मर्यादा से उनका आदर सत्कार किया । जब विधि पूर्वक अतिथि सेवा से राजा प्रसन्न हुआ तो उसको छिपकर क्रूर राक्षस स्वर्भानु (राहू) ने हर लिया । प्राचीन समय में जैसे ऋषियों के हरे जाने पर भी गन्धर्वों के साथ कलाप ग्राम में रहने वाले राजा ऐड़ के पीछे गये और यज्ञ में ऋषियों के साथ उनका मिलना वर्णित है । महात्मा मुनियों के यज्ञ में सब वस्तु स्वर्णमयी देखकर उस बारह वर्ष में होने वाले नैमिषारण्य के ऋषियों का उस रात में कैसे झगड़ा हुआ और ऐड़ को उन्होंने कैसे स्थापित किया । यह सब वर्णन है । वनमें ऐड के पुत्र आयुध को पैदा कराके उस यज्ञ को समाप्त करके आयुध की स्तुति की । हे ऋषि श्रेष्ठो ! यह सब जैसे-जैसे हुआ, बताया गया है । एवं यहां ऋषियों का परम, सर्वोत्तम लोकत्व भी वर्णित है । पहले समय में जो उत्तम ज्ञानपुराण पुराणब्रह्म ने कहा था और द्विजों पर अनुग्रह करके जो रुद्र का अवतार हुआ तथा पाशुपत योग एवं स्थान और लिङ्ग की पैदा होने की कथा तथा महादेव का नीला कण्ठ कैसे हुआ यह सब बताया गया है । यहां ब्रह्मवादी वायु ने विप्रों से सब पापों को नाश करने वाले तथा धन यश और आयु देने वाले इस महापुराण को कहा है । इस पुराण का श्रवण कीर्तन और विशेष रूप से धारण ही फलदायक है इसी क्रम से यह पुराण कहा जाता है । लम्बी बात भी थोड़े में ही कहने पर समझ में आ जाती है इसलिये सबसे पहले छोटे रूप में कहकर फिर पीछे से बड़े ढंग में आजाती है इसलिये सबसे पहले छोटे रूप में कहकर फिर पीछे से बड़े ढंग में कही जायगी । जो जितेन्द्रिय इस पाद को भली भांति पढ़ लेता है उसने इस समस्त को पढ़ लिया इसमें संशय नहीं । जो द्विज अङ्गों और उपनिषदों के साथ चारों वेदों को जानता है । किन्तु पुराण नहीं जानता वह चतुर

नहीं हो सकता। वेद को इतिहास और पुराण द्वारा बढ़ावा देना चाहिये, वेद थोड़ी ही विद्या से डरता है कि यह मुझे मार डालेगा, अर्थात् अर्थ का अनर्थ कर देगा। साक्षात् स्वायम्भू ने इस अध्याय को कहा है जो इसको पढ़ता है उसकी आई हुई सभी मुसीबतें दूर हो जाती हैं और अच्छी गति उसे मिलती है यह पुरा (पहले) अनन (अर्थात् प्राणन) करता है इसलिये इसे पुराण कहते हैं। जो इसकी आकृति को जानताहै वह सब पापों से छूटजाता है। इस समस्त संसार में नारायण व्याप्त रहते हैं। उस जगत की सृष्टि करने वाले की भी सृष्टि करने वाले देवाधिदेव महादेव हैं। अतः ये बातें थोड़े में ही कही गयी हैं कि वह समस्त पुराण महेश्वर हैं। सर्ग काल में यही शिव सृष्टि करते और संहार काल में प्रलय करते हैं।

इति श्री वायु महापुराण का प्रक्रिया पाद में अनुक्रमणिका कथन नाम का पहला अध्याय समाप्त ॥ ॥३॥

दूसरा अध्याय

[द्वादश वार्षिक सर्ग निरुपण]

ऋषियों ने सूतजी से कहा—"उन विचित्रकर्ण ऋषियों का यज्ञ कहां हुआ ? कितना समय लगा ? और किस प्रकार यह यज्ञ पूरा हुआ ? वायुदेव ने उन ऋषियों को कैसे पुराण सुनाया ? यह सब पूरे रूप में बतलाइये। हम लोगों को बड़ा सोच हो रहा है। ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूतजी मधुर वचन बोले "उन धीर मुनियों ने जहां उत्तम यज्ञ किया, जितना समय उसमें लगा तथा जिस प्रकार पूरा हुआ, ये सारी बातें आप लोग सुनाइये।"

जहां विश्व की सृष्टि की इच्छा से प्राचीन काल में विश्व के सृष्टि करने वालों ने हजारों वर्ष तक पवित्र यज्ञ किया था, जिस यज्ञ में तप ही यजमान और ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुए थे, जिसमें इला ने पत्नी तथा बुद्धिमान तेजस्वी मन्यु ने शामित्र का कार्य किया था। महात्माओं के उस सत्र में जहां देवों ने हजारों वर्ष तक यज्ञ किया था, जहां घूमतेर घूमचक्र की नेमिविशीर्ण होगई और इसीलिये जिस मुनि पूजित प्रदेश का नाम नैमिष पड़ा। जहां सिद्धों और चारणों से सेवित गोमती है,जहां रोहिणी से सौम्य नामक सुत उत्पन्न हुआ, जहां महात्मा वशिष्ठ तथा अरुन्धती के अति तेजस्वी सौ पुत्र पैदा हुये, जिनमें शक्ति बड़ा था, जहां शक्ति ने कल्माषपाद रिषि को शाप दिया, वशिष्ठ का पराभव बना रहा, वहां उस नैमिषक्षेत्र में उन ब्रह्मवादियों ने यज्ञ किया। इसीलिये ये ऋषि नैमिषेय कहे जाते हैं यहीं पर विश्वामित्र और वशिष्ठ में वैर हुआ, जहां अदृश्यन्ती में पराशर मुनि ने जन्म लिया तथा जिनके जन्म लेने पर भी वशिष्ठ का पराभव बना रहा। जहां पर उन महामति मुनियों का वह सत्र विक्रमशाली भूपाल पुरुखा के शासन काल में बारहवर्ष तक हुआ। राजा पुरुखा यद्यपि अठारह समुद्र के द्वीपों का उपभोग कर रहा था, किन्तु हमने सुना है कि रत्नके लोभ से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। देवहूति की प्रेरणा से उर्वशी ने उससे विवाह किया और स्वर्ग की अप्सराके साथ उसने उस सबको नष्ट करनेका उपाय किया परंतु उस नरपति के शासन कालमें ही नैमिषेयों ने सत्र संपन्न किया। प्रदीप्त तेज वाले पावक गंगा ने जो गर्भ प्रसव किया उस उल्वको पर्वत पर रखागया। जो सोनाहो गया। तब उन अतुल तेजस्वी महात्माओंकी यज्ञशाला स्वयं बृहस्पति देव विश्वकर्मा ने भगवान का स्मरण कर सोने की बनादी। एक दिन शिकार खेलते २ ऐल पुरुखा वहां पहुँचा और सोने की बनी उस यज्ञशाला को देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। लोभ से उसकी बुद्धि मारी गई और उसने उसे लेना चाहा तब नैमिषेय ऋषि राजा पर बहुत रुष्टहुये और क्रोध में आकर दैववश उन मनीषी मुनियों ने उस राजा को रात बीतते २ कुशवज्रों से मार डाला। कुशवज्रों से चूर्ण होकर

महीपति ने शरीर छोड़ दिया। तब उर्वशी से उत्पन्न उसके पुत्र को पृथ्वी पर नरपति बनाया । उसी महात्मा को नहुष का पिता कहा जाता है। उस धर्मात्मा राजा ने उन ऋषियों से अच्छा बर्ताव किया उस राजा की आयु और स्वास्थ्य बहुत अच्छा था। वह स्वयं बड़ा ही सज्जन था। उस राजा को प्रसन्न कर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ उन मुनियों ने धर्म की वृद्धि के लिये विधिवत् सत्र को शुरू किया। उन महात्माओं का वह यज्ञ बड़ा ही आश्चर्य जनक हुआ। पूर्वकाल में विश्व की सृष्टि की इच्छा से विश्व स्पष्टाओं की भाँति उस यज्ञ में वैखानस, प्रियमित्र, वालो खल्य मरिचि तथा अन्य सूर्य और अग्नि जैसी कान्ति वाले मुनिगण एवं पितृ देवता अप्सरायें सिद्ध गन्धर्व, नाग तथा चारणगण वहां उपस्थित हुये। उस यज्ञ में इन्द्रपुरी की भाँति उत्तमोत्तम सामग्रियां भरी थीं एवं स्रोत, सत्र तथा ग्रहों से देवताओं की, पित्र्य कर्मों से पित्रों की तथा जाति के अनुसार गंधर्व आदिकों की पूजा उन आराधना के प्रेमी ऋषियों ने की। उस यज्ञ में गन्धर्व सामगान करते थे, अप्सरायें गान तथा नृत्य करती थीं तथा मुनिगण चित्र विचित्र अक्षरों और पदों वाली वाणीका उच्चारण कर रहे थे। मन्त्र आदि तत्वों के विद्वान आपस में बात चीत करते तथा कुछ वितण्डा से ही अपने प्रतिवादियों को परास्त कर रहे थे। वहां पर सांख्य तथा न्याय शास्त्र के विद्वान ऋषिगण इकट्ठे थे। ब्रह्म राक्षसों ने किसी प्रकार का ऊधम वहां नहीं किया। यज्ञघातक दैत्य या यज्ञचोर असुर नहीं पहुँचे और न वहां कोई प्रायश्चित या दुर्यज्ञ ही हुआ। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के योग से सारी विधि उत्तम उत्तम रीति से हुई। इस प्रकार वहां मुनियों ने १२ वर्ष तक यज्ञ किया। भृगु आदि धीर ऋषियों ने वहां अलग २ यज्ञ किये और खूब दक्षिणा देकर सबको विदा किया। हे ब्राह्मणो! यज्ञके समाप्त होनेपर सबने महाराज शक्तिशाली वायु देवतासे वही बात पूछी जो आप लोगोंने हमसे पूछी है। भगवान वायु स्वायंभु मनु के शिष्य, प्रत्यक्ष दृष्टा तथा उनके वंश के हैं। वे अणिमा आदि आठ प्रकार की सिद्धियों के सहित पशु पक्षी आदि की सहायता से धर्म पूर्वक सभी लोगों का पालन-पोषण करते हैं।

वे सदा सातों स्कन्धों में योजनों की उड़ान भरते हैं। उनके राज्य में सातों गण अपने अपने स्थान पर स्थित और तैनात रहते हैं। वे महा बलवान हैं तथा वे प्रज्वलित तेज द्वारा एक में संगठित होकर तीनों भूतों की रक्षा तथा पोषण करते हैं, प्राण अपान आदि पांचों वृत्तियां इन्द्रियों से प्रेरित होकर शरीर को धारण करती हैं। इनको मनीषियों ने आकाश से उत्पन्न दो गुण वाला अर्थात् शब्द स्पर्श वाला तथा तेज प्रकृति वाला कहा है। वे अभिमानी देवता, भगवान वायु, अति क्रियाशील, सभी शास्त्रों के विद्वान तथा वातारणि कहलाते हैं। उन पुराणों के ज्ञाता पवन देव ने उन मुनियों को सुन्दर पुराण कहकर आनन्द में विभोर कर दिया।

इति श्री वायु महापुराण का द्वादश वार्षिक यज्ञ नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

तीसरा अध्याय

(प्रजापति-सृष्टि कथन)

सूतजी बोले—"उन कर्मठ, अति बुद्धिमान, तेजस्वी, सहस्रों सूर्य और अग्नि के समान दीप्तमान् त्रिलोकी का संहार एवं सृष्टि करने वाले भगवान महेश्वर को बार बार नमस्कार है। लोकपूजा प्रजाति गण, स्वयंभू रुद्र आदि महेश्वर, भृगु, मरिचि, परमेष्ठी मनु, रजोगुण एवं तमोगुण धर्म वाले कश्यप, वशिष्ठ, दक्ष, अत्रि, पुलस्त्य कर्दम, रुचि, विवस्वान एवं क्रतु तथा मुनि अङ्गिरा और प्रजापति को भावपूर्वक शिर से प्रणाम करके, इक्कीस क्रोधनों जिन्हें प्रजा की वृद्धि के लिए कार्य शासन दे दिया गया है-एवं अन्य पुरातन शाश्वतों, इतरगणों के साथ वर्तमान समस्त मनुओं, अन्य धैर्यशील, एवं तपस्या और शुभ आचार युक्त बृहस्पति, शुक्र आदि मुनियों का

अभिवादन कर कवि के पापों को नाश करने वाली अनुत्तमा प्रजापति की सृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, जो सृष्टि सुरेश, देवों और ऋषियों के समूह से भूषित शुभ अतुल्य, अमद एवं ऋषियों की प्रिय है, जिसमें प्रदीप्त कान्ति वाले प्रजापतियों, विशुद्ध वारणी बुद्धि और तेजधारी तपस्वियों और ब्रह्मा के दिन आदि समय का वर्णन तथा पूर्ण रूप से पौरुष एवम् श्री का विज्ञापन है, जो श्रुति और स्मृति में विस्तार से कही गई है, जिस श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कथा को वायुदेव ने कहा है, और जो नियत समासबन्धों एवं तरह तरह के शब्दों से चित्त को प्रसन्न करने वाली है। जिस प्रजासृष्टि की ब्रह्मा ने सर्व प्रथम बुद्धि पूर्वक रचना की है जिससे ईश्वर का प्रधान कार्य और प्रेरणा मिलती है, उस प्रकृति प्रसूति प्रधान ब्रह्म का जिसे अप्रमेय कारण भी कहते हैं, यहां वर्णन है जो आत्मा, गुहा, योनि, एवं चक्षु क्षेत्र, अक्षर शुक्र तप तथा प्रकाशमय सत्व है उसकी यहां चर्चा है। द्वितीय, नित्य व्यष्टि पुरुष लोकपितामह स्वयंभू पुरुष से संयुक्त रजोगुण की अधिकता और उत्पादकता से काल संयोग तथा नियम के कारण, क्षेत्रज्ञ से संयुक्त लोक की संतान वृद्धि के निमित्त भूत समस्त विकार तथा आठों प्रकृतियां महेश्वर के सकल मात्र से उत्पन्न हुईं ॥

देव, असुर, अग्नि, द्रुम तथा समुद्र की (गन्धर्व, यक्ष, उरग मनुष्य की) मनु, प्रजापति, ऋषि, पितर तथा द्विजातियों की, पिशाच, यक्ष, उरग, तथा राक्षसों की, ताराग्रह सूर्य, नक्षत्र एवं निशाचरों की, मास ऋतु संवत्सर, रात्रि तथा दिनों की, दिक्, काल योग आदि तथा युग और अयनों की वन की औषधियों एवं लताओं की, जलचर तथा अप्सराओं की, पशुओं विद्युत, सरित् मेघ, एवं विहगों की, जो कोई सूक्ष्म गति वाले, भूमि पर या आकाश में रहने वाले या स्थावर आदि जो कुछ हैं अर्थात् ब्रह्मा से लेकर जो कुछ उत्पन्न हुआ, सबकी गति और विभाग का यहां वर्णन है। छन्द, वेद, ऋक्, यजु, साम, सोम, यज्ञ एवं इनके आश्रय और जो कुछ ईश्वर के या उनकी प्रजाओं के इच्छित पदार्थ हैं वे सब एवं पहले वैवस्वत मनु

की फिर उन लोक पूज्य पुण्यात्माओं की उत्पत्ति का वर्णन है। जिनकी प्रसूति से तीनों लोक सुरेश देवर्षि एवं मनु आदि वंश भरे पूरे और शोभायमान है। रुद्र के शाप से दक्ष का फिर मनुष्य लोक में जन्म धारण करना, शिव की पृथ्वी पर नियम से रहना तथा दक्ष का प्रतिशाप पाना, मन्वन्तरों का बदलना तथा युग युग में संभूति (उत्पत्ति) उनका बार २ जन्म लेकर ऋषि होना, युगादिकों में ऋषियों की वृद्धि यह सब यहां बताया गया है। द्वापर युगों में जो जो व्यास वेदों को प्रकाशित करते हैं, उनका इस प्रकार वर्णन करते है-कल्पों, भुवनों तथा ब्रह्मा के दिन की गणना भी यहां लिखी हुई है। अंडज, उद्भिज्ज, स्वेदज तथा जरायुज जीवों तथा धर्मात्मा स्वर्गवासियो एवं यातना स्थान में पहुंचे सभी प्राणियों का प्रयाण तर्क युक्त है। प्रत्यक्ष के आत्यन्तिक, प्राकृतिक और नैमित्तिक तीनों कारण विशेष रीति से बंध और मोक्ष तथा मुख्य संसार की गति का है। प्राकृतिक अवस्था में कारणों की कैसी स्थिति रहती है। तथा फिर कैसी प्रवृत्ति है। ये सब बातें शास्त्र की युक्ति और अपनी बुद्धि के अनुसार बुद्धिमानों के लिए प्रकाशित किया गया है। हे ब्राह्मणो! पहले कहे के अनुसार ऋषियों ने कहा है सो मैं कह रहा हूँ आप लोग सुनिये ॥३॥

इति श्री वायु महापुराण का प्रक्रियापाद में सृष्टि प्रकरण नामक तीसरा अध्याय समाप्त ॥३॥

चौथा अध्याय

[सृष्टि-प्रकरण]

ऋषि बोले—इतना सुनकर नैमिषारण्य के वे सभी ऋषि नेत्रों में आंसू भरकर सूतजी से कहने लगे—हे सूत, आपने व्यासजी से सब कुछ जान लिया है। आप प्रत्यक्ष देखने वाले हो तथा वंश के ज्ञाता हो। इसलिए आप इस लोक की उत्पत्ति का वर्णन कीजिये। जिसके जो जो वंशज हैं उन सबकी प्रजापति और विचित्र ऋषियों की उत्पति जानने की हमको इच्छा है इस प्रकार ऋषियों के बार बार पूछने पर महात्मा लोमहर्षण जी क्रम से सविस्तार कथा को कहने लगे--

लोमहर्षण बोले--यह दिव्य मधुर, पाप नाशिनी, विचित्र वेद सम्मत कथा जो आपने हमसे पूछी है तथा जो कुछ मैं कहूँगा उस कथा को जो मनुष्य सुनेगा, दूसरों को सुनायेगा, ब्रह्मणों और यतियों को एकाग्रचित्त पर्वों पर तीर्थों में या मन्दिर में सुनायेगा, वह इस पुराण के कहने फल से दीर्घ आयु वाला होगा। जो पुरुष अपनी वंशावली स्मरण रखता है, उसकी स्वर्ग लोक में बहुत ही पूजा होती है। जो जैसा सुनेगा ठीक ठीक वैसा ही सबसे उस कथा को कहने से उसकी कीर्ति बढ़ती है। शत्रुओं का नाश होता है और उम्र बढ़ती है। सृष्टि, प्रलय, वंश मन्वन्तर और वंशों का चित्रण करना ही पुराणों के पांच लक्षण हैं। वह न्याय से न्याय और पवित्र से पवित्र हैं। अब मैं समस्त वायुदेव के द्वारा कहा हुआ पुराण कहूँगा।

इस पुराण में प्रवधि, प्रलय, स्थिति और उत्पत्ति वर्णन की गई है। कही हुई चीजों का इकट्ठा करना पहला प्रक्रिया पाद, उपोद्घात पाद, अनुषङ्ग पाद तथा उपसंहार पाद भी हैं। ये धर्म, यश आयु के देने वाले तथा सब पापों का नाश करने वाले हैं इस प्रकार चारों पादों को छोटे रूप में यहां लिख दिया है, अब मैं इनको क्रम से विस्तार पूवक कहूँगा। उस हिरण्यगर्भ पुरुषेश्वर, अज, प्रथम, विशिष्ट प्रजारूप लोक मात्र स्वयम्भू ब्रह्मा को प्रणाम करके महत् तत्व से प्रारम्भ कर नाना रूपों और ढंगों के साथ पांच प्रमाणों और छः श्वेतों वाली पुरुष से अधिष्ठित वन्दनीय भूत सृष्टि को मैं सुनाऊँगा। अव्यक्त कारण जो सदा सत् और असत् रूप में रहता है जिसे तत्व की चिंता करने वाले प्रधान एवं प्रकृति तथा गन्ध,वर्ण से शून्य शब्द छोने से रहित अजात, ध्रुव, अक्षय्य, नित्य, अपने में उपस्थित,जगत् का आदि कारण महत् भूत परब्रह्म, सनातन तथा समस्त भूतों के शरीर रूप को अव्यक्त कहते हैं, जो अन्त आदि से पहित सूक्ष्म निर्गुणात्मक सबकी उत्पत्ति तथा प्रलय का स्थान, असाम्प्रत अविज्ञेय ब्रह्म पहले हुआ उसीकी आत्मा से यह सारा संसार तपोमय भरा था। उसके गुणों की साम्यावस्था, तपोमय व सिर्फ एक गुण भाव वाले सृष्टि काल में क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान ने गुणयुक्त महान नाम का तत्व पैदा हुआ जो पहले छोटा अव्यक्त से ढका था। पहले सत्व महान पैदा हुआ। सत्व मात्र प्रकाश रूप मनको ही महान रूप बतलाना चाहिए। उसका प्रयोजन भी मन ही कहलाता है। क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठान से वह लिङ्ग मात्र उत्पन्न हुआ। लोक के तत्वों के कारण धर्म उसके रूप हैं। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित होने पर महान ही सृष्टि करता है। उसी को विद्वान मनुष्य मन, महान, मति, ब्रह्मा, भू, बुद्धि, प्रसिद्धि, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति, स्मृति, संविद् और विपुर कहते हैं। यह विभु, सूक्ष्मता से सम्पूर्ण भूतों की चेष्टा को फल का मनन कर लेता है। इसी-लिये इसको मन कहा गया है। तत्वों में सबसे पहले पैदा होने से

परिमाण में शेष गुणों से बड़ा होने के कारण इसको महान कहते हैं यह मौन धारण करता है। संसार और मनुष्यों के भोग के विषय में विभाग को समझता है इसलिये उसे मति कहा गया है। वृहत् और वृहण होने के कारण उसके आश्रय के भावों को बढ़ाता है। इसलिए इसको ब्रह्मा कहते हैं। सारी देहों तथा नियत तत्व भावों को अनुग्रह द्वारा भरता है अतःइसलिये उसे भू कहते हैं। इसीसे पुरुष हित और अहित सारे भावों का बोध करता है तथा कहता है इसकी बुद्धि संज्ञा है। भोग के ज्ञानात्मा होने से प्रसिद्धि तथा प्रत्युपभोग होता है एवं अपने गुणों वाले अनेक नामों से इसकी प्रसिद्धि है इसलिए महत् को ख्याति (प्रसिद्धि) कहते हैं। ये महात्मा सबको साक्षात जानते हैं इनका नाम ईश्वर है इसीसे ग्रह भी पैदा हुए इससे इनका नाम प्रज्ञा है। ज्ञान तथा रूप और क्रतु, कर्म फल सबको भोग के लिए चुनता है इसे चिति कहते हैं, वर्तमान अनीति और अनागत सभी कामों को याद रखता है इससे इसको नाम स्मृति कहते हैं पूरे ज्ञान को प्राप्त करता है इसकी संज्ञा माहात्म्य है? विन्दन अर्थात प्राप्त करने एवं ज्ञान के कारण तथा उसमें सब कुछ और यह सबमें विराजमान रहता है। इसलिये इसे बड़ी बुद्धि वाले संविद् कहते हैं। ज्ञानीनीधने इसे ज्ञान रूप होने के कारण ज्ञान कहा है। द्वन्दों के अच्छे जगह होने के कारण इसे विद्वान मनुष्य गण विपुर कहते हैं। लोकों का सब कुछ होने से निश्चय ही ईश्वर है ब्रह्म होने से ब्रह्मा एवं उद्भूत होनेसे भव तथा क्षेत्र के विज्ञान और एकत्व के कारण इसे "क" कहते हैं? पुरी में सोता है। इसलिये उसे पुरुष कहते हैं। किसी ने इसे पैदा नहीं किया तथा सबसे पहले होने की बजह से इसे स्वयम्भू कहते हैं। अच्छे विचारों को मनन करने वाले तथा तत्वों के भाव जानने वालों ने इस प्रकार इसकी व्याख्या की है। सर्ग की की इच्छा से प्रेरित होकर महान सृष्टि करता है। संकल्प तथा अध्यवसाय इसकी दो वृत्तियां हैं। लोकों के तत्व पदार्थ के हेतु धर्म आदि इसके रूप हैं और यह सात्विक, राजस और तामस रूप से त्रिगुण

है। त्रिगुण में रजोगुण की अधिकता से घमन्ड पैदा करता है। वह महान से प्रावृत आदि भूत और विकृत था यह सृष्टि, महतत्व से रुकी थी। उस तमोवहुल अहंकार से भूत तन्मात्र की सृष्टि हुई, वह भूतादि अहंकार तामस ही तो हैं भूतादि के विकृत होने पर शुद्ध तन्मात्रा की सृष्टि हुई और उससे शब्द लक्षण वाला महाविवर आकाश उत्पन्न हुआ। फिर भूतादि अहंकार ने शब्द रूपी आकाश का ढक लिया और फिर उस शब्द रूपी आकाश ने स्पर्श तन्मात्रा की सृष्टि की उससे बलवान वायु पैदा हुआ उसका गुण स्पर्श है। शब्द रूपी आकाश ने स्पर्श मात्र को ढक लिया। वायु ने विकृत रूप तन्मात्रा की सृष्टि की, वायू से ज्योति निकली। ज्योति का गुण कहा जाता है वायु की स्पर्शतन्मात्रा की रूपतन्मात्रा को ढक लिया है फिर ज्योति की विकृति से रस तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई, इसके बाद ताप से रसमय जल की सृष्टि होती है जल की यह तन्मात्रा भी रूपतन्मात्रा से ढकी होती है। जलीय रसमात्रा की विकृति से गन्ध मात्रा का उद्भव हुआ, उसी से भूमि का गुण गन्ध है। रसमात्रा वाला तोय गन्ध मात्रा को भूतों में ढके रहा। उन उन भूतों में वह शब्द मात्रा रहती है इसीलिए इसे तन्मात्रा कहते हैं। नाम अविशेष होने तथा शान्त घोर और फिर मूढ़ न होने के कारण इन तन्मात्रा को अविशेष कहते हैं इन भूतों और तन्मात्राओं की सृष्टि को बराबर समझना चाहिये। अन्य सात्विक वैकारिक अहंकार से सत्व के उद्रेक के कारण वकारिक सृष्टि एक साथ प्रवृत होती है पांच ज्ञानेंद्रियां तथा पांच कर्मेन्द्रियां हैं साधक या करण का नाम इन्द्रिय है। ये देश वैकारिक देव हैं। ग्यारहवां मन भी वैकारिक देव ही है। श्रोत्र, त्वचा, चक्षु जिह्वा एवं पांचवी नासिका ये शब्द आदि की प्राप्ति या बोध के लिए हैं। इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं दोनों पाद, गुदा, लिंग दोनों हाथ तथा दसवीं इन्द्रियवाणी है इनके कर्म गीत, विसर्ग, आनन्द शिल्प तथा वाक्य हैं, शब्द रूपी आकाश ने स्पर्श मात्र में प्रवेश किया। अतः वायु शब्द एवं स्पर्श दो गुणों वाला हुआ,

वैसे ही शब्द तथा स्पर्श ये दोनों गुण रूप में आविष्ट हुए और उससे शब्द स्पर्श तथा रूप उन तीनों गुणों वाली अग्नि हुई। शब्द स्पर्श एवं रूप फिर रसमात्र में प्रविष्ट और उनसे चारों गुणों वाला रसमय जल हुआ। इन गुणों से गन्ध संयुक्त और उससे यह पृथ्वी पैदा हुई इसलिये स्थूल भूतों में पृथ्वी पांच गुणों वाली दीखती है और इसीलिये ये स्थूल भूत शांत घोर तथा मूढ़ और विशेष कहे गये हैं एक दूसरे में प्रविष्ट होने के कारण ये एक दूसरे को धारण करते हैं यह सब केवल लोकालोक से सम्पूर्णतया आच्छन्न भूमि के भीतर हैं। इन्द्रिय ग्राह्य तथा नियत होने के कारण ये विशेष कहलाते हैं। पूर्व पूर्व के गुण उत्तर उत्तर में मिलाते हैं। इन सब के जितने जितने और जो जो गुण हैं उसके वे स. बताये गये हैं। किसी को शुद्ध वायु में अपने दोष कारण गन्ध गुण मिलता है वह गन्ध पृथ्वी का ही समझना चाहिये, क्यों कि वहां वायु में पृथ्वीतत्व मिला है। ये सातों महाबली पृथक २ अनेक होकर बिना पूर्णतया मिले प्रजाओं की सृष्टि नहीं कर सके। तब महत् तत्व लेकर विशेष पर्यन्त ये तहत तत्व एक दूसरे के आधार बनकर पुरुष के अधिष्ठान तथा अव्यक्त के अनुग्रह से अण्ड की पैदायश करते हैं एक ही समय विशेषों से यह अण्ड उस विपुल जल से पानी के बुलबुले की तरह पैदा हुआ उससे ब्रह्मा का काय सिद्ध हुआ। प्राकृत अंड के विकसित होने पर उसमें से क्षत् स्वरूप क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा हुए। वही प्रथम शरीर हैं उन्हीं को पुरुष कहते हैं भूतों के आदि कर्त्ता ब्रह्मा ही पहले रहे। सर्ग या प्रतिसर्ग में पहले पहल वही हिरण्यगर्भ चतुर्मुख ब्रह्म नामक क्षेत्रज्ञ प्रकट होते हैं। सृष्टिकाल में करणों के साथ इनकी सृष्टि होती है। फिर प्रलयकाल में करणों को त्याग देते हैं और फिर असमाहार सन्धियों में शरीरों को धारण कर लेते हैं जो हिरण्यमय मेरु है वही उस महात्मा का कलल है समुद्र उसका गर्भजल तथा पर्वत उसकी जरादि हड्डियाँ हैं उस अण्डके भीतर ये सारे लोक तथा सातों समुद्रों के साथ सात द्वीप वाली पृथ्वी छिपी हुई है।

हजारों बड़ी नदियों और पर्वतोंके साथ ये सब लोक तथा सम्पूर्ण संसार उसी के भीतर है। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और वायु जो कुछ लोक या अलोक है सब उस अण्ड में है। वह अण्ड दस गुने जल से बाहर घिरा हुआ है और इसी प्रकार दसगुना जल बाहर के तेज से ढकी हुई है? दस गुने वायु से तेज बाहर को ढका हुआ है। वायु दस गुने आकाश से और आकाश वायु से ढका हुआ है। स्वयं आकाश भूतादि अहंकार से ढका है। फिर भूतादि महत् तत्व अव्यक्त से ढका हुआ है। इन सात प्राकृत आवरणों से अण्ड ढका हुआ है। ये आठ प्राकृतियां एक दूसर को आच्छादित करके रहती हैं सृष्टि काल में स्थिति रहकर फिर प्रलय काल में एक दूसरे का ग्रास कर जाती हैं। इस प्रकार एक दूसरे से पैदा होती तथा एक दूसरी को धारण करती हैं। आधार और आधेय भाव से विकृति अपनी प्रकृति में रहती है। अव्यक्त को क्षेत्र तथा ब्रह्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यही क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सर्ग है। यह पहले अबुद्धि पूर्वक जैसे तड़ित होती है हिरण्य गर्भ की उत्पत्ति को जो ठीक २ जानता है उसकी आयु, कीर्ति, धन और प्रजा सभी बढ़ती हैं। अच्छी आत्मा निवृति का इच्छा करने वाला मनुष्य भी पुराण सुनने से गति और उसे सुख और दृष्ट मिलता है।

इति श्री वायु महापुराण का प्रक्रियापाद में प्रसृष्टि प्रकरण नामक चौथा अध्याय समाप्त ॥४॥

पाचवां अध्याय

[सृष्टि प्रकरण]

लोमहर्षण बोले—हे ब्राह्मणो! जो सृष्टि समय की अवधि बतलाई है वही परमेश्वर का दिन समझा जाता है इतनी ही बड़ी

ईश्वर की पूर्णतया रात्रि भी होती है जो सृष्टि है वही उसका दिन और प्रलय ही उसकी रात है। अतः उसका दिन ही दिन होता है रात कभी नहीं होती। मनुष्यों के हेतु रात का भी उपचार कर दिया है। प्रजायें प्रजापति वर्ग सनत्कुमार तथा ऋषि और मुनि ज्ञानेन्द्रियां और उनके विषय पांचों महाभूत तथा तन्मात्रयें और कर्मेन्द्रियां, बुद्धि और मन ये सब परमेश्वर के दिन में स्थिति रहते और दिन के अन्त में उसीमें लीन हो जाते हैं। फिर रात के खत्म होने पर संसार की उत्पत्ति होती है। विकार का संहार होने पर जब सत्व अपने में स्थिति रहता है उस समय प्रधान और पुरुष दोनों एक भाव से स्थिति रहते हैं। ये दोनों तमोगुण और सत्वगुण बराबर से स्थिति रहते हैं। फिर बढ़ घट कर एक दूसरे की विषमता से उत्पत्ति होती है। गुणों का बराबर स्थिति में प्रलय तथा वैषम्य में उत्पत्ति होती है जैसे तिलों में तेल अथवा दूध में घी रहता है। उसी प्रकार सत्व और तम में अव्यक्त के आश्रय से रजोगुण रहता है। फिर पूरी पारमेश्वरी परा रात्रि की उपासना करके प्रकृति परमेश्वर ही, जब दिन का शुरू होता है तब अपने योग से अण्ड में प्रवेश करके प्रधान प्रकृति और पुरुष को बेचैन कर देती है। प्रकृति के बेचैन होने पर रजोगुण पैदा होता है। बीजों में जल की तरह रजोगुण पैदा हुआ। गुण की विषमता पाकर चेतना के अधिष्ठान से सृष्टि होती है। गुण में क्षोभ आने पर आश्रित, परम, गुह्य, सर्वात्मा, शरीरी तीनों देव प्रगट हुये। रजोगुणी ब्रह्मा, तमोगुणी अग्नि तथा सत्वगुणी विष्णु पैदा हुये। रजोगुण के प्रकाशक ब्रह्मा सृष्टि करने वाले तथा तमोगुण के निर्माण काल रूप से तथा सत्व के निर्माण श्री विष्णु उदासीन भाव से स्थिति हैं यही तीनों लोक, ये ही तीनों गुण, ये ही तीनों वेद और ये ही तीनों अग्नियां हैं। ये एक दूसरे की सहायता करने वाले हैं। आपस में ये एक क्षण के लिए भी अलग नहीं हो सकते हैं। ईश्वर पर देव हैं, विष्णु महान से परे हैं रजोगुण से मिलकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। 'पर' नाम है पुरुष का और परा

प्रकृति को कहते हैं महेश्वर के अधिष्ठान से वह चारों ओर से प्रेरित होकर कार्य में प्रवृत्त होती है वे चिरकाल तक प्रिय होने के कारण अपने विषय में रहकर फिर महान की प्रवृत्त होती है। तब उस सत् असत् रूप से ब्रह्मा और बुद्धि दोनों पैदा हुये। इसीलिए तम तथा अव्यक्तमय क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा कहा जाता है। कार्य और करणों से सिद्ध ब्रह्मा सबसे पहले थे। तेज से उस प्रथम बुद्धिमान अव्यक्त का प्रकाश होता है। वही प्रथम शरीरी कारण कारण रूप से है। वह अप्रतहित धर्म-ज्ञान तथा ऐश्वर्य से युक्त है अप्रतहित धम तथा वैराग्य से भरा हुआ है। उसी ईश्वर का अप्रतहित ज्ञान वैराज्ञ रूप है इस धमंडी ब्रह्मा के धर्म और धन से बुद्धि प्रकट हुई। यह जो अपने मन से चाहता है वही इस अव्यक्त से पैदा होता है। वर्शाकार, वैगुण्य तथा आदत के कारण ब्रह्मत्व में चतुर्मुख तथा कालतत्व में अन्त हुआ। हजारों सिरों वाला यह पुरुष है। इस स्वयम्भू की तीन अवस्थायें हैं इस स्वयंभू को ब्रह्मा होने पर सत्व तथा रजोमयी, काल होने पर रज और तपोमयी तथा पुरुष होने पर सत्वमयी गुण वृत्ति होती है वह ब्रह्मा होकर लोकों की सृष्टि करता, काल होकर संहार करता और पुरुष होने पर उदासीन रहता है प्रजापति की तीन अवस्थायें भी हैं ब्रह्मा कमलगर्भ के रङ्ग के काल काले रङ्ग के हैं और पुरुष की आंखें पुण्डरीक की सी हैं वही रूप परमात्मा का है यह योगेश्वर अपनी लीला से तरह २ की शक्ल, क्रिया रूप तथा नामों द्वारा शरीरों को बनाते तथा बिगाड़ते हैं संसार में ये तीन प्रकारसे रहते हैं इनका नाम त्रिगुण हैं, चार प्रकार से अलग होने के कारण इन्हें चतुर्व्यूह कहा गया है अस्ति तथा आदान करने तथा विषय का भोग करने से सदा उसका वही भाव रहता है इसलिये उसे आत्मा कहते हैं सर्वत्र गतियों और अन्य शरीर धारण करने से ऋषि कहलाते हैं और स्वयं सबके स्वामी होने से प्रभू कहे जाते हैं। सबके भीतर होने के कारण ये विष्णु कहलाते हैं। भग अर्थात् ऐश्वर्य के होने से भगवान तथा राग पर शासन करने के कारण इसको राग कहते हैं।

प्रकृष्ट होने से तथा पालन करने से उसे ओ३म् कहते हैं। सब कुछ का ज्ञान होने से इसे सब कुछ तथा सब स्थानों में होने से इसे पर्व कहते हैं। नरों का अयन होने से नारायण कहते हैं। अपने को तीन प्रकार से अलग २ करके त्रैलोक्य को चलाता है। इन तीनों रूपों से वह सृष्टि संहार तथा पालन करता है। पहले पहल वह हिरण्यगर्भ चतुर्भुज रूप में पैदा हुआ। आदि होने से वह आदि देव तथा अजन्मा होने से अज कहाते हैं। सब प्रजाओं का पालन करता इसीलिए उसे प्रजापति कहते हैं। सब देवों में यह बड़ा है इसलिये यह महादेव कहाते हैं। सबका ईश तथा लोकों के वश में न होने के कारण यह ईश्वर कहलाता है बृहत् होने से ब्रह्मा तथा भूत कहा जाता है। सर्वव्यापी होने से विभु इतका नाम है। पुर अर्थात् शरीर में सोता है इसलिये उसे पुरुष कहते हैं किसी ने उसे पैदा नहीं किया और रूप के पूर्व में वह रहता है सब उसे स्वयम्भू कहते हैं। पूज्य होने से यज्ञ तथा कान्निदर्शी होने के कारण कवि कहलाते हैं सबका गन्तव्य होने में क्रमण तथा वर्णों की रक्षा करने से सूर्य और कपिल कहलाते हैं। आगे पैदा होने के कारण यह अग्नि कहलाती है। हिरण्य इसका गर्भ तथा यह हिरण्यके गर्भ उत्पन्न हुआ इसे पुराण में हिरण्यगर्भ कहते हैं। स्वयंभू के वर्ष आदि काल सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिनाये जाते। कल्प संख्या से युक्त ब्रह्मा का काल पर कहलाता है। उतना ही उसका काल अभी बाकी है। उसके अन्त में प्रलय होता है। करोड़ों हजारों कल्प जो बीत गये उतने ही पर काल अभी बाकी है इस समय जो बारह कल्प हैं उसे मैं कहूँगा। ब्रह्मणो! उनमें से पहला यह साम्प्रत कल्प है। इसमें स्वायंभू आदि चौदह मनु हैं। उनमें व्यतीत वर्तमान तथा भविष्य जो हैं वे ही नरेशर भली भांति सातों द्वीपों वाली पृथ्वी का पूरे चार हजार युग तक तप तथा प्रजोत्पत्ति से पालन करते हैं। उनकी कथा मैं पूर्णरूप से सुनाऊँगा।

ज्ञानी पुरुष को एक ही मन्वन्तर से सभी मन्वन्तरों का और भविष्य से भविष्यों का तथा कल्प से कल्पों का और वंश और देवों के साथ अतीत कल्प जैसे हैं वैसे ही भविष्य में भी होंगे ऐसा विचार कर लेना चाहिये।

श्रीवायुमहापुराण का प्रकृति वर्णन नामका पांचवां अध्याय समाप्त॥५

छठा अध्याय

[सृष्टि प्रकरण]

सूतजी बोले--पृथ्वी तल पर अग्नि नष्ट हो जाने से जल पैदा हुआ। स्थावर जङ्गम सहित पृथ्वी जब उस जल में विलीन हो गई, तब चारों ओर केवल समुद्र ही समुद्र दिखाई देने लगा। उस प्रलय पयोधि में कोई दूसरा पदार्थ नहीं दीखता था। उस समय हजार नेत्र हजार पाद और हजार शीर्ष, रुक्म वर्ण और अतीन्द्रिय पुरुष भगवान ब्रह्मा जिसको नारायण कहते हैं वे उस सलिल राशिमें सो गये। कुछ समय बाद सतोगुण के जाग्रत होने पर वे जाग गये उस समय उनको चारों दिशाओं में कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। उस नारायण के प्रति यह श्लोक कहा जाता है कि 'अप्, नार, तनु' ये जल की संज्ञायें हैं वे जल में सोते हैं इसलिये वे नारायण कहे जाते हैं। वे ही हजार युगों के बराबर रात का समय बीत जाने पर रात्रि के अन्त में सृष्टि के लिये ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं ब्रह्मा उस समय वायु का आधार कर वर्षा काल रात के समय इधर उधर उड़ने वाले जुगनू की तरह इधर उधर समुद्र तल पर घूमने लगे। उस समय समुद्रमें डूबी हुई पृथ्वी का पता पाकर उसके उद्धार के लिये सचेष्ट हो गये। उन्होंने पूर्व कल्पों में जैसा शरीर धारण कर लिया। वैसा ही दूसरा शरीर धारण कर लिया। फिर वे महात्मा मनमें दिव्य रूप का ध्यान करने लगे वे चारों ओर से पृथ्वी को जल से घिरी हुई देखकर सोचने लगे कि किस महान शरीर को धारण कर इस पृथ्वी

का उद्धार करूँ। इतने में जल क्रीड़ा के लिये वाराह रूप की उनको याद आ गई। तब हरि ने, प्राणियों से अजेय, वाङ्मय और धर्म मूर्ति वाराह रूप को धारण किया जिनका शरीर दस योजन लम्बा और सौ योजन ऊंचा था। वे रङ्ग में नीले मेघ के समान और बहुत शोर करने में भी बादलों के ही समान थे। महापर्वत के समान विशाल शरीर, श्वेत तीक्ष्ण और कठोर दांतों वाले उस वाराह की आंखें बिजली और अग्नि के समान चमकीली थी। सूर्य के समान तेजस्वी उनका स्कन्ध मोटा और गोल तथा लम्बा था। सिंह के समान गमन करने वाले उस देव का कटि भाग मजबूत तथा ऊँचा था। इस प्रकार सुडौल शुभ लक्षण और विपुल शक्ति वाले उस वाराह रूप को धारण कर भगवान पृथ्वी का उद्धार करने के लिए रसातल में घुस गये। उस भगवान वाराह के वेद चरण, यूप दंष्ट्रा, यज्ञ, वक्षस्थल, चिति मुख, अग्नि, जिह्वा, कुश, रोम समूह और ब्रह्मा ही सिर थे। उस पुरुष ने दिन रात को नेत्र के रूप में धारण किया था। वेदांग उनके कानों के कुण्डल, आज्य नासिका के छेद और स्रुवा उनका नथुना था। उनका दीर्घ घोष ही सामगान था सत्य धर्ममय वे श्रीमान धर्म और विक्रम की साक्षात मूर्त्ति थे। प्रायश्चित उनका रथ, पशु उनका भयकर जानु देश था। वे महान आकार वाले थे, उनकी अन्तड़ियां होय लिङ्ग, स्थान और दवाइयों के बीज ज्ञान उका हृदय, मन्त्र स्फिग्, आज्य खून, सौम खून, तथा वेद स्कन्ध थे। हवी उनके शरीर को सुगन्ध, हव्य उनका वेग और प्राग्वंश शरीर था। परम बुद्धिमान वे तरह २ की विद्याओं वाले दीक्षित थे। महायज्ञ मद्यविभु योगी का दक्षिण हृदय था। उपकर्म, रुचिर इष्टि और प्रवर्ग्य ही वैभव था नाना छन्द गतिपथ और रहस्यमय उपनिषद आसन थे। पत्नि छाया के सहित वे मणिमय सुमेरु पर्वत के समान ऊँचे थे इस प्रकार यज्ञ-वाराह बनकर उस जल राशि में घुस गये। उस प्रजापति ने जल से ढकी पृथ्वी के पास जाकर उसको दांतों से पकड़ कर ऊपर स्थापित कर दिया। इतना कह चुकने के बाद समुद्र जल को समुद्रों, में नदा

जल को नदियों में बांट दिया। पृथ्वी के उद्धार करने वाले उस हरि ने पृथ्वी को अपने ठीक स्थान पर रखकर पहले मनमें भविष्य की रूप-रेखा निश्चित कर उसको जल तल पर छोड़ दिया। उस जल राशि के ऊपर की पृथ्वी बहुत बड़ी नाव के समान स्थिति हुई जो कि अपने आकार की विपुलता और भगवान के प्रभाव से डूबती नहीं है।

उन भगवान कमल नेत्र ने पृथ्वी का उद्धार करने के बाद संसार स्थापन के उद्देश्य से पृथ्वी को कई भागों में अलग अलग कर दिया। पहले भूतल को समातल कर उस पर पहाड़ों को स्थापित कर दिया, पूर्व सृष्टि में जो संवर्त्तक अग्नि से गल गये थे और धरातल पर चारों ओर जलकर बिखर गये थे, वे उस जल पावन में शीतलता के कारण, वायु के द्वारा जम इकट्ठा हो जाने से पहले जहां जहां स्थिति थे वहां वहां इस बार भी अचल हो गये। पहले पिघल कर वे अचल हुये इसीलिए पर्वतों का नाम अचल पड़ा, पर्व होने के कारण वे पर्वत कहे गये जल के भीतर निगले जाने के कारण गिरि और शिलाओं के चुबने के कारण पर्वतों का नाम शिलोच्चय कहा गया उन लोक समुद्र और पर्वतों के नष्ट हो जाने पर विश्व की सृष्टि करने वाले हरि कल्प के आदि में बार बार पृथ्वी का हिस्सा और निर्माण करते हैं। इस नियम के अनुसार इस बार भी उन्होंने समुद्र, सातों द्वीप और पर्वतों से मिली हुई उस पृथ्वी भू आदि चारों लोकों की सृष्टि की, लोक सृष्टि के बाद प्रजासृष्टि की गई। विविध प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा करने वाले स्वयभू भगवान ब्रह्मा ने पूर्व कल्प की तरह ही सृष्टि की। जिस समय ध्यानमें लीन होकर उन्होंने बुद्धि पूर्वक सृष्टि की इच्छा की उसी समय ध्यानके साथही तपोमय,तमोमोह,महामोह तामिस्र और अन्ध नामक पांच प्रकार की तपोमय सृष्टि हुई। उस महात्मा के ध्यान मात्र से पांच पर्वों वाली यह अविद्या पैदा हुई। उस घमण्डी ध्यानस्थ देव का यह सर्ग पांच भागों में बांटा था। यह सर्ग चारों ओर से अन्धेरे से ढका ऐसा मालुम पड़ता था मानों घड़े से ढका दीपक

वह सर्ग बाहर और भीतर से प्रकाशमान शुद्ध और अचेतन था। इसलिये उन पांचों में बुद्धि और इन्द्रियां ढकी हुई थीं इसीलिए वे संवृत्तात्मा नामक मुख्य सर्ग कहलाये। ब्रह्मा अपने मुख्य सर्ग को इस प्रकार सृष्टि के काम में रुकावट देखकर नाराज हो गये। उस सर्ग से अलग हो वे अन्य सृष्टि के लिए ध्यान करने लगे। उनके ध्यान करने से वहां तिरछा श्रोत नाम का सर्ग पैदा हुआ। उस समय के पैदा हुये पदार्थ उल्टा व्यवहार और व्यापार करने लगे। इसलिये उनका नाम तिर्यक् स्रोत पड़ा वे सभी तमोगुण की अधिकता के अज्ञानी हुए। विपरीत मार्ग पर चलने वाले ध्यान और अध्ययन पर विचार करने वाले न थे। उस तिर्यक् स्रोत सर्ग को देखकर ईश्वर ने फिर दूसरी तरह की सृष्टि की। वह सृष्टि अहंकार प्रधान, अहंकार भाव वाली और अट्ठाइस प्रकार की है। एकादश इन्द्रिय वाले उस सर्ग का नवविध उदय बताया है। तारक आदि की सख्या आठ हैं जिनकी शक्ति तरह तरह की है। उनका अन्तस प्रकाशमान परन्तु बाहर से वे ढके हुए हैं। (वे तिर्यक् व्यवहार वाले हैं अतः उनका तिर्यक् स्रोत नाम है। इस तिर्यक् स्रोत वाली सृष्टि को देखकर भी ईश्वर ने तीसरी सृष्टि करने की इच्छा की। क्योंकि पहले की दो सृष्टियों को देखकर उनके हृदय में अन्य तरह की सृष्टि करने की इच्छा हुई थी) उनके नित्य ध्यान से सात्विक सर्ग उत्पन्न हुआ यह तीसरा सर्ग ऊर्ध्वस्रोत हुआ जो कि ऊर्ध्व दिशा की ओर ही स्थिति रहा। अतः उसकी ऊपर की ओर ही गति थी इसलिए उस सर्ग का नाम ऊर्ध्व स्रोत पड़ा। उस सर्ग के जीव सुखी और प्रेमी थे। उनका अन्तः और बाह्य दोनों प्रकाशमान और समान भाव से व्यवस्थित था। ऐसे ऊर्ध्व सर्ग में पैदा सभी ऊर्ध्व स्रोत ही कहे जाते हैं। उसी सर्ग के अन्तर्गत जीवों में प्राण चार करने वायु आदि मिले हुये हैं।

ऊर्ध्व प्रवृत्ति होनेके कारण ही वह सर्ग ऊर्ध्व स्रोत माना गया है। उस समय ऊर्ध्व स्रोत देवों की सृष्टि हो जाने के बाद प्रभु ब्रह्मा

अत्यन्त खुश हुये। इसके बाद अब दूसरी प्रकार की सृष्टि करने का विचार किया। उस प्रभु ईश्वर ने अपनी इच्छानुसार सर्ग की सृष्टि की। उस समय सत्य चिन्तन करने वाले ब्रह्मा के चिन्तन से अव्यक्त से अव्यक्त स्रोत नाम का सर्ग उत्पन्न हुआ जो प्रभु की इच्छानुसार था। वह सर्ग मध्यगत प्रवृति वाला था इसलिये वह अर्वाक् स्रोत कहा गया है उस सर्ग के जीव प्रकाश सत्व, रज, और तम तीनों गुणों से पूर्ण थे। इसीलिए उनमें दुख की मात्रा अधिक थी और वे बार बार कर्म करने वाले हुये। वे मनुष्य अन्न और वाहा सभी ओर से प्रकाश पूर्ण और सृष्टि के सहायता करने वाले हुए। वे तारक आदि लक्षणों से आठ रूपों में स्थिति हैं। वे सिद्धात्मा मानव गन्धर्वों के सहायक हैं इस प्रकार यह सर्ग तैजस् और अर्वाक् स्रोत कहा जाता है। पाँचवां सर्ग अनुग्रह के नाम से प्रसिद्ध है, जिसकी व्यवस्था शक्ति तुष्टि एवं सिद्धि के उलटे क्रम से की गई है। उस सृष्टि के प्राणी विश्वर्त एवं उसके वर्तमान अर्थ को तात्विक रूप से जानते हैं, इस प्रकार पञ्चभूत आदि जीवों का वह सर्ग छठा सर्ग कहा जाता है। उनमें जो संचय तथा बराबर हिस्सा वाले और भक्षण शील और कठोर प्रकृति के हैं, उन्हें भूत सर्ग नाम का छठा सर्ग माना जाता है। विपपर्य के क्रम से पैदा वह भूतादि सर्ग, शक्तिहीन रूप से स्थिति है। प्रथम उत्पन्न होने के नाते इसको महत् सर्ग कहा गया है इसीलिये उसे महत् सर्ग जानना चाहिये पञ्च-तन्मात्रा का दूसरा रुप भूत सर्ग कहा जाता है और विकार जनित होने के नाते उसके तीसरे रुप को वैकारिक कहते हैं। इन्हें इन्द्रिय द्वारा जीनत भी कहा जाता है। इस प्रकार बुद्धि पूर्वक प्राकृत सर्ग उत्पन्न हुआ। चौथा मुख्य सर्ग, जिसमें मुख्य स्थावर सर्ग का होना बताया है। तिर्यक् स्रोत वाले उस पाँचवें सर्ग को तिर्यक् योनि कहा है और ऊर्ध्व स्रोत उस छठे सर्ग को देवसर्ग। इसी प्रकार अर्वाक् स्रोत वाले को सातवां मानुष संग कहा जाता है एवं अनुग्रह सर्ग को आंठवां जो कि सात्विक और तामस के समिश्रण से उत्पन्न हुआ है।

इस प्रकार पांच प्रकार के विकृत और तीन प्रकार के प्राकृत सर्ग बताये गये हैं। इन्हीं विकृत तथा प्राकृत सर्गों के समेत नवें कौमार सर्ग की व्याख्या की है। (इनमें तीन प्रकार के इस प्राकृत सर्ग की बुद्धि पूर्वक सृष्टि की गई है) इस प्रकार की ब्रह्मा की ये छहों सृष्टियां बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत होती हैं। अब मैं उस अनुग्रह नामक सर्ग की जो समान प्राणियों में चार प्रकार से पूरी तरह स्थिति है, अच्छी तरह से मैं आप लोगों को सुनाऊँगा। शक्ति, तुष्टि एवं सिद्धि के विपर्यय क्रम से स्थावर सृष्टि में विपर्यय और तिर्यक् योनियों में शक्ति का संचार हुआ है। अतः मनुष्यों में सिद्धि और देवों में तुष्टि पूर्ण रूप से निहित है। पुनः इस प्रकार प्राकृत तथा विकृत सर्ग नव प्रकार के बनाये हैं। आपस के सम्बन्ध से इन सर्गों के बहुत से भेद कहे गये हैं। सबसे पहले ब्रह्मा ने अपने ही समान विद्वान सनक, सनन्दन और सनातन नामक तीन मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। वे तीनों महातेजस्वी अपने सृष्टि विज्ञान के प्रभाव से निवृत्ति मार्ग पर अटल रहे। नाना तरह के रहस्य को जानकर वे ज्ञान सम्पन्न हो गये और पिता की आज्ञा न मानकर प्रजोत्पत्ति से विमुख हो दूर चले गये। इस प्रकार इन कुमारों के चले जाने पर ब्रह्मा ने फिर अपने पद का अभिमान करने वाले अन्य मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। जिन्होंने सृष्टि कार्य में पूरा सहयोग दिया। प्रलय तक स्थित रहने वाले स्थानाभिमानी देवों के नामों को गिना रहा हूं। जल अग्नि, पृथ्वी वायू, अन्तरिक्ष, दिशायें, स्वर्ग, दिव , समुद्र, नद, शैल, वनस्पतियां,औषधियाँ, आत्मा, मन,वृक्ष,छोटे वृक्ष, लव, काठ, कला मुहूर्त, सन्धि, रात्रि, दिन,पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग ये सभी स्थानाभिमानी और स्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं। जिसके मुख से ब्राह्मण, वक्षस्थल से क्षत्रिय, उर से वैश्य और जिसके पैर से शूद्र इस प्रकार जिसके शरीर से सब वर्ण उत्पन्न हुये। जिन्होंने स्वयं लोकों को उत्पन्न किया, उस अव्यक्त से अण्ड की उत्पत्ति हुई और अण्ड से ब्रह्मा जी उत्पन्न हुये। यह प्रक्रियापाद आप लोगों

से सूक्ष्म में कहा है। इस प्रकार आद्यपाद के द्वारा यह पुराण कहा गया है।

इति श्रीवायुमहापुराण का सृष्टि प्रकरण नामका छठां अध्याय समाप्त॥६

— इति प्रक्रिया पाद —

॥ अथ उपोद्घातपाद ॥

सातवाँ अध्याय

[प्रति सन्धि का वर्णन]

सूतजी बोले—यह पहला प्रक्रियापाद कह दिया गया जिसको सुनकर सनातन काश्यपेय प्रसन्न हो गये। इसके बाद सूत का प्रिय शब्दों से सम्मानकर उन्होंने फिर आगे की कथा पूछी कि हे कल्प का कथा जानने वाले ! आप अत्यन्त कुशल हैं अब इसके बाद प्रति-सन्धि के विषय में हम लोगों को बतलाइये। बीते हुये और वर्तमान कल्प का जो मध्यकाल है और उनकी जो प्रतिसन्धि है उसको हम लोगों को जानने की अधिक लालसा है।

लोमहर्षण जी बोले—"अब मैं अतीत और वर्तमान दोनों कल्पों की जो प्रतिसन्धियां हैं, जिन कल्पों में जो मन्वन्तर होते हैं, हे सुव्रत ! उसको मैं सुना रहा हूँ। यह जो वर्तमान कल्प है वह शुभ साम्प्रत या वाराह कल्प कहलाता है। उस कल्प से पूर्व का जो कल्प बीत गया है वह सनातन कल्प था। उस अतीत और उस वर्तमान बाराह कल्प की मध्य अवस्था के विषय में बताऊँगा। पूर्व कल्प के बीत जाने पर प्रतिसन्धि आती है, तब दूसरा कल्प जनलोक से आता है यही क्रम बार२ चलता रहता है। बीच में प्रतिसन्धि के आजाने से ही एक कल्प दूसरे कल्प से अलग होते हैं। पूर्व कल्प के बीत जाने पर उस अतीत कल्प की सारी क्रियायें सर्वथा छिन्न भिन्न हो जाती है। उस कल्प से आने वाले कल्प के प्रारम्भ तक का काल कल्प

की प्रतिसन्धि कहा जाता है। मन्वन्तर और युगों की अविच्छिन्न सन्धियां मन्वन्तर युगों के साथ परस्पर प्रवृत होती हैं। जो प्रक्रिया-पादमें संक्षेपमें कहे गये हैं। वे पूर्व कल्प हैं। उन परार्ध कल्पों में इससे पूर्व जो पहले पर कल्प था वह तो व्यतीत हो चुका किन्तु द्वितीय परार्ध कल्प अभी नहीं समाप्त हुआ है अन्य जो भविष्य में आने वाले कल्प हैं वे अपरार्ध से गुणीकृत हैं। हे ब्राह्मणो ! उनमें से पहला साम्प्रत नामक यह कल्प बीत रहा है। जो प्रथम परार्द्ध का काल स्थिति काल और इस द्विपरार्द्ध के बाद का प्रलय काल कहा गया। अर्थात् पूर्व और पर परार्द्ध का काल स्थितिकाल और इस द्विपरार्द्ध के बाद क प्रलय काल कहा जाता है।

इस कल्प से पूर्व जो सनातन कल्प बीत चुका है वह हजार चतुर्युग के अन्त में मन्वन्तर परिमित ब्राह्म दिवस के अन्त होने पर क्षीण हो गया। उस समय कल्प के क्षीण होने पर और प्रलय कालीन-दाह काल के आजाने पर उस कल्प में जितने विमान विहारी देवता, नक्षत्र, ग्रह, तारा मण्डल सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह थे, वे सुकृतात्मा देव सब मिलाकर अट्ठाइस करोड़ थे। यह एक मन्वन्तर के देवतों की संख्या है। इस प्रकार की चौदहों मन्वन्तरों के देवों की संख्या तीन सौ बानवे करोड़ हुई। पहले बीते हुए कल्प में जो वैमानिक देव थे। उनकी संख्या सात सौ आठ हजार कही गई है। एक कल्पों में जितने वैमानिक देव होते हैं स्वर्ग में उतने ही चौदहों मन्वन्तरों में होते हैं। उस मन्वन्तर या कल्प काल में जितने देवता, पितर, मुनि तथा मानव उनके अनुचर, वर्णाश्रम, धर्मावलंबियों के पूज्य जितने देवता और मन्वन्तरों में जो देवलोक के रहने वाले देवता थे वे अपने संयोजकों के साथ उस समय संहार काल में प्रलय कालीन लक्षणों के उपस्थित हो जानेपर समान भाव से अपने अवश्यम्भावी स्थान नाशको जान गये। अन्त में वे त्रिलोकी के रहने वाले देवता जो कि अपने स्थान महत्व पर अभिमान करने वाले थे।

उस समय अपने स्थिति काल को समाप्त होता जान गये अतः अपने स्थानों को छोड़ कर उत्सुकता और विषादयुक्त हो महर्लोक जाने के लिए व्याकुल होकर सोचने लगे उस समय वे सभी देवता अपनी परम आत्म-विशुद्धि के कारण महर्लोक के उपर्युक्त शरीर को पा गये, इस प्रकार उस समय सबको मानसी सिद्धि प्राप्त हो गई। वे चौदह प्रकार के देवगण उस महर्लोक में उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों, भक्तों और अपर जनों के साथ जिन्होंने "महान" को प्राप्त कर लिया हैं– कुछ समय रहकर जन लोक जाने के लिए उद्विग्न होकर सोचने लगते हैं। इसके बाद वे अति विशुद्ध अन्तःकरण वाले जिन्होंने मानसी सिद्धि प्राप्त करली है, उन कल्प वासियों के साथ जिन्होंने कि 'महान' को प्राप्त कर लिया है–जन लोक को चले जाते हैं, वहां पर दसगुने समय तक आनन्द भोग कर पुनः वहां से तपोलोक को चले जाते हैं। वहां पर भी दश कल्प तक रहकर फिर सत्यलोक को चले जाते हैं। इस क्रम से कल्प निवासी ऊर्ध्व लोक जाते हैं। इस प्रकार एक के बाद एक लोक को प्राप्त करने में देवों के हजार युग बीत जाते हैं। वे देव ब्रह्मलोक में जाकर ऐसी गति को प्राप्त हो जाते हैं जहां से पुनः लौटते नहीं हैं। वहां वे आधिपत्य तो नहीं प्राप्त करते परन्तु रूप और विषय से ब्रह्म के ही अनुरूप होते हैं और उन्हीं के समान ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं खुश होकर वे वहां ब्रह्मानन्द को पाकर ब्रह्म के साथ मोक्ष प्राप्त करते हैं, जो स्वयं प्रकृति सिद्ध अवश्यम्भावी सृष्टि प्रयोजनवश नाना तरह से सम्बन्ध हो जाते हैं, उस काल से सम्बन्ध उन देवों की ऐसी स्थिति हो जाती है जैसी जान बूझ कर सोने का बहाना करने वालों की होती है वे उस समय जैसे सोते हुये भी जागते रहते हैं उसी प्रकार उस समय उन देवों के मनमें तत्काल सम्बन्धी जाना तरह का ज्ञान पैदा हो जाता है। जो भेद ज्ञान प्रलय काल में रहता है वही अब अपने तरह २ के छोटे छोटे रूपों में व्यक्त हो जाता है। उन ब्रह्मलोक निवासी अपने धर्म का पालन करने वाले परन्तु सम्प्रति नाना तरह के दर्शन से

अधिकार से निकाले हुए पुरुषों के प्राकृत ज्ञानके साथही कार्य और कारण की सृष्टि होने लगती है। वे प्रथम श्रेणी के शुद्धात्मा, निरंजन और तुल्य लक्षण सिद्ध पुरुष अपनी प्रकृति में ही व्यवस्थित रहते हैं। प्रकृति उन द्वितीय कोटि के मुक्त पुरुषों पर सर्वथा अपनी धाक तो जमा लेती है। परन्तु यह पुरुष के बिना सहयोग के किसी कार्य को स्वयं शुरू नहीं करती है।

प्रलय काल में पुरुष में ही वह लीन रहती है सृष्टि शुरू होने पर या प्राकृत संयोग काल में भी शांत अग्नि ज्वाला के समान दुबारा उत्पत्ति नहीं होती है। इस प्रकार इसे त्रलोक्य से ऊर्ध्व अत्यंत महान लोकों में उन महापुरुषों के चले जाने पर उनके साथ रहने वाले वे महापुरुष जिन्होंने कि अपनी तपस्या से महर्लोक से ऊपर के लोगों का अधिकार नहीं प्राप्त किया है, कल्प पर्यन्त तक वही शरीर धारण कर निवास करते हैं। उस समय गन्धर्वों से लेकर पिशाच पर्यन्त, मानव, पशुपक्षी, स्थावर, सांप आदि जो जीव पृथ्वी पर रहते हैं। उनको प्रलय का सामना करना पड़ता है। उस समय सूर्य की जो हजार किरणें चमकती रहती हैं, उनमें से प्रत्येक सप्त रश्मि होकर एक एक सूर्य बन जाती है। वे सूर्य अधिक से अधिक तेज होते जाते हैं और अपनी २ तेज ज्वाला से तीनों लोकों को जलाने लगते हैं। स्थावर, जंगम सब नदियां, सब पर्वत जो कि पहले बिना वर्षा के कारण सूख गयेथे. वे अब सूर्य की किरणों से जला दिये जाते हैं। वे समस्त धर्मात्मा और अधर्मात्मा पार्थिव पदार्थ जल जाते हैं। तब वे सभी अपने पार्थिव शरीर के जल जाने के कारण निष्पाप हो जाते हैं और उनका आयु युग के बीत जाने पर भी अपने अशुभ और शुभ कर्मों से सम्बन्ध रखने वाली योनि से सम्बध बना ही रहता है। अत्यन्त विशुद्ध, मानसी सिद्धि प्राप्त करने वाले व्यक्ति जनलोक में वैसी ही योनि प्राप्त करते हैं वे अव्यक्त अजन्मा ब्रह्मा की रात को वहां रहकर बिताते हैं पुनः सृष्टि काल में वे ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में उत्पन्न होते हैं। उसके बाद जब त्रिलोकी

के रहने वाले जन लोक में जाने के लिए नहीं शेष रह जाते हैं अर्थात् अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने पर जब वे जनलोक के अधिकारी नहीं रहते मध्य सूर्य की ज्वाला से वे सब लोक बदल जाते हैं, सम्पूर्ण पृथ्वी वर्षा से पूरी तरह से भर जाती और सब आवास स्थान नष्ट हो जाते हैं तब समुद्र बादल सम्पूर्ण जल और सब पृथ्वी से सम्बन्ध जल राशि आपस में एक आकार होकर एक महा-सागर के रूप में हो जाती है। इस प्रकार जब सब जलराशि एक आकार हो इस भूमि को चारों ओर से घेर लेती है तब इसका नाम 'अर्णवा' हो जाता है। जिससे सब प्रकाशित होते हैं, जिसके बिना कोई प्रकाश में नहीं आते, जो अपनी व्याप्ति और दीप्ति के कारण चारों ओर फैलाता रहता है उसको जल कहते हैं। वह जल पूरी पृथ्वी को चारों ओर फैला है और तनू धातू प्रत्युक्त होता है इसलिए अम्भ को तनू भी कहा जाता है। कवियों ने 'अर' इसको शीघ्रार्थ चिन्ह माना है। एकार्णव काल में जल शीघ्रातिशीघ्र नहीं होता इसलिए जल को 'नर या नार' भी कहा जाता है। हजार युग काल परिमाण वाली रात के हो जाने पर जब कि चारों ओर केवल जल ही जल दिखाई देता है और अग्नि के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी तल पर चारों ओर अँधेरा ही अँधेरा छाया रहता है कहीं पर भी प्रकाश नहीं दिखाई देता तब उस सलिल में निवास करने वाले उस प्रभु पुरुष ब्रह्मा के हृदय में पुनः इस लोक को बांटने की इच्छा हुई। स्थावर जङ्गमात्मक सृष्टि के नष्ट होने पर जब उस समय केवल एक मात्र समुद्र ही शेष रह गया है तब केवल इच्छा मात्र से वह ब्रह्मा हजार आंख वाला हजार पैर वाला हजार सिर वाला सोने के समान रङ्ग वाला अतीन्द्रिय हो गया उस समय वे नारायण नामक ब्रह्मा जल में ही सोते थे। ब्रह्मा के हृदय उस समय जब सत्वगुण की वृद्धि हुई तब उनको ज्ञान प्राप्ति हो गई तब उन्होंने चारों ओर केवल शून्य को ही देखा।

नारायण के विषय इस प्रकार का श्लोक प्रसिद्ध है कि जल का नाम

नर तथा तनू है उस जल में वे नाभि तक मग्न होकर रहते हैं इस लिए उनका नाम नारायण पड़ा। इन सहस्र प्राण, मनु, मुख, मस्तक हाथ पैर, आंख और कान वाले प्रजापति पुरुष के विषय में वेदों में विस्तार पूर्वक वर्णित है। यही महात्मा वेद में आदित्य वर्ण, भुवन पालक, प्रथम प्रजापति इन्द्रतम से परे हिरण्य गर्भ और महापुरुष कहे जाते हैं। यही कल्प के शुरू में रजोगुण के उद्रेक होने ब्रह्मा होकर प्रजा की सृष्टि करते हैं और कल्पान्तर में तमोगुण के उद्रेक होने से काल होकर सबको निगल जाते हैं। सत्वगुण के उद्रेक होने से वे एकार्णव में शयन करते हैं, अतः नारायण नाम से प्रसिद्ध हैं वे अपने को तीन भागों में बँटकर त्रिलोकी में विद्यमान रहते हैं। तीन मूर्तियों के द्वारा ये सृष्टि और पालन किया करते हैं। चार हजार युग के बाद जब स्थावर जङ्गम नष्ट हो जाते हैं तब दसो दिशायें जल मय होकर एकार्णवाकार हो जाती है, जब ब्रह्मा काल रूप से चतुर्विध प्रजाओं को निगल कर प्रकाशहीन जलराशि के बीच में नारायण रूप से सोते हैं, तब उन्हें कल्प के महर्लोक वाले भृगु आदि महर्षि लोग देखते हैं। उन महर्षियों ने महान पुरुष का सहारा प्राप्त किया है। गमनार्थक ऋष् धातु से ऋषि शब्द की उत्पत्ति हुई है उसमें भी वे महान् हैं, इसलिए उन्हें ऋषि कहते हैं महर्लोक में स्थिति वे समस्त ऋषि गण उस समय सोये हुये काल को देखते हैं। पहले कल्प में जो सत्य प्रकृति महर्षिगण थे उन्होंने भी काल को इसी प्रकार देखा था। इस प्रकार ब्रह्मा की हजारों रात्रि के बीत जाने पर दूसरे महर्षियों ने भी काल को इसी प्रकार शयन करते हुये देखा है कल्प के आदि में ब्रह्मा ने चौदह संस्थाओं के विभाग की कल्पना की। इसलिए उस काल को कल्प कहते हैं। वही व्यक्ताव्यक्त महादेव कल्प के आदि में सब भूतों की बार बार सृष्टि करते हैं अतः यह जगत् उन्हीं का ही है।

अतीत और वर्तमान काल के मध्य भाग में जो कुछ हुआ है। वही प्रतिसंधि का वर्णन है। मैंने आपसे उस श्रेष्ठ कथा को कहा है हरेक कल्प में जो घटान होती है, उसे भी सूक्ष्म रूप में मैंने कही है। अब तक जो कुछ कहा है वह वर्तमान कल्प का वर्णन है। आपसे मैं साम्प्रत कल्प के सम्बन्ध में सुनाऊँगा।

इति श्रीवायुमहापुराण का प्रतिसन्धि नाम का सांतवां अध्याय समाप्त॥७

आठवां अध्याय

सूतजी बोले—ब्रह्माजी के हजार युग के बराबर रात्रि काल को बिताकर वे आदि पुरुष रात्रि के अन्त में सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा जी का रूप धारण करते हैं ब्रह्मा जी उस समय वायु का रूप धारण कर उस अन्धेरे में जब कि स्थावर जङ्गात्मक संसार नष्ट हुआ रहता, सारी पृथ्वी चारों ओर जलमयी रहती है, पंच महाभूतों का विभक्त रूप नहीं रहता अर्थात्पांचों महाभूत अलग २ नहीं दिखाई पड़ते-इधर उधर जल के ऊपर घूमते रहते हैं। वर्षा ऋतु के खद्योत की भाँति वे इधर उधर घूमते रहते हैं परन्तु स्वयंभू हमेशा उसको देखते रहते हैं। उस समय ईश्वर पृथ्वी को जल से बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। वे उस समुद्र में मग्न पृथ्वी का अनुमान् से ठीक पता पाकर पृथ्वी के उद्धार के लिए प्रयत्नशील हो गये। उन्होंने पूर्व कल्पों का स्मरण कर तुरन्त ही दूसरा शरीर धारण कर लिया तब प्रभू वाराह का रूप धरकर उस समुद्र में घुस गये, और जल में ढकी पृथ्वी को अच्छी तरह देखकर पृथ्वी को जल के ऊपर स्थापित कर दिया। जलको विभक्त कर अलग २ जलाशयों में स्थापित किया। समुद्र जल को समुद्रों में, नदी जल को नदियों में, और पार्थिव जल को पृथ्वी में स्थापित किया पूर्व सर्ग के संवर्त्तक अग्नि से भस्म होने पर उस समय के पर्वत भी पृथ्वी में ही गल कर लीन हो गये थे।

जल प्लावन के समय शीतलता के कारण, वे जहां तहां पहले गड़े हुये थे, वहां वहां वह फिर जमकर स्थिर हो गये। वायु के द्वारा ऊपर का जल भी सूख गया। गतिहीन होने के कारण उनका नाम अचल पड़ा, पर्व के कारण पर्वत, जल से निगले जाने के कारण उनका नाम गिरि, पत्थरों के चुनने के कारण उनका नाम शिलोच्चाय पड़ा। इसके बाद ईश्वर ने जल के भीतर से पृथ्वी का उद्धार कर उसको ठीक जगह पर रख दिया और उसका फिर से विभाग किया। उसके सातों द्वीपों में और हरेक द्वीपों को सात सात सालों में बांट दिया। उन द्वीपों से चालीस साल बने और उतने ही पर्वत हरेक साल में बने। सातों द्वीप, सातों समुद्र, चारों तरफ से घिर कर एक दूसरे के पास हैं।

ब्रह्म जी ने सबसे पहले भू आदि चारों लोकों को बनाया फिर चन्द्रमा, सूर्य तथा ग्रह नक्षत्रों कीउत्पत्ति की। ब्रह्माजी ने सबसे पहले इस कल्प की जगह पर रहने वाले जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, आकाश, स्वर्ग, दिशायें, समुद्र, नदी, पर्वत, रात, दिन, पक्ष, मुहूर्त अलग २ रूप में बनाये। ब्रह्माजी ने कल्पके शुरू में कृतयुगको बनाया। जो मनुष्य तपोलोक में जाने से रह गये वे मनुष्य लोक में ही रह, और वहां पर उन्होंने फिर सृष्टि उत्पत्ति की, वे तपस्या में ब्रह्माजी के मानस पुत्रों के रूप, शरीर रखकर अपने कामों को पूरा करते हैं, अपने कर्म के अनुसार ही जन्म धारण करते हैं, और कर्म के कारण ही वे मनुष्य लोक से इस लोक में आते हैं, वे अपने अच्छे बुरे कामों के फल से ही यहां जन्म लेते हैं अपने कर्म के अनुसार वह हर तरह की योनि में जन्म लेते हैं जिसके जैसे कर्म होते हैं उसको वैसा ही फल भोगना पड़ता है। ब्रह्म जी ने फिर दोबारा मनुष्यों की सृष्टि करने की इच्छा से अपने मुँह में हजारों मनुष्य व स्त्री पैदा किये। उनके सतोगुण के प्रभाव से मनुष्यों में बुद्धि तथा अच्छे विचार उत्पन्न हुये और हृदय में से हजारों स्त्री पुरुषों के जोड़े उत्पन्न हुये। उन मनुष्यों में कुछ विद्वान तथा कुछ अविद्वान भी थे। ब्रह्मा जी ने अपने अरु से

और एक हजार मनुष्यों को जन्म दिया। जिन मनुष्यों में रज तथा तम की अधिकता होने के कारण कामुक भाव पैदा हुए। ब्रह्मा जी के चरणों से पैदा होने वाले मनुष्य क्रोधी तथा कम आयु वाले हुये जो भोग विलास में अधिक तृप्त हुए। भोग विलास की सृष्टि इसी कल्प में शुरू हुई। ब्रह्माजी की जो पहली मानसी सृष्टि हुई। उसी वंश में मैथुन सम्बन्धी सृष्टि पैदा हुई, उस समय स्त्रियों को रजो-दर्शन प्रति माह नहीं होता था। तथा संयोग होने पर भी उनके सन्तान पैदा नहीं होती, जीवन के बुढ़ापे के समय सिर्फ एक लड़का तथा एक लड़की होती थी। वे मरने वाले थे उसी समय से मैथुन सृष्टि पैदा हुई। सत्ययुग के शुरू में वे मनुष्य, नदी समुद्र और पर्वतों के किनारे इधर उधर घूमते रहते थे और वे फल तथा मूल को अधिक खाते थे। उन मनुष्यों में कोई भेद भाव न था वह उम्र तथा रूप में बराबर थे उनका कोई स्थायी घर न था वे अकेले रहते थे उनको न तो कोई शोक था तथा अच्छी प्रकृति वाले थे। उस समय पशु, सांप तथा पृथ्वी पर रेंगने वाले जीव नहीं पैदा हुये और न कोई पापी, अत्याचार करने वाले मनुष्यों ने जन्म लिया था। उस समय खाने की चीज मूल-फल तथा फूलों की कमी थी। परन्तु उनकी इच्छानुसार पृथ्वी के रस पदार्थ मिलते रहते थे उस समय न कोई रोग ही अधिक था और न रोग नाशक दवाइयां मिलती थीं। उनके शुद्ध विचार से दो बच्चे पैदा हो जाते थे वे जन्म और रूप में बराबर थे। उनकी मृत्यु भी साथ ही होती थी। उस समय सत्य, प्रकाश, सुख, क्षमा तथा आचार विचार वाली प्रकृति के ही मनुष्य थे। जनता के रोजगार धन्धे साधारण होते थे। सतयुग में अच्छे तथा बुरे काम करने से प्रजा की उत्पत्ति नहीं होती थी। वे आपस में एक ही समान प्रेम पूर्वक मिलजुलकर रहते थे। उस युगमें सब बराबर छोटे बड़े का कोई प्रश्न नहीं था, उस समय सभी सुखी तथा प्रसंन थे। एक दूसरे से कोई बैर भाव न था। सतयुग में ध्यान अधिक था द्वापर युग में यज्ञ और कलियुग में दान ही सबसे अच्छा पुण्य धर्म था त्रेता में ज्ञानका अधिक

प्रभाव था सतयुग में सतोगुण अधिक रहता है त्रेता में रजोगुण, द्वापर युग में रज तथा तम दोनों ही अधिक रूप में रहते हैं और कलियुग में सिर्फ तमोगुण ही अधिक रहता है। अब मैं सतयुग के काल के बारे में कुछ कथा सुनाऊँगा।

सत्युग में चार हजार वर्ष होते हैं। उसकी संध्या काल का समय आठ सौ वर्ष है। उस युग में प्रजा को आपत्तियों, दुखों तथा मृत्यु का कोई डर न था। उस समय युग की संध्या का समय बीत जाने पर उस युग का चौथाई हिस्सा रह जाता है। अतः सत्युग के खतम हो जाने पर इस युग की सब सिद्धि खतम हो जाती है। उस सत्युग की सिद्धी के खतम हो जाने पर त्रेता युग और द्वापर युग में संध्या काल में दूसरी सिद्धि पैदा होती है सृष्टि के शुरू के युग में आठ प्रकार की सिद्धियां होती हैं। उन सिद्धियों के नाम ये हैं। सतयुग में वह कल्प के शुरू में मानसी सिद्धि है। सब मन्वन्तर में चार हिस्से के अनुरूप अपने २ वर्ण तथा धर्म से आचार विचार से, कर्म से सिद्धियां होती हैं। सत्युग के संध्या काल में युग धर्म का एक पाद, संध्यांश काल में संध्याकालीन धर्म का एक पाद और त्रेतायुग के शुरू में उस संध्यांशकालीन धर्म का एक पाद समाप्त हो गया है और उसी विचार से आयु, बल तथा ऐश्वर्य भी खतम हो जाता है। हे मुनियो! सत्युग और संध्यांशकालीन धर्म को नष्ट हो जाने पर त्रेता युग शुरू होता है जिस समय मनुष्यों में सत्युग की सिद्धि नष्ट हो जाती है उस समय उसमें दूसरी सिद्धि पैदा होती है। उस समय जल की अधिकता भी कम हो जाती है और जल सावन भादों के बादलों के रूप में बदल जाता है और वर्षा से हरी भरी सृष्टि पैदा हो जाती है एक समय भी वर्षा के हो जाने से सब स्थानों पर पेड़ पौधे उग जाते हैं। उससे जनता को तरह २ की वस्तुयें प्राप्त हो जाती हैं त्रेता युगके शुरूमें जन समूह उसीसे अपना गुजर बसर करते हैं इसके बाद धीरे२ अदल बदल शुरु होती है। सतयुग में स्त्रियों की अधिक उम्र के बाद संतान होती थी। लेकिन त्रेतायुग में यह बाद सब खतम हो

जाती हैं त्रेता युगकी स्त्रियां प्रतिमास ऋतुमती होती थीं और बुरे दिनों (अकाल) मेंभी प्रतिमास संयोग करने से सन्तान शीघ्र उत्पन्न हो जाती है। और फिर समय बदलने से मनु य के रहने की जगह में उगे हुये पेड़ पौधे सब नष्ट हो जाते हैं। इससे मनुष्य दुखी होकर पहले सतयुग की सिद्धि का ध्यान करने लगते हैं। उनके सत-युग के ध्यान से दोबारा फिर सब हरे भरे वृक्ष पैदा हो जाते हैं। अतः वे उन्हीं वृक्षों से सब वस्तुयें प्राप्त कर लेते हैं। त्रेतायुग में मनुष्य उसी के द्वारा सब सुख पूर्वक जीवन यापन करते हैं और फिर समय के अनुसार मनुष्य अधिक लोभी और लालची हो गये तथा लोभ के कारण मधु-वृक्ष आदि वस्तुओं को मनमौजी बरबाद करने लगे, इस अनाचार के कारण वे सब कल्पवृक्ष आदि सभी नष्ट होने लगे। उस युग में कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने पर प्रजाओं में अधिक दुख पैदा हो गये। उन्हें सर्दी, गर्मी का दुख भी सताने लगे। और सर्दी गर्मी से दुखी होकर वह लोग कपड़े पहनने लगे। और वे अपनी इच्छा से इधर उधर घूमने वाले बिना घर के रहने वाले वायु ठण्ड और गर्मी के दुख से अपने २ घर बनाकर रहने लगे। अपनी इच्छा से घर बनाकर वह सुख पूर्वक घरों में रहन लगे। और तब उन्होंने पर्वत, नदी, जल की जगह, मठ, ऊचे नीचे सभी जगहों में दुर्ग तथा महल इत्यादि बनाने लगे और गांव नगर महल अन्तःपुर इत्यादि बनाये जाने लगे। उन जगहों की लम्बाई चौड़ाई अपनी बुद्धि से नापकर बनाने लगे। तभी से नाप सूचक यह संज्ञायें निश्चित हुईं। यह तीन संज्ञायें प्रदेश, हस्तकिष्कु, धनु थीं। दस अँगुलियों का एक प्रदेश होता है। अँगूठा से लेकर छोटी अँगुली तक के एक वालिस्त को प्रादेश कहते हैं। बीच की अँगुली के बाद से ताल और तीसरी अँगुली (अनामिका) के अन्त तक गोकर्ण और छोटी अँगुली की एक वित्ता होती है। वितस्ति का परिमाण बारह अगुली का होता है। इक्की अँगुली के पर्वों की रलि और चौबीस अँगुलियों की पर्वों का एक हाथ और व्यालीस अँगुली

का एक किष्कु होता है। चार हाथ का एक धनु होता है। दो हजार धनुओं की गव्यूति होती हैं और आठ हजार धनुओं का एक योजन होता है। इसी नाप के अनुसार उस मनुष्य ने अपने रहने के स्थान बनाये। उन मनुष्यों ने चार तरह के दुर्ग बनाये, तीन दुर्ग तो प्राकृतिक होते थे और चौथा दुर्ग बनावटी होता था। इस बनावटी दुर्ग को इस प्रकार बनाते थे कि जिसमें ऊँचे ऊँचे चारों तरफ से घिरे हुए कोठे, जलाशय तथा दो दरवाजे होते थे। उनकी लम्बाई चौड़ाई आठ दस हाथ की होती थी, गांव नगर और प्राकृतिक दुर्गों की आबादी पर्वत तथा जलों द्वारा बनाते थे। लम्बाई से अधिक चौड़ाई वाले गांव या पुर अच्छा होता है पूर्व तथा उत्तर की दिशा का भाग कुछ नीचा रहना चाहिये। छोटा, घना, गोला, बड़ा तथा छिन्न कर्ण वाला पुर या गाँव खराब होता है। चारों दिशाओं में एक बराबर आकार वाला पुर अच्छा होता है पर सीमा दो कोसों की होती है। और क्षेत्र की सीमा चार धनु की होती है श्रीमान, राज महाराजाओं के राज पथ की लम्बाई चौड़ाई दस धनुओं की होती है उसमें मनुष्य हाथी घोड़े रथ सभी सब सुख पूर्वक चल फिर सकें। उस समय मनुष्य चौराहे की गली को चार धनु की बनाते थे तथा घरेलू गली को दो धनु की और छोटी सी गली एक धनु की बनाते थे।

जिस प्रकार पेडों पर उसकी टहनियां पत्ते इधर उधर फैले रहते हैं उसी तरह लकड़ी को फैला कर उन लोगों ने अच्छे घर बनाये। पेड़ों की टहनी या शाखा की तरह फैले होने के कारण इन घरों को शाला भी कहते थे। शाखा की तरह बनाये जाने से इन्हें गृहशाला भी कहते थे। शाखा शब्द से ही शाला शब्द बना है। मन को खुश करने वाले स्वच्छ और पवित्र घरों का नाम प्रासाद रखा था। उस युग के मनुष्य गर्मी दुख से छुटकारा पाकर अपनी खाने पीने की चिन्ता दूर करने का कोई उपाय सोचने लगे। मधु के साथ ही कल्प वृक्षों का नष्ट हो जाने से वे भूख प्यास से घबडाने लगे।

उस त्रेतायुग में भी सतयुग की तरह उनकी जीविका का साधन करने के लिए वृष्टि रूप सिद्धि पैदा हुई। उस दूसरी वृष्टि रूपी सिद्धि से जो जगह सूख गई थी वहां पर फिर से हरी भरी पृथ्वी हो गई। हरी भर पृथ्वी में सभी प्रकार के फल फूल, पेड़ पौधे तरह २ की दवाइयां तथा अपने खाने पीने की व्यवस्था हो गई। इन सब साधन के सुलभ हो जाने से मनुष्य सुख पूर्वक रहने लगे। तब त्रेतायुग में इस धर्म के अनुसार मनुष्य रोगी और लोभी हो गये और रोगी और लोभी होने से तथा अपनी शक्ति के अनुसार उन मनुष्यों ने क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष सब अपने २ कब्जे में करने लगे। सतयुग के पूर्व में ब्रह्मा जी की मानस सृष्ठि के महात्माओं की कथा का वर्णन है। वे यजन से पैदा हुये हैं। वे ही फिर त्रेतायुग में दुबारा जन्म लेते हैं। अच्छे बुरे कर्म के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाति के मनुष्य पैदा हुये। उनमें से जो अधिक विद्वान, जितेन्द्रिय, बलवान तथा सत्य वचन बोलने वाले गांव और शहरों में रहने लगे। जो कमजोर, गरीब दुर्बल तथा एक दूसरे के सहारे रहते और इनसे दान लेते तथा इनके कर्म करते थे और उनकी सेवा करते थे। उनके इस दोष से सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई और अब उस युग के धर्म के अनुसार पृथ्वी की चौदहों प्रकार की सब चीजें लोप हो गईं।

मनुष्य उस समय फल की जगह फूल और फूल की जगह पत्ते तोड़ने लगे इससे उनकी बुद्धि नष्ट हो गई और घबड़ाने लगे। वे सब के सब इकट्ठे होकर ब्रह्माजी के पास गये। तब ब्रह्माजी ने सुमेरु पर्वत को बछड़ा बनाकर पृथ्वी को दुहने लगे, दुहने से पृथ्वी की सारी चीजें जो उस समय लोप हो गई थीं वह सब की सब फिर से निकल आई थीं। पकते समय फल के बीज को औषधि कहते हैं औषधियां सत्रह प्रकार की हैं। त्रेतायुग के शुरू में ये औषधियां पैदा हुईं। ब्रह्मा जी के पृथ्वी दुहने पर जो बीज पैदा हुए, उनसे मौसम के अनुसार फल पैदा हुए। उन्होंने (ब्रह्माजी ने) पृथ्वी पर कुछ अन्न भी पैदा किया। ब्रह्माजी

ने उनके जीविक साधन में बहुत सहायता की। इन मनुष्यों में जो बलवान तथा बड़े आदमी थे उन क्षत्रियों को एक दूसरे की रक्षा करने का काम दिया। जो उन क्षत्रियों के पास निडर होकर जाते तथा जो सत्य बोलने वाले विद्वान लोग थे उनको ब्राह्मण कहा गया। और बुरे २ कर्म करने वाले जान २ कर पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्य को मारने वालों को वैश्य कहने लगे तथा उन्हें साधारण जीविका चलाने के कार्य को दिया। जो दुखी होकर, सोचते हुये इधर उधर घूमते रहते थे उन्हें शूद्र कहते थे। और उन्हें सेवा कार्य करने को कहा। ब्रह्माजी ने चारों जाति के लोगों के धर्म कर्म को निश्चय किया। और वे चारों जाति के मनुष्य अपने २ कार्य ठीक प्रकार से करने लगे। वे धीरे २ अपने २ धर्म तथा वर्ण के नियमों का अनादर करने लगे। प्रजापति ब्रह्मा जी ने उनके अच्छे बुरे कर्मों को देखकर क्षत्रियों को बल, शासन और युद्ध ही जीविका का साधन बनाया। ब्राह्मणों को पठन पाठन करना तथा याजन और पतिग्रह रूप तीन कार्य बतलाये, पशु पालना, खेती करना तथा व्यापार करना वैश्यों को जीविका का उपाय का साधन दिया, और शूद्रों के लिये शिल्प तथा सेवक की वृत्ति दी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के लिये यजन, दान की तथा पढ़ने पढ़ाने की व्यवस्था की। ब्रह्माजी ने उनके कर्मों के अनुसार उनको जीविका देकर लोकान्तर में भी उनके स्थानों का निश्चय कर दिया। इस प्रकार चारों तरह के धर्म और वर्ण के ठीक हो जाने पर प्रजापति ब्रह्माजी ने आश्रमों का स्थान बनाया, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक नाम के चार आश्रमों पहले बनाया। उन आश्रम में रहने वाले मनुष्य कुछ धर्म इत्यादि को नहीं मानते थे। और ब्रह्माजी से पूँछने लगे कि पृथ्वी पर हमारा क्या कर्त्तव्य है तथा क्या कर्म है, क्या करें। ब्रह्माजी ने तब उन्हें कर्म करने के लिये चार आश्रमों को बतया। प्रजापति ब्रह्मा जी ने मनुष्यों को शिक्षा देने के लिए धर्म, आचार, विचार, यम, नियम का उपदेश दिया।

गृहस्थाश्रम ही चारों आश्रमों के बीच अन्य आश्रमों की उत्पत्ति और स्थिति का कारण बतलाया। गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों की जड़ है अब चारों प्रकार के यम नियम इत्यादि आश्रमों का वर्णन करते हैं। गृहस्थाश्रम के चार पांच मुख्य कर्त्तव्य हैं, अतिथिसत्कार, यज्ञ, श्राद्धादिक करना, हवन, अनुष्ठान करना, सन्तानोत्पत्ति तथा स्त्रीपरिग्रह हैं। दंड, मेखला जटाधारण करना, पृथ्वी पर सोना, गुरु की सेवा करना भिक्षा मांगकर अपना पेट भरना ब्रह्मचारियों के मुख्य कर्त्तव्य हैं। वानप्रस्थ वालों का चीर पत्र पहनना तथा कन्द, मूल, फल धान्य इत्यादि खाना नदी या तालाब में दोनों समय डुबकी लगाकर स्नान करना हवन तथा अनुष्ठान इत्यादि करना ये मुख्य कर्त्तव्य हैं। सन्यासियों के लिये ये मुख्य कर्त्तव्य हैं। रातके समय भिक्षा न मांगना चोरी न करना शौच मनुष्यों के प्रति दया, क्षमा गुरु की सेवा करना क्रोध न करना तथा अपनी इन्द्रियों को वश में करना सन्यासियों का कर्म है। ध्यान इन्द्रिय मन का संयम किसी के घर जाकर बिना कड़वे वाक्य कहे। भिक्षा मांगना सन्यासियों का धर्म है। ब्रह्माजी ने अपने मुख से कहा है कि चारों आश्रम कल्याणकारी हैं तथा ये दया, क्षमा योग, व्रत, नियम और अश्रद्धावान मनुष्यों को फलदायक नहीं होते जिसके भीतर श्रद्धा नहीं है वह मनुष्य परिश्रम करके भी सफल नहीं होता। मलीन मन से सब कुछ दान करने पर भी वह धर्म पाने वाला नहीं हो सकता, क्योंकि उसकी भावना शुद्ध नहीं है। देव पितर ऋषि मनु के जो स्थान हैं वही स्थान सन्यासियों के लिये है। अट्ठासी हजार ऊर्द्ध, वरेता ऋषियों के जो स्थान हैं वे ही गुरु जी के पास रहने वाले ब्रह्मचारियों के स्थान हैं। सप्तऋषि जहां रहते हैं वहीं देवताओं को रहने की जगह है गृहस्थी मनुष्य ब्रह्मा के लोक में निवास करते हैं। और सन्यासी ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। योगियों के लिये अमर्त नाम का स्थान है किन्तु तरह तरह की बुद्धि वालों के लिये कहीं भी स्थान नहीं है देवयान महापथ के चार पथ हैं ब्रह्माजी ने मनवन्तर के शुरू में देवयानि प्राप्ति के लिये

भूमण्डल में इनको बनाया। सूर्य इन सब पथों के द्वार रुका है इसी प्रकार पितृयान के द्वार को चन्द्रमा कहते हैं। ब्रह्माजी ने उस समय चार प्रकार की सन्तान को उत्पन्न किया। ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जीवन यात्रा के साधन हैं।

ब्रह्माजी के इन पुत्रों ने ही धर्म के अनुसार सन्तान पैदा करके सृष्टि बढ़ाई। स्वाम्भू ने जो पहले मानसी सृष्टि उत्पन्न की वह नाना तरह के रूप रखकर ध्यान करने लगी। जन लोक जो अतीत कल्प में थे वे देवता यहां प्रजा बनकर पैदा हुये। इस प्रकार की प्रजा सृष्टि ब्रह्माजी ने की। प्राणियों के कर्म फल के नष्ट होने पर ही दुबारा जन्म लेना पड़ता है। वे देव, पितर, असुर, सर्प, वृक्ष, पशु पक्षी इत्यादि नाना तरह की योनि में जन्म लेते हैं।

इति श्रीवायुमहापुराण का आठवां चतुराश्रम विभाग अध्याय समाप्त॥८

नवाँ अध्याय

देवादि सृष्टि कथन

सूत जी बोले—प्रजापति ब्रह्माजी के मनन करने से मानसी सृष्टि पैदा हुई। उनके शरीर से क्षेत्रज्ञ समूह पैदा हुआ। श्रेष्ठ स्वयम्भू सृष्टि का कार्य शुरू करने के लिए ब्रह्माजी का ध्यान करने लगे, उनकी सृष्टि में सबसे पहले असुर पैदा हुये। ब्रह्मा जी के जिस शरीर से असुर पैदा हुये उस शरीर को उन्होंने त्याग दिया। वह त्यागा हुआ शरीर तुरन्त ही रात्रि के रूप में बदल गया। वह शरीर तमोगुणी था, इससे रात्रि को त्रियामा कहते हैं। अतः इसी कारण से स्वयम्भू की पूरी प्रजा रात में तमोगुण से ढकी रहती है। ब्रह्माजी ने असुरों को देखकर अव्यक्त और सतगुणों से भरपूर दूसरा शरीर धारण करके ब्रह्मा जी बहुत खुश हुये। फिर ब्रह्माजी के मुख कमल से देवताओं की उत्पत्ति हुई। वे ब्रह्माजी के मुख से होने के कारण

ही देवता कहलाये। ब्रह्माजी ने देवों के भी उत्पत्ति के बाद दूसरा शरीर त्याग दिया। उस त्यागे हुये शरीर को ब्रह्माजी ने दिन बना दिया। इसलिये अच्छे कर्म अनुष्ठान इत्यादि शुभ कार्य दिन में ही होते हैं। फिर ब्रह्माजी ने सतगुण से दूसरा शरीर रखकर दोनों पक्षों के साथ रात और दिन के बीच में पितरों की उत्पत्ति की। इसीलिये उन देवताओं की पितृ संज्ञा हुई। जिस शरीर से ब्रह्माजी ने पितरों को पैदा किया उस शरीर को भी छोड़ दिया। यह छोड़ा हुआ शरीर फिर संध्या के रूप में बदल गया। अतः इसीलिये देवताओं के लिये दिन शुभ होते हैं राक्षसों के लिये रात्रि और पितरों के लिये संध्या समय शुभ होता है। जभी से, ऋषि, देवता, असुर, मनु ब्रह्माजी के संध्या रूप की पूजा करने लगे। ब्रह्माजी ने अपने दूसरे रजोगुण से युक्त शरीर रख कर मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। उन्होंने अपना वह रूप भी छोड़ दिया। और वह त्यागा हुआ शरीर शीघ्र ही प्रकाशमय होगया। इस प्रकाश के पैदा होते ही सब लोग प्रसन्न होगये। जिस जिस शरीर को ब्रह्माजी ने छोड़ा था उससे, दिन रात्रि, संध्या, प्रकाश के रूप में होगये। दिन, प्रकाश तथा संध्या ये तीनों सतगुणों से भरा हुआ तथा रात्रि तमोगुणी है। इसीलिए यह त्रियात्मा कहलाती है। ब्रह्माजी के दिव्य शरीर से पैदा होने के कारण देवताओं को किसी प्रकार के दुख नहीं सताते वह हमेशा प्रसन्न रहते हैं। दिन में उनकी उत्पत्ति होने के कारण वह दिन में अधिक बलशाली होते हैं। और राक्षसों की उत्पत्ति रात में होने के कारण राक्षस रात्रि में अधिक बलशाली होते हैं। देवताओं की राक्षसों की मनुओं की सभी मन्वन्तरों में ऐसे ही उत्पत्ति होती है। दिन, रात, संध्या, प्रकाश की भी इसी प्रकार पैदायश हुई। ब्रम्हाजी ने और जल को ही देखकर, देवता तथा राक्षस, मनुष्य इत्यादि तरह-तरह की सृष्टि को बनाया, ब्रम्हाजी ने दूसरे शरीर को भी छोड़ दिया और फिर रजोगुण से भरा हुआ दूसरा शरीर रख लिया। उस अन्धेरे में

भूख मे तडफ कर उन्होने दूसरी सृष्टि को पैदा किया तब उस सृष्टि के मनुष्य जल कोही खान को व्याकुल होगये जो क्रोधी मनुष्य क्रोध में आकर यह कह रहे थे कि हम जल की रक्षा करते हैं वे मनुष्य राक्षस हो गये जिन मनुष्यो न यहकहा कि हम जल को खाजायेंगे वे बुरे अत्याचारी यक्ष कहलाये ।इस कुप्रिय सृष्टि को देख कर ब्रह्माजी शिरहीन हो गये और वह दुखी होकर उन्हीं के ऊपर चढ़ने लगा। ब्रह्माजी के सिर से हीन होकर उस प्रजा सृष्टि का अहि और सर्प, पन्नग इत्यादि नाम पड़ा। पृथ्वी में सबसे नीचे जहां अँधेरा हो अँधेरा रहता है वही उनके रहने का स्थान है। उस समय ब्रह्माजी को बहुत क्रोध आया, और इसी क्रोध के कारण वह विषधर सर्प कहलाये ब्रह्मा जी के प्रकाश के पीने के कारण गन्धर्वों की सृष्टि पैदा हुई। ब्रह्माजी ने सब सृष्टि को पैदा करनेके बाद पक्षियों की सृष्टि को पैदा किया। उनके मुँह से बकरे की सृष्टि पैदा होती है तथा उदर से गायों की उत्पत्ति की। उनके दोनों पैरोंपे घोड़े मृग ऊँट शरभ इत्यादि की उत्पत्ति हुई। उनके रोमों से फल-फूल-मूल आदि पैदा हुये। सिंह, हिरन, बन्दर, पक्षी, सर्प और उन्दक ये जंगली पशु हैं।

ब्रह्माजी ने कल्प के शुरू में बिजली, मेघ, इन्द्रधनुष वज्र की उत्पति की और अपने शरीर से छोटे छोटे सैकड़ों जीवजन्तु पैदा किये। सबसे पहले ब्रह्माजी ने देवता, असुर, पितर, प्रजा इन चार सृष्टियों का पैदा किया इस सृष्टि के मनुष्यों का जैसा ही कर्म था वैसा ही फल मिला और ये कर्म फल इन्होंने जब जब शरीर पैदा हुआ तब तब पाया। उसी कर्म के अनुसार उनकी प्रकृति में भी अदल बदल हुई इसी से वे अच्छे बुरे कर्म वाले, हिंसात्मक, अहिंसात्मक, झूठ, सत्य बोलने वाले दुराचारी बने। ब्रह्माजी ने पंचभूतों को तरह तरह से मूर्त्ति तथा इन्द्रियों की उत्पत्ति की। हे ब्राह्मणो! कोई मनुष्य के कर्म को कोई देवताओं को कोई प्रकृति को तथा कोई पुरुष आकार के ही स्वभाव को कर्मफल देने वाले कहते हैं।

परन्तु पुरुष आकार, दैव और कर्म ये तीनों ही आदत के अनुसार फल देने वाले हैं। ब्रह्माजी ने कल्प के शुरू के समय में वेद वचन के द्वारा भूत समूह के नाम, कर्म और रूप इत्यादि को बनाया। ब्रह्मा रात्रि के अंत में और दिन के शुरू में पहले काल के वेदों को बनाते हैं। ब्रह्मा जी रात्रि के अन्त में मानसी सृष्टि के द्वारा रोज सवेरे सृष्टि पैदा करने के लिये तैयार रहते हैं। वे रोजाना इसी तरह स्थावर, जङ्गम इत्यादि की उत्पत्ति करते हैं।

ब्रह्माजी ने फिर दस मानस पुत्रों को पैदा किया, उन मानस पुत्रों के ये नाम है। भृगु, पुलस्त्य, मरीचि, अंगिरा, दक्ष, क्रतु, वशिष्ठ, अत्रि, पुलह इत्यादि। ये ही पुराणों में 'ब्रह्माण' नाम से मशहूर हुये। फिर ब्रह्मा जी ने अपने गुस्से में आकर भगवान शिव की उत्पत्ति की। उन्होंने धर्म और संकल्प को भी बनाया। ब्रह्माजी ने सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चारों को अपने ही समान ब्रह्मनिष्ठ पुत्रों को पैदा किया। ये चारों पुत्र संसार से विरक्त होकर दूर चलेगये। ब्रह्माजी अपने पुत्रों को विरक्त देखकर चिन्ता करने लगे। उनके क्रोध से सूर्य की किरण के समान कांतिमयी और आग की तरह जलती हुई एक छाया पैदा हुई। जिसका आधा शरीर स्त्री का और आधा पुरुष का। उस स्त्री के पैदा होते ही चारों तरफ प्रकाश हो गया और पुरुष अदृश्य हो गया। ब्रह्मा ने फिर उस स्त्री की इच्छानुसार अपने को दो रूपों में बांट लिया। एक शरीर स्त्री का और दूसरा पुरुष का शरीर बनाया। अपने उस पुरुष रूपी शरीर को ग्यारह भागों में बांट दिया और उनको बताया कि वह अपना आलस्य छोड़ कर संसार के हित के लिए प्रजाओं की अच्छी व्यवस्था करें। यह सुनकर वे ग्यारह रूप रोने लगे तथा उनके रोने से भगवान शिव का नाम रुद्र पड़ा। ब्रह्मा जी के शरीर से जो स्त्री (देवी) पैदा हुई, उन देवियों के ये नाम हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, मेधा, स्वाहा, स्वधा, उमा, हैमवती, षष्ठी, कल्याणी, प्रज्ञा महाभागा, गौरी इत्यादि। उन देवियोंने अलग २ शरीर रखकर सृष्टि पैदा की।

द्वापर युग में ये देवी इन नामों से विख्यात हुईं, दुर्गा, प्रमाथिवी, रेवती, महामाया, कौशिकी, गौतमी, चण्डी, कात्यायिनी, सतीकुमारी, माहेन्द्री, ब्रह्मचारिणी इत्यादि अनेक नाम थे। ये सब उस देव के भेद रूप हैं। यह देवियों का युद्धकालीन स्तव है। जो मनुष्य इन देवियों के नामों को सुनते तथा दूसरों को सुनाते हैं और कीर्तन वर्णन करते हैं उनको कभी दुख नहीं मिलता। अतः देवी भगवती सबकी रक्षा करती है। जिन माताओं के बच्चे जन्म लेते ही मर जाते। तथा पीछे कुछ समय बाद मरते हैं। उनको देवी के कवच का पाठ करना चाहिये। उस महाभागा ने सब मनुष्यों को दुख से छुड़ाया है। ब्रह्माजी के मन से रुचि नाम के पुत्र पैदा हुये और उनके प्राण से दक्ष की उत्पत्ति हुई। आंखों से मरीचि का जन्म हुआ, हृदय से भृगुजी का, माथे से अंङ्गिरा ऋषि का, कानसे अत्रिजी का, उदान से पुलस्त्य का, व्यान से पुलह, समान से वशिष्ठ आदान से क्रतु और उनके क्रतु और उनके क्रोध से रुद्र पैदा हुए। ये बारहों पुत्र ब्रह्माजी के प्राणों से पैदा हुए हैं। ये ब्रह्माजी के मानस पुत्र हैं। और नौ पुत्र भृगु इत्यादि हैं ब्रह्मवादी और गृहस्थी कहलाते हैं। इन बारह ब्रह्माजी के पुत्रों की सृष्टि देवताओं के गुणवाली और क्रियाशील हुई। स्वयंभू ने लोक सृष्टि करने के लिये जो विशेष प्रकृति के दोष हैं, वे ही चन्द्रमा, सूर्य प्रकाश नक्षत्र, ग्रह नदी, पर्वत, समुद्र तथा तरह तरह के आकार वाले गांव और नगर के रूप में बदल गये। उस अदृश्य ब्रह्मवन में ब्रह्माजी रात्रि को वही रहते हैं। वह ब्रह्म वृक्ष अव्यक्त बीज में ही पैदा हुआ है और उसी से बढ़ा है। यह प्राकृत सर्ग ब्रह्माजी का अनुग्रह सर्ग है। वैकृत नाम के छः सर्ग मुख्य हैं। ये सर्ग तीनों कालों में बदलते रहते हैं।

उस ब्रह्म वृक्ष पर समान आकृति वाले दो दिव्य पक्षी रहते हैं। उनमें सिर्फ एक को ही वृक्ष का ज्ञान है। उस सर्वात्मा के सिवाय और कोई नहीं जानता। हे ब्राह्मणो! भूलोक जिसका सिर, नाभि को आकाश, नेत्र को चन्द्रमा, और सूर्य, दिशाओं को कान, तथा

पृथ्वी को चरण मान कर जिसकी पूजा करते हैं। जिनके मुँह से ब्राह्मण छाती से क्षत्रिय उरु से वैश्य और पैरों से शूद्रों की उत्पत्ति हुई ऐसे ईश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ। श्री शिवजी से सभी अंडों की उत्पत्ति हुई ऐसे ईश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ। श्री शिवजी से सभी अण्डों की उत्पत्ति हुई और अण्डों से ब्रह्माजी की तथा ब्रह्मा जी ने सब त्रिलोक के रहने वालों को पैदा किया।

श्री वायु महापुराण का देवादिसृष्टि नामका नवां अध्याय समाप्त ॥ ६

दसवां अध्याय

मन्वन्तर वर्णन

श्री सूत जी बोले—ब्रह्मा जी ने जिस तरह सारी प्रजा की सृष्टि को पैदा किया। वे प्रजा के मनुष्य किसी भी ठीक स्थान पर जमकर रहने लगे, इससे ब्रह्मा जी को अधिक दुःख हुआ और फिर अपने में तामसी सृष्टि पैदा करने की सोची। प्रजा के मनुष्य राजसी ठाठ-बाट को छोड़ के सतगुण के सहारे हो रहे हैं यह देखकर प्रजापति ब्रह्मा जी फिर दुखी होने लगे। फिर उन्होंने तमोगुण को छोड़कर रजोगुण का सहारा लिया। उस रजोगुण से उनका तमोगुण ढक गया। उस छोड़े हुए शरीर से एक मैथुन सृष्टि को दो भागों में बांट दिया। आधा शरीर स्त्री का आधा शरीर पुरुष का बना दिया। स्त्री का नाम शतरूपा रखा था। उस प्राकृतिक और जीवों को धारण करने वाली देवी को ब्रह्मा जी ने सृष्टि की इच्छा से पैदा किया। उस कन्या ने जो ब्रह्मा जी के आधे शरीर से पैदा हुई थी और जिसका नाम शतरूपा था अधिक वर्षों तक कठिन तपस्या की उसने तेज यश वाले स्वायम्भुव मनु को पति बनाया स्वायम्भुव मनु ने उस अयोनिज शतरूपा को पत्नि रूप में प्राप्त कर उसके साथ विहार करने लगे।

इसी कारण से उसे रति भी कहते हैं। कल्प के शुरू में वही पहला स्त्री पुरुष का संयोग हुआ ब्रह्मा जी ने विराट को पैदा किया और विराट से मनु की उत्पत्ति हुई। प्रतिभाशाली राजा मनु ने शतरूपा के गर्भ से दो उत्तम पुत्रों को पैदा किया। एक का नाम प्रियव्रत और दूसरे का नाम उत्तानपाद था तथा शतरूपा रानी ने दो पुत्रियों को भी जन्म दिया पहली का नाम आकूति तथा दूसरी का नाम प्रसूति था उन्हीं दोनों कन्याओं से सारी प्रजा सृष्टि हुई है। स्वायम्भुव मनु ने प्रसूति का विवाह दक्ष के साथ कर दिया और रुचि के साथ आकूति का विवाह कर दिया। ब्रह्माजी के मानस पुत्र रुचि को आकूति के गर्भ से, यज्ञ और दक्षिणा नामक मिथुन सन्तान उत्पन्न हुई। उस मन्वन्तर में दक्षिणा से बारह पुत्र पैदा हुए। उनका नाम याम रखा गया। यज्ञ को ही यम कहते हैं अतः उसके पुत्रों के होने के कारण उन्हें याम कहना पड़ा। दक्ष ने प्रसूति के गर्भ से संसार की शक्तिरूपा चौबीस कन्याओं को जन्म दिया। वे सभी कमल नयनी, सत्यवादिनी योगमाया और योगपत्नि रूप थीं। श्रद्धा लक्ष्मी, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, सिद्धि, कीर्ति, क्षमा, लज्जा, धृति इन सब चौबीस कन्याओं को धर्म ने अपनी पत्नि बनाईं। इनकी कनिष्ठा सती, ख्याति सम्भूति प्रीति, क्षमा, स्मृति, संनति, अनुसुइया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा इन ग्यारह कन्याओं से इन लोगों ने विवाह किया। रुद्र के साथ सती ख्याति भृगु को, मरीचि के साथ सम्भूति, स्मृति अंगिरा ऋषि को, पुलस्त्य के साथ प्रीति, पुलह के साथ क्षमा, क्रतु के साथ संनति, अत्रिजी को अनुसूया, वशिष्ठ को ऊर्जा तथा स्वाहा अग्नि देव को और स्वधा को पितरों की स्त्री रूप में ग्रहण की। अब इन दक्ष कन्याओंकी सन्तानों का वर्णन करते हैं श्रद्धा ने काम, लक्ष्मी दर्प, धृति ने नियम, तुष्टि से सन्तोष, पुष्टि ने लाभ लज्जा ने विषय शान्ति ने क्षेम सिद्धि ने सुख और कीर्ति ने यश नाम के पुत्रों को पैदा किया।

रति के गर्भ से हर्ष नाम का पुत्र पैदा हुआ। यही धर्म के वंश का हाल है। हिंसा के गर्भ मे निकृति नाम की लड़की और अनृत नाम का पुत्र पैदा हुआ और अनृत को निकृति से भट तथा नटक नाम के दो पुत्र पैदा हुए और दो कन्या पैदा हुईं इन दोनों कन्याओं के वेदना और मया नाम थे। भट को माया से मृत्यु से दुख नाम का पुत्र पैदा हुआ औरनटक को वेदना से दुख नाम का पुत्र पैदा हुआ। इसके बाद मृत्यु को वेदना के गर्भ से जटा, शोक, कोध्र तथा असूया नाम की चार सन्तान पैदा हुईं। वेदना की यह सब सन्तान दुखों से भरी हुई है। ये सभी अमर हैं। इनके दूसरी स्त्री तथा पुत्र इत्यादि नहीं हैं। फिर ब्रह्माजी ने शंकरजी से सृष्टि उत्पन्न करने को कहा. तब शंकरजी ने सती का ध्यान करके मानसी सृष्टि को पैदा किया। शंकर जी के सब पुत्र अपने ही पिता के बराबर गुण वाले तेज, रूप और बलशाली थे, सभी चर्म धारण करते थे. वे पिङ्गलवर्ण, निषङ्गधारी जटिल तथा क्रूर स्वभाव वाले क्रोधी थे इनमें कोई बहुत रूपधारी, कोई भूमि पर रहने वाले कोई आकाश पर रहने वाले कोई अधिक जीभ वाले कोई जीभ विहीन थे।

ब्रह्माजी ने तब शिवजी की सृष्टि देखकर उनसे कहा कि हे शिव जी आप ऐसी प्रजा की सृष्टि नहीं करें, आप मरण शील प्रजाकी सृष्टि पैदा करें यह सुनकर शिव जी ने कहा कि हम मरणशील सृष्टि नहीं करते। हम इस कर्म से अलग होते हैं। आप ही प्रजा की सृष्टि पैदा करें। हमने जो हजार रूप और कुरूप अपनेही बराबर प्रजा को उत्पन्न किया है वे अत्यन्त बलवान देवगण भ लोक और आकाश में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होंगे। सब युगों में इनको यज्ञ में से भाग मिलेगा। शिवजी के इस प्रकार कहने पर ब्रह्माजी खुश हुये और शंकरजी से कहाकि हे ईश्वर आपका कल्याण हो। आपने जैसा कहा है वैसा ही उचित है। ब्रह्माजी की आज्ञा से ही सब काम होते हैं। जब से श्रीशिवजी ने प्रजासृष्टि को बन्द कर दिया, महादेव जी की प्रजासृष्टि के मनुष्य देवता, असुर और ऋषियों से भी अधिक तेजस्वी हैं इसी से उनका नाम महादेव पड़ा। उन्होंने ऐश्वर्य से, देवताओं को बल से राक्षसों को तथा ज्ञान से ऋषियों को हरा दिया।

ऋषि बोले—हे मुनिदेव आपने जो महेश्वर के ज्ञान साधन, योग

तप, धर्म की कथा सुनाई है तथा जिस धर्म के आचार विचार से ब्राह्मण को अच्छी गति मिलती है उस कथा को हमें सुनाइये।

वायु बोले—तब शिवजी ने पांच प्रकार के रुद्रों के धर्म की कथा बताई, जो पुराण में महेश्वर धर्म के नाम से कहा है। आदित्य, वसु, अन्वनोकुमार, भृगुवंश के, यम, शुक्र, पितृ, काल तथा तरह तरह के धर्म करने वाले पुरुष उस धर्म का पालन करते हैं। ऋषि आत्मा में मन लगाकर उपासना करते हैं। महेश्वर ने जिस पांचों प्रकार की धर्म की कथा को कहा है उसको हम क्रम पूर्वक कहेंगे। महेश्वर योग के प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये ही पांच धर्म हैं। उनका लक्षण, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये ही पांच धर्म हैं। प्राण की विस्तार चाल को ही प्राणायाम कहते हैं। वह तीन प्रकार का है। उत्तम, मध्य, मन्द प्राण के निरोध को भी प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम द्वादस मात्रा से बना है तथा मध्यम प्राणायाम में चौबीस भाजात्मक हैं। और मन्द प्राणायाम द्वादश मात्रा से बना है। प्रमाण और लक्षण ये हैं। बन में रहने वाले पशुओं को पकड़ कर पालने से वह पशु धीरे धीरे कोमलता रखते हैं वैसे इन्द्रियों के लिये प्राण भी कठिन है। ये वन के पशु खाने पीने की कमी के कारण अहिंसक हो जाते हैं वैसे ही प्राण भी योगाभ्यास के वश में हो जाता है। वही प्राण वायु मानस व्यापार द्वारा संयत होने पर मन्द और वश में हो जाता और मनके अधीन होकर जिन्दा रहता है। योगानुष्ठान से जब प्राण वायु वश में हो जाता है। तब उसकी इच्छा से कहीं भी ले जा सकते हैं। प्राणायाम करने वाले ब्राह्मणों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वेसतोगुणी हो जाते हैं। व्रत पाठ पूजा, यज्ञ, तपस्या आदि की तरह ही प्राणायाम भी पुण्य है। सौसंवत्सरों के हरएक महीने कुश के आगे के हिस्से से जल पीने से जो फल प्राप्त होता है वही फल प्राणायाम करने से होता है। प्राणायाम करने से दोषों के पाप नष्ट हो जाते हैं। धारणा से पाप का नाश होता है और प्रत्याहार से

विषय का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है। अतः योगी मनुष्यों को नित्य प्रति प्राणायाम करना चाहिए इस से वह शुद्धात्मा होकर ईश्वर को प्राप्त करता है॥

श्री वायु महापुराण का दसवां अध्याय मन्वतर नामका समाप्त

---

* अध्याय ग्यारहवाँ *

पाशुपत योग

वायु बोले – ये महर्षि, मास, संवत्सर अहोरात्रि तथा हजारों युगों तक तपस्या करते हुये अपनी दिव्य आंखों से प्राण की उपासना करते हैं। भगवान ने स्वयं अपने मुँह से प्राणायाम के फल प्रयोजन को कहा है वह अब हम आप से कहते हैं। शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ती और प्रसाद ये चारों प्राणायाम के प्रयोजन हैं। शान्ति से इस युग तथा पहले युग में माता पिता द्वारा तथा भाइयों द्वारा किये हुये किसी दुख के फल से जो पाप पैदा होते हैं वह सब नष्ट हो जाते हैं। इस लोक परलोक में अपने अच्छे के लिये लोभ और क्रोध घमंड इत्यादि का जिससे नाश होता है उसे प्रशान्ति कहते हैं। तपस्या करने वाले योगी के जिस प्रतिबुद्ध स्थिति में ज्ञान से युक्त और शृषियों की तरह चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह, तारावली इत्यादि इनका विषय सामने हो उसे दीप्त कहते हैं। और प्रसाद से इन्द्रिय, मन, पंचवायु प्रसन्न होते हैं। यह चार तरह का पहला प्राणायम धर्म है। यह शुभ फल देने वाला तथा काल का डर दूर करने वाला है। इसके बाद योगियों के योग आसन तथा लक्षण का हाल कहते हैं। पहले ओंकार का नाम लेकर चन्द्रमा और सूर्य को नमस्कार करे फिर किसी आसन को मजबूत भाव से लगा कर एक समान हो दोनों पैरों को बराबर मिलाकर लिंग अथवा अण्ड कोष को कुछ निपिडित करके गर्दन तथा सिर को कुछ ऊपर उठाये।

फिर आँख और मुँह को बन्द करके बैठे। अपनी नाक की आगे के भाग पर दृष्टि जमाले। तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुण को तमोगुण से ढक ले तब सतोगुण का ध्यान करके एक चित्त होकर योगानुष्ठान करे इन्द्रियों, मन और पंचवायु को समवाय द्वारा वश में करके प्रत्याहार करे। योगी बाहर भीतर से शुद्ध होकर प्राणायाम काल में वायु द्वारा नाभि से लेकर गले तक पूर्ण करके प्रत्याहार करे। इस तरह जो योग करता है उसे ऐश्वर्य मिलता है वह अपने प्रकाश से परमात्मा का दर्शन करता है प्राणापानादि वायु के निरोध को प्राणायाम कहते हैं और मन की धारणा को धारण कहते हैं विषयों से छुटकारा पाने के लिये प्रत्याहार कहते हैं इन सब की ठीक तरह से सिद्धि होने को योग लक्षण कहते हैं। उससे पैदा किया हुआ योग सिद्धि का लक्षण ध्यान है चन्द्रमा और सूर्य के बराबर योगी मनुष्य अपने को देखता है योगी मनुष्य को शुद्ध होकर ग्यान पूर्वक योग साधन में मन लगाना चाहिए। इससे उनको कोई दोष पैदा नहीं होते।

मन में पर्वत और पृथ्वी को धारण कर हृदय में देवता की इच्छा करे योगी हजार जल के घड़ों से भी स्नान करे। कण्ठ मात्र जल में बैठ कर शिर में धारण करे। योगज रोग होने पर इस तरह का इलाज करना चाहिए। योग सम्बन्धी बातों को किसी से नहीं कहनी चाहिए सतगुण की अधिकता योग की सिद्धि पर ये बातें होनी सम्भव है। सतगुण की अधिकाई, सुन्दर मीठी आवाज, सुखी शरीर, लोभ नहीं आता क्रान्तिमय शरीर, मूत्रपुरोषीष की कमी यह सब पहली योग सिद्धि में होती हैं।

इति श्री वायुमहापुराण का पाशुपत योग नामका
ग्यारहवां अध्याय समाप्त॥ ११

———

बारहवाँ अध्याय

योगोपसर्ग

सूतजी बोले—सब प्रकार से सम्पन्न योगियों को जो उपसर्ग नामक रोग होता है, अब हम उसका हाल तुम्हें सुनाएंगे। मनुष्य की तरह, तरह तरह की इच्छा, स्त्री संग, पुत्र की कामना विद्यादानी अन्य तपस्या इत्यादि में योगी पुरुष आसक्त हो जाते हैं तब उन्हें उपसर्ग रोग पैदा होता है। प्रति दिन एकचित्त होकर योगाभ्यास करने से ये दोष नष्ट हो जाते हैं। दूर की आवाज सुनने वालों की शक्ति, देवताओं का दर्शन और अभ्रान्ति को सिद्ध की लक्षण कहा गया है। सब भाषाओं का ज्ञान और विद्या का ज्ञान सुनने योग्य शब्दों को सौ योजन दूर से भी सुनलें वह योग प्रभाव का लक्षण है। सिद्धी प्राप्त करने वाले तेजस्वी योगी मनुष्य को आत्म जनित दोष और उपस्थित उपसर्गों को दूर करना चाहिये। इन्द्रिय को जीतने वाले योग युक्त योगी उन्हें फिर प्राणसंज्ञक उपसर्ग होता है पृथ्वी की धारण करने पृथ्वी के गुण उसमें छोटे रूप में प्रवेश हो जाता है योगी उस समय अपने रोज पृथ्वी के समान समझे उनके ऐसा करने से उनके शरीर से उत्तम गन्ध आती है। जल को धारणा करने से जल का कण उसमें प्रवेश करता है और अमृत के समान ठंडा सूक्ष्म रस उसके शरीर से बहने लगता है। जो ब्राह्मण सूक्ष्म भूत समूह का त्याग करते हैं। वे परम तत्व को प्राप्त करते हैं तो वे दिव्य आंखों वाले महर्षि भी सूक्ष्म भाव को समूह में लिप्त होने के कारण दोष से दुष्ट हो गये हैं इसलिये सूक्ष्म भाव समूह में अकले निष्ठावान नहीं होना चाहिये और ऐश्वर्य से राग उत्पन्न होता है और विराग को ब्रह्म कहते हैं। ब्रह्माजी के गुण तत्वों के जानने वाले व्यक्तियों ने श्री संकर जी के छः तत्वों को इस तरह बताया है। सर्वज्ञता, तीप्त, अनादि बुद्धि, स्वतन्त्रता नियत अविनश्वर शक्ति और अनन्त शक्ति हैं। जो योगी मनुष्य ईश्वर को ही सब कुछ समझते हैं। उससे उनके सभी उपसर्ग रोग शान्त हो जाते हैं।

योगी मनुष्य अपनी योगविद्या से तीनों लोकों को कंपा सकते हैं। एक शरीर छोड़कर दूसरी शरीर में प्रवेश कर सकते हैं। मन सब योगों का द्वार है। सूर्य को भी योग का द्वार कहते हैं। ये इन्द्रियों का आदान करते हैं इससे उनको आदित्य कहते हैं। इस रीति से योगी विषय से विरक्त होकर सूक्ष्म तत्वों को त्याग करके और प्रकृति का नाश करके रुद्रलोक में निवास करते हैं। सब गुणों से सम्पन्न हो ब्रह्मत्व को प्राप्त करता है। ब्राह्म गुण से योगी ब्रह्म की साधना करते हैं। वे ही ईश्वर सब कार्यों के करने वाले हैं। उनमें जिनकी आसक्ति हो जाती है वही सिद्ध हाजाता है। सबों को छोड़ कर योगी को नित्य ब्रह्म की साधना करनी चाहिये।

इति श्री वायु महापुराण का योगोत्सर्ग नामका बारहवाँ अध्याय समाप्त १२।

तेरहवां अध्याय

योगेश्वर्य निरूपण

वायु बोले—हे ऋषियो! अब हम उस कथा को कहेंगे, जिसमें योग के ऐश्वर्य विस्तार का वर्णन है। योगियों के लिये आठ प्रकार का ऐश्वर्य बताया गया है। उन्हें हम इस प्रकार कहते हैं आप सब एकचित्त होकर सुनिये। अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकम्य, ईशित्व वीशत्व और कामवसायता। यह सार्वकामिक ऐश्वर्य भी कई तरह के होते हैं। जैसे सावद्य निश्वद्य और सूक्ष्म। सावद्य नाम के जो तत्व हैं, वे पंचभूतात्मक हैं। निखद्य भी पंच भूतात्मक होते हैं। स्थूल इन्द्रिय, मन और घमंड, अहंकार तथा पूरी आत्मख्याति आठ ऐश्वर्यों की तीन प्रकार की प्रवृति हैं। त्रिलोकी में जितने भी जीव जन्तु है वह सभी योगी के वश में हो जाते हैं। जिसको अणिमा ऐश्वर्य प्राप्त है। जो सम्पूर्ण संसार में दुर्लभ है उसे भी योगी अपनी अणिमा योगबल से सहज में प्राप्त करलेते हैं। दूसरी लघिमा ऐश्वर्य योगी सब स्थानों में चले जाते हैं। वे उस ऐश्वर्य के प्रभाव से आकाश में भी उड़ सकते हैं तथा पानी में भी तैर सकते हैं। तीसरी प्राप्ति ऐश्वर्य से तीनों लोकों की चीजों को प्राप्त कर सकते हैं। चौथी प्राकाम्य ऐश्वर्य से अपनी इच्छा से विषयभोग कर सकते हैं। उन्हें कहीं

के लिये शोक नहीं है। महिमा से एक जगह रहकर भी तीनों लोकों की चीजें प्राप्त हो जाती हैं। छठी ईशित्व के प्रभाव से पूरे संसार के सब दुख सुखों के सामर्थ्यवान होते हैं। और वशित्व से सब संसार वश में हो जाता है। काम अवसायिता के प्रभाव से योगी की इच्छा से सभी काम सिद्ध होजाते हैं वे सभी अपनी स्थिति में अपनी इच्छा से सब कार्य पूरा कर सकते हैं। वे विषय भोग करते हैं लेकिन विषय में लिप्त नहीं होते। व्यापक और अपवर्ग के कारण से वे पुरुष कहे जाते हैं। पुरुष सूक्ष्म भाव के ऐश्वर्य के चारों तरफ स्थिति हैं। उत्तम योग के प्रभाव से मनुष्य परम सूक्ष्म अपवर्ग नामके परम पद प्राप्त करते हैं

इति श्री वायु महापुराण का योगेश्वर्य निरूपण नाम का
तेरहवां अध्याय समाप्त ॥१३॥

चौदहवां अध्याय

पाशुपत योग निरूपण

वायु बोले—ब्रह्मा जी के तत्व ज्ञान से रहित मनुष्य राजसी और तामसी कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में मिल जाते हैं। और अच्छे कर्म करने वालों को स्वर्ग मिलता है। वे फल मिलने के बाद फिर नष्ट होकर मनुष्य योनि में पैदा होते हैं। इसीलिए जो बहुत छोटा परब्रह्म है वह सब जगह रहते हैं उन्हीं की उपासना करनी चाहिए उसी में सब सुख मिलते हैं। अधिक महनत और अधिक पैसा खर्च करने से यज्ञ पूरा होता है। किन्तु उससे भी मृत्यु टलती नहीं। इसलिए मोक्ष ही सर्व श्रेष्ठ है। योगी पुरुष योग के बल से ही परम पुरुष के मुख, स्वर्णवर्ण, सर्वव्यापी शुचि और अचल प्रकाशमान रूप का दर्शन करते हैं। वही परम पुरुष भगवान उस अलौकिक तेज से प्रकाशमान है। जिनके पाणि, पाद, उदर, पार्श्व और जीभ नहीं है फिर भी बिना आंखों के सब कुछ देखते हैं। बिना कानों के सब कुछ सुनते हैं। ये सब कुछ जानते हैं परन्तु इन्हें वेद भी नहीं जान पाते हैं। इसी सर्वत्र, अतिसूक्ष्म, सचेतन को परम पुरुष

परमात्मा कहते हैं। ऋषियों को पूरे, लोकों और जीवों की उत्पत्ति को पैदा करने वाला कहा हैं। योगी इन्हीं की उपासना करते हैं। यह सभी जगह, विद्यमान है इनके आंख, कान, हाथ, पैर, सिर सभी जगह हैं और सब स्थान इनसे ढके हुए हैं। जिस तरह वायु सब स्थानों में बहती है। उसी तरह सब भूतों के हृदय आकाश रूपी पुर में सोने से वह पुरूष कहलाते हैं जो जीव धर्म विहीन होकर अपने कर्म के प्रभाव से वह बार-बार पैदा होते और मरते हैं। गर्भावस्था में पहले वे कलल रूप में रहते हैं फिर कुछ समय बाद कलल रूप से बुदबुद रूप में बदल जाते हैं। जिस तरह कुम्हार चाक पर घुमाघुमा कर तरह तरह के मिटटी के बर्तन बनाता हे उसी प्रकार वायु से बढ-कर आत्मा भी अस्थियुक्त होकर तरह तरह के रूप रख कर मनुष्य रूप में पैदा होता है। सभी चीजों ने वायु का ही सहारा लिया है। वायु से जल होता है और जल से प्राण। और प्राण से वीर्य पैदा होता है। जब गर्भाशय में तैतीसवाँ भाग रज का और चौदहवाँ भाग वीर्य जाता है तब गर्भ बनकर पंच वायु से ढक जाता है। पिता के शरीर की तरह उसके रूप और हरएक अंग बनते हैं। तथा मां के खाने पीने पतले द्रव्यरस के द्वारा जो नाभिछेद से वहां तक पहुँचता है वहीं पर मनुष्य का प्राण रहता है। वह नौ महीने तक आश्रय हीन होकरपैर से लेकर सिर तक बंधे हुए की तरह पड़ा रहता है। अतः इसी प्रकार उलटे मुँह होकर वह योनि छिद्र से पैदा होता है। फिर पूर्व जन्म के पाप के कारण नर्क में जाता है। असिपत्र वन और शाल्मली नरक में उसको छेदते हैं। उसे खून आदि का भोजन करना पड़ता है। जि१ तरह पानी अलग अलग होकर अलग २ रूप रख लेता है उसी तरह अलग अलग करने पर जीवगणों को यातना के जगह में अनेक कष्ट भोगने पड़ते हैं। पूर्व जन्म के किये गये पापों के द्वारा दुखी होने पर आखिरी में दुख तथा सुख प्राप्त होते हैं। यमपुर में अकेले ही जाना पड़ता है और अपने कर्म का फल भी अकेले ही भोगना पड़ता है। इसी लिए अच्छे अच्छे पुण्यों को ही करना चाहिए।

ब्रह्माजी से लेकर पिशाचों तक सतगुणी सृष्टि हैं। इनकी जगह स्वर्ग में है। ब्रह्मा की सृष्टि सिर्फ सतोगुण से भरी हुई है और स्थावर में केवल तम है। शरीर रूपी मनुष्य हमेशा दुखों से पीड़ित रहते हैं। जिससे उनका हृदय टूक टूक हो जाता है। तब वे ईश्वर को याद नहीं करते। पहले जन्म के सकट और अच्छे भावों से ही प्रेरित होकर मनुष्य शरीर धारण करता है। अतः उसको हट समय भगवान के रूप का ध्यान करना चाहिये।

इति श्री वायु महापुराण का पाशुपतयोग निरूपण नामका चौदवां अध्याय समाप्त ॥१४॥

पन्द्रहवां अध्याय

पाशुपत योग निरूपण

वायु बोले—संसार के डर से मनुष्य को चौदहों तरह के संसार चक्र को जानता हुआ संसार के कर्मों को पूरा करना चाहिये, समय के बदलने पर भी वह संसार को याद करता है और उसमें आसक्त रहता है। अतः इसीलिये योगी पुरुष को हमेशा ध्यानपूर्वक योग से शुरू योगाराधन करके ईश्वर का दर्शन करना चाहिये। यही आत्मा परम ज्योतिर्मय है। अतः सागर रूपी संसार से पार जाने का यही सबसे उत्तम उपाय है। आत्मा के प्रकाशमय होने पर प्राणी का बार बार मरना तथा जन्म लेना बन्द हो जाते है अतः उन्हें मोक्ष मिल जाती है। अतः इसीलिये इस नियम को जानने वाले योगी पुरुषों को सब भूतों में रहने वाली आत्मा की उपासना करनी चाहिये। योगी पुरुष स्नान से पवित्र हो शुद्धात्मा से हवन की अग्नि में आठ आहुति का हवन विधि पूर्वक करके एकबार जल से आचमन करे। ऐसा करने से पहली आहुति प्राण के लिये है और दूसरी आहुति अपान के लिये है तीसरी आहुति समान के लिये, चौथी आहुति उदान के लिये हैं तथा पांचवीं आहुति व्यान के लिये है। सबसे आखिरी में स्वाहा भी करनी चाहिये और इस तरह हवन के

वचे हुए कुछ अन्न को इच्छानुसार खाले और एक वार जलपिये और तीन वार आचमन करनी चाहिए। "हमारी जो आत्मा है वही प्राण की गांठ है। और संहार करने वाले श्री शिवजी ही आत्मा हैं। और श्री शिव हमारे प्राण की आत्मा को तृप्ति दें। आप देवों में बड़े हैं। बुद्धिमान, चतुर तथा नादिया आपका वाहन है। आप हमें मृत्यु से मोक्ष देने वाले हैं। अतः यह हवन में दी गई हमारी आहुति मगलमय हो"। इस प्रकार कहकर अपने हृदय पर हाथ रखे। और फिर सीधे पैर के अंगूठे को सीधे हाथ से छुए और सीधे हाथ से नाभि को छूकर आत्मा को छूनी चाहिए। शरीर के दोनों कान, दोनों आंख, नाक तथा सिर को भी छूना चाहिए। प्राण और अपान दोनों को आत्मा कहते हैं। इनमें प्राण को भीतरी आत्मा तथा अपान को वाहरी आत्मा कहते हैं। अन्न ही मनुष्यों के लिये प्राणदान है और अन्न के न मिलने पर ही मनुष्य की मृत्यु निश्चय है। अन्न से ही सारी सृष्टि पैदा होती है और अन्न से ही उसका पालन होता है पूरे संसार के प्राणी जीव अन्न से ही बढ़ते हैं देवता, राक्षस, पिशाच इन सब को हवन की अग्नि की आहुति में से भाग मिलता है॥

इति श्री वायु महापुराण का पाशुपत योग निरूपण नामका पन्द्रहवां अध्याय समाप्त। १५॥

सोलहवाँ अध्याय

शौचाचार लक्षण निरूपण

वायु बोले :– हे ऋषिओ हम तुमको शौचाचार लक्षण की कथा को सुनाते हैं, जिस के अनुष्ठान करने से मनुष्य को स्वर्ग मिलता है। ऋषियों के लिये स्नानादि से पवित्र होने के लिये जल सबसे अच्छा साधन है जिन ऋषियों को इसमें आलस्य नहीं होता उन्हें कभी दुख नहीं भोगना पड़ता।

मनुष्य के लिए आदर और अनादर दोनों ही विष और अमृत के बराबर हैं जो ऋषि गुरूजी के कार्य करने में कभी भी आना कानी नहीं करते वह ऋषि हमेशा सुख पूर्वक निवास करते हैं। जो ऋषि अपने गुरू की आज्ञा का धर्म पूर्वक पालन करते हैं। उनके कहे के अनुसार चलते हैं वे ऋषि इस लोक में सुख भोगकर परलोक में सुख भोगते हैं। पानी को हमेशा छान कर पीना चाहिए सत्य तथा मीठे वचन बोलना चाहिए, रास्ते में देख कर चलना चाहिए। योगी मनुष्य को किसी एक ही घर में रोज भिक्षा लेने नहीं जाना चाहिए। जिस घर के चौके की आग बुझ कर ठंडी हो जाय और उस घर के स्त्री, मनुष्य खाना खा लें तब उस घर से भिक्षा लेनी चाहिए। आचार विचार वाले गृहस्थियों के यहाँ से योगियों को भिक्षा मांगना सबसे उत्तम है। और इसके अलावा अदुष्ट और न अपतित के यहाँ से भी भिक्षा मागनी चाहिए, लेकिन शूद्रों के यहाँ से भिक्षा मांगना योगियों के लिये अशुद्ध है। भिक्षा के रूप में जो कुछ भी वस्तु मिले सब योगियों के लिए श्रेष्ठ है। योगियों के लिये सब से अच्छा चान्द्रयण व्रत है। योगी मनुष्य को अपनी शक्ति के माफिक कई बार चान्द्रायण व्रत को करना चाहिये। योगी मनुष्यों के लिये चोरी न करना, इन्द्रियों का दमन करना त्यागना ब्रह्मजारी व्रत धारण करना इत्यादि ये व्रत हैं। योगिय के लिये ये नियम मुख्य हैं। गुरूजी की सेवा करना, नित्य स्वाध्याय करना, आचार विचार से शुद्ध रहना क्रोध,नहीं करना, किसी जीव की हिंसा नहीं करना चाहिये।

जिस तरह जंगल के हाथी अंकुश के वश में हो जाते हैं उसी तरह यह शरीर कर्म के अनुसार शुद्ध ज्ञान योग में जलकर पाप से रहित हो कर शुद्ध हो जाता है। कर्म के वन्धन से छुटकारा पाकर जीव को मोक्ष मिल जाती है। वेदों की तरह यज्ञ की भी पूरी क्रियायें हैं ज्ञानी मनुष्यों के द्वारा यज्ञ में जप ही करना सबसे अच्छा है। ज्ञान से भी ऊँचा ध्यान है।

इस ध्यान को नियम पूर्वक करने से ईश्वर प्राप्त होते हैं। सतोगुणी मनुष्यों का कहना है कि सत्य, दम, शम निष्पाप और सब जीवों पर दया और सहज में ही इन्द्रियों का ज्ञान प्राप्त होता है। जो हर समय समाधि में तैयार रहते हैं तथा अप्रमादी, ब्रह्मानिष्ट और इन्द्रियों को जीत सकने वाले हैं ऐसे ही योगियों को यह मिलते हैं। अतः इसी तरह सर्वश्रेष्ठ और अच्छी शुद्ध बुद्धि वाले योगियों को ही ऐसे योग प्राप्त होते हैं।

इति श्री वायु महापुराण का शौचाचार लक्षण-निरूपण नामका सोलहवां अध्याय समाप्त ॥१६॥

---

* सत्रहवाँ अध्याय *

परमाश्रम विधि का कथन

वायु बोले—गुरुजी की आज्ञा से संवत्सर के आखिरी भाग में तीनों आश्रमों को त्याग कर चौथे आश्रम में घुसना चाहिए। और सब ज्ञान की उपासना और ब्रह्म प्राप्ति करके पृथ्वी में घूमता रहता है। असन्तुष्ट होकर यह जानने की कोशिश करता है कि ज्ञान क्या है और ज्ञेय क्या है ऐसे मनुष्य हजार वर्षों में भी यह ज्ञान पैदा नहीं होता योगी मनुष्य अपनी इन्द्रियों को जीत, क्रोध को त्याग कर थोड़ा भोजन करे तथा सब इन्द्रियों के द्वार को बन्द करके मन में प्रवेश करें और निर्जन स्थान में जो ऊपर से खुला हुआ हो और नदियों के किनारे रेत में आसन लगा कर विधि पूर्वक अनुष्ठान करे। तीन दण्ड होते हैं जिनमें पहला बाग्दंड दूसरा कर्मखंड तथा तीसरा मनोदंड है। जिस योगी पुरुष के पास तीनों दण्ड होते हैं। उनको त्रिदण्डी कहते हैं। जो मनुष्य आचार विचार से युक्त ध्यान पूर्वक कर्त्तव्यों का पालन करते हुए अच्छे बुरे कर्मों का त्याग करके मरता है वह बार बार शरीर धारण नहीं करता अतः वह बार बार न जन्म लेता न मरता है।

इति श्री वायु महापुराण का परमाश्रम विधि कथन नामका सत्रहवां अध्याय समाप्त ॥१७॥

* अठारहवाँ अध्याय *

यतियों का प्रायश्चित विधान कथन

वायु बोले – हे ऋषियो, इस कथा के बाद अब मैं यतियों के प्रायश्चित की कथा को विधि पूर्वक आपसे कहूंगा। मामूली धर्म जानने वालों ने काम और अकाम दोनों ही पापों के लिये प्रायश्चित करना बताया है। शरीर, मन और वचन से तीन तरह के पाप पैदा होते हैं। यह संसार हमेशा इन तीनों पापों से जकड़ा हुआ है। जीवन के समय में ये पाप थोडे ही दिनों के लिए आते हैं। अतः विपत्ति काल में हमेशा मनुष्यों को धीरज रखना चाहिये, क्योंकि योग ही सबसे बड़ा वल है। मनुष्यों के लिये योग से दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिए ब्राह्मण इस योग को श्रेष्ठ बतलाते हैं। धैर्यवान पुरुष विद्या के वल से अविद्या को दूर कर उत्तम ऐश्वर्य का लाभ उठाते हुये पर अपर को साक्षात करते हैं। और उन्हें परम पद प्राप्त होता है। साधू महात्माओं के लिए जो व्रतादि बतलाते हैं उन में से एक भी खंडन होने पर प्रायश्चित करना पड़ता है। साधु अगर कामके वशीभूत होकर स्त्री संग करले तो उसे प्रायश्चित करना पड़ता है ऐसी स्थिति के बाद साधु को प्राणायाम करके तथा व्रतादिक नियम करके अपने आश्रम में जाकर भिक्षादि करनी चाहिये। वेदों में कहा है कि हँसी मजाक के समय झूठ बोलने से कोई दोष नहीं होता किन्तु दिन रात में कम से कम एक दो बार झूठ बोलना, हँसी मजाक में अधर्म नहीं है अधिक झूठ नहीं बोलना चाहिये। वेदों में और देवता तथा मुनियों ने हिंसा को सबसे बड़ा पाप बतलाया है। सब पापों में हिंसा सब पापों से बढ़कर है। मनुष्यों का प्राण धन है जो मनुष्य धन को चुराता है वह उस के प्राणों को चुराता है। इन पाप कर्मों को करने वाला दुष्टात्मा साधु अपने व्रत आदि से अलग होकर अधिक दुख प्राप्त करता है। अतः ऐसे साधु को शास्त्र के अनुसार सवत्सर तक चान्द्रायण व्रत करना चाहिये। और फिर संवत्सर के आखिरी में पाप से रहित होकर शुद्ध मन होकर भिक्षा मांग कर खावे। किसी जीव की साधु पुरुष को हिंसा नहीं करनी चाहिये।

इन्द्रियों की कमजोरी से यदि किसी साधु को स्त्री के देखने से ही वीर्य पात हो जाय तो उसे सोलह प्राणायाम करने चाहिये। और ब्राह्मण मनुष्य को दिन में वीर्य पात होने पर तीन रात्रि तक व्रत करके सौ प्राणायाम करने चाहिये तथा रात्रि में वीर्य पात होने पर शीघ्र स्नान करके बारह बार प्राणायाम करना चाहिये। प्राणायाम से ब्राह्मण, साधु, शुद्ध और पाप से रहित हो जाते हैं यतियों के लिए एक तरह का अन्न खाना भी मना है उसको हमेशा भिक्षा में तीन चार मिले अन्न को मिला कर खाना चाहिये। कभी भूल से इनमें एक भी अन्न यदि यति खाले तो उसे प्रायश्चित करना पड़ता है। मन वचन से जो पाप हो जाय तो उन पापों के प्रायश्ति के लिये विद्वानों से सलाह लेनी चाहिये जैसा वे कहें वैसा ही करना चाहिये। मिट्टी के टुकड़े और सोने के ढेर को एक बराबर समझने वाला और सब प्राणियों पर दया भाव रखने वाला उस परम पद को प्राप्त करता है। जहाँ से वह फिर कभी वापिस नहीं आता है।

इति श्री वायु महापुराण का यतियों का प्रायश्चित विधान कथन नामका अठारहवां अध्याय समाप्त ॥१८॥

उन्नीसवां अध्याय

अरिष्ट निरूपण

वायु बोले–जिस विशेष ज्ञान से योगी मनुष्य अपनी मृत्यु को भी जान जाते हैं। अब हम उन अरिष्टों की कथा को कहेंगे आप लोग ध्यान पूर्वक सुनिये। जो मनुष्य ध्रुव को अरुन्धती को और सोम की छाया तथा इस महापथ को नही जानता वह एक साल से अधिक जिन्दा नहीं रहता है। जो मनुष्य सूर्य को बिना किरण के देखता है और आग को किरण की तरह देखता है। वह ग्यारह महीने से अधिक नहीं जीता है जो सपने में या साक्षात में ही मल मूत्र करदे या सोना चांदी वमन करता है वह दस महीने से अधिक जिन्दा नहीं रहता है।

धूल या कीचड़ में जिसका पैर आगे या पीछे से खंडित होता मालूम पड़े तो सात महीने से अधिक नहीं जीता। जिसके ऊपर दस बीस कौये घूमते फिरते हों और कभी जभी कौआ सिर पर बैठ जाय तो वह चार पांच महीने से अधिक नही जिन्दा रहता है जो बिना बादलों के बिजली देखें, दक्षिण दिशा में और जल में इन्द्र धनुष देखें, वह दो तीन महीने से अधिक नहीं जीता। जिसको अपनी परछांई जल में या शीशे में नहीं दिखाई देती या बिना सिर के दिखाई देती है वह एक महीने से अधिक नहीं जिन्दा रहता। जिसके मुँह या शरीर से मुर्दों की सी दुर्गन्ध आती हो वह पन्द्रह दिन से अधिक नहीं जीता। नहाने के बाद तुरन्त जिसके दोनों पैर और हृदय सूख जाँय तथा सिर से धुआं निकलने लगता है वह दस दिन से अधिक नहीं जीता है खराब वायु मर्म स्थान में दुख पहुँचावे तो उसकी मृत्यु जरूर होती है। जो मनुष्य सपने में बन्दर और भालुओं को रथ पर बैठ कर दक्षिण की तरफ जाते हुए देखता है वह भी जल्दी ही नष्ट हो जाता है। यदि काली स्त्री काले कपड़े पहन कर गाती हुई दक्षिण दिशा को जाती हुई जिस मनुष्य को सपने में दीखती है वह मनुष्य भी अधिक जिन्दा नहीं रहता है

जो मनुष्य बुरे बुरे सपने देखते हैं जसे अग्नि, भस्म, सांप और सूखी हुई नदी वह मनुष्य दस दिन से अधिक नहीं जिन्दा रहता है। सपने में काला भंयकर शक्ल का आदमी हथियारों से अथवा पत्थर मारता हुआ दिखाई देता है तो भी मृत्यु शीघ्र ही होती है। जिस मनुष्य के नहाने के बाद दिल में दर्द हो जाता है या उसके दांत कटकटाने लगते हैं उसकी भी मृत्यु जल्दी होती है जो मनुष्य रात को इन्द्र धनुष देखता है तथा दिन में तारागणों को देखता है। और अपनी छाया दूसरे की आंखों में देखता है वह मनुष्य भी जल्दी मर जाता है जिन मनुष्यों को कानों से सुनाई नहीं देता तथा नाक टेढ़ी हो जाती है और एक ही आंख से हर समय पानी बहता रहता है, वह भी अधिक नहीं जीवित रहता है। सपने में जो मनुष्य बालों को खोल कर हँस हँसकर गाता हुआ दक्षिण दिशा को जाता हुआ देखता है,

वही मनुष्य जल्दी ही मर जाता है जो मनुष्य सपने में ऊँट या गधे की सवारी पर बैठ कर दक्षिण दिशा को जाता हुआ अपने आप दीखता है वह भी मनुष्य जल्दी ही नष्ट हो जाता है। जिन मनुष्यों को कानों से सुनाई नहीं देता और उनकी आंखें पथरा कर गड्ढे में धँसी हुई मालूम पड़ती हैं वह आदमी जल्दी ही खत्म हो जाता है। जिस मनुष्य पर दिन या रात में स्वप्न में कोई चोट पहुँचाता है और उसके जागने पर वह चोट करने वाला आदमी सामने दीख जाय तो चोटखाने वाला व्यक्ति शीघ्र ही मर जाता है। जो मनुष्य स्वप्न में आग में घुसता है और सपने में ही इस बात को भूल जाता है वह मनुष्य अधिक समय तक जिन्दा नहीं रहता, यदि कोई मनुष्य सपने में सफेद रंग के कपड़े को लाल रंग का या काले रंग का देखता है वह भी शीघ्र नष्ट हो जाता है।

जब मनुष्यों को अपनी मृत्यु का समय आता हुआ मालूम पड़े तो सब दुखों को छोड़कर अनुष्ठान, जप इत्यादि का प्रयत्न करे। उस समय वह मनुष्य पूर्व या उत्तर की तरफ जाकर अच्छे पवित्र भाव से एकाग्र चित होकर (भगवान शिव को प्रणाम करे और आसन लगा कर आचमन करे। अपने सिर और गर्दन को सीधा करके ध्यान करे और किसी भी तरफ नहीं देखना चाहिए जिस प्रकार दीपक एक ही स्थान पर रखा रहता है, हटता नहीं है। उसी तरह सब तरफ से मन हटा कर अच्छे गुणों का, परमेश्वर का ध्यान करना चाहिये। योगी मनुष्य प्राण शरीर, आंख कान, हृदय, मन और मस्तक में धारणा पैदा करे। धर्म और समय को समझ कर और मृत्यु का जप, अनुष्ठान करके योगी मनुष्य बारह या एक सौ आठ धारणा को माथे पर धारण करे। इस प्रकार धारणा करके मनुष्य एक चित्त होकर ध्यान पूर्वक परमेश्वर का भजन करे। ऐसा करने से मनुष्य परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त करता है। अतः उसका नाश नहीं होता वह अमर पद को प्राप्त करता है।

इति श्री वायुमहापुराण का अरिष्ट निरूपण नामका उन्नीसवां अध्याय समाप्त ॥१६॥

बोसवाँ अध्याय

ओंकार प्राप्ति के लक्षण का निरूपण

वायु बोले—हे ऋषियो, इस कथा के बाद हम ओंकार प्राप्ति के लक्षण की कथा का वर्णन करेंगे। यह ओंकार शब्द तीन भागों से मिल कर बना है। और इसका व्यंजन स्वर मिला हुआ है। पहली मात्रा को वैद्युती, दूसरी मात्रा को तामसी और तीसरी मात्रा को अक्षर गामिनी को निर्गुण मानना चाहिए। बहुत कम गान्धार स्वर से बनी गान्धर्वी मात्रा भी होती है। इन चार शब्दों से बना ओंकार शब्द जब मस्तक में लय प्राप्त करता है, तब योगी ओंकार मय हो जाता है। ओंकार धनुष है। आत्मा वाण है और ब्रह्म लक्ष्य है लक्ष्य भेद सावधान होकर करना चाहिए। इसके लिये तन्मयता जरूरी है। ओंकार रूपी एकाक्षर ब्रह्मा बुद्धि रूपी घर में स्थित है। वही परम पद है। ओंकार ही तीनों वेद, तीनों लोक, तीनों अग्नि हैं। यह भगवान वामन के तीनों पैर ऋक्, यजुः और साम है। ओंकार में चार मात्रायें हैं। उस ओंकार में जो योगी तल्लीन रहता है वह मोक्ष पद को प्राप्त करता है। आकार अक्षर है। उपकार स्वर है तथा मकार लुप्त है। इस तरह तीन मात्राओं को मानना चाहिए। अकार भूलोक, उकार भुवः लोक और व्यंजन सहित मकार को स्वरलोक कहते हैं। ओंकार त्रिलोक मय है इसका शिरो भाग स्वर्ग है और पूरा भाग भुवनमय ब्राह्म पद माना गया है। मात्रा पद को रुद्रलोक कहा है। और अमात्रा को शिव पद कहा है। इसी तरह ध्यान पूर्वक उस पद की पूजा करनी चाहिए। और इसीलिये ध्यान में लगे हुये योगी को शाश्वत पद की इच्छा से उस नित्य, अविनाशी और अमात्रा की उपासना करनी चाहिए। इसकी पहली मात्रा ह्रस्व है, दूसरी मात्रा दीर्घ है, और तीसरी मात्रा लुप्त ह। इन मात्राओं को ठीक और शुरू से अन्त तक जाननी चाहिए। जहाँ त: हो वहां तक इनको धारणा करनी चाहिए।

जो योगी मनुष्य इन्द्रिय, मन और बुद्धि का आत्मा में ध्यान करता हुआ अष्ट मात्रा विशिष्ट प्रणव की धारणा करता है। वह मुख्य फल प्राप्त करता है। जितना इसका फल मिलता है उतना फल जो हर महीने अश्वमेध यज्ञ करके सौ वर्षों तक तपस्या करता है उससे भी नहीं मिलता है। जो आदमी कुशा के आगे के भाग से हर महीने जल की बूँदें पीते हैं और सौ वर्ष तक ऐसा करते हैं, उसके उस कर्म के बराबर मात्रा के ज्ञान से फल मिलता है। इष्टापूर्त यज्ञ और सत्य बात का जो फल होता है और एक महीने सिर्फ जल पीकर रहने का जो फल होता है, वही फल मात्रा ज्ञान से प्राप्त होता है। मालिक के लिये लड़ाई में मर जाने वाले वीरों को जो फल मिलता है, वही फल मात्रा ज्ञान से मिलता है। जितना फल मात्रा ज्ञान से मिलता है उतना फल कठिन तपस्या के करने से तथा दक्षिणा, दान करने वाले यज्ञ से भी नही मिलता है। गृहस्थ योगियों के लिये उसकी जो अर्द्ध मात्रा लुप्त है, वही मुख्य बताई गई है। वही लुप्त मात्रा ऐश्वर्य की देने वाली है। योगियों को आठ प्रकार की मुख्य ऐश्वर्य की प्राप्ति उसी से होती है। ब्राह्मणों को उसीकी उपासना करनी चाहिए। अतः इसी तरह उस लुप्त मात्रा से मिलकर जो शान्त, धीर और इन्द्रियों को जीतने वाला योगी अपने को जानता है वह ब्राह्मण सब ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ध्यान में लगे ब्राह्मण योग ज्ञान से ही तीनों वेदों और ग्रन्थों को जान जाते हैं। वे सब भूतों के लय स्थान में लीन होकर लयस्थान में ही बदल जाते हैं वे योगी मनुष्य उत्क्रमण विधान से प्राण छोड़कर अविनाशी पद को प्राप्त करता है और यह अजा अपनी ही तरह बहुत सी प्रजा को पैदा करने वाली है एक अज उस अजा से मिलकर सोता है, लेकिन अक्षरों वाली, सोलह पैरों वाली, चार मुखी, बिना शिखा के और एक पर्वत वाली संसार को पैदा करने वाली है। इसके रूप को जानकर विद्वान मनुष्य अमर पद प्राप्त करता है। जो ब्राह्मण प्रभाव को जानते हैं, वह संसार में बार-बार जन्म नहीं लेते हैं। यह ओंकार रूप अक्षर ब्रह्म है।

जो इसका ध्यान पूर्वक मनन करता है वह बन्धनों से छूट कर संसार के मरने जीने से छूट कर मोक्ष, अचल और शिवजी के परमपद को प्राप्त करता है। यह कथा ओंकार प्राप्ति के लक्षण की हमने बताई है।

सब संसार को जानने वाले उस परब्रह्म परमेवर को प्रणाम है। उसी परब्रह्म की पूजा करनी चाहिये। उसी परब्रह्म परमेश्वर की उपासना ही सभी के लिये सुखदाई है। पवित्रों से भी पवित्र अत्यधिक पवित्र ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत मात्रा विशिष्ट ओंकार की ही उपासना करनी चाहिये। हम सर्वात्मा योगीश्वर को प्रणाम करते हैं। सर्वात्मा योगीश्वर को प्रणाम करने से दुख नहीं सताते हैं। जिसने द्युलोक को उन्नत पृथ्वी को मजबूत स्वर्लोक को स्तम्भित और स्वर्ग को आकारा में रखा है, और जो देवों के हृदय स्वरूप हैं, वही परमपुरुष परमात्मा हैं। उनकी कोई उपमा नहीं है। यही ओंकार शब्द विश्वरूपी रुद्र, यज्ञ, वेद इत्यादि में बदल गये हैं। उस योगीश्वर अधिपति को प्रणाम है। सिद्धिकारक रुद्रोपस्थान का सुबह शाम और दोपहर में पाठ करने से शिव सभी इच्छाओं को पूरा करते हैं। जिस प्रकार हवा के हल्के झोके से पका हुआ फल गिर जाता है उसी प्रकार शिव भगवान को प्रणाम करने से सभी दुख दूर होजाते हैं। रुद्र भगवान को प्रणाम करने से सभी कर्मों का फल मिल जाता है जो फल दूसरे देवों के प्रणाम करने से नहीं मिलता है। इसीलिये योगी मनुष्य को तीनों समय श्री भगवान शिव की पूजा करनी चाहिये। वे प्रभु हर समय ओंकार में स्थित हैं। इसी तरह भगवान विष्णु को नमस्कार करना चाहिये। जो मनुष्य नमस्कार करते हैं। वह श्री विष्णु का प्रणाव स्तवन करते हैं यज्ञ प्रणव का, यज्ञ मन का और मन रुद्र का स्तवन करते हैं। इसलिये भगवान रुद्र ही परमपद हैं। इस यतियों की कथा को जो ध्यान पूर्वक सुनता हैं वह परब्रह्म परमेश्वर को प्राप्त करता है॥

इति श्री वायु महापुराण ओंकार प्राप्ति लक्षण नाम्क
बीसवां अध्याय समाप्त॥

इक्कीसवां अध्याय

(कल्प निरूपण)

सूत जी बोले—नैमिषारण्य में रहने वाले श्रेष्ठ तेजस्वी ऋषियों के बीच सावर्णि नाम के एक विद्वान ऋषि रहते थे। अत्यधिक चतुर होने के कारण सब ऋषियों से पहले उन्होंने आदर पूर्वक अत्यन्त शोभायमान वायुजी से सब हित के लिये यह कथा पूछी।

सावर्णि बोले—हे प्रभो आप सर्वदर्शी अन्तरयामी हैं। आपके पुण्य से हम वेद, पुराणों की कथा को अच्छी तरह सुनना चाहते हैं। भगवान हिरण्यगर्भ ने अपने मस्तक से तेजस्वी श्री शिवजी को किस प्रकार पुत्र रूप में पैदा किया कमलयोनि श्री ब्रह्माजी किस प्रकार पैदा हुये। ब्रह्मा नन्दन नील लोहित को रुद्र का स्थान कैसे मिला। रुद्र भगवान के साथ श्री विष्णुजी का अच्छा प्रेम किस प्रकार हुआ। सभी देवता विष्णु मय हैं सभी गण विष्णुमय हैं। श्री विष्णु के बराबर कोई दूसरी चीज नहीं है। देवता हमेशा निष्कपट भाव से ऐसा कहते हैं। फिर भी भगवान विष्णु श्री रुद्र भगवान को क्यों प्रणाम करते हैं।

सूतजी बोले–सावर्णि के इस प्रकार पूछने पर वायु भगवान ने कहा–हे साधु ! आपने अच्छा प्रश्न किया आपको धन्यवाद है। ब्रह्मा जी के पुत्ररूप में भव का जन्म लेना, कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, शंकर जी का रुद्रपना, विष्णु और शिव दोनों की परस्पर प्रीति तथा विष्णु भगवान शंकर जी को नित्य प्रणाम क्यों करते हैं ? यह सब हम क्रम से विस्तार पूर्वक कहते हैं। सो आप सुनिये–

छटे कल्प के बीतजाने पर मनु के अधिकार काल में सातवां कल्प था। जो पद्म कल्प कहलाता था। इस समय वाराह कल्प चल रहा है। इसको मैं विस्तार से कहता हूँ।

सावर्णि बोले— हे प्रभो, कल्प का प्रमाण क्या है, वह कितने काल का होता है। सो कृपा करके हमारे प्रति वर्णन कीजिये।

वायु बोले — यहां मैं तुमसे सातों मन्वन्तरों की कल्प संख्या यथा-क्रम संक्षेप से कहूंगा। दो हजार आठ सौ करोड़ तथा बासठ करोड़ सत्तर नियुक्त कल्पार्द्ध की संख्या बताई गई है। इसका पूर्त भाग वर्ष परिमाण कहा गया है। एक सौ अठहत्तर करोड़ दो लाख नब्बे नियुक्त के मनुष्यों के वर्ष परिमाण से वैवंस्वत मन्वन्तर हैं। कल्पार्ध का दुगना कल्प होता है। इसी क्रम से सातों कल्पों का परिमाण तथा संख्या यथाक्रम जाननी चाहिए। पांच सौ आठ नियुत, अस्सी सौ नियुत और चौरासी प्रयुत काल तक, सप्तार्षि मनु और इन्द्रादिक देवता काल प्रमाण से यथाक्रम विद्यमान रहते हैं। इस मन्वन्तर के अन्त में मनुष्यों का भी अन्त हो जाता है। प्रणव प्रतिपाद्य देवता साध्य और विश्वेदेवा जो नित्य हैं वे भी कल्पान्त में अन्त को प्राप्त हो जाते हैं। इस बाराह कल्प में जो कि इस समय हैं, इसमें स्वायंभुव आदिक चौदह मनु होते हैं।

ऋषि बोले—यह कल्प बाराह कल्प क्यों कहलाता है तथा किस कारण से भगवान को बाराह कहलाना पड़ा और बाराह कौन थे उन का क्या स्वरूप है यह सब हमसे कहिए यह हमारे जानने की इच्छा है।

वायु बोले—सृष्टि के आदि में भव कल्प था। इस कल्प में स्वयं जानने योग्य आनन्दमय भगवान ही थे। उन्होंने दिव्य ब्रह्म स्थान प्राप्त किया। दूसरा कल्प भुव, तीसरा तप कल्प, चौथा भव कल्प, पांचवां रम्भ कल्प, छटा ऋतु कल्प, सातवां क्रतु कल्प, आठवां लान्ह कल्प, नौवां हव्य वाहन कल्प, दसवां सावित्री कल्प व ग्याहरवां भुवः कल्प व बारहवां उशीक कल्प व तेरहवां कुशिक तथा चौहदवां गान्धार कल्प हुआ। इस चौदहवें कल्प में गान्धर स्वर उत्पन्न हुआ। उसी से नाद और गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई। हे ब्राह्मणो पन्द्रहवां कल्प ऋषभ हुआ ऐसा जानिये। इसमें मन को हरण करने वाला ऋषभ स्वर उत्पन्न हुआ। षड्ज नामक सोलहवां कल्प हुआ है।

इसमें छः ऋषि प्रसिद्ध हुये शिशिर वसन्त, निदाघ, वर्षा, शरद, हेमन्त नामक ये छओं ऋषि ब्रह्म के मानस पुत्र थे। तभी षड्ज गम्भीर ध्वनि वाला स्वर भी उत्पन्न हुआ। सत्रहवां कल्प माजीलीय नाम से विख्यात है। अठारहवां कल्प मध्यम कहलाता है। इसमें मध्यम स्वर उत्पन्न हुआ। उन्नीसवां कल्प वैराजक कहलाता है। इसमें ब्रह्मा के पुत्र वैराज मनु हुए। धर्मात्मा दधीचि इनका ही पुत्र था जिसको गायत्री ने स्निग्ध स्वर प्रदान किया था। बीसवां कल्प निषाद कहलाता है। इसमें निषाद को ब्रह्मा जी ने वर प्रदान किया जो कि ब्रह्मा जी की प्रजापति द्वारा सृष्टि कर्म से हाथ रोक लेने पर तपस्या कर रहा था। तभी निषाद स्वर भी उत्पन्न हुआ। इक्कीसवें कल्प को पञ्चम स्वर कहते हैं। इसमें ब्रह्मा जी के प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नामक पांच पुत्र हुये। इन पांचों महात्माओं ने पंचम स्वर से गाना गाया अतः उस स्निग्ध स्वर का नाम भी पंचम स्वर पड़ा और कल्प भी पंचम कल्प कहलाया।

बाईसवें कल्प का नाम 'मेघवाहन' कल्प समझना चाहिए। इस कल्प में महाबाहु विष्णु भगवान ने मेघ रूपी चर्म के वस्त्र धारण किये हुए महेश्वर भगवान को दिव्य सहस्र वर्ष तक धारण किया था। तेईसवां कल्प 'चिन्तक' नाम वाला था। चौबीसवां आकूति कहलाता है। इसमें प्रजापति ने आकूति सृष्टि करने को कहा था। पच्चीसवें कल्प का नाम विज्ञाप्ति है। सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा जी को इसमें शीघ्र ज्ञान हो गया था। इससे इस कल्प का नाम विज्ञाप्ति पड़ा। इसमें देवी विज्ञाति और विज्ञात दो जुड़वां बच्चे भी पैदा हुये छब्बीसवें कल्प को मन कहा है। सत्ताईसवां कल्प भाव कहा जाता है। इसमें शनैः शनैः चंचल मन को रोक कर अग्नि ही काल, रुद्र और सोम हैं। इन वेद मन्त्र का जप करने पर रुद्र लोक की प्राप्ति बताई गई है।

अट्ठाईसवां कल्प वृहत् कहलाता है। प्रजा की इच्छा करते हुये ब्रह्मा जी के अन्तः करण से वृहत् साम और रथन्तर उत्पन्न हुये।

बृहत् के नाम पर तत्व चिन्तक इस कल्प को बृहत् ही कहते हैं। सूर्य मण्डल के रथन्तर का परिमाण ८८ हजार योजन है। इसीलिये सूर्य मण्डल का भेदन करना बड़ा कठिन है। किन्तु योगी लोग उसका तथा बृहत् साम का भी भेदन करके वहां पहुँच जाते हैं। यह हमने आध्यात्म तत्व का निरूपण किया। अब आगे कल्पों का विस्तार से वर्णन करेंगे। अन्त में भगवान नारायण का ध्यान करते हुये कहते हैं कि—

जिह्वे स्तुहि जगत्त्रितयैकनाथं
नारायणं परम कारुणिकं सदैव।
प्राचीन कर्म निगडागल बन्ध मुक्त्यै,
नान्यः पुराण पुरुषादपरोऽस्त्युपायः॥

अर्थात् हे जिह्वे, तू तीनों लोकों के पति, परमकारुणिक, परम पुरुष नारायण भगवान की स्तुति कर। क्योंकि प्राचीन कर्मों की शृंखला के बन्धन से मुक्त करने में उस नारायण भगवान की कृपा के सिवाय और कोई उपाय नहीं है।

इति श्री वायुमहापुराण का कल्प निरूपण नामक इक्कीसवां अध्याय समाप्त ॥२१॥

---

* बाईसवाँ अध्याय *

(कल्प की संख्या का निरूपण)

ऋषि बोले—हे मुनि आपने कल्पों का अत्यन्त रहस्यमय आख्यान और मंत्रों की कल्पना का आश्चर्यमय वर्णन किया। तीनों लोकों में आप से कोई भी बात अज्ञात नहीं है अतः कृपाकर सब कल्पों की संख्याओं का वर्णन आप विस्तार पूर्वक हम से कहिये।

वायु बोले—अब मैं आप लोगों को कल्प की संख्या तथा परमेष्ठी ब्रह्मा के युग और वर्ष के विषय में वर्णन करूँगा। ब्रह्मा का एक वर्ष एक हजार युग का होता है। इस प्रकार ब्रह्मा के ही आठ

हजार वर्ष बीतने पर उसका एक युग माना जाता है। एक हजार युग प्रजापति का सवन माना गया है दो हजार सवन का एक त्रिलृत्त होता है। ब्रह्मा की स्थिति की यही सब कथा जाननी चाहिए।

इसके आगे उस काल की संख्या को कहता हूं। पहले मैं २८ कल्पों को कहूंगा तथा उनके नाम पड़ने के कारणों को बताऊँगा। रथान्तर और बृहत् साम के बाद के कल्पों का नाम तथा मन्त्र की उत्पत्ति का वर्णन करूँगा।

(अट्ठाईस कल्पों का वर्णन पिछले अध्याय में किया जा चुका है) अतः उन्तीसवें कल्प का नाम श्वेत लोहित कल्प में ब्रह्मा जी के एक परम तेजस्वी श्वेत उष्णीष (पगड़ी) धारण किये हुये; श्वेत माला और श्वेत वस्त्र पहने हुये, अग्नि के समान कांति वाला एक कुमार उत्पन्न हुआ। उस तेजस्वी, श्वेत लोहित, महारौद्र, धीररूप, श्वेत वर्चस, महामुख वाले कुमार को ब्रह्माने देवदेवेश, विश्वरूप महेश्वर समझा और उसकी वन्दना की। उन्होंने प्रसन्न होकर बड़े जोर से अट्टहास किया जिससे उनके पार्श्व से तेजोमय, श्वेत माला पहिने, श्वेत अंगराग से सुशोभित सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द नामक तेजस्वी ऋषि प्रकट हुये। वे महात्मा श्वेत देव २ के शिष्य हुये। उन सबने सद्योजात महेश्वर की शरण ग्रहण का। हे ब्राह्मणो! जो प्राणायाम परायण होकर योगी लोग उन महेश्वर की शरण में जाते हैं वे सब निष्पाप तेजस्वी और शुद्ध हृदय होकर ब्रह्मलोक को भी पार कर उत्तम रुद्र-लोक को प्राप्त करते हैं।

वायु बोले—इसके बाद तीसवाँ रक्त नामक कल्प कहा गया है। इस कल्प में महान तेजस्वी रक्त ने रक्तवर्ण धारण किया। परमेष्ठी ब्रह्मा पुत्र की कामना कर रहे थे तभी उनके पार्श्व से एक तेजोमय कुमार उत्पन्न हुआ। जो शरीर से रक्तवर्ण का था एक ही नेत्र था। रक्त माला पहन रहा था। सभी वस्त्र भी रक्त वर्ण के थे। उन रक्ताम्बर धारी महादेव को कुमार के रूप में देखकर ब्रह्मा जी ध्यान में मग्न हो गये।

और उन्हें विश्वेश्वर जान कर प्रणाम किया। इस पर महादेव जी ब्रह्मा जी पर प्रसन्न होकर कहने लगे –

हे पितामह ! तुमने पुत्र की कामना से मेरा ध्यान किया है। इसलिये तुम अब प्रत्येक कल्प में मुझ लोक पालक ईश्वर को पहचानोगे। यह कह कर भगवान शर्व ने अट्टहास किया। जिससे उन कुमार के चार पुत्र उत्पन्न हुए जिनका नाम विरज, विबाहु, विशोक, और विश्वभावन था। वे चारों बिशुद्ध बुद्धि, ब्रह्मण्य, वीर और अध्यवसायी थे सभी रक्ताम्बर धारी, रक्तमाला, और रक्तलेप से युक्त थे। उनके मुख और नैना भी रक्त थे। इन सबने उन वामदेव भगवान से ज्ञान का अभ्यास किया और उन की स्तुति की। वे लोक हित और शिष्यों को हित दृष्टि से संपूर्ण धर्मों का उपदेश ग्रहण करके स्वयं अव्यक्त रुद्र देव में ही विलीन हो गये।

हे श्रेष्ठ विप्रो, जो भी व्यक्ति भगवान बामदेव का ध्यान करते हैं तथा उनकी शरण में अनन्य भाव से जाते हैं वे सभी शुद्ध, बुद्ध, और निष्पाप होकर सद्लोक को जाते हैं जहां से वे कभी भी लौटते नहीं।

इति श्री वायु महापुराण का कल्प संख्या निरूपण नामका बाईसवां अध्याय समाप्त ॥२२॥

* तेईसवाँ अध्याय *

महेश्वर अवतार योग

वायु बोले—इक्तीसवां कल्प पीतवासा कल्प है। जिसमें महा तेस्वी ब्रह्मा जी पीत वर्ण वाले होते हैं। पुत्र कामना से ध्यान करते समय परमेष्ठी ब्रह्मा जी के एक महातेस्वी पीत वस्त्र धारी पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके अंगों पर पीत वस्त्र थे तथा पीत चन्दन का लेप लगा हुआ था। कण्ठ में पीत माला सुशोभित थी। पीत यज्ञो पवीत और सिर पर पीत पगड़ी थी। ध्यान पूर्वक ब्रह्मा जी ने उन परमेश्वर लोक पालक प्रभु को पहँचान कर मन ही मन प्रणाम किया। इसके बाद ब्रह्मा ने उन महेश्वर भगवान के मुख से उत्पन्न एक गाय को देखा।

जिसके चार पैर, चार मुख, चार हाथ, चार स्तन, चार नेत्र, चार सींगें चार दांत और मुख थे। वह ईश्वरी चारों ओर मुख वाली बत्तीस लोकों से युक्त थी। सब देवों के पूज्य महादेव उसे देखकर बोले—तुम ही स्मृति बुद्धि और मति हो तुम यहां आओ, यहां आओ। महेश्वर भगवान के ऐसा कहने पर वह देवी उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ी होगई। तब उससे महादेव ने कहा—कि तुम्हारा नाम रुद्राणी होगा, तुम विश्व को अपने वश में करो। तुम्हारे द्वारा ससार में ब्राह्मणों का हित तथा परमार्थ सिद्ध होगा। ऐसा कहकर देवाधिदेव महेश्वर वह गाय पुत्र की कामना वाले ब्रह्मा को दे दी। इससे ब्रह्माजी उस रौद्री गायत्री का ध्यान कर तथा संयम पूर्वक जप करके वैदिकी विद्या गायत्री के द्वारा पुनः महादेव जी की शरण को प्राप्त हुये। तब महादेव जी ने ब्रह्मा को दिव्य योग, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा वैराग्य प्रदान किया।

इसके बाद महादेव जी ने भयकर अट्टहास किया। जिससे उनके शरीर से तेजस्वी कुमार उत्पन्न हुये जो कि पीली माला, पीत वस्त्र, पीत अंगराग धारण किये हुये थे। उनके शिर पर पीली पगड़ी थी। उनका मुख और केश भी पीत वर्ण के थे। ये सब कुमार एक हजार वर्ष तक योग विषयक उपदेश देते रहे तथा बाद में रुद्र में ही लीन हो गये।

वायु बोले—ब्रह्म के उस पीत वर्ण नामक कल्प के बीत जाने पर 'सित' नामक दूसरा कल्प हुआ। उस समय दिव्य सहस्र वर्ष तक जगत एक महान जल राशि मय था तब ब्रह्मा दुखी होकर सृष्टि की चिन्ता करने लगे। पुत्र कामना से चिन्ता करने पर परमेष्ठी ब्रह्मा का रंग काला होगया। तब एक कुमार वहां उत्पन्न हुआ। जो कुमार कृष्ण वर्ण महावीर्य तथा तेजस्वी और काले वस्त्र पहने हुये थे। वह कुमार काली पगड़ी और काला यज्ञोपवती धारण किये हुये थे। उनके काला लेपन लगा था तथा काली माला धारण किये हुये थे। ब्रह्माने उन महात्मा को विश्वेश्वर जानकर प्रणाम किया। प्राणायाम परायण महात्मा ब्रह्मा उन यतीश्वर प्रभु की शरण में आये और अघोर मन्त्र से उनका ध्यान

किया। तभी भगवान रुद्र ने घोर अट्टहास किया। तब उनके पार्श्व से कृष्ण वर्ण वाले चार कुमार उत्पन्न हुये। वे सब काले वस्त्र काली पगड़ी, काली माला तथा काला चन्दन लगाये हुये थे। उन कुमारों ने भी अट्टहास किया। और बारम्बार नमः शब्द का उच्चारण किया। उन्होंने भी योग विषयक सहस्र वस्त्र तक परमेश्वर की उपासना की। और ध्यान परायण होकर विश्वश्वर शिव के निर्मल स्थान के प्रवेश कर गये। इस योग विधान के द्वारा जो भी द्विजाति लोग रुद्र का स्मरण करेंगे वे सब शाश्वत पद को प्राप्त करेंगे।

इस कृष्ण कल्प के बीतने पर विश्वरूप नामक कल्प हुआ। स्टष्टि रचना के पुनः आरम्भ होने पर परमेष्ठी ब्रह्मा ने पुत्र कामना से ध्यान किया। उस समय महानाद करती हुई विश्वरूपा सरस्वती प्रकट हुई। तब पितामह ब्रह्माने योग में परायण चित्त से विश्वमाल्य, विश्व-वसनधारी यज्ञोपवीती, विश्व उष्णीष धारी, विश्व गन्धी महानुज सर्व-गामी सर्वेश्वर ईशान देव का मन से ध्यान किया और वन्दना करते हुये कहने लगे हे ईशान तुम्हें मेरा नमस्कार है। तब शिव ने कहा—मैं तुम से प्रसन्न हूँ क्या चाहते हो।

ब्रह्मा जी अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—हे देव, आपके विश्वगामी, विश्वेश्वर रूप को जानने की हमारी इच्छा है। यह परमेश्वर कौन है? यह भगवती कौन है? जो चार मुख चार सींग चार नेत्र चार पैर चार दांत चार स्तन तथा चार हाथ वाली यह विश्वरूपा कौन है? इसका क्या नाम है? इसकी आत्मा और रूप कैसा है। इसका परा-क्रम और कर्म कैसा है? सो बतलाने की कृपा करिये।

महेश्वर बोले--मैं आदि सर्ग के इस रहस्य मय गुह्य तत्व को तुम से कहता हूं सो सुनो। यह तो कल्प है इसको विश्वरूप कल्प कहते हैं। भवादि देवगण इस कल्प के ३६ वें मनु हैं। जग से तुमने ब्रह्म पद को प्राप्त किया है तब से यह तेतीसवां कल्प चल रहा है। आपके सामने ही सैकड़ों हजारों स्वायंभू बीत चुके हैं। आप पहले आनन्द नाम से थे और तपस्या की। गालव्य गोत्र में उत्पन्न होकर आप तपस्या के

बल से मेरे पुत्र हुये। आपमें योग सांख्य, तप विद्या, अविद्या मति धृति शान्ति स्मृति, पुष्टि क्रिया आदि छब्बीस गुण मौजूद थे। इस प्रकृति रूपा महेश्वरी को अपनी प्रसूति जानिये। यह भगवती ही जगत् यानि प्रधान प्रकृति चतुर्मुखी गोरूपा है। तब शिव ने अट्टहास किया। उनके पार्श्व से कई कुमार उत्पन्न हुये। वे कुमार जटी, मुण्डी शिखण्डी और अर्द्ध मुण्डी थे। ये पराक्रमशाली सभी कुमार योगमार्ग से महेश्वर की उपासना करके रुद्र के शरीर में प्रवेश कर गये।

वायु बोले—ब्रह्माजी यह सब सुन अत्यन्त विस्मित हुये। पुनः भक्ति युक्त होकर बोले-कि हे विभो, आप में श्वेत तत्व किस प्रकार आया ? सो कहिये।

भगवान बोले—यह श्वेत कल्प है इसके प्रभाव से ही हम श्वेत हुये हैं। हमारी पगड़ी, माला वस्त्र अस्थि मांस रोम त्वक् रक्त सभी श्वेत हो गये हैं। हमारा नाम श्वेत ही था इससे यह श्वेत कल्प कहलाया। हमारे प्रसाद से इस समय ब्रह्म-नाम वाली गायत्री भी श्वेत वर्ण हैं। जब हम लोहित नाम वाले थे तब कल्प का नाम भी लोहित कल्प था। गोरूपिणी गायत्री भी लोहित थी। फिर जब हमारा शरीर कृष्ण वर्ण का हुआ तब वह कल्प भी कृष्ण कल्प कहलाया। उस समय हम घोर पराक्रम शाली लोक प्रकाशक थे। तब हम अघोर अव्यय और शान्त रूप से विराजमान थे इस भूतल पर हमारा विश्वरूप से सबने दर्शन किया। तब यह कल्प विश्वरूप नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस सावित्री का भी नाम विश्वरूपा हुआ। जो तपस्वी द्विज हमें विश्वरूप में सर्व गामी शिव रूप में देखेंगे वे रज और तमो-गुण से मुक्त होकर रुद्रलोक को प्राप्त होंगे जहां से फिर कोई भी लौटता नहीं। हे द्विजगणो, भगवान रुद्र के इस प्रकार कहने पर पितामह ब्रह्मा ने नम्र होकर कहा—

हे भगवान, आप विश्वरूप धारी हैं। हे महादेव, आपका यह लोक पूज्य शरीर है। कृपया हमको जानने की इच्छा है कि कब किस काल में द्विजातिगण आपको देख सकेंगे, और किस तत्व से किस मूर्ति का ध्यान करके आपका दर्शन लाभ कर सकते हैं।

भगवान बोले--हे ब्रह्मन, तपस्या, योग, दान, तीर्थ दक्षिणा यज्ञ आदि के द्वारा नहीं बल्कि ध्यान के द्वारा हमें आप देख सकते हैं। त्रिभुवन पति विष्णु ही एक मात्र साधनीय हैं। वे वाराह नाम से प्रसिद्ध होंगे। चारों युग उनके चार पाद होंगे। यज्ञ उनके अंग, चार वेद, चार भुजायें, ऋतु सन्धि उनके मुख दोनों अयन उनकी आंखें पर्व आदि हैं उत्पत्ति प्रलप उनक आश्रम हैं। वे नारायण ब्रह्म लोक वासियों के लिये भी नमस्कार करने योग्य हैं। जब संसार एक जलके समुद्र में लीन हो जायगा उसके बाद आप विष्णु भगवान की नाभी से उत्पन्न होंगे और ख्याति प्राप्त करोगे। प्रभु के सप्तम वाराह कल्प में विष्णु महातेजस्वी काल होकर संसार का संहार करेंगे। तब तुम्हारे वैवस्त मनु आपके पुत्र होंगे। उस समय शिखा युक्त श्वेत नामक महा-मुनि होंगे। हिमालय के छागल पर्वत पर हमारे श्वेत, श्वेतशिखिर, श्वेतश्व और श्वेत लोहित चार शिष्य होंगे। वे चारों महात्मा वेद पारग और ध्यान परायण होंगे।

जब द्वितीय द्वापर युग में प्रभु पजापति देव २ 'सत्य' व्यास नाम से प्रकट होंगे तब हम संसार के कल्याण के लिये सुतार नाम से प्रकट होंगे। उस समय हमारे दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक, केतुमान चार पुत्र होंगे। वे योग ध्यान परायण होकर रुद्र लोक में गमन करेंगे।

तीसरे द्वापर में भार्गव व्यास नाम से प्रकट होंगे, तब उस युग के अन्त में दमन के नाम से पुकारे जायेंगे। उस समय भी चार पुत्र होंगे जिनके नाम विशोक, विकेश विशाप और शापनाशन होंगे।

चौथे द्वापर में प्रभु प्रजापति देव २ सत्य व्यास अंगिरा के नाम से प्रकट होंगे तब हमारा सुहोत्री नाम कहलायेगा। उस समय भी हमारे सुमुख दुर्मुख दुर्दम और दुरतिक्रम नाम के चार पुत्र पैदा होंगे।

पांचवे द्वापर में व्यास सविता के नाम से प्रकट होंगे, जब हम कङ्क के नाम से तेजस्वी ऋषि कहलायेंगे। उस समय भी चार पुत्र होंगे जिनके नाम सनक, सनन्दन सनातन और सनत्कुमार होंगे।

छटे द्वापर में व्यास जी 'मृत्यु' नाम से प्रकट होंगे तब हम लोकक्षि

के नाम से मशहूर होंगे। उस समय भी हमारे चार पुत्र होंगे वे चारों महातेजस्वी और योगात्मा हैं।

सातवें द्वापर में महाप्रतापी विभु 'शतक्रतु' होंगे तब हम उस काल में तेजस्वी जैगिषव्य के नाम से प्रसिद्ध होंगे। उस समय भी हमारे चार पुत्र होंगे, वे महातेस्वी ध्यान योग में लिप्त होकर रुद्रलोक को जायेंगे।

आठवें द्वापर में व्यास जी 'वशिष्ठ' नाम से प्रकट होंगे, उस समय भी उनके चार पुत्र होंगे। वे चारों महातेजस्वी श्री माहेश्वर योग को प्राप्त करके हमारे पास आजायेंगे।

नवें द्वापर में 'सारस्वत' नाम के व्यास जी प्रकट होंगे उस समय हम ऋषभ नाम से प्रसिद्ध होंगे।

दसवें द्वापर में व्यास जी 'त्रिधामा' रूप में प्रकट होंगे, उस समय भी हमारे चार पुत्र होंगे ये भी निष्पाप होकर श्री रुद्र लोक में निवास करेंगे।

ग्यारहवें द्वापर में व्यासजी 'तिष्ठत' नाम से प्रकट होंगे, उस समय हम कलियुग के समय गंगाद्वार में होंगे। उस समय भी हमारे चार पुत्र होंगे जो चारों ही उत्तम गति को प्राप्त कर के रुद्रलोक में स्थिति होंगे।

बारहवें द्वापर में सत्यदेव व्यास जी 'शततेजा' के नाम से प्रकट होंगे उस युग में हम अत्रि नाम से प्रसिद्ध होंगे और पृथ्वी में हैमक वन में जाकर तपस्या करेंगे।

तेरहवे द्वापर में नारायण धर्म के नाम से व्यास रूप में प्रकट होंगे उस समय भी हमारे चार पुत्र होंगे तब हम बालि नामक महामनि से प्रसिद्ध होंगे।

चौदहवे द्वापर में 'सुरक्ष' नाम के व्यास होंगे तब हम युग के अन्त में अंगिरा ऋषि के वंश में गौतम जी के नाम से प्रसिद्ध होंगे। तब से हमारा आश्रम गोतमाश्रम के नाम से प्रसिद्ध होगा।

पन्द्रहवे द्वापर में प्रभु प्रजापति व्यास 'अरुणि' नाम से प्रकट होंगे। तब हम वेदशिरा नाम से प्रसिद्ध होंगे। और वहीं सरस्वती

नदी के किनारे पर हिमालय पर्वत के पहले भाग में आश्रम बनाकर रहेंगे।

सोलहवे द्वापर में व्यास जी संजय के रूप में प्रकट होंगे। तब हम गोकर्ण के नाम से प्रसिद्ध होंगे। इसीलिये उस वन का नाम गोकर्ण वन पड़ेगा उस समय भी चार पुत्र होंगे और सभी चारों परम पद को प्राप्त होंगे।

सत्रहवे दापर में व्यास जी 'कृतञ्जय' नाम से प्रकट होंगे उस समय हम गुहावासी रूप से प्रसिद्ध होंगे। हिमालय के ऊंचे पर्वत पर महा-पुण्य सिद्धक्षेत्र स्थित होगा। उस समय भी हमारे चार पुत्र होंगे और वे चारों ही ध्यान में लीन होकर योग सधना के दुवारा शिवलोक को प्राप्त होते हैं।

अठारहवे दुवापर में महामुनि व्यास तव ऋतञ्जय के नाम से प्रकट होंगे। और हम शिखण्डी के नाम से प्रसद्धि होंगे तब भी चार ही पुत्र होंगें।

उन्नीसवे द्वापर में भारद्वाज नाम के महामुनि व्यास जी प्रकट होंगे। तब भी चार ही पुत्र होंगे। और हम जटामाली नाम से प्रसिद्ध होंगे।

बीसवें द्वापर में प्रभु व्यास जी वाचः श्रवा नाम से प्रकट होंगे और हमारा नाम अट्टहास पड़ेगा। हिमालय पर्वत के मुख्य भाग पर अट्टहास नाम का विशाल पर्वत है। वहां भी चार पुत्र होंगे जो चारों ही माहेश्वर योग के द्वारा रुद्रलोक में जाते हैं।

इक्कीसवे द्वापर में व्यास जी ऋषि सप्तम वाचस्पति नाम से प्रकट होंगे। उस समय हम दारुव नाम से प्रसिद्ध होंगे। अतः इसी कारण से उस विशाल वन का नाम देवदारु वन पड़ेगा।

बाइसवे द्वापर में शुक्लायन व्यास नाम से प्रकट होंगे तब हम वराणासी में ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध होंगे और हमारा नाम लाङ्गली पड़ेगा।

तेइसवे द्वापर में व्याम तृणविन्दु नाम से प्रकट होंगे। और फिर हम श्वेत महाकाय सुधामिक मुनिपुत्र नाम से प्रसिद्ध होंगे।

चौवीसवे द्वापर में व्यास ऋक्ष नाम से प्रकट होंगे।

पच्चीसवे द्वापर में व्यास वशिष्ठ 'शक्ति' नाम से प्रकट होंगे और तब हम दण्डी मुण्डीश्वर होकर देवों के पूजे हुये कोटि वर्ष नगर में प्रसिद्ध होंगे।

छब्बीसवे द्वापर में व्यास जी पाराशर रूप में प्रकट होंगे। और जब हम सहिष्णु के नाम से प्रसिद्ध होंगे। कलियुग के शुरू में हम रुद्रवन में स्थिति होंगे।

सत्ताइसवे द्वापर से व्यास जी 'जातुकर्ण्य' नाम से प्रकट होंगे और जब हम ब्राह्मणों में श्रेष्ठ सोमशर्मा के नाम से प्रसद्धि होंगे। और प्रभास क्षेत्र में आश्रम बनाकर निवास करेंगे और योगात्मा नाम से प्रसिद्ध होंगे।

अठाइसवे द्वापर में प्रभु प्रजापति पराशर के पुत्र श्रीकृष्ण दैपायन व्यास के नाम से प्रकट होंगे। उस समय भी चार पुत्र होंगे। उस समय यदुकुल में श्रेष्ठ श्री भगवान लीला पुरुषोत्तम कृष्ण छठे अंश से वासुदेव के रूप में वसुदेव से प्रकट होंगे। उस समय हम योगात्मा होकर योगमाया द्वारा ब्रह्मचारी रूप में प्रकट होंगे। और जब हम ब्राह्मणों के फायदे के लिये योगमाया के वल से विष्णु मेरुगुहा में प्रकट होंगे। और तब हे प्रजापति ब्रह्माजी उस समय हम नकुली नाम से प्रसिद्ध होंगे। जब तक यह पृथ्वी स्थिति रहेगी, तभी तक हमारे द्वारा बने स्थान कायारोहण नाम से प्रसिद्ध होंगे। वे चारों पुत्र योगात्मा, महातेजस्वी और वेदों को जानने वाले विद्वान होंगे। ये ऊर्द्धरेता महेश्वर योग के द्वारा रुद्रलोक में निवास करेंगे। इस प्रकार इस कथा में हमने अठाईस व्यासों के अवतारों की कथा का वर्णन किया है।

इति श्री वायुमहापुराण का माहेश्वर अवतार योग नामक
तेइसवां अध्याय समाप्त ॥२१॥

———

* चौबीसवाँ अध्याय *

(शार्वस्तव)

वायु बोले-ऋषियों ने बतलाया है कि हमारे भारत में चार युग 'सत्ययुग, त्रेता युग, द्वापर युग और कलियुग' होते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में हजार युगों का समय होता है इस ब्रह्माजी के दिन में यम सातोंगण और चौदहगण मनुष्य लोक में शरीर धारण करते हैं। और फिर चारों युगों के दिशा होने पर वे देवता पहले मनुष्य लोक और तपो लोक को जाते हैं। मन्वन्तरों के लुप्त होने पर देवता भी आवागमन में रहते हैं और फिर चौदहगण अपने दूसरे देवगणों के साथ सत्यलोक को छोड़कर मनुष्य लोक में जन्म लेते हैं। उस समय सब भूतादि नष्ट होजाते हैं। सब भुवादि लोक शून्य होजाते हैं और कल्प वासियों के साथ देवता ऊपर चले जाते हैं वर्षा और अग्नि से युग क्षीण होजाता है। उस समय ब्रह्माजी सब का नाश करके देवता राक्षसों और ऋषियों की फिर दुबारा सृष्टि पैदा करते हैं। सप्तम कल्प में सातों सागर मिलकर एक हो जाते हैं। और अन्धकार हो जाता है। उस एकार्णव में शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करने वाले श्री कमल नयन, मुकुट से शोभित श्रीपति नारायण के मुख से पैदा आठों पुरुषोत्तम, अष्टबाहु, लोकसमूह के पैदा होने के स्थान योगात्मा हरि की माया से किसी अन्य योग को धारण करके श्री नागराज के हजारों विशाल फनों की शैया पर सोते हैं। परब्रह्म परमात्मा भगवान विष्णु ने सोते हुये ही आश्चर्यवश अपनी नाभि से एक कमल को पैदा किया। उस कमल की लम्बाई चौड़ाई सौ योजन की थी, और वह बाल सूर्य (निकलते हुये सूर्य) की तरह तेजवान था। वह भगवान विष्णु की लीला से पैदा होने वाला वज्र की तरह दराड़ वाला था। भगवान विष्णु उस कमल से खेल रहे थे। तभी प्रजापति ब्रह्माजी उनके पास ही स्वर्णमय ब्रह्माण्ड से पैदा हुये और स्वर्ण के समान शरीर की कान्तिवाले चार मुख वाले ब्रह्माजी उनको ढूँढते हुये अपनी

इच्छा से वहीं आगये श्री भगवान विष्णु को सुगन्धित नवीन फूल से खेलते हुये देखकर ब्रह्माजी उनके पास पहुँच गये। और उनके पास पहुँच ब्रह्माजी आश्चर्य पूर्वक देखकर कहने लगे कि 'आप कौन हैं जो इस जल में सो रहे हैं।'

प्रजापति ब्रह्माजी की बात को सुनकर श्री भगवान विष्णु आश्चर्यमय होकर अपनी शैय्या से उठ बैठे। और कहने लगे जो पृथ्वी, आकाश, स्वयं, कार्य आदि जो भी कुछ हैं उन सबका मालिक मैं ही मैं हूँ मैं ही सबसे श्रेष्ठ परमपद हूँ और अब आप बताइये कि आप कौन हैं और कहां से यहां पर आये हैं और अब आप कहां जायेंगे। आपका कौनसा स्थान है सारे संसार को पैदा करने वाले आप कौन है तथा हम आपका कौन सा प्रिय कार्य करें। भगवान श्री विष्णु जी के इस तरह पूछने पर प्रजापति ब्रह्माजी बोले।

जिस प्रकार आप विश्वकर्त्ता सर्वात्मा हैं उसी प्रकार मैं भी सब कार्य को करने वाला सर्वात्मा हूं मेरा नाम नारायण है। प्रजापति ब्रह्माजी के मुख से यह बात सुनकर श्रीपति भगवान विष्णु अधिक आश्चर्यमय हो गये और उनसे आज्ञा लेकर योगीश्वर विष्णु ब्रह्माजी के मुख में अन्तर्ध्यान होगये। ब्रह्माजी के मुख में घुस कर श्री विष्णु जी ने सागर, पर्वतों के साथ आठों द्वीप ब्रह्माजी से लेकर स्तम्ब पर्यन्त चारों आश्रमों में अलग सातों सनातन लोक देखे और देखकर अपने आप ही कहने लगे कि ब्रह्माजी की तपस्या अद्भुत है।

श्री भगवान विष्णु उन तरह तरह के आश्रमों में डालने लगे, लेकिन हजारों वर्षों के बीतजाने पर भी उन्होंने अन्त नहीं देखा तब भगवान विष्णु प्रजापति ब्रह्माजी के मुख में से निकल कर बोले कि हे प्रभो आपके उदर का शुक्र, अन्त मध्य, काल, दिशा का कुछ भी पता नहीं चलता। भगवान विष्णु जी ने फिर प्रजापति ब्रह्माजी से कहा कि हे भगवान अब आप हमारे मुख में घुसकर शाश्वत उदर में अनुपम लोकों को देखिये। प्रजापति ब्रह्माजी शुभ वचनों को सुनकर भगवान विष्णु जी को नमस्कार करके उनके मुख में घुस गये।

प्रजापति ब्रह्माजी ने श्रीविष्णु जी के उदर में उन्ही लोकों को देखा और उनका अन्त भी कहीं नहीं मिला। जब विष्णु ने जी अपने अन्दर आया समझकर अपने सब इन्द्रियों के द्वारों को बन्द कर लिया और जब ब्रह्माजी ने सब द्वारों को बन्द देखा तो श्री विष्णु जी के नाभि में से कमलनाल के सहारे प्रकट हुये। उस समय प्रजापति ब्रह्मा जी पद्मगर्भ के समान तेजवान होकर कमल में बैठ गये। इसी तरह वे दोनों आपस में उस जल में क्रीड़ा करने लगे।

सूतजी बोले—जिस जगह पर श्रीपति विष्णु जी विराजमान थे उसी समय श्री महादेव जी भी वहां पर आये। वे बहुत जल्दी २ पैरों को जमीन में मार रहे थे, जिनके शोर से जल कीटाणु आकाश में इधर उधर उड़ने लगे और हवा भी बहुत तेज चलने लगी यह देखकर ब्रह्माजी को बहुत अचम्भा हुआ और श्री विष्णु जी से कहने लगे कि जल विन्दु स्थूल और भी गर्म होगये हैं जिससे यह कमल कांप रहा है। ये आप क्या करना चाहते हैं हमें बड़ा आश्चर्य होरहा है। प्रजापति ब्रह्मा जी की ऐसी वाणी सुनकर श्रीविष्णु भगवान बोले क्या मेरी नाभि में कोई दूसरा जीव आश्रय लेरहा है। प्रजापति ब्रह्माजी मैंने आपके साथ बुरा वर्ताव किया है फिर भी आपने हमारे प्रति अच्छा वर्त्ताव किया है। और फिर मन में ध्यान लगाकर बोले कि आपको इस कमल के विषय में भ्रम हो रहा है। हे प्रभो मैंने क्या किया है जिससे कि आप मुझसे ऐसे सुन्दर और प्रिय वचन कह रहे हैं यह आप मुझको बताइये। श्रीपति वैकुण्ठ निवासी के इस प्रकार कहने पर प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा कि हे दीन वन्धु, सबसे पहले मैंने ही आपके उदर में प्रवेश किया था और जिस तरह आपने हमारे उदर में देखा उसी तरह हम ने भी आपके उदर सम्पूर्ण लोकों को देखा। हे प्रभो, हजारों वर्ष घूमने के बाद हम बाहर आने लगे, तो आपने अपने सब इन्द्रिय द्वारों को बन्द कर लिया था आप हम को अपने वश में करना चाहते थे। लेकिन फिर हम आपकी नाभि में से कमलनाल के द्वारा बाहर निकल आये। हे प्रभो आपको इससे तीनक भी दुख नहीं पहुँचेगा। कार्यों की

आपस में इसी तरह की स्वाभाविक गति होती है।

विष्णु जी बोले–हे ब्रह्माजी हमने आपके प्रति जो बुरा वर्त्ताव किया है और हमसे आपके विषय में जो कार्य हुआ है। वह सब आश्चर्यमय है हमने आपको खेल २ में ही बांधना चाहा था और तब अपनी इच्छा से सब इन्द्रिय द्वारों को बन्द कर लिया। आप इस हमारी बात का बुरा न मानें। आप हमारे सबके बड़े और पूज्य ने योग्य हो, हमने आपके साथ जो व्यवहार किया है उसे आप क्षमा करदें। और भगवान आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप इस कमल से उतर जायें, क्यों कि आपका भार हमसे सहन नहीं हो सकता।

ब्रह्माजी बोले–हे वैकुण्ठपति भगवान विष्णु जी आप कोई वर मांगिये मैं इस कमल से उतर रहा हूँ।

विष्णुजी बोले–हे प्रजापति, ब्रह्माजी, आप हमारे पुत्र बनें यही हमारी इच्छा है, इस कार्य में आपका यश बढेगा और आप सुखी होंगे। आप सबसे पूज्य हैं और माननीय हैं आप सब जगह विद्यमान हैं आज से आपके सिर पर सफेद पगड़ी शोभित होगी और आपका पद्मयोनि नाम भी आज से पड़ेगा। हे प्रभु आप हमारे पुत्र बनें।

श्रीपति भगवान विष्णु के इस वर को ब्रह्माजी ने मान लिया और अत्यन्त खुश होकर उन्होंने मात्सर्य भी छोड़ दिया और बोले कि ऐसा ही होगा। इसके बाद निकलते हुये सूर्य के समान अति कान्तिमान किसी विशाल मुखवाले जीव को अपनी ओर आते देख कर भगवान विष्णु से पूछने लगे कि–हे प्रभो यह विशाल मुख वाला कौन पुरुष है मैं इसको नहीं जानता हूं कि यह कौन है जिनके बाल इधर उधर फैल रहे हैं जो त्रिशूलधारी, दश भुजा वाले बाघम्बर पहने हुआ विकृत आकृति, जिनका लिंग ऊपर की तरफ उठा हुआ है और भयंकर गर्जना करते हैं विष्णु यह दीप्तिमान पुरुष कौन हैं जो अपने तेज से चारों दिशाओं को और आकाश को ढकते हुये इधर ही आरहे हैं। प्रजापति ब्रह्माजी की ऐसी बातों को सुनकर श्री भगवान विष्णु बोले ये भगवान शिव हैं।

श्री विष्णु जी के ऐसे बचनों को सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी नाराज हो गये और श्रीपति भगवान विष्णु से कहने लगे कि आप अपने को लोक कर्त्ता नहीं समझते और सृष्टि पालक ब्रह्माजी को भी नहीं समझते। यह शिवजी कौन है जो हम दोनों से बड़ा है।

प्रजापति श्रीब्रह्माजी की बातों को सुनकर श्रीविष्णु भगवान बोले कि हे प्रभो आप शिव भगवान के प्रति ऐसी अपमान जनक बातें नहीं करें, ये मायाईश योगेश्वर धर्मरूप हैं। ये इस संसार के कारण अव्यय पुराण पुरुष हैं। जीवों का संहार कर्त्ता भगवान शिव ये ही हैं।

स्वयं शंकर भगवान ही बालकों की तरह संसार से खेला करते हैं। इस लोक की सृष्टि करने वाले शिव के प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, तम और प्रकृति आदि नित्य नाम हैं दुख से दुखी योगा मनुष्य इन्ही शिव भगवान को ढूढ़ते फिरते हैं कहते हैं वह कहां है। ये बीज बोने वाले बीजी हैं। आप बीज हैं और मैं स्वयं विष्णु सना-तन योनि हूँ।

बोले—आप योनि हैं, मैं बीज हूँ और भगवान शिव बीज बोने वाले बीजी कैसे हैं आप मेरे इस भ्रम को दूर करिये।

सब संसार की सृष्टि करने वाले प्रजापति ब्रह्माजी लोकसृष्टि सम्गंन्धी सब बातों को जानकर भी भ्रम सहित प्रश्न भगवान विष्णु से पूँछा और तब भगवान विष्णु ने कहा कि ये महेश्वर सब भूतों से महान हैं और उन महेश्वर से बढ़कर दूसरा कोई भूत नहीं है। ये दो रूपों से आत्मा में घुसे स्थिति हैं, ये दो रूप से निष्कल सूक्ष्म, अव्यक्त हैं। और दूसरे रूप में सकल और महेश्वर हैं। इन महेश्वर का पूर्व काल में एक लिंग सर्ग के लिये ब्रह्म रूपी बीज के सहित प्रकट हुआ है। और समय के अनुसार वह बीज मुझ सनातन योनि में प्रवेश हुआ। और उस योनि में वह बीज विशाल सोने के समान रूप वाला अण्ड के रूप में बदल जाता है।

वह अण्ड एक हजार वर्ष तक जल में स्थित रहा। वायु के द्वारा हजारों वर्षों में वह दो भागों अलग होगया। उसके एक भाग से पृथ्वी और दूसरे से स्वर्ग उत्पन्न हुआ फिर उसमें से हिरण्यगर्भ ब्रह्मा और विष्णु प्रकट हुये। अतीत कल्प में आपके कुछ कुमार उत्पन्न हुये उनमें सनत कुमार, ऋतु, अर्द्धरता, सनातन, सनक, सनन्दन आदि प्रकट हुये इन सब ने उत्पन्न होकर कहा हम तीनों प्रकार के ताप से अलग रह कर आत्मज्ञ बनेंगे तथा कोई कार्य नहीं करेंगे। क्योंकि पुनर्जन्म गोरखधन्धा है। तब आप शंकर की माया से मोहित हुये हे महाबल! इस रहस्य को समझकर आप उठिये अब हम दोनों शंकर जी की स्तुति करेंगे—

सूतजी बोले–इस प्रकार ब्रह्मा जी को आगे करके गरुड़ध्वज विष्णु भगवान शंकर जी की निम्नप्रकार स्तुति करने लग—

हे भगवान आप सुव्रत और अनन्त तेजवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप क्षेत्रपति और वीजी है और हे शूल धारण करने वाले प्रभो आपको नमस्कार है। आप लिंगरहित, ऊर्ध्व लिंग तथा वैकुण्ठरेता हो, आपको नमस्कार है। आप हव्य पूज्य, और रुद्योजात हैं आपको नमस्कार है। आप हम भूतों के प्रभव और वेद कर्मा के समान शुभ द्रव्यों के पभु हैं। आप योग संख्य के प्रभु व जनक हैं। आप ग्रह और नक्षत्रों के प्रभु हैं। आपको नमस्कार है। हे प्रभो आप हमारे सर्वत्र कल्याण करने वाले हैं। आप जो हैं वही हैं। आप अज्ञेय और अप्राप्य हैं। आपको नमस्कार है। इस प्रकार महान स्तव से द्रार्थना की।

इति श्री वायु महापुराण चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥२४॥

❋ पच्चीसवाँ अध्याय ❋

(मधु कैटभ की उत्पत्ति और विनाश)

सूतजी बोले–ऊपर किये गये महास्त्रोत्र को सुनकर पिनाकी विरूपाक्ष, दक्ष यज्ञ विनाशक त्रिलोचन बहुत प्रसन्न हुये वे पहले तो

इस प्रकार क्रोधित हो रहे थे मानो उन दोनों देवों को पी जायेंगे। परन्तु वे उन दोनों देवों की स्तुति को सुनकर सब जानते हुये भी अज्ञान पूर्वक बोले-कमल केसे नेत्र वाले आप दोनों कौन हैं ? जो इस घोर प्रलय के समुद्र में यहां प्रकट हुये हो। यह सुनकर वे दोनों बोले-हे विभो ! आप सब कुछ जानते हुये भी इस प्रकार क्यों पूछ रहे हो आपके बिना हम कहां पर सुख की आशा करें। यह सुनकर श्रीशंकर भगवान प्रसन्न होकर मधुर वाणी से बोले-हे हिरण्यगर्भ, हे कृष्ण, मैं तुम दोनों की नित्य अक्षरों से युक्त इस भक्ति से परम प्रसन्न हूं। आप दोनों पूज्य और मान्य हो आपको मैं क्या वरदान दूँ।

शिव की ऐसी बातें सुनकर विष्णु भगवान ने ब्रह्मा जी से कहा हे महाभाग ? जो अभीष्ट हो वर आप मांग लो। इस पर ब्रह्मा जी बोले हे विष्णो ! मुझे पुत्र की इच्छा है जो मेरे भार को हल्का कर दे विष्णु ने इस पर कहा-कि तुम यदि वीर धुरन्धर पुत्र चाहते हो तो भगवान शंकर जी को ही अपना पुत्र बनने की कहो। यह बात मान-कर विष्णु भगवान के कहने पर ब्रह्मा जी हाथ जोड़कर ईशान, वरदाता रुद्र से कहने लगे हे विश्वात्मन, आप मुझे अपने समान धुरन्धर कार्य-क्षम पुत्र का वरदान दीजिये। आपके प्रसन्न होने पर मैं दूसरा वरदान नहीं चाहता। आप प्रसन्न होइये।

भग के नेत्र को फोड़न वाले भगवान रुद्र ने ब्रह्मा की उस प्रार्थना को सुनकर स्पष्ट शब्दों में कहा-ऐसा ही होगा। हे सुव्रत, जब किसी काम के करते समय जब तुम्हें क्रोध होगा उस समय एकादश रुद्र प्रकट होंगे जो मेरे ही रूप हैं। उनके रूप में तुम्हारे ललाट से उत्पन्न होऊँगा फिर प्रसन्न होकर विष्णु से भगवान रुद्र ने वरदान मांगनें को कहा इस पर विष्णु ने कहा-हे देव ! यदि मेरे ऊपर आप प्रसन्न हैं तो हे मेघवाहन ! मेरी आप में अविचल भक्ति हो। श्रीशंकर जी ये सुनकर पुनः केशव से बोले-हे विष्णो ! सुनो मेरी आप पर जो प्रीति है उसे सुनिये। यह सारा विश्व स्थावर जंगम अथवा अप्रकाश सब कुछ रुद्र और नारायण रूप ही हैं। मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात हो तो मैं दिन हूँ। तुम ऋत हो तो मैं सत्य हूँ। तुम यज्ञ हो तो मैं फल हूँ। तुम

ज्ञान हो तो मैं ज्ञेय हूँ। पुण्य करने वाले लोग तुम्हारा जप करके मुझ में प्रवेश हो जाते हैं। युगों के अन्त होने पर उनका हम दोनों के अलावा कोई गति नहीं है तुम अ ने को प्रकृति समझो और मुझ को पुरुष रूप शिव। तुम मेरे आधा शरीर हो और मैं तुम्हारा आधा शरीर हूँ। तुम में श्री वत्स पद लक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नील लोहित दक्षिण पार्श्व हूँ। हे विष्णो! तुम मेरे हृदय हो तथा मैं तुम्हरे हृदय में स्थित हूँ तुम सभी कार्य के कर्ता तथा मैं अधिष्ठान देवता हूं। हे वत्स, ह जलदाभ तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं जाता हूँ।

यह कहकर देवाधिदेव महादेवजी अन्तर्ध्यान हो गये। प्रसन्न होकर विष्णु भगवान भी जल में शयन करने लगे और पदमें जन्मा ब्रह्मा जी भी पद्म के आसन पर विराजमान हो गये।

इस के कुछ समय बाद वहाँ पर दो अतुलनीय बलशाली मधुकैटभ नामक दो भ्राताओं ने तरुण सूर्य के समान चमकने वाले उस पद्म को बड़े जोर से पकड़ कर हिलाने लगे। उन दोनों की आंखे उस घोर अंधकार में चमक रही थीं। वे दोनों वीर हँस हँस कर निडर हुये उन कमल पत्नों को तोड़ रहे थे। उन दोनों राक्षसों ने ब्रह्मा से कहा - 'तुम हमारे भक्ष्य होइये" ब्रह्मा जी इस रहस्य को जानने कमलनाल के सहारे रसातल में उतरे। वहाँ विष्णु भगवान को कृष्णजिन तथा उत्तरीय धारण किये हुये देखा। उन्होंने शयन करते हुये विष्णु भगवान को जगाया। जगाने पर विष्णु भगवान से कहा हे प्रभो मुझे भूतों से भय है, आप उठिये हमें, बचाइये, हमारा कल्याण करो।

शत्रुदमन भगवान हँसते हुये बोले कोई चिन्ता नहीं तुम डरो मत। उन दैत्यों का आप "भूत आदि वाक्यों से ही विनाश कर देंगे। इसके बाद भगवान ने विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओं को उत्पन्न-किया और उनसे कहा तुम दोनों ब्रह्मा जी की रक्षा करो। इधर मधुकैटभ दैत्यों ने यह सब जानकर विष्णु जिष्णुका रूप धारण किया और ब्रह्मा के पास आकर बोले - हम दोनों परस्पर युद्ध करते हैं। बीच में तुम निर्णायक बनो। उन दोनों ने जल में प्रवेश करके जल को स्तब्ध

तब व्याकुल हो ब्रह्मा जी ने ध्यान पूर्वक यह सब रहस्य जाना। तब उनने कमल केसर बने सूक्ष्म कवच द्वारा उन दोनों को नाभि से ऊपर शरीर को बाँध दिया और मन्त्रों का पाठ करने लगे।

उसी समय मन्त्र जपते समय ब्रह्मा का एक इन्दुवदना, पद्म सुन्दरी, प्रिय दर्शना, कमल हाथ में धारण किये हुये, एक कन्या उत्पन्न हुई। उसे देखकर दोनों दैत्यों के प्राण सूख गये। तब ब्रह्मा ने उस कन्या से मधुर शब्दों में कहा-हे यथार्थ सुन्दरि! तुम कौन हो! मैं तुम्हें क्या समझूँ? उस कन्या ने वेद विधि से ब्रह्मा जी की पूजा की और हाथ जोड़कर ब्रह्मा जो बोली-मुझे आप भगवान विष्णु की आज्ञाकारिण मोहिनी माया समझो। हे ब्रह्मन! आपने मेरा स्मरण किया था इसलिये मैं शीघ्र यहां आई हूं।

यह सुनकर ब्रह्मा जी ने उसका नाम महाव्याहृति रखा। और कहा-तुम मेरे शिर को भेदन करके उत्पन्न हुई हो अतः तुम्हारा नाम सावित्री है। नैकांशातु हो ने से आपका नाम अनेकांशा भी होगा। हे सुमुखि! ये तुम्हारे गौण नाम होंगे। किन्तु हमारे प्रसाद से तुम्हारे कर्मानुसार असंख्य नाम होंगे।

इधर वे दोनों दैत्य युद्ध करते थक गये और उन दोनों ने विष्णु जिष्णु से वह दान मांगा कि आप हमें आप खुले स्थान में मारे तथा आप हमारे पुत्र हो। तथस्तु कहकर विष्णु ने कैटभ को यमलोक पहुँचा दिया। और मधु को जिष्णु ने मार दिया। इस प्रकार विष्णु जिष्णु के द्वारा उन दैत्यों का बध होने पर ब्रह्मा जी प्रसन्न हुये और संसार की हितकामना में लग गये।

इसके बाद जिस प्रकार ईश्वर ने पुत्र रूप में आत्मदान किया, अब मैं इसका वर्णन करुँगा। विष्णु जिष्णु के साथ मधु कैटभ की लड़ाई खत्म होगई, जब ब्रह्माजी विष्णु जी से कहने लगे कि आज सौ वर्ष पूरे होगये। और वह समय भी आगया है। आप इस घोर संप्लव को हटालें। हम भी अपने निवास स्थान को जारहे हैं। ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर विष्णु जी इस घोर संप्लव को हटादिया

और भूमि को स्थावरविहीन करके जंगलों को स्थिति कर दिया। इसके बाद फिर ब्रह्माजी बोले हे श्रीपति वैकुंठनाथ! आपका कल्याण हो। आपने समुद्र को शीघ्र ही सीमित कर दिया। अब आप हमें बताइये कि हम आपका कौनसा प्रिय कार्य करें?

श्रीविष्णु जी बोले–हे प्रजापति ब्रह्माजी! अब आप हमारी बात ध्यान पूर्वक सुनिये। आपने पुत्र की इच्छा करके जो श्री शिवजी से वरदान प्राप्त किया है उसे सफल कीजिये और कर्जा से मुक्त होजाइये। आप चारों तरह की सृष्टि पैदा कीजिये और उनका संहार कीजिये।

प्रजापति ब्रह्माजी भगवान से ज्ञान प्राप्त करके प्रजा की सृष्टि करने के लिये कठिन तपस्या करने लगे। इस प्रकार बहुत वर्ष तपस्या करने के बाद भी कुछ असर नहीं हुआ तब प्रजापति ब्रह्माजी को दुःख हुआ। उस समय उनकी क्रोधमयी आंखों से आंसू निकल पड़े। उन आंसुओं से वात पित्तकफात्मक महाविषधारी सांप उत्पन्न हुये। वे सर्प बड़े २ फन वाले थे। सबसे पहले सर्पों को ही पैदा होते देखकर ब्रह्मा जी मन में ग्लानि करने लगे कि इतनी कठिन तपस्या करने बाद भी शुरू में मैंने लोक विनाश करने वाले जीवों की उत्पत्ति की। उन्हें क्रोध के कारण मूर्छा आगयी और मूर्छित अवस्था में ही उन्होंने अपने प्राण छोड़ दिये। इसके बाद प्रजापति ब्रह्माजी के शरीर से दयावश रोते हुये एक ग्यारह रुद्र पैदा होगये। रोने के कारण ही वे रुद्र कहलाये। और उनको रुद्रत्व प्राप्त हुआ। जो रुद्र हैं वे ही प्राण हैं जो प्राण हैं वे ही रुद्र हैं। प्राणधारी सभी भूतों में वे ही प्राणरूप से स्थिति हैं। प्रजापति ब्रह्माजी के सिर से ग्यारह रुद्र पैदा होने के बाद श्री कैलाशपति महादेव जी ने उन्हें फिर जीवित कर दिया। नील लोहित श्री गौरीपति शंकर जी ने ब्रह्माजी को जीवित किया और जीवित होने के बाद ब्रह्माजी से कहने लगे कि हे भगवान अपने को याद करिये और हमसे याचना कीजिये और रुद्र को अपना पुत्र समझिये, हम पर प्रसन्न होइये। तब अपनी मन की इच्छा के अनुकूल शब्दों को सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी बहुत खुश हुये। उनकी

दोनों आंखें खिलते हुये कमल की तरह खिलगये। तेजराशि प्रभु प्रजापति ब्रह्मा जी ने अपने जीवित होने के बाद अति गम्भीर वाणी में कहा कि हे ईश्वर! आप कौन हैं, जो हमारे मन को अधिक आनन्दमय कर रहे हैं? आप ग्यारह रूप हैं और विश्वमूर्ति की तरह विद्यमान हैं। आप हमें ठीक ठीक बताइये। अत्यन्त देदीप्यमान प्रभु ब्रह्मा जी के इस तरह कहने पर श्री रुद्र भगवान अपने ग्यारह रूपों के साथ उनको प्रणाम करके कहने लगे। कि आपने हमसे श्री विष्णु जी के साथ जो वर माँगा था कि हे भगवान! आप हमारे सुयोग्य पुत्र बनें। हम आप से विश्वास पूर्वक कहते हैं। हम आपके लोक प्रसिद्ध पुत्रों की तरह आपका कार्य पूरा करेगें। अतः हे भगवान अब आप दुख को छोड़ दीजिये और संसार की सृष्टि करने के लिये तत्पर्य हो इये।

श्री कैलाशपति शिवजी की बातों को सुन कर प्रभु प्रजापति ब्रह्मा अत्यन्त खुश हो गये और श्री शिवजी से कहने लगे कि हे भगवान आप हमारी मदद कीजिये और हमारे साथ संसार की सृष्टि कीजिये। आप निखिल भूत और संसार के कारण हैं। अतः आप इस हमारे काम के लिये तैयार हो जाइये और तब श्री शिवजी ने "ऐसा ही हो" कह कर श्री ब्रह्मा जी की बात को स्वीकार कर लिया इसके बाद ब्रह्मा जी ने काले हिरन की खाल से विभूषित हो कर पहले मन को फिर भूतों की धारणा को और इसके बाद जीभ पर स्थिति रहने वाली विश्वरूपिणी सरस्वती को उत्पन्न किया। फिर इस के बाद भृगु, अंगिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रातु वशिष्ठ इत्यादि सात तेजस्वी मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। इसके बाद और अपनी तरह के बहुत से संसार के कर्त्ता पुत्रों को उत्पन्न किया और फिर उनके मुँह से गाथों को पैदा किया। उसके ऊँकार प्रमुख वेद और उनके घमंड़ी देवता पैदा हुये। प्रजपति ब्रह्मा पहले दक्ष इत्यादि सातों मानस पुत्रों से कहने लगे कि "आपका मगलमय हो। आप सब श्री गौरीपति भगवन शिव के साथ मिल कर संसार की उत्पत्ति करें।' उन लोगों

के इस तरह कहने पर भगवान शिव ने उन मानस पुत्रों से कहा कि हे 'ब्रह्माजी के मानस पुत्रो ! आप में जो अग्रज हैं, वे हमसे प्राण धारण कर और ब्रह्माजी के पुत्रों को साथ लेकर सातों लोकों की सृष्टि करिये। आप सब हमारे कहने से ऐसा कर सकते हैं। आप सब का भला हो।' इन वचनों को सुनकर मानस पुत्रों ने श्री त्रिशूल धारी शिवजी से कहा। हे भगवान ! जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा। और इस तरह मानस पुत्रों ने श्री शिवजी से आज्ञा लेकर श्रीमान दक्ष से कहा कि 'आप ही सबसे उत्तम प्रजापति हैं। आपकी जय हो। सबसे पहले आप ही हमारे साथ प्रजा की सृष्टि करिये।' तब श्री दक्ष ने भी ऐसा ही हो कहकर उनके वचनों का पालन किया और उन लोगों के साथ मिलकर सृष्टि की इच्छा करने वाले प्रजापति मानस पुत्रों ने सृष्टि करना शुरू किया। भगवान शिव को इस तरह सृष्टि कार्य में तैयार होते देखकर प्रजापति ब्रह्माजी भी सृष्टि करने लगे। सप्तम कल्प के अतीत होजाने पर तब तपोलोक के रहने वाले ऋभु और सनत्कुमार पैदा हुये। इसके बाद फिर ब्रह्माजी ने बहुत से मानस पुत्रों को पैदा किया।

इति श्री वायु महापुराण का मधुकैटभ की उत्पत्ति और विनाश नामक पच्चीसवां अध्याय समाप्त ॥२५॥

---

* छब्बीसवाँ अध्याय *

(स्वरोत्पत्ति निरूपण)

सूतजी बोले—हे भगवान ? आपने सब संसार के रहने वालों पर दया करके अनेकों संदेहात्मक गूढ़ों के विषय को बताया है। तथा अब हमें श्री शिवजी के अवतार के विषय में कुछ भ्रम होगया है। इसका क्या कारण है कि सब पूर्व युगों को छोड़कर शिवजी ने कलियुग में अवतार लिया। भगवान ! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर वे क्यों अवतार लेते हैं। हमको आप यह बताइये, हम यह जानना चाहते हैं।

लोमश ऋषि बोले—उनके इस तरह पूछने पर संसार के कल्याण कर्त्ता श्री वायुदेव कहने लगे कि 'गाधेय' आप जो इस कथा को पूछ रहे हैं वह अत्यन्त गुप्त कथा है। अब हम उसको विस्तार पूर्वक कहेंगे, उसे आप ध्यान लगाकर सुनिये। सबसे पहले हजार वर्ष तक संसार एकार्णवाकार था, तब संसार की सृष्टि करने की इच्छा से प्रजापति ब्रह्माजी अत्यन्त दुखी होकर चिन्ता करते ही उनके एक पुत्र पैदा हुआ। वह दिव्य गन्धी और सुधापेक्षी था, जो दिव्य श्रुति का शब्द उच्चारण कर रहा था। प्रजापति ब्रह्माजी ने तब अशब्द स्पर्शरूपा अगन्धा और रसवर्जिता श्रुति का उच्चारण करके उसे प्राप्त किया। फिर वे ध्यान में मग्न होकर कठिन तपस्या करने लगे और चिन्ता में व्यक्त होकर कहने लगे कि यह कुमार कौन है? और इसके द्वारा यह उच्चारित त्रिमूर्ति क्या है? उनके चिन्ता व्यक्त करते ही शब्द स्पर्श रूपरस गन्ध रहित अक्षर उत्पन्न हुआ। इसके बाद फिर प्रजापति ब्रह्माजी ने लोक में अक्षर और अपनी मूर्ति का दर्शन किया। ध्यान में मग्न फिर ब्रह्माजी ने देखा कि देवस्वरूप अक्षर श्वेत कृष्ण रक्त और पीत हैं और वह न स्त्री है न नपुंसक है। उन पूरे अक्षरों को अच्छी तरह जानकर ब्रह्माजी चिन्ता कर रहे थे कि उनके कण्ठ से एकमात्र, महाघोष, सुनिर्मल, श्वेत वर्ण अक्षर प्रकट हुआ। वही अक्षर ऊँकार, वेद या साक्षात महेश्वर था। भगवान स्वयम्भू फिर अक्षर विषयक चिन्ता करने लगे। तब एक लाल रक्त अक्षर पैदा हुआ। यही रक्त अक्षर आदि देवता और ऋग्वेद का आदि मन्त्र 'अग्निमीले पुरोहितम' कहलाता है। इस सृष्टि के होनेसे बाद फिर प्रजापति ब्रह्माजी चिन्ता करने लगे कि यह क्या है? प्रभु प्रजापति ब्रह्माजी के चिन्ता करने से फिर ईश्वर सम्पन्न द्विमात्र श्रीशंकर जी पैदा हुये। फिर ब्रह्माजी द्विमात्र अक्षर सम्बन्धी चिन्ता करने लगे, तब ऋक्-छन्दयुक्तरक्ताक्षर यजुः पैदा हुआ। जिसके शुरू में 'इषेत्वो' इत्यादि मन्त्र है। ऋग्वेद एक मात्रा है और यजुः द्विमात्रा है।

इस के बाद फिर उस वेद और अक्षर को देख कर प्रजापति ब्रह्मा जी त्रिमात्राक्षर की चिन्ता करने लगे और फिर ब्रह्मा जी के चिन्ता करने से ऊँकार उत्पन्न हुआ। इसके बाद फिर ब्रह्मा जी उस अविनाशी ओंकर अक्षर की चिन्ता करने लगे। इसके बाद फिर ब्रह्मा जी ने एक पीतऋचा को उत्पन्न किया। तब पितामह ने वेद को निकट देख कर ब्रह्मासंक्षप्त त्रिवर्णात्मक ऊँकार का त्रिसंध्य ध्यान करनेलगे। यह ऊँकार रूप अक्षर तीन वर्णों के संयोग से होने के कारण त्रिवर्ण, लक्ष्यालक्ष्य प्रदृश्य, संहित, त्रिक, त्रिमात्रा, त्रिपद, त्रियोग और शाश्वत है। इसीलिये पितामह ब्रह्मा जी फिर उसी की चिन्ता करने लगे। प्रजापति ब्रह्मा जी ने उस तेजोराशि आत्मरूप ऊँकाराक्षर को चौदह मुंह वाला देखा। शुरू में उन्होंने ऊँकार को बनाया, इसीकारण से इनका नाम स्वम्यभू पड़ा। इसके बाद फिर प्रजापति ब्रह्मा जी के चारों मुखों से तरह तरह के वर्ण के चौदह स्वर और आद्य दिव्य अक्षर पैदा हुये। ये सब वर्ण अकार से प्रकट हुये हैं और इन वर्णों की संख्या तिरेसठ है। प्रजापति ब्रह्मा जी ने जिन साधारण वर्णों को देखा उनके शुरू में वे आकार रूप से स्थिति हुये और वही पहला अक्षर हुआ। इसके बाद फिर उन चौदहों स्वरों में मन्वत्राधीपति द्विव्य प्रधान चौदह मनु पैदा हुये। अकार हीचतुर्दश मुख वाला ब्रह्म ब्रह्मकल्प सर्ववर्ण और प्रजापति के रूप में प्रसिद्ध हैं। प्रजापति ब्रह्मा जी के मुख से पहले स्वायम्भुवमनु पैदा हुये येस्वम्भू के अकार स्वरूप हैं और इसी तरह दूसरे मुख से अकार रूप स्वरोचिष मनु पैदा हुये ये पाराडुर वर्ण के हैं। इसके बाद उनके तीसरे मुख से इकार पैदा हुआ। इसको यजुः श्रेष्ठ यजुर्मय आदित्य स्वरूप और यजुर्वेद कहते हैं। इकार मनु स्वरूप है। यह रक्तवर्ण का है। इसके बाद फिर प्रजापति के चौथे मुख से उकार शब्द पैदा हुआ यह ताम्र वर्ण का है और मनु तामस कहलाता है। इनके पाँचवे मुख से ऊकार पैदा हुआ। यह पीत वर्ण का है और इन मनुओं को वरिष्णु कहते हैं इनके छटे मुख से कपिल वर्ण ऊकार पदा हुआ। यह वरिष्ट विजयमनु कहाते हैं। सातवें मुखसे कृष्ण वर्ण ऋक

स्वरूप वैवस्वत मनु पैदा हुये। प्रजापति के आठवें मुख से श्याम वर्ण ऋकारात्मक सावर्ण मनु पैदा हुए। ये श्यामाक्षर कहलाते हैं। इनके नवें मुख से नौवां लृकार पैदा हुआ। यह धूम्र वर्ण का है। और इन मनुओं को भी धूम्र कहते हैं। इनके दसवें मुख से लृकार पैदा हुआ। यह भी लृकार की तरह धूम्र वर्ण का है। और सावर्णक मनु कहलाता है। और फिर प्रजापति के ग्यारहवें मुख से विशंग वर्ण एकार पैदा हुआ, और वर्ण के अनुसार पिशंगी मनु कहलाये। इनके बारहवें मुख से पिशंग वर्ण और भस्म के समान एकार पैदा हुआ अतः ये पिशंगी मनु कहलाये तेरहवें मुख से पंच वर्ण से युक्त उत्तम वर्ण ऊँकार पैदा हुआ और मनु उत्तम कहलाये। इनके चौदहवें मुख से कर्बुर वर्ण ऊंकार पैदा हुआ। और मनु सावर्ण कहलाये। कल्प २ में इसी तरह मनु और स्वर वर्ण का ऐसा ही रूप रहता है। जो स्वर और वर्ण के अनुसार यथातत्व को जानने योग्य हैं। क्योंकि ये स्वर आपस में समान वर्ण के अनुसार हैं। अतः इसीलिये वर्ण की बराबरी के कारण उनका आपस में अन्वय होता है और हर एक कल्पों में इनका समान आकार और वर्ण होता है। इस प्रजालोक में सब सन्धियाँ सवर्ण होती हैं।

इति श्री वायु महापुराण का स्वरोत्पत्ति नामक छब्बीसवां अध्याय समाप्त।

* सत्ताईसवाँ अध्याय *

(महादेवजी के शरीर का वर्णन)

ऋषि बोले–हे सूतजी 'आपने जो इस कल्प में आचार्यवान ऋषियों के साथ शिव का रुद्र रूप से प्रकट होना बताया है उसे कहिये

सूतजी बोले–हे ऋषियों मैंने आपको यह कथा छोटे रूप में बताई है। अब हम विस्तार सहित श्री भगवान रुद्र के नामों को उनके अलग अलग शरीरों के साथ कहूँगा। अष्टम कल्प के बीत जाने पर शंकर जी अपनी स्त्रियों के साथ पुत्रों को जिस कल्प में पैदा किया, अब उसका वर्णन सुनिये। कल्प के शुरू में लोकपितामह ने अपनी आत्मा के समान तेजस्वी पुत्र नीलवर्ण कुमार को पाया।

तब उन प्रजापति ब्रह्मा जी ने अपने तेज से उस कुमार को जला दिया, और जला करके घोर और सुर बना दिया। फिर प्रजापति ब्रह्मा जी ने उस नीलवर्ण कुमार को रोते देखकर उससे पूछा कि तुम क्यों रोते हो, तब वह नीलवर्ण बालक कहने लगा कि पिताजी आप हमारा पहले नाम करण संस्कार किजिये। उस कुमार के शब्दों को सुनकर प्रजापति ब्रह्मा जी ने उससे कहा कि तुम्हारा नाम होगा। वह फिर रोने लगा और कहने लगा कि मेरा कोई दूसरा नाम रखिये। यह सुनकर पितामह ने दूसरा नाम 'भव' रखा। फिर वह रोने लगा तब ब्रह्मा बोले कि अब तुम क्यों रोते हो। तब कुमार ने अपना तीसरा नाम रखने के लिए कहा। यह सुनकर ब्रह्मा जी बोले कि तुम्हारा तीसरा नाम 'शिव' होगा उसके फिर रोने पर ब्रह्मा जी ने पूछा कि अब क्यों रो रहे हो? तब वह बालक कहने लगा कि मेरा चौथा नाम रखिए। तब प्रजापति ब्रह्माजी कहने लगे कि तुम्हारा चौथा नाम पशुपति होगा।

चौथा नाम रखने पर भी वह रोने लगा। उसको इस प्रकार फिर रोते हुए देखकर ब्रह्मा जी ने पुनः रोने का कारण पूछा तब वह बोला- मेरा पाँचवां नाम रखिए। इस पर ब्रह्माजी ने कहा हे देव! तुम्हारा पांचवां नाम ईश होगा। फिर रोकर वह कहने लगा कि अब मेरा छटा नाम रखिये। ब्रह्मा जी ने कहा- देव, तुम्हारा छटा नाम भीम होगा। छटा नाम सुनकर भी वह रोता ही रहा। फिर ब्रह्माजी ने कहा अब तुम क्यों रो रहे हो। तब उसने कहा कि मेरा आप सातवां नाम और रखिये। ब्रह्माजी बोले–अच्छा, हे देव, आपका सातवां नाम उग्र होगा। सातवां नाम सुनकर भी वह रोता रहा तब ब्रह्माजी ने पूछा अब क्यों रोते हो। वह पुनः बोला मेरा आठवां नाम और रखिए। तब ब्रह्माजी बोले–हे देव आपका आठवां नाम महादेव होगा।

इस प्रकार आठ नामों को ब्रह्माजी से सुनकर भगवान नील लोहित शंकरजी ने ब्रह्माजी से फिर कहा आप इन आठों नामों का स्थान भी बता इये तब उन्होंने सूर्य,पृथ्वी,जल,अग्नि,वायु,आकाश,दीक्षित ब्राह्मण, और चन्द्रमा की आठ मूर्तियों की सृष्टि की ये मूर्तियां ब्रह्माका ही नीलरूप हैं

जो इनमें रुद्र की वन्दना या पूजा करते हैं। भगवान रुद्र उनकी हिंसा नहीं करते। ब्रह्माजी ने कहा कि आपका दूसरा नाम भव है। अतः दूसरा शरीर भव होगा। जल से सम्पूर्ण प्राणी उत्पन्न होते हैं जल में मल मूत्र नहीं त्यागना चाहिए। न थूकना चाहिये न मैथुन करना चाहिये। नग्न होकर स्नान नहीं करना चाहिए और न शिर स्नान ही करे। स्थिर या बहते हुए जल के लिए कोई अप्रीतिकर बात भी नहीं करे। पवित्र या अपवित्र शरीर के स्पर्श से जल कभी दूषित नहीं होता है। लेकिन मटमैला, विरसा, दुर्गन्धमय थोड़ जल को काम में नहीं लाना चाहिये। बहते हुए जल को रोकना नहीं चाहिए क्योंकि वह समुद्र में जाना चहता है और समुद्र जल का उद्गम स्थान है इस प्रकार जो जल को जानकर जल में रहता है उसकी 'भव' सदा रक्षा करते हैं उसकी हिंसा नहीं करते, ब्रह्मा जी बोले– आपका तीसरा स्थान भूमि है जहां आप तीसरे नाम 'शर्व' से कहे जाकर निवास करेंगे। ज्ञानवान व्यक्ति को स्वच्छ स्थान में, छाया में, मलमूत्र का त्याग नहीं करना चाहिये। पहले पृथ्वी को शिर नवाकर प्रणाम करे फिर घास फूँस बिछाकर मल मूत्र को त्यागे। ऐसे आचरण वाले की शर्व कभी हिंसा नहीं करते। फिर ब्रह्मा जी ने कहा कि हे प्रभो आपका चौथा नाम ईशान है। उस चौथे शरीर की चौथी मूर्ति वायु होगी। ऐसा कहते ही भगवान में प्राण अपान आदिक पँच वायु प्रवेश कर गये। जो विराट स्वरूप वायु की स्तुति करते हैं उनकी ईशान भगवान हिंसा नहीं करते। ब्रह्मा ने पुनः कहा कि आपके पांचवें नाम पशुपति की पांचमी मूर्ति अग्नि है। ऐसा उनके कहते ही अग्नि उनके शरीर के तेज में प्रवेश कर गया। तब से उनका अग्नि का नाम भी पशुपति पड़ गया। चन्द्रमा सोम कहलाता है उसकी आत्मा ओषधियां हैं।

जो विद्वान लोग इस तत्व को प्रत्येक पर्व के दिन हृदय में धारण करते हैं उनकी महादेव जी सदा रक्षा करते हैं कभी हिंसा नही करते इसलिए महादेव जी की वन्दना करनी चाहिए। जिससे परम

कल्याण होता है। सूर्य (आदित्य) दिन में और रात में चन्द्रमा प्रजा की रक्षा करते हैं। सूर्य चन्द्रमा जिस रात को एक ही स्थान पर निवास करते हैं उसको अमावस्या कहते हैं। अमावस्या को योग युक्त होकर रहना चाहिये। क्योंकि ब्रह्म में नाम रूप के साथ सारा जगत व्याप्त है। वही अकेले सूर्य और चन्द्रमा कहलाते हैं। प्रजागण सूर्य के प्रकाश रूपी नेत्र से देखते हैं तथा सहदेव सूर्य के मध्य स्थित होकर किरणों से जल को सींचते हैं। जो शरीर प्राण के साथ भूतों के शरीर में निवास करता है वही भगवान रुद्र की वायु रूप ईशानी मूर्ति कहलाती है। यज्ञ में दीक्षित ब्रह्मवादी ब्राह्मणों की वृत्ति उनकी उग्रमूर्ति है। उनका उग्र शरीर यजमान का रूप ही है। भगवान महादेव की अमृत आत्मा जलमय चन्द्रदेव कहे गये हैं।

रौद्र नाम वाले प्रभु की पत्नि सुवर्चला है और पुत्र शनिश्चर कहे गये हैं। जलात्मकभव वाले शरीर की पत्नि को ऊषा कहा गया है उसका पुत्र उशना कहा गया है। शर्वनाम की मूर्ति का नाम भूमि है उनकी पत्नि विकेशी है और पुत्र का नाम अंगारक (मंगल) है। ईशान भगवान की पत्नि का नाम शिवा है। उनका पुत्र मनोजव है। पाशुपत नामक अग्नि की पत्नि स्वाहा है उनका पुत्र स्कन्द है। आकाश रूप भीम की पत्नि दिशायें हैं और स्वर्ग उनका पुत्र है। ब्राह्मणों से पूज्य उग्र नामक शरीर की पत्नि रोहिणी है उसका पुत्र बुध कहा है। इस प्रकार ये भगवान के नाम और शरीरों का वर्णन किया गया है। ये सब शरीर पूजनीय और नमस्कार करने योग्य हैं। पृथ्वी, जल, तेज सूर्य, चन्द्रमा, व्योम और दीक्षित ब्राह्मण, वायु रूपी इन महादेव जी के प्रति जो जन भक्ति भाव प्रकट करता है वह निश्चय ही प्रजावान होता है। वही शिव सायुज्य को भी प्राप्त कर लेता है।

इस प्रकार मैंने यह आप लोगों को महान यश को देने वाला, गोपनीय शिव तत्व कहा इसके फल से मनुष्यों और चौपायों का मंगल हो। इन नामों के साथ आपको महादेव जी के शरीरों का भी वर्णन किया। अब इसके बाद मैं भृगुवंश का वर्णन करूँगा।

इति श्री वायु महापुराण का महादेव जी के शरीरों के वर्णन नामका सत्ताईसवां अध्याय समाप्त ॥२७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ऋषियों के वंश का निरूपण

सूतजी बोले—भृगु के द्वारा ख्याति के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनका नाम धाता और विधाता था। वे दोनों सुख दुख के स्वामी, असहाय प्राणियों को शुभाशुभ देखने वाले, और मन्वन्तर विहारी थे। उन्ही की एक लोक भाविनी जेष्ठा बहिन भी थी जिसका नाम श्री देवी था। वह श्री देवी नारायण को पत्नि रूप से प्राप्त हुई। उससे नारायण के बल और उत्साह नामक दो पुत्र उत्पन्न हुये। इसके अलावा इस श्री देवी के वे सभी मानसपुत्र हैं जो द्विव्यचारी हैं और जो पुण्यात्माओं के लिए देवताओं के विमानों के चालक हैं।

धाता और विधाता को आयति और नियति नामक दो प्रसिद्ध कन्यायें व्याहीं थीं। उनसे उन्हें पाण्डु और मृकण्डु नामक सनातन ब्रह्मकोष रूप दो पुत्र उत्पन्न हुये। वे दोनों दृढ़व्रती थे। मृकण्डु से मनस्वनि के गर्भ में मार्कण्डेय जी का जन्म हुआ था। मार्कण्डेय के मूर्धन्या से वेदशिरा नामक पुत्र हुआ। फिर वेदशिरा को पीवरी के गर्भ से अनेकों पुत्र जो वंश को बढ़ाने वाले थे उत्पन्न हुए। वे सभी मार्कण्डेय नाम से प्रसिद्ध हैं तथा ये सभी वेद पारंगत ऋषि हैं।

पाण्डु के पुण्डरीका के गर्भ से द्युतिमान, द्युतिमन्त और सूरजवान नामक तीन पुत्र हुए। उनके बीच द्युतिमन्त और सूरजवान के पुत्र पोत्रों ने भार्गवों से परस्पर सम्बन्ध स्थापति किया।

अब स्वायंभुव मनु के बाद मरीचि के वंश का विस्तार से वर्णन करुंगा। मरीचि के सम्भूति नामक पति से एक पुत्र 'पूर्णमास' और कुष्टि, तुष्टि, त्विषा और अपचीति नामक चार कन्यायें उत्पन्न हुई। पूर्णमास के सरस्वती के गर्भ से विरज और पर्वस नामक दो पुत्र हुये। विरज के सुधामा नामक विद्वान पुत्र उत्पन्न हुआ। पर्वस के लोकपाल होने पर पर्वसा के गर्भ से यज्ञवास और कश्यप नामक धर्म निर्णायक और वंश को बढ़ाने वाले दो पुत्र उत्पन्न हुये।

अङ्गिरा ने स्मृति के गर्भ से भरताग्नि और कतिमान नामक

दो पुत्र उत्पन्न हुए। सिनवाली, कुहू, राका और अनुमति चार कन्यायें भी उत्पन्न हुयीं अग्नि के संहती से पर्जन्य नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। कीर्तिमान ने धेनुका से वरिष्ठ और धृतिमान नामक दो पुत्रों को पैदा किया। वे दोनों ही आंगिरस श्रेष्ठ थे। इनकोसहस्रों पुत्र और पौत्र प्राप्त हुए।

अत्रि के अनुसूया से पांच पुत्र और एक कन्या 'श्रुति' नामक हुई। यह श्रुति शंखपाद की माता और प्रजापति कर्दम ऋषि की पत्नि थी। अनसूया के पांच पुत्रों का नाम सत्यनेत्र, हव्य, अरोमूर्ति शनीश्चर, और सोम थे। याक के बीत जाने पर ये पांचों भी अत्रि के वंशधर भी लुप्त हो गए।

प्रगति के गर्भ से पुयस्त्य को दत्तालि नामक पुत्र प्राप्त हुआ ये ही स्वायंभुव मनु के मन्वन्तर में पूर्व जन्म में अगस्त्य थे उनके देवबाहु और विनीत नामक दो भाई थे। इनकी छोटी बहिन सद्वती अग्नि को व्याही थी और पर्जन्य की माता थी। पुलस्त्य के बड़े पुत्र का नाम दत्तालि था दत्तालि ने अपनी पत्नि में सुजंघ आदि बहुत से पुत्र पैदा किये जो स्वायंभुव मन्वन्तर में पौलस्त्य नाम से प्रसिद्ध थे। पुलह प्रजापति की पत्नी क्षमा से अनेक पुत्र उत्पन्न हुये। उनके नाम कर्दम, अम्बरीष और सहिष्णु आदि थे ये बड़े कीर्तिवान और अग्नि के समान तेजस्वी थे।

कर्दम की पत्नी अत्रिऋषि की पुत्री श्रुति थी, उसने शंखपाद पुत्र और काम्या नामक पुत्री को जन्म दिया। यही लोकपाल श्री मान प्रजापति शंखपाद, अपनी भीर्गनी काम्या को प्रियव्रत से विवाह करके दक्षिण दिशा की तरफ चले गये। प्रियव्रत के काम्या से दस पुत्र पैदा हुये और दो कन्यायें भी हुयीं। उन्हीं दस पुत्रों से क्षात्रकुल की वृद्धि हुई। ऋतु को शृतु तुल्य पुत्र प्राप्त हुआ जो उसके वंश को बढ़ाने वाला हुआ। ये सभी ऊर्ध्वरेता थे इनके न भार्या थी न पुत्र ही थे। ये ही साठ हजार बालखिल्य ऋषि कहलाते हैं ये दिवाकर सूर्य को घेर कर अरुण के आगे २ स्तुति करके चलते हैं।

और प्रलय पर्यन्त सूर्य के साथ रहते हैं। इनकी दो बहिनें पुण्या और आत्म सुमति वाली और थीं जा छोटी थीं। ये दोनों ही पूर्ण मास के पुत्र पर्वस की पुत्र बधुयें थीं।

वाशिष्ठ के अर्जा के गर्भ से सात बेटे और एक पुत्री उत्पन्न हुई। पुत्री का नाम 'पुण्डरीका' था। वह धुतिमान की माता तथा पाण्डु की प्रिय पत्नि थी। इसाके गर्भ से विख्यात सात वाशिष्ठ उत्पन्न हुये जो रज, पुत्र, अर्द्ध बाहु, सवन, अधन, सुतपा, और शुक्ल थे ये ही सप्तर्षि कहलाते हैं। मार्कण्डेय जी ने रजस से राजन्य, केतुमान और प्रजापति को उत्पन्न किया। इन्होंने प्रतीची दिशा में आश्रम प्राप्त किया। महात्मा वाशिष्ठ का वंश नाम के साथ २ स्वायंभुव मन्वन्तर में लोप होगया। अब अग्नि वंश का विस्तार सुनिये।

इति श्री वायुमहापुराण का ऋषि वंश वर्णन नामक २८ वां अध्याय समाप्त

---

* उन्तीसवाँ अध्याय *

(अग्नि वंश का वर्णन)

ब्रह्माजी के मानस पुत्र श्रीमान स्वायम्भुव मन के समय में और भी जो उनके क्रोधी मावस पुत्र अग्नि पैदा हुये। अतः अग्नि के द्वारा स्वाहा से तीन पुत्र पैदा हुये। पावक, पावमान और शुचि उनके नाम थे। मन्थन से निकली अग्नि को पवमान कहते हैं। सूर्यकिरण से निकली अग्नि शुचि कहलाती है तथा वैद्युत अग्नि को पावक कहते हैं। इनके रहने के स्थान भी ये ही हैं। पवमान के पुत्र का नाम कव्य वाहन था और पावक के पुत्र का नाम सहरक्ष था तथा शुचि के पुत्र का नाम हव्यवाह था। देवताओं के अग्नि हव्यवाहन हैं, पितरों की अग्नि कव्यवाहन है, तथा असुरों की अनि सहरक्ष है। अतः इस तरह इन तीनों की ये तीन अगनि हैं। इनके उनसास पुत्रादि हैं। अब इनकी कथाओं को अलग २ विस्तार से कहेंगे। सबसे पहले प्रजापति ब्रह्माजी के लौकिकाग्नि वैद्युत नाम के पुत्र पैदा हुये और इनके भी ब्रह्मोदनाग्नि नाम के पुत्र पैदा हुये, आगे चलकर जिनका नाम भरत हुआ

उनके तेज और जल केरस को काव्य रूप से वैश्वानर मुख कहते हैं। समुद्र के मथने से अमृत निकलने के बाद अथवर्ण नाम की अग्नि उत्पन्न हुई। अतः इन्हीं को अथर्वा लौकिकाग्नि कहते हैं। इनके पुत्र का नाम दध्यंग था। अथर्वा लौकिकाग्नि ही भृगु थे। और इनके पुत्र का नाम अगिरा था। अतः अंगिरा ही अथर्वा लौकिकाग्नि दध्यंग हैं। समुद्र के मथने से निकली अग्नि को ब्राह्मणों ने पवमान अग्नि बताई है और वही ग्रहस्थ अग्नि है। इस ग्रिअन के दो पुत्र हैं। पहले पुत्र का नाम आहवनीय अग्नि है। और दूसरे पुत्र का नाम शुकाग्नि है। शंस्य अग्नि से भा दो पुत्र पैदा हुये जिनके सभ्य और आवसथ्य नाम थे। ब्राह्मण जिस अगिन को आहवनीय हव्य वाहन अगिन कहते हैं। उसी शस्य अगिन ने अपनी इच्छा से सोलह नदियों को उत्पन्न किया उनके नाम ये हैं। कृष्णवैणी, काबेरी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी वितस्वा, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयु, सीता, सरस्वती, हादिनी और पावनी इत्यादि नाम थे। इन सब नदियों में शंस्य अगिन ने अगग २ सोलह भागों में करके उन धीष्णियोंमें आसक्त हुये। स्वयं अगिन भी धीष्णय हैं। उनके साध्वी नदियों से बहुत से पुत्र पैदा हुये। जो धीष्णिय कहलाये। ऋतु प्रवाहया, अग्नीध्र और अपरापर धीष्णिगण, यज्ञ के दिनों में क्रमपूर्वक ठीक स्थान में स्थित होते हैं वह स्थान इन धीष्णियों से उत्पन्न जो नदी पुत्र अगिन हैं उनके बिहार करने के स्थान हैं। जिन अग्नियों के निवास स्थान का कुछ पता नहीं है अब हम उनका वर्णन करेंगे। कृशानु नाम की जो सब से बड़ी अग्नि है वे यज्ञ के उत्तर द्वितीय वेदी पर स्थित रहते हैं। सबसे बड़ी सम्राट अग्नि आठ तरह की होती है। जिनकी ब्राह्मण पूजा करते हैं। आठों तरह की अगिन में दूसरी अगिन का नाम पर्षन अग्नि है। ये वेदी के आधेभाग में स्थित रहती है। ग्रतद्वोच में नभनाम की अगिन चार नामों से स्थित रहते हैं। ब्रह्मज्योति वसु नाम की अगिन ब्रह्मस्थान में निवास करते हैं। हव्य और सूर्यादि अगिन शामित्र कर्म में स्थापित होते हैं। और समुद्राग्नि नाम की अग्नि ब्रह्मस्थान में स्थित रहते हैं।

ऋतुधामा सुज्योति अग्नि औदुम्बरी में स्थित रहते हैं। ब्रह्मज्योति वसु नाम की अग्नि ब्रह्मस्थान में स्थिति रहते हैं अजैकपाद नाम की अग्नि यज्ञशाला में स्थिति होते हैं। और अहिर्बुध्न अग्नि गृहपति नाम से प्रसिद्ध है। शंस्य के सभी पुत्र ब्राह्मणों द्वारा पूजित हैं अब हम विहरणीय अग्नि और उनके आठों पुत्रों की कथा का वर्णन करेंगे।

ऋतु, प्रवाहन, अग्नीध्र और वहां रहने वाले धीष्णीगण यज्ञ के दिनों में वहां सब क्रम से विहार करते हैं। उनके पुत्र हव्यवाहन अग्नि पैत्रेय कहलाते हैं शान्ति अग्नि प्रचेता कहे जाते हैं। सत्य द्वितीय अग्नि कहलाते हैं। विश्वेदेव नामक अग्नि ब्रह्म स्थान में स्थापित होते हैं। अचक्षु और अच्छावक अग्नि भूमि में स्थापित होते हैं। सवीर्य उशीराग्नि नेष्ठीय कहे जाते हैं आठवीं 'व्यरति' अग्नि मार्जालीय कहे जाते हैं। धिष्ण्य सौम्य और आज्य के विहार योग्य पावक नामक अग्नि जलराशि के गर्भ में ही कहलाती है। जो अग्नि जल में अच्छी तरह छुपे रहते हैं वे अवभृथ कहलाते हैं। इनके पुत्र का नाम हृच्छय अग्नि है, मनुष्यों के जठर में स्थित है जठराग्नि के पुत्र मन्यु-मान कहे गये हैं। भूतों के प्रभु और व्याप्त हैं। के पुत्र घोर संवर्तक हैं। ये बड़वामुख होकर समुद्र का जल पीते हैं। इन समुद्र में निवास करने वाले वड़वामुख के पुत्र को सहरक्ष गया कहा है। सहरक्ष के पुत्र का नाम क्षाम है,जो घरों में जलाने के लिये हैं। इनके पुत्र क्रव्याद् हैं, जो मरे हुये पुरुषों को जलाने के लिये हैं। ये सब पावक अग्नि के पुत्र हैं।

शुचि सौरि अग्नि, गन्धर्व और असुरों से अरणिमन्थन करने से प्रदीप्त हुये थे। आयु नामक भगवान अग्नि पशुओं के शरीर में निवास करते हैं। इनके पुत्र का नाम महिमान है। इनके पुत्र शावान हुये। जो अग्नि पाकयज्ञ में होते हैं वे 'सवन' नाम से पुकारे जाते हैं। सवन के पुत्र का नाम है 'अद्भुत'। अद्भुत के पुत्र को 'महा-विविच' कहा गया है। ये प्रायश्चित होम में हुत का भक्षण करते हैं। इन विविचि के पुत्र अर्क हैं और अर्क के पुत्र अनीकवान्, वासृजवान् रक्तोहा, पित्तकृत और सुरभि हैं। ये सब स्वर्ण के रंग में, सुरभि,

अगिन धन रत्नादि में ज्योति रूप से निवास करते हैं ये संख्या में १४ हैं और ये सब पवित्र अगिन की सन्तान हैं। इनको वह्नि भी कहा गया है और यज्ञ में काम आते हैं ये सभी बीते हुये स्वायम्भुवमनु के समय आदि सर्ग में याम देवों के साथ समाप्त होगये।

ये सब चेतन अचेतन सब प्राणियों में व्याप्त हैं। पूर्व मन्वन्तर के बीत जाने पर प्रथम मनु के समय में पुण्यवान याम देवों के साथ रहते थे। इसप्रकार मैंने यह स्थान धारियों का वर्णन किया। आने वाले तथा बीते हुये सभी काल में अगिनयों के लक्षण इसी प्रकार कहे गये हैं। ये सब तपस्वी, अवभृथ प्रजाओं के पति और ज्योतिष्मान हैं। स्वारोचिष मनु से लेकर सावर्णि मनु के समय तक सातों मन्वन्तर, ये अनेक प्रयोजनों से वर्तमान देवों के साथ निवास किया करते हैं। तथा अनागत अगिन अनागत देवों के साथ निवास करते हैं। इस तरह हमने अगिनयों का वर्णन किया अब पितृीश्वरों के वंश का वर्णन करेंगे।

इति श्री वायु महापुराण का अगिन वंश वर्णन नामक उन्तीसवां अध्याय समाप्त ॥

---

* तीसवाँ अध्याय *

(दक्षशाप वर्णन)

सूतजी बोले–प्रजापति ब्रह्माजी जब स्वायम्भुव मन्वतर में सबसे पहले प्रजा की सृष्टि करने लगे तो सबसे पहले जल की सृष्टि पैदा की, फिर देवताओं की, फिर राक्षसों की तथा फिर मनुष्यों की सृष्टि पैदा की। ब्रह्माजी से पितरों की उत्पत्ति हुई जो अपने पिता की ही तरह समझते थे। प्रजापति ब्रह्माजी ने देवताओं, असुरों और मनुष्यों को देखकर कहा कि हम तुम्हारे सभी के पिता के समान हैं। उसी समय छः ऋतुओं की उत्पत्ति हुई। इन्हीं ऋतुओ को पितर कहते हैं। वेदों का कथन है कि वसंत ऋतु पितृदेव हैं। ये पिरारमता पैदा होते हैं।

इनके अग्निष्वात्ता और वर्हिषत् नाम हैं। इनमें किसी के नाम गृह-मेधी और यज्ञ न करने वाले हैं। अग्नि से सम्बन्ध न रखने वाले अग्निष्वात्ता नाम के हैं। यज्वा और सोमपीथी हैं वे वर्हिषत् पितर आग्नहोत्री माने जाते हैं। शास्त्रों का कहना है कि ऋतुदेव ही पितृ-देव हैं चैत्र वैशाख रस, ज्येष्ठ अषाढ ग्रीष्म, श्रावण भादों जीव, क्वार कार्त्तिक सुधा, अगहन पौष मन्यु, माघ फाल्गुन घोर शिशिर माने जाते हैं। छःओं ऋतुओं की महीने के अनुरूप यही समय की स्थिति है। ये ऋतुगण चेतन और अचेतन कहे जाते हैं। ब्रह्माजी के अभि-मानी युग ऋतुदेव कहे जाते हैं। मास के आधे समय में ऋतुगण आर्तव रूप में बदल जाते हैं। और ठीक स्थान पर एक जगह होने के कारण स्थानाभिमानी कहे जाते हैं। मास, ऋतु, संवत्सर, अयन आदि अपनी स्थिति में अभिमानी काल के अंग हैं। निमेष, कला, काष्ठा मुहूर्त और रात दिन इत्यादि काल की स्थिति में स्थानाभिमानी कहे जाते हैं। वे उसी अवस्था में रहने के कारण उन्हीं के समान हैं। पर्व तिथि संध्या, शुक्ल पक्ष या कृष्ण पक्ष, निमेष, कला, काष्ठा, एक मास, मुहुर्त, तीन ऋतुओं का अयन, दो मास की एक ऋतु दक्षिण उत्तर भेद से दो अयन और संवतसर सुमेक माना गया है। ऋतुगण इन्हीं सुमेरु के पुत्र हैं जो कि आठ भागों में बटे हुये हैं त्रटतुओं के पांच पुत्र हैं जो आतव नाम से पुकारे जाते हैं। अतः सभी चर और अचर आर्तव से पैदा हुये हैं। इसीलिये उनके पिता आर्तव कहे जाते हैं और त्रटवुगण उनके पितामह के नाम से प्रसिद्ध हैं। सुमेक से जो प्रजा पैदा हुई वह सब मरगई, इसीलिये सुमेक मरी हुई प्रजा के प्रपितामह पुकार जाते हैं। ये एक जगह स्थिति रहने वाले हैं। इसी कारण से यह स्थानात्मक कहलाये जाते हैं। वे उसी रूप में रहने के कारण उन्हीं स्थानों के समान है। ब्रह्माजी ही संवत्सर हैं और संवत्सर ही अग्नि या त्रटतु कही गयी हैं। त्रटतु से त्रटतुओं का जन्म हुआ है। इसीलिये वे त्रटतु कहलाती हैं। मासों का छओं त्रटतुओं में प्रवेश होता है। अतः मास भी त्रटतु का ही रूप है। त्रटतुओं के

आर्तव नाम के पांच पुत्र हैं। द्विपद, चतुष्पद, पक्षी, सरीसर्प और स्थावरादि पांच भौतिकों का जो काल है, आर्तव कहलाता है। ऋतु और अतित्व पितृत्व कहे जाते हैं। अतः इसी से ऋतु और आर्तव पितर कहे जाते हैं। सब भूत ऋतुकाल में ऋतु और आर्तव से पैदा हुये हैं। इसीलिये पितर भी आर्तव कहे जाते हैं। सभी मन्वन्तरों में ये स्थानाभिमानी और कालाभिमानी नियम से स्थिति रहते हैं। अग्निष्वात्ता और वीहर्षद् नाम के दो तरह के पितर होते हैं। इन पितरों ने दो कन्याओं को पैदा किया। उनका नाम मेना और धारिणी था। इन्हीं दोनों कन्याओं से इस संसार की सृष्टि हुई, ब्रह्मवादिनी, आचर्यशील कन्याओंका पितरों ने धर्म के लिये दान कर दिया मैना अग्निष्वात्ता की मानस पुत्री थी और धारिणी वहिर्षद की मानस पुत्री थी। सोमपीथी वहिर्षद ने अपनी कन्या धारिणी का विवाह मेरु के साथ कर दिया और अग्निष्वात्ता ने अपनी कन्या मैना का विवाह हिमालय के साथ कर दिया। अब हम उनके पौत्रों की कथा का वर्णन करेंगे। हिमालय की पत्नि मैना से मैनाक नामक पुत्र पैदा हुआ। उसके गंगा नामक एक पुत्री भी पैदा हुई जो लवण सागर को व्याही गई थी। मैनाक के एक छोटा भाई भी था, जिसका क्रौंच नाम था। इसी के नाम पर क्रौंच द्वीप नगर बसा। मेरु की पत्नि धारिणी से मन्दार नाम का पुत्र पैदा हुआ इनके तीन कन्यायें भी पैदा हुई थी। जिनका नाम वेला, नियति और आयति था आयति का धाता के साथ विवाह कर दिया, और नियति का विधाता के साथ विवाह कर दिया। स्वयम्भुव मन्वन्तर में इनकी सन्तनों की कथा का वर्णन किया गया है। वेला का विवाह सागर के साथ कर दिया। उसके सागर से एक अति सुन्दर कन्या का जन्म हुआ। सागर ने उस कन्या का नाम सामुद्री रखा और उसका विवाह वर्हिष के साथ कर कर दिया। उस सामुद्री कन्या ने अपने पति से दस पुत्रों को पैदा किया। वे सभी अति पराक्रम शाली और विद्वान थे। वाचुक मनु के समय में त्रयम्बक के शाप से स्वायम्भुव दक्ष उनके पुत्ररूप में पैदा हुये।

शांशपायन बोले–हे सूतजी चाक्षुस मनु के समय में श्री शंकर जी के शाप से दक्ष प्रजापति किस तरह पैदा हुये अब आप हमें इसकी कथा का वर्णन सुनाइये।

सूतजी बोले–कि हे शांशपायन जी हम पहले ही कह चुके हैं कि दक्ष प्रजापति के आठ कन्यायें थीं, उनको अपने घर लाकर उनका आदर सत्कार किया। इस तरह आदर पाकर वह कन्यायें पिता के घर सुख पूर्वक रहने लगीं। दक्ष ने सबसे बड़ी पुत्री सती का विवाह श्री शंकर जी के साथ करदिया। लेकिन उसने सती को नहीं बुलाया, चूंकि दक्ष का और शिव जी का आपस में कुछ मनमुटाव था। इस मनमुटाव का यह कारण था कि किसी दिन श्री शंकरजी ने दक्ष को प्रणाम नहीं किया। यह देखकर दक्ष को बहुत बुरा लगा कि जमाई होकर भी ससुर को प्रणाम नहीं करते। भगवती सती को यह मालूम हुआ कि मेरी सभी बहिनें पीहर गई हैं, तो वह भी बिना बुलाये चली गई, लेकिन सती जी का वहां किसी ने आदर सत्कार नहीं किया तब क्रोध में आकर सतीजी ने अपने पिता से कहा कि हे पिता जी आप मेरी सब बहनों का तो बहुत आदर कररहे हैं और मेरा अपमान कर रहे हैं। मैं सब से बड़ी हूं और उत्तम हूँ। मैं अपमान करने योग्य नहीं हूँ यह सुन दक्ष प्रजापति क्रोध में आकर बोला कि यह मैं मानता हूं कि तू मेरी सबसे बड़ी और श्रेष्ठ आदर करने योग्य पुत्री है किन्तु और सब लड़कियों के पति बहुत अच्छे हैं। सब महादेव जी से अधिक विद्वान धार्मिक अत्यन्त गुणी और सब से श्रेष्ठ हैं। मेरे सातों जमाई अच्छे हैं। उनके नाम ये हैं। पुलस्त्य, वशिष्ठ, अंगिरा पुलह, क्रतु, भृगु और मरीचि इत्यादि। मेरी और महादेव जी की लड़ाई है और तू उन्हीं की सेवा करती है। इसी कारण से मैं तेरा आदर नहीं करता हूँ। अभिमानी दक्ष ने इस तरह सती जी से कहा। यह सुनते ही सती जी ने क्रोधित होकर अपने पिता से कहा कि मैं मन कर्म और वचन से पवित्र हूँ फिर भी आप मेरा अनादर करते हैं इसी कारण मैं अपना यह शरीर भी त्याग देती हूँ पिता के

अपमान करने से सती जी को बड़ा दुख हुआ और वह मन ही मन श्री शिवजी को प्रणाम करके कहने लगीकि जबभी मैं कहीं जन्म लूँगी ऐसे पवित्र शुभ कर्म करूँगी कि सब जन्मों में श्री शिवजी ही पति मिलें। अतः इस तरह कहकर सतीजी वहीं पर योगासन लगाकर बैठ गईं और अपने पवित्र मन से अग्नि स्थापित करके वहीं पर जलकर भस्म हो गईं। श्री शिवजो ने यह सुना कि सतीजी ने अपना शरीर त्याग दिया तो वह सब ऋषियों और दक्ष पर बहुत क्रोधित हुये और उन्होंने दक्ष से कह कि हे दक्ष तूने जिस कारण मेरे लिये सतीजी का अनादर किया और दूसरी अपनी लड़कियों का उनके पतियों के साथ आदर सत्कार किया। तुम्हारे इस कार्य में ऋषिगण भी शामिल थे इसीलिये यह सब ऋषि मर जायँगे, तथा वैवस्वत मन्वन्तर में मेरे यज्ञ से पैदा होकर अयोनिज कहे जावेंगे और फिर दक्ष के पास पहुँच कर श्री शिवजी कहने लगे कि चाक्षुक मन्वन्तर में चाक्षुक नामका एक राजा होगा जो प्राचीन वर्हिष का प्रपौत्र अचेता राजा का पुत्र कहलायेगा उसी राजा को वृक्ष कन्या के गर्भ से तुम पैदा होगे और फिर भी तुम्हारा नाम दक्ष ही पड़ेगा।

दक्ष बोले– हे क्रूर बुद्धि वाले मैं आपके सभी धर्म सम्बन्धी कार्यों में उस जन्म में भी बार बार बाधायें डालूँगा। आपने मेरे कारण से सब ऋषियों को मार डाला है। आपने मेरे प्रति अत्यन्त क्रूरता का व्यवहार किया है। इसीलिए ब्राह्मण लोग यज्ञ में देवताओं के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे। वे आहुति देने के बाद यज्ञकुण्ड में जल छोड़ दिया करेंगे और तुम स्वर्ग को त्याग कर इसी पृथ्वी लोक में युग के क्षीण होने तक स्थिति रहोगे।

रुद्र बोले–हे दक्ष सब लोकों में यह पृथ्वी लोक ही सबसे अच्छा है इस पृथ्वी लोक में ही सूर्य लोक स्थापित है। देवताओं में भी चारों वर्ण होते हैं और वे सब एक साथ खा पी लेते हैं इसलिए मैं सबसे अलग हूं अतः इसी कारण से सब लोग देवताओं के साथ मेरी पूजा नहीं करते श्रीशंकरजी से शप्त होकर मनुष्य लोकमें दक्षप्रजापति हुआ।

दक्ष ने अपने को अधिक विद्वान और सामर्थ्यवान, गृहपति जान कर देवताओं के साथ एक महायज्ञ शुरू किया। वैवस्वत मन्वन्तर के शुरू होने पर पर्वतों के राजा हिमालय ने मैना पत्नि के गर्भ से भगवती सती उमा के रूप में पैदा किया। वही कन्या जो पहले सती थी पीछे उमा हुई। श्री शिव जी के पास रहने के सिवाय उनके पास और कोई व्रत नियम नही था। वह किसी समय भी शिवजी को नहीं छोड़ती थी. जिस प्रकार लक्ष्मी जी श्रीविष्णु जी को नहीं छोड़ती तथा अदिति मरिचि कश्यप जी को, शचि इन्द्र को, रुचि सूर्य को, अरुन्धति वशिष्ठ जी को किसी भी तरह नहीं छोड़ती उसी तरह सती जी भी किसी तरह श्री शिवजी से अलग नहीं होती। दूसरे युग में भी ये कन्यायें भी उन्ही के साथ पैदा हुईं।

चाक्षुष मन्वन्तर में दक्ष प्रजापति भी श्री शंकर जी के शाप के कारण प्राचीन वर्हिष के नाती हुये और दश प्रचेता से मार्षा के गर्भ से फिर पैदा हुये। वैवस्वत मनु के पूर्व त्रेता युग के शुरू में जो भृगु आदि ऋषि थे उन्होंने वरुण के समान शरीर को रख कर महान देवताओं के यज्ञ से पैदा हुये। श्री शिवजी का और दक्ष प्रजापति का आपस में मन मुटाव जन्म जन्मांतर तक चलने लगा। इसी कारण किसी से भी वैर भाव नहीं करना चाहिये। क्योंकि शुभ कर्मों से परिचालित जन्तु के भीतरी भाव दूसरे जन्म में भी नहीं छूटते, अतः इसी कारण को मुख्य समझकर किसी से वैर भाव नहीं करना चाहिये।

ऋषि बोले–हे सूतजी अब आप हम को उसका वर्णन सुनाइये. जिसमें कि वैवस्वत मन्वन्तर में प्राचेतस दक्ष प्रजापति का अश्वमेध यज्ञ किस तरह क्षीण हुआ और भगवती सती जी ने किस तरह अपना शरीर जलाया। दक्ष ने सती जी की मृत्यु से क्रोधित श्री शिवजी को किस तरह खुश किया और अपने यज्ञ को किस तरह पूरा किया।

सूतजी बोले–कि हे ब्राह्मणो पहले काल में मेरू के सर्वरत्नों से शोभित ज्योतिष पर्वत की चोटी पर श्री शिवजी बैठे हुए हों।

गिरवर हिमालय की वह चोटी सबसे प्रसिद्ध पूज्य, काफी फैली चौड़ी विस्तार सहित किसी भी तरह की बाधा के योग्य न थी। देवी पार्वती जी उनकी बगल में बैठी थीं। उस समय सभी देवता, सूर्यगण, तेजस्वी वसुगण, अश्विनीकुमार राजा वैश्रवण अपने गुह्यकों को साथ लेकर, सनतकुमार चारों भाई, अंगिरा इत्यादि देवर्षि, विश्वावसु, गन्धर्व, नारद पर्वत, कैलाश पर्वत पर रहने वाले यक्षराज, महामुनि उशना और अप्सरायें आकर उनकी पूजा अर्चना करने लगे। उस समय ठंडी सुगन्धित हवा चल रही थी। सब ऋतुओं के फल फूल वहां खिल रहे थे। सब ऋषि, सिद्ध, विद्याधर और तपस्वी आदि महादेव जी की उपासना में लगे हुये थे। विविधि रूप धारी भूतगण, राक्षस, बलशाली पिशाच, आदि विविधि रूपों को धारण करके अनेकों अस्का शस्त्रों से सज्जित हुये भगवान की सेवा में संलग्न थे। नन्दीश्वर भगवान चमकते हुये त्रिशूल को लेकर उनके पास आज्ञा पालन के लिये बैठे हुये थे। हे विप्रो, उस समय नदियों में श्रेष्ठ देवि स्वरूप गंगा जी भी वहां सेवा में उपस्थित थीं। इस भांति देव, ऋषियों आदि से घिरे हुये भगवान महादेव जी वहां विराजमान थे।

उसी समय दक्ष प्रजापति ने हिमालय के ऊपर यज्ञ करना प्रारम्भ किया। यज्ञ का स्थान उन्होंने गंगाद्वार (हरिद्वार में कनखल में यह स्थान था) में बनाया था इन्द्रादिक सभी प्रमुख देवता लोग वहां जाने को तैयार हुये। द्रुमलताओं, गन्धर्व अप्सराओं और ऋटषियों से घिरे हुये दक्ष की त्रिलोकी के सभी प्राणी हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। आदित्य, वसु, रुद्र साध्य, मरुत्गण और विष्णु आदक सभी वहां यज्ञ का भाग पाने के लिये पहुँचने लगे। उष्म, सोम, धूप पीने वाले अश्वनीकुमार, पितीश्वर, तथा ब्रह्मा जी आदि भी वहाँ आये। जरायुज आण्डज स्वेदज उद्भिज्ज आदि सभी प्राणी पत्नियों सहित वहां पर मन्त्रों के दुवारा बुलाये जाने लगे। इन सबके विमान अग्नि की तरह चमकते हुये थे।

उन सबको सुख से आकर बैठे हुये देखकर दधीचि ऋटषि ने दक्ष

प्रजापति से कहा पूजित को न पूजकर और पूजा न करने योग्य की पूजा करने पर मनुष्य घोर पाप का भागी होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। पूजनीय भगवान महादेव जी को आप क्यों नहीं बुला रहे हो!

दक्ष ने कहा—शूलधारण करने वाले एकादश रुद्र मेरे इस यज्ञ में मौजूद हैं। मैं दूसरे महादेव को नहीं जानता।

दधीचि बोले—महादेव को आपने निमन्त्रण नहीं दिया है, यह सबसे बड़ी बात है। महादेव जी से भी बड़ा कोई और देव है ऐसा हम नहीं जानते। इसलिये दक्ष प्रजापति का यह महान यज्ञ क्या सफली भूत होगा?

दक्ष बोले—इस यज्ञ में हम विधि विधान से मन्त्र से पवित्र किये हुये हवि को स्वर्ण के पात्र में रखकर विष्णु भगवान को समर्पण कर देंगे। क्योंकि विष्णु भगवान ही नित्य, हवनीय, प्रभु, विभु हैं।

यहां गिरिराज नन्दिनी पार्वती जी ने इन सभी देवताओं को कहीं जाते हुये देखा तो महादेव जी से पूछने लगीं—

उमादेवी बोलीं—हे भगवान! हे तत्वज्ञ, ये इन्द्रादिक देवता कहां जारहे हैं? आप मुझे यह सब समझाकर बताने की कृपा करें मुझे बड़ा ही कुतूहल हो रहा है।

श्री महादेव जी बोले—हे महाभागे, उत्तम प्रजापति जो दक्ष नाम वाले हैं वे अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं। ये सब देवता वहीं जा रहे हैं?

देवी बोली—हे प्रभो! आपको किस कारण वहां नहीं बुलाया और आप किस कारण से वहां नहीं जारहे हो?

महादेव जी बोले—हे महाभागे! देवों ने ही यह सब किया है। कि किसी भी यज्ञ में हमारा भाग नहीं रखा। हे वरवर्णिनि! इस व्यवस्था के कारण देवगण हम को यज्ञ में भाग नहीं देते।

देवी बोलीं—हे निष्पाप, हे भगवान, सभी देवों में आप अधिक प्रभाव वाले हैं और गुणवान हैं। तेज यश और शोभा में भी सबसे

वढ़कर हैं। आपका यह तिरस्कार मेरे लिये अधिक दुख प्रद है। मैं कौन सा दान तप या नियम करूँ जिससे मेरे पति आपको यज्ञ में आधा या तिहाई भाग मिलाकरे।

इस प्रकार दुखित अपनी पत्नि को देखकर महादेव जी बोले—

हे कृशोदराङ्गि! तुमने यह जो कहा कि मैं कुछ भी नहीं जानती यह क्या ठीक कहा है। साधु पुरुष ध्यान के द्वारा सब कुछ जान लेते हैं और तुम्हारी तो माया से यह तीनों लोक मोहित हैं। देखो प्रस्तोता यज्ञ में हमारी ही स्तुति कर रहे हैं। साम वेद का गान हो रहा है। ब्राह्मण यज्ञ में हमारी हो पूजा कर रहे हैं। अध्वर्युगण हमारे लिये भाग निकाल रहे हैं।

देवी बोली—हे प्रभो! स्त्रियों के मध्म में साधारण सा व्यक्ति अपनी प्रशंसा करके अपनी कमजोरी को छिपा लेता है। यह बात सही है। क्या आप भी ऐसा ही तो नहीं कर रहे हैं?

महेश्वर भगवान बोले—हे देवि! हम कभी भी अपनी झूठी प्रशंसा नहीं करते। हे वरारोहे! तुम आकर यह देखो कि अपने भाग के लिये हम किसकी रचना कर रहे हैं। अपनी प्राण से भी प्रिय पत्नि को ऐसा कहकर भगवान ने अपने मुख से एक प्रज्वलित भूत को उत्पन्न किया। उसके हजार सिर हजार पैर हजार नेत्र थे। वह हजार हाथों में हजारों मुद्गल वाण आदि को धारण किये हुये था। उसके हाथ में फरसा और तलवार भी थे। वह भयंकर रौद्र रूप वाला होने पर भी चमक रहा था। सिर पर अर्ध चन्द्र शोभायमान था। बाघम्बर पहने हुये था। उसके विकराल दांत थे पेट और मुख दोनों विशाल थे। लम्बे लम्बे ओठों के बीच उसकी जीभ बिजली की तरह लपलपाती थी। वह कन्नेर की माला पहने हुये था और क्रोध से उसकी आंखें चलायमान हो रहीं थीं। वह कभी नाचने लगता था कभी मधुर स्वर में बोलने लगता था। कभी योग परायण होकर ध्यान में लगजाता तो मोटी २ वस्तुओं को हटाने लगता था

ज्ञान, तप वैराग्य, ऐश्वय, क्षमा, धृति प्रभुत्व और आत्म संबोध तथा अधिष्ठान के गुणों से युक्त वह पृथ्वी पर घुटने टेककर और हाथ जोड़कर भगवान से बोला-हे प्रभो, कहिये क्या आज्ञा है, मैं आपका कौनसा कार्य करू ?

महादेव जी बोले-तुम दक्ष के यज्ञ का विध्वंश करो।

तब श्री महादेवजी की अनुमति पाकर अधिक बलवान वीरभद्र सतीपति श्री शिवजी के चरणों में प्रणाम करके जाल से मुक्त शेर की तरह गरजता हुआ चला, और मन ही मन में कहने लगा कि देवी भगवती नाराज है। अतः दक्ष के यज्ञ का नाश करना ही चाहिये। तत्काल उसी समय भगवती देवी के क्रोध से एक भयंकर माहेश्वरी भद्रकाली प्रकट हुई, जो वीरभद्र के साथ यज्ञ का नाश करने चली। प्रेतयोनि में रहने के कारण और भगवती उमा के क्रोध के कारण को दूर करने वाले श्री वीरभद्र ने अपने रोमों से अनेक रौद्रगणों की उत्पत्ति की। वे रुद्र भगवान की तरह ही वीर पराक्रम शाली बलवान थे। वे सौसौ और हजार २ की गिनती में दल बांध कर दक्ष के यज्ञ की तरफ चल दिये। उनके चीखों और शोरों से आकाश गूंज उठा। उनकी भयंकर आवाज से सभी देवता भयभीत होगये। उनके यज्ञ में पहुँचने से सभी ऋषि देवता, दानव इत्यादि शान्त हो गये और यज्ञ में चारो तरफ अंधेरा छा गया और तब श्रीरुद्र के अनेक गण वहां के सभी मनुष्यों को दुख पहुंचाने लगे। वे अत्यन्त बलवान रुद्र के गण सिंह की तरह गरजने लगे। किसी ने यज्ञागार को उखाड़ दिया किसी ने यज्ञयूप को नष्ट करदिया। कोई ताराड़व नृत्य करने लगा किसी २ ने यज्ञ भूमि को छिन्न भिन्न कर दिया वह यज्ञ भूमि ऐसे दीखती थी जैसे कि आसमान में तारे निकल रहे हों। उन रुद्र गणो ने अनेक मधुर पकवानों को यज्ञ की सामग्री जल को कीचड़ की तरह घी मांस और खाने पीने की चीजों को अपने हजारों मुखों से खाने लगे। उन्हों ने सब को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। भगवान् रुद्र के कोप से वह बड़े २ शरीर वाले अग्नि के समान रुद्रगण

देवताओं के मारते काटते उन्हें डराने लगे। उन्होंने देवताओं की पत्नियों को भी दुख पहुँचाया। भगवान रुद्र से पैदा हुये वे सभी रुद्र-गणोंने देवोंके रक्षा करने पर भी उन्हीं के सामने यज्ञ को नष्टकर दिया वह यंभकर आवाज करके सबको दुख पहुँचाने लगे और तब किसी ने दक्ष का शिर काट लिया, इस यज्ञ के नष्ट होने पर दक्ष अपना मृग का रूप रखकर आकाश की तरफ दौड़ने लगे। किन्तु वीरभद्र ने उसके पीछे दौड़ कर उसके शिर को काट दिया तब प्रजापति दक्ष मर गये और मरे हुए शरीर को रुद्रगणों ने अपने पैरों से कुचला। दक्षप्रजापति के मर जाने पर तैंतीस करोड़ देवता भी अग्नि के समान वन्धन में बँध गये इसके बाद सभी देवता इकट्ठे होकर वीरभद्र के पास आकर कहने लगे कि महाराज! अब आप प्रसन्न हो जाइये, आप हम लोगों पर नाराज न हों, और यह बताने की कृपा करें कि आप कौन हैं?

वीरभद्र ने कहा– हे देवताओ न तो हम देवता हैं न सूर्य हैं और न हम अपनी कोई इच्छा से यहाँ आये हैं। हम प्रजापति दक्ष के यज्ञ का नाश करने के लिए ही आये हुए हैं। हम भगवान श्री शिवजी के क्रोध से पैदा हुये हैं और हमारा नाम वीर भद्र है। और भगवती के क्रोध से यह भद्रकाली प्रकट हुई है। और यह भी हमारे साथ यज्ञ नाश करने के लिये आई हैं। हे देवो आप श्री शंकरजी की शरण में ही जाइये वह उत्तम वर के देने वाले हैं। वीर भद्र के कहने पर सब देव मिल कर और दक्ष प्रजापति श्री महादेवजी के पास जाकर स्तुति करने लगे। जिससे शूलपाणि भगवान शंकर प्रसन्न हो गये। और दक्षप्रजापति से कहने लगे कि हे दक्ष तुम्हारी दुर्गति से ही यज्ञ का नाश हुआ है। अब तुम मुझमें श्रद्धा रखते हो, और तुम बताओ कि मैं तुम को कौनसा वरदान दूँ। जब वीरभद्र तथा हजारों रुद्रगणों न यज्ञ भूमि को नष्ट भ्रष्ट कर दिया, यज्ञ यूपों को उखाड़ दिया सब सामग्री खा पी गए यज्ञ के दीक्षित ब्राह्मण लोग सभी चले गये, यज्ञाग्नि भी बुझगई रुद्रगणों को मारने सेवक भी इधर उधर रोते हुए पड़े थे।

और चारों तरफ गिद्ध कौऐ मड़रा रहे थे। उसी समय शत्रुओं का नाश करने वाले भगवान शंकर जी प्राणापान को यत्नपूर्वक अपने स्थान में रोककर इधर उधर देखते हुये अचानक अग्नि कुण्ड से बाहर निकल आये। आकर दक्ष प्रजापति से बोले कि हम तुम पर प्रसन्न हैं कोई वर मांगिये, तब दक्ष प्रजापति बोले जो अधिक दुखी होकर रो रहे थे वह डरते हुये श्री शिवजी की तरफ देखते हुये बोले कि यदि भगवान आप हम पर प्रसन्न हैं और हम आपके वर पाने योग्य हैं तो हमें यह वर दीजिये, कि हमारी जो यज्ञ की सब सामग्री नष्ट हो गई है और सब खा पी कर खत्म करदी जिनको हम वर्षों से एकत्रित कर रहे थे, वह सब ऐसी ही होजाय जैसे पहले यज्ञ के समय थी बस हम यही वर चाहते हैं। अतः इस तरह श्री भगवान शंकर से वरदान पाकर दक्ष प्रजापति जमीन में बैठकर भगवान शंकर की आठ हजार नामों से स्तुति करने लगे।

दक्ष बोले–हे प्रभू! आपको प्रणाम है आप त्रिनयन, वृषभध्वज, धर्माध्यक्ष, देवेन्द्र अमरश्रेष्ठ, सहस्राक्ष, विरुपाक्ष, सर्वतः श्रुतिमान और पूरे संसार को आप ढके हुये हो। आप महा कर्ण, कुम्भकरण समुद्र वासी, शतानन, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण नामों से आप प्रसिद्ध हैं सब लोग आप की स्तुति पूजा ध्यान करते हैं। आप इन्द्र आदि देवता और पूरे संसार के पालन करने वाले हैं। ब्रह्मा, विष्णु, मुनि समुद्राम्बुधर महामूर्त्ति हैं। गोष्ठ में जिस तरह गौगण रहते हैं उसी तरह सब देवगण आप में स्थित रहते हैं। सोम, अग्नि, ब्रह्मा, विष्णु, बृहस्पति इत्यादि यह सब आपके ही स्वरूप हैं। भव, पूर्व रुद्र, वरदाता, पशुपति अन्धक विनाशी शम्भू को बार २ मैं प्रणाम करता हूं। आप त्रिजट, त्रिशीर्ष, त्रिशूलधारी, दराड़ी दशिड़मुण्ड सूर्यपति वृषकन्ध, हिरण्यगर्भ हिरण्यपति, होत्र, मन्त्र, भीमसेन, सहस्र नयन बालरूप बालधर वृषक कुन्द काम इन्द्र इत्यादि अनेक आठों हजार नामों से प्रसिद्ध हैं। हे देव आपको बार बार प्रणाम है। भगवन आप सब जगह निवास करने वाले सर्वांग सर्वभूपति सब जीवों की अन्तरात्मा हैं। इसी कारण

हमने आपको निमन्त्रित नहीं किया। दक्षिणा वाले यज्ञ में आप ही यजनीय माने जाते हैं। और आप ही सर्वकर्त्ता हैं। हमने आपकी माया से मोहित होकर आपको नहीं बुलाया। हे भगवन अब आप प्रसन्न होजाइये। हम आपकी शरण में हैं। और इस तरह श्री शिवजी की स्तुति करके दक्ष प्रजापति शान्त हो गये। दक्ष प्रजापति की स्तुति से प्रसन्न होकर श्री शिवजी दक्ष प्रजापति से कहने लगे कि हे दक्ष हम तुम्हारी स्तुति से खुश हैं, और अब तुम मेरे ही लोक में जाओगे।

श्री भगवान महादेव जी ने दक्ष को इस प्रकार समझाकर उससे कहा कि तुमको इस यज्ञ के विषय में क्रोध नहीं करना चाहिये। मैंने ही इस यज्ञ का नाश किया है। हम तुमको फिर वर देते हैं तुम एक चित्त होकर सुनो। हे दक्ष प्रजापति तुमको हमारे प्रसाद से हजार अश्वमेध और सौ वाजपेय यज्ञों का फल मिलेगा। और पाशुपाश विमोचन पाशुपत व्रत है। जिसके करने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। उसका पूरा फल तुम्हें मिलेगा।

तब श्री महादेव जी अपनी पत्नि उमा और गणों के साथ अन्तर्ध्यान होगये। और उस समय ब्रह्माजी से मिले। यथोक्त भाग को प्राप्त करके शिवजी ने ज्वर को कई भागों में बांट दिया। अब हम उसकी कथा का वर्णन सुनायेंगे। नागों के लिये शीर्षा भिताप, पर्वतों के लिये शिला रोग, जल के लिये शैवाल और सांपों के लिये केंचुल, गायों के लिये खुरका रोग, पृथ्वी के लिये ऊसर, कोकिलों के लिये नेत्र रोग, बकरों के लिये पित्त भेद, तोता के लिये विभिक्का ज्वर, सिंहों के लिये परिश्रम और मनुष्यों के लिये ज्वर नाम से प्रसिद्ध है। यह ज्वर जन्म मरण और मनुष्य के शरीर में बीच में भी प्रवेश करता है। जो अधिक तेज ज्वर होता है वह भगवान महेश्वर का तेज है। यह ईश्वर रूपी ज्वर हमेशा पूजनीय योग्य है। जो मनुष्य इस ज्वरोत्पति को एकाग्रचित्त होकर पढ़ता है और सुनता है वह हमेशा निरोगी होकर सुखी रहते हैं। और दक्ष से कही हुई जो स्तुति स्तवन को पढता या सुनता है वह भी हमेशा सुखी होकर जीवन व्यतीत करता है।

जिस तरह सब देवताओं में श्री शिवजी बड़े हैं उसी तरह सब ब्रह्म-निर्मित स्तवों में यह स्तव श्रेष्ठ है। जिसको यश, धन, विद्या कीर्ति आयु की इच्छा हो वह भक्ति पूर्वक इस स्तव का पाठ करे तो उसके सब दुख दूर हो जाते हैं। जो अपने घर में इस स्तव का पाठ करता है। उसके घर में भूत प्रेत, नाग, यक्ष किसी का भी डर नहीं रहता। जो पवित्रा स्त्री इस स्तव का पाठ करती है वह पिता के घर और अपने घर दोनों के घर से मान पाती है। जो इस सम्पूर्ण स्तोत्र का पाठ करता है उसके सब दुख दूर होजाते हैं।

श्री शिवजी के साथ पार्वती और नंदीश्वर कार्तिकेय की अपनी श्रद्धा भक्ति से जो दक्षिणा इत्यादि देकर स्तोत्र में आये हुये नामों का पाठ करता है उसे मन की इच्छित वस्तु और सब भोगों का फल मिलता है। और मरने पर अपनी पत्नियों के साथ स्वर्ग में जाता है। जो मनुष्य इस दक्षकृत स्तोत्र का पाठ करता है वह विमान पर बैठ कर इन्द्र की तरह शोभा पाता है। सत्यवती नन्दन भगवान व्यास ने कहा है कि इस स्तोत्र को हर किसी को बिना सोचे समझे नहीं कहना चाहिये, इस परम गुह्य स्तोत्र को सुनकर सभी जाति के स्त्री पुरुष इत्यादि रुद्र लोक को प्राप्त होते हैं। जो किसी पर्व के समय यह स्तोत्र पढ़ता या सुनता है वह पढ़ने और सुनने वाले रुद्र लोक को प्राप्त होते हैं।

इति श्री वायु महापुराण का दक्षशाप-वर्णन नामका तीसवांअध्याय समाप्त

एकतीसवाँ अध्याय

(देववंश-वर्णन)

सूतजी बोले—हमने इस पापनाशिनी कथा का आपको वर्णन सुनाया। यह कथा दक्ष के विषय में श्री महादेव जी ने कही थी। पितृवंश की कथा की तरह ही अब हम देव वंश की कथा का वर्णन करेंगे। स्वायम्भुव मनु के समय में त्रेतायुग के शुरू में याम नाम के राजा प्रसिद्ध देवता थे जो पहले यज्ञपुत्र कहलाये। अजित ब्रह्माजी के पुत्र थे। और जित तथा अजित स्वायम्भुव मनु के पुत्र

थे। ब्रह्माजी के मानस पुत्र शुक्र कहलाते थे। देवों के तीनगण हैं। ये तृषिमान गण कहलाते हैं। स्वायम्भुव मनु के तैंतीस पुत्र छन्दोग कहलाते हैं। यदु, ययाति, दो देव कहलाते हैं। और दीप्य, स्तवस, मति, विभास, क्रतु, प्रजापति, विशत, द्युति, वायस तथा मंगल इत्यादि बारह देव कहलाते हैं। शुचिश्रवा, समय, मधुप, विश्वेदेवादि यमी, श्रुतिभृण इत्यादि और वो बारह देव स्वायम्भुव मनु के समय स्थिति थे। ये शराब पीने वाले अत्यन्त पराक्रमशाली थे। ये त्विषि-मान गण कहे जाते थे। ये आठों देवयोनि के रूप हैं पहला सुपर्ण दूसरा यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस, और पित्तर इत्यादि थे। स्वोयम्भुव मनु के समय में इन्हीं जैसी हजारों सन्तानें पैदा हुईं। प्रजाओं के, देवताओं के, ऋषियों के और पितरों के साथ जो पहले सप्तऋषि थे, अब हम उनकी कथा का वर्णन करेंगे। स्वायम्भुव मनु के मन्वन्तर में स्वयम्भू मनु के दस पुत्र थे। इनके ये नाम हैं। अग्नीध्र, अतिबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु ज्योतिष्मान, द्युतिमान हव्य और सवन इत्यादि थे।

श्री वायुदेव ने कहा है कि सबसे पहले युग में ये ही अधिक वीर राजा थे। असुर गन्धर्व यक्ष पिशाच मनुष्यों सुपर्ण इत्यादि की कथा का वर्णन करना सैकड़ों वर्षों में भी होना सम्भव नहीं है इनकी गणना बहुत अधिक है इसलिये हमने संक्षेप में इस कथा को कहा है। स्वायम्भुव मनु के समय में व्रज कुल नाम के प्रजाजन बहुत वर्ष पहले समाप्त हो चुके।

ऋषियों ने कहा—ये काल रूपी भगवान कौन से हैं जो सब जीवों को नष्ट करते हैं। ये किस कुल के हैं और कौन इनके माता पिता हैं। इनका कौनसा स्वरूप है। और इनका क्या नाम है। और इनकी कौन सी आत्मा है। अब आप हमको इस कथा का वर्णन सुनाइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो अब हम आपको काल रूपी भगवान के विषय में बतायेंगे आप एकचित्त होकर सुनिये। सूर्य से काल पैदा

हुये इनका आदि निमेष है और ये संख्या चक्षु कहलाते हैं। इनकी मूर्ति दिन रात हैं और इनके अंग निमेष कहे गये हैं और इनका कलास्वरूप संवत्सरशत नाम है ये भूत वर्तमान काल को और वर्तमान काल स्वरूप हैं। हम काल को पांच भागों में बांट कर उनके भेद को बतायेंगे। दिन, रात, पक्ष, मास, ऋतु और अयन इत्यादि पांच भागों में बांटा है। पहला संवत्सर दूसरा परिवत्स, तीसरा इद्वत्सर चौथा अनुवत्सर, और पांचवां वत्सर काल कहलाता है। अब मैं इसकी कथा का हाल सुनाऊँगा। ऋतु नामकी जो अग्नि पहले बताई है। वही संवत्सर है और काल अग्नि है वही परिवत्सर कही गई है और सूर्य से पैदा हुई अग्नि इद्वत्सर सोम कहलाती है। जो आकाश में चलता है और जलों का सार भूत कृष्ण और शुक्ल पक्ष की तरह घटने बढ़ने वाला है जो उनचास शरीरों से सब प्राणी को दुख देते हैं वही वत्सर वायु है। ब्रह्माजी ने रोने के कारण रुद्र नाम पड़ने वाले रुद्र को तीन भागों में बांट दिया, वही नील लोहित रुद्र, रुद्र के वत्सर कहे जाते हैं। कालात्मा प्रपितामह हर एक अंग के संयोग से ऋक्, साम, यजु के पैदा करने के स्थान और पांचों कालों के स्वामी हैं। वे ही अग्नि, यजु, सोम, भूत और प्रजापति हैं ब्राह्मणों ने सूर्य को ही अग्नि और संवत्सर बताया है भगवान सूर्य से ही कालों का हिस्सा होता है विकारावस्था में ही ब्रह्मा जी के मानस पुत्र प्रसन्न होकर एक एक दिन और महीने और ऋतु के अदलते बदलते रहते हैं और ये ही प्रजापति पितामह ब्रह्मा जी कहलाते हैं और ये ही सूर्य, नदी भानु, सरिता, ब्रह्म संस्कृत जीवन माने गए हैं भूतों के पैदा करने के कारण और नाश के कारण ये भास्कर नाम से प्रसिद्ध हैं। तीसरे परिवत्सर तारागण हैं। जो सोम के और निखिल औषधियों के पीत हैं इस कारण ये भी पितामह नाम से प्रसिद्ध हैं ये सभी जीवों को जीवन देने वाले और योगक्षेम करने वाले हैं ये हमेशा चमकते रहकर संसार का पोषण करते हैं। इनसे ही तिथि, पूर्णिमा, अमावस्या, और पर्वसन्धि पैदा हुई हैं। ये निशाचर और प्रजापति नाम से प्रसिद्ध हैं ये ही प्राण, अपान, और

वायु के बदलने वाले हैं। ये सब भूतों के और लोकों के ईश्वर और पृथ्वी को धारण करने वाले हैं। ये ही जल, अग्नि, भूमि, सूर्य और चन्द्रमा को पैदा करने वाले हैं। ये ही जल, अग्नि, भूमि, सूर्य और प्रपितामह नाम से प्रसिद्ध हैं। देवगण अपने इच्छित फल को पाने के लिये औषधियों के नष्ट हो जाने पर त्रिकपाल और त्र्म्बक से भगवान की पूजा करते हैं। इसी कारण वे त्र्म्बक कहलाते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप और नगतीत्रयम्बका नाम से प्रसिद्ध हैं। ब्राह्मणों ने पांच वर्षों का एक युग बताया है। प्रत्येक संवत्सर में वसन्त इत्यादि छओ ऋतुओं होती हैं ऋतु पत्र आर्तवगण पांच प्रकार के होते हैं। यह वायु मनुष्यों के जीवन का काल रूप होकर संहार करती हुई नदी के बहाव की तरह चलने लगती है और फिर वह वायु दिन रात को एक करने वाली होती हैं। ये सब प्रजापति सब मनुष्यों में मुख्य और लोकात्मा, लोकों के पिता माने जाते हैं। ब्रह्मा जी के ध्यान मग्न होते हुये मुख से रोते हुए रुद्र पैदा हुए और ये ही आत्मा रूप से सब जीवों की उत्पत्ति करने वाले हैं। ये ही अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, संवत्सर, कालात्मा नित्यसंहार करने वाले विभु कहे जाते हैं और ये ही इद्धत्सर नाम से प्रसिद्ध हैं। ये ही भगवान क्रोधित होकर संसार में अपने तेज से आश्रय और आश्रय संयोग के कारण अपने नामों और शरीरों से वर्तमान रहते हैं। तब उन्हीं के बल से दूसरी सृष्टि देवों की, पितरों की तथा कालों की हुई तभी से यह भद्र रूप महादेव के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। ये नीललोहित भगवान शंकर देवों के भी देव प्रजा धीषियों के प्रजापति, सब जीवों के पैदा करने वाले हैं। इनके हजारों पुत्र पौत्रादिक हैं जिनकी गणना नहीं हो सकती है। जो मनुष्य ध्यान मग्न होकर शुद्ध विचार से इस देव वंश का पाठ करता है वह हमेशा सुखी रहता है।

इति श्री वायु महापुराण का देव वंश नाम का एकतीसवां अध्याय समाप्त हुआ ॥३१॥

—❀—

* बत्तीसवाँ अध्याय *

(युग-धर्म)

वायु कहने लगे— अब हम आपको प्रणव के विषय में कुछ वर्णन करेंगे आप लोग ध्यान पूर्वक होकर सुनिये। ब्रह्म ही ओंकार अक्षर है। इसके तीन वर्ण माने गये हैं। इसके जितने भी देवता और वर्ण हैं वे सब ओंकार से ही पैदा हुये हैं। ऋक्, यजु, साम, जल और अग्नि भी ओंकार से ही पैदा हुए हैं। इस ओंकार अक्षर से और दूसरे भी प्रकट हुए हैं सब देवों में जो चौदह देवता हैं, उनके भी बीज जो पाने वाले, सभी जगह जाने वाले और सब योगों को जानने वाले हैं। वे ही लोकों पर अनुग्रह करने के लिए ओंकार शुरू, बीच तथा आखिरी हिस्से कहे जाते हैं। ओंकार स्वरूप श्री शिव जी से इन्द्र, पितर, सप्तर्षि, देवता इत्यादि पैदा हुये हैं। इसलोक और परलोक में ओंकार ही सबसे श्रेष्ठ पद है। काल को युग नाम से भी पुकारा गया है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग के साथ साथ युग भी चक्र की तरह नीचे ऊपर घूमता रहता है। देवता लोग, ऋषि इत्यादि तब एकाग्र चित्त होकर तपस्या करने लग जाते हैं क्योंकि तब काल के वश होकर देवता लोग चिन्तित हो गये और स्वयं वे उसकी सीमा निर्धारित करने में असमर्थ हो गये। फिर देवता काल से डर कर श्री शिवजी की शरण में गये। और भगवान से कहने लगे कि हे देव! शंकर जी ये चतुर्मुखी चार स्वरूप वाले काल कौन हैं इनका कौन पार पा सकता है।

तब श्री शिव जी ने उस चतुर्मुखी काल को देखकर कहा— आप किसी बात की चिन्ता न करें मैं आपके सब कार्य पूरे कर दूँगा इसके बाद स्वयं काल रूप भगवान श्री महादेव जी कहने लगे कि जो चार जीभों वाला काल का सफेद मुँह है वह काल का सतयुग नाम का मुँह कहलाता है। यही मुँह देव श्रेष्ठ ब्रह्मा और वैवस्वत भी कहलाता है। और जो लाल रंग की तीन जीभों वाला दूसरा मुँह त्रेतायुग कहलाता है इस युग में सभी लोग श्री महादेव जी की प्रेरणा

से यज्ञ में पूवरा होते हैं। इन्हीं से यज्ञ शुरू होता है ये ही अग्नि काल की जीभें कहलाती हैं इनके तीन जीभें हैं और तीन अग्नि हैं। और जो दो जीभों वाला लाल और पीले रंग का मुख है वह द्वापर युग में हम दो पैर वाले होते हैं। और जो काले रंग का लाल आंखों वाला मुँह है जिसके काले रंग की लपलपाती हुई जीभ है तथा सारे संसार को दुख देने वाला घोर कलियुग है। इस युग में न सुख है न मुक्ति तथा सब मनुष्य दुखी होकर काल से ग्रस्त होंगे।

सतयुग में ब्राह्मण लोगों की पूजा होती है। त्रेतायुग में यज्ञादिक होते हैं द्वापर युग में श्री विष्णु जी की पूजा मान्य है और मैं चारों युगों में पूजित होता हूँ। काल की ब्रह्माजी, विष्णुजी, और यज्ञ ये तीन कलायें हैं। लेकिन चतुर्मुखी महेश्वर सभी युगों में निवास करते हैं। मैं ही आप लोगों को पैदा करने वाला हूँ और मैं ही मनुष्य हूं। मैं ही काल हूँ और मैं ही काल का प्रवृतक हूँ, मैं ही युगों का करने वाला परम श्रेष्ठ हूँ अतः इसी कारण कलियुग आने पर संसार के कल्याण के लिये तथा देवताओं को अभयदान देने के लिये मैं दोनों लोकों में मंगल कारक और पूजनीय बनूँगा। हे देवताओ! आप कलियुग की चिन्ता न करें। श्री भगवान शंकर के इस तरह कहने पर देवता तथा ऋषियों ने श्री भगवान शंकर जी को सिर झुका कर प्रणाम किया और बोले–

देवता और ऋषियों ने कहा—हे भगवान अब आप हमें यह बताइये कि, अत्यन्त तेजस्वी, दीर्घ शरीर, अधिक बलवान सब जीवों के लिये अधिक भयंकर काल चतुर्मुखी कैसे पैदा हुये?

महादेव जी बोले–हे देव और ऋषियो! ये काल चार मुख वाले चार दांत वाले और चार मूर्ति वाले हैं। संसार की रक्षा के लिये ये सब को नष्ट करदेते हैं। काल जीवों को पैदा करते हैं और फिर क्रम से उनका संहार भी कर देते हैं। सभी इस काल के वश में हैं किन्तु ये काल किसी के वश में नहीं है। अतः इस कारण काल ही सब के ऊपर शासन करते हैं। इक्कीसयुग काल का एक कदम होता है।

और ये ही युगों के क्रम से मन्वन्तर कहलाते हैं। एक २ पैर रख कर जब काल इक्कीस कदम रखते हैं तब मन्वन्तर खतम होता है। देवता, ऋषि, पितरों ने भगवान शंकर से यह कथा सुनकर प्रसन्न होकर उनको प्रणाम किया। तब भगवान उसी स्थान पर अन्तर्धान हो गये। भगवान काल इसी तरह बार बार देवता, ऋषि और पितरों की उत्पत्ति और संहार करते हैं। अतः काल के डर से भयभीत होकर देवता, ऋषि और पितरों को भगवान महादेव की पूजा करनी चाहिये। कलियुग में अधिक वर्ष तक कठिन तपस्या करनी चाहिये जो तपस्या से ईश्वर शिवजी को प्राप्त करता है वह महान पुण्य का भागी होता है। देवता भी तपस्या करने की इच्छा से पृथ्वी पर जन्म लेने के लिये आते हैं। जब कलियुग आता है तभी वे भी ऐसा ही करते हैं। सत्ययुग त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग के क्षय होने पर सप्त-ऋषियों के साथ फिर आने वाले त्रेतायुग में वे ही होने वाले क्षत्रियों के वंश के कारण हैं। सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, के क्षीण होजाने पर द्वापर युग के अन्त में क्षत्रिय मनुष्य ऋषियों के साथ रहते हैं। कलियुग में ब्राह्मणों के लिये ही क्षत्रियों का विनाश होता है। जो पातकी मनुष्य होते हैं वे कलियुग में जन्म धारण करते हैं।

अब हम उन स्वर्ग सिधारे राजाओं की कथा को सुनाएंगे। जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी ने क्षत्रियों को मार डाला, क्योंकि वे क्षत्रियराजा पापियों की तथा दुष्टात्माओं की सख्या बढ़ारहे थे। इक्ष्वाकुवंश का मूल ऐड़ वंश है। श्रोणिवन्ध राजा इक्ष्वाकुवंश के राजा तथा और क्षत्रियों ने इस ऐड़वंश में जन्म लिया। इन राजाओं के सौ कुलों का वर्णन कहा गया है। तथा इन्हीं सौ कुलों में भोज-कुल के वंश का भी वर्णन है। भोजकुल में प्रायः तीन सौ क्षत्रिय थे, जो चार भागों में बांटा है। उनमें जो राजा बीत चुके हैं अब उनकी कथा का वर्णन करेंगे। प्रतिविन्ध्य, हैहय और धार्तराष्ट्र के सौ सौ कुल अतीत हुए हैं, जनमेजय के अस्सी कुल, ब्रह्मदत्त, वीर्यी, पौल के सौ सौ कुल तथा काशिकुश के भी सौ कुल और शीशबिन्दुओं के हजार कुल अतीत हुए हैं। और इन्हीं राजाओं ने बहुत दक्षिणा

देकर अश्वमेध यज्ञ किया। सत्ययुग में चार हजार वर्षों का प्रक्रियापाद कहा है। इस कारण चार सौ संध्याऐ और उतने ही संध्याश होते हैं। त्रेतायुग तीन हजार वर्ष का होता है। इसमें तीन सौ वर्ष की संध्याऐ और तीन सौ वर्ष की संध्याश होते हैं। त्रेतायुग तीन हजार का अनुषंग पाद माना गया है। दो हजार वर्ष का द्वापर होता है। यह द्वापर युग उपोद्घात पाद माना गया है। इसमें दो हजार वर्ष की संध्याऐ तथा दो हजार वर्ष का संध्याश होता है। और कलियुग एक हजार वर्ष का होता है और ये संहारपाद नामका कहा गया है। ये सौ हजार वर्ष का होता है तथा इसमें सौ वर्ष की संध्याऐं तथा सौ वर्ष का संध्याश है। संध्या और संध्याश के कारण चारों युग बारह हजार वर्षों के होते हैं। अतः इस प्रकार युग पादों का परिमाण दस हजार वर्षों का होता है। और संध्या और संध्याश दो हजार वर्षों के होते हैं। जिस प्रकार वेद चारपादों के माने गये हैं उसी प्रकार युग भी चार पादों के होते हैं। जिस प्रकार विधाता, अपने आप चतुष्पाद बनाया है उसी प्रकार ब्रह्माजी ने भी अपने आप ही चतुष्पाद बनाया है॥

इति श्री वायु महापुराण का युग-धर्म नाम का बत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ॥३२॥

* तैंतीसवाँ अध्याय *

(स्वायम्भुव-वंश वर्णन)

सूतजी बोले—सभी मन्वन्तरों में नाम और रूप की तरह समान भाव से कुछ घमंड़ी देवता होते हैं। उस मन्वन्तर में बहुत से देवता ऋषि, मनु आदि सभी समान रूप घमंड़ी होते हैं, अब हम स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन करेंगे। स्वायम्भुव मनु के भी दस पोते थे। जिन्होंने स्वायम्भुव मन्वन्तर के शुरू में त्रेतायुग के पहले सातों द्वीपों और समुद्रों के साथ पूरी पृथ्वी का प्रतिवर्ष कर लिया था। स्वायम्भुव मनु के पौत्रों ने और प्रियव्रत के पुत्रों ने योग और तपस्या के द्वारा प्रजा की सृष्टि के अनुसार पृथ्वी पर राज्य किया। वीर प्रजापति प्रियव्रत के एक सुन्दर कन्या भी पैदा हुई।

जिसका कर्दम ऋषि के साथ विवाह कर दिया। उनके और भी दो कन्यायें तथा सौ पुत्र पैदा हुये। इन दोनों की तरह शूरवीर दस भाई थे। इनके ये नाम थे। अग्नीध्र, वपुष्मान, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान, द्युतिमान, हव्य, सवन, सव्य इत्यादि। राजाप्रियव्रत ने इन सातों राजाओं को सात द्वीपों का राज्य दे दिया। जम्बूद्वीप का राजा अग्नीध्र बना और मेधातिथी को प्लक्ष का राजा बनाया। ज्योतिष्मान को कुशद्वीप का राजा बनाया। द्युतिमान को क्रौञ्चद्वीप का राजा बनाया। हव्य को शाकद्वीप का राजा बनाया। सवन को पुष्कर द्वीप का राजा बनाया। पुष्कर द्वीप सवन के महावीत और धातीक नाम के दो पुत्र पैदा हुये। उस महावीत के नाम पर महावीत नाम का वर्ष हुआ है। और धातीक के नाम पर धातीक खण्ड पड़ा है। हव्य वाहन के सात पुत्र पैदा हुये। ये बाद में शाक दीप में शासन करते थे। इनके नाम जलद, कुमार, सुकुमार, मणी चक्र, वसुमोद, सुमोद और महाद्रुम थे। इनके नामों से सात वर्ष प्रचलित हुये। यथा जलद वर्ष, कौमार वर्ष आदि।

क्रौञ्चद्वीप के स्वामी द्युप्तिमान हुये। उनके भी कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धारक, मुनि और दुन्दुभि नामक सात पुत्र हुये। उनके नाम पर ही क्रौंच द्वीप के सात देशों का नाम पड़ा। ये सात बड़े प्रसिद्ध देश हैं।

कुशद्वीप के स्वामी ज्योतिष्मान के भी उद्भिद्, वेणुमान, खैरथ, लवण, धृति, प्रभाकर और कपिल, नामक सात बलवान पुत्र हुये। उनके नाम पर भी वर्षों के नाम पड़े। इन खण्डों में प्रजा वर्णाश्रम धर्म के अनुसार रहती है। शाल्मलि द्वीप के स्वामी वपुष्मान हुये। उनके श्वेत, हरित जीभूत रोहित वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात पुत्र थे। इनके नाम पर भी श्वेत देश, रोहित देश प्रसिद्ध हुये। ये सातों पुत्र इन सात देशों के रक्षक बने।

अब हम जम्बूद्वीप के पास वाले अन्य सात द्वीपों का वर्णन करेंगे। मेधातिथि के सात पुत्र हुये। जो प्लक्षद्वीप के स्वामी थे। इनमें शान्त-

मय सबसे बड़े थे। इन सातों भाइयों के नाम पर ही वहाँ सात वर्ष हुये। शान्तमय के अन्य छोटे भाइयों के नाम इस प्रकार थे–शिशिर सुखोदय, अनक, ध्रुव, क्षेमक और शिवि। इन्होंने सात वर्षों का विभाजन करके उन्हें अपने २ नामों से चलाया। ये सब स्वायंभुव मन्वन्तर में वर्तमान थे। प्लक्ष द्वीप से लेकर शाकद्वीप तक पांच द्वीपों में वर्णाश्रम विभाग के अनुसार धर्म चल रहा था। इन सभी द्वीपों में सभी सुखी, पूर्ण आयु वाले रूप वल सम्पन्न और धर्म परायण लोग रहते थे।

अब सात द्वीपों से घिरे जम्बूदीप की कथा का वर्णन करूंगा। सो आप लोग सुनें। प्रियव्रत ने अपने महावली वड़े पुत्र अग्नीध्र को उनके पुत्र और कन्या के साथ जम्बूदीप का अधिपति बनाया। अग्नीध्र के पुत्र भी प्रजापति के समान महावलशाली थे। उनमें वड़ा नाभि और सबसे छोटा किम्पुरुष था। तीसरे का नाम हरिवर्ष, चौथे का नाम इलावृत्त, पांचवें का नाम रम्य छटे का नाम हिरण्यमान, सातवें का नाम कुरु आठवें का नाम भद्राश्व, नौवें का नाम केतुमाल था। इनके देशों के नाम इस प्रकार हैं–इनमें से इनके पिता आग्नीध्र को हिमनामक दक्षिण देश का अधिपति नियुक्त किया, किम्पुरुष को हेमकूट, हरिवर्ष को नैषध, इलावृत्त को सुमेरु का मध्यदेश, रम्य को नील देश, हिरण्यमान् को उत्तर का श्वेत देश, कुरु को उत्तर दिशा में शृङ्ग मान, भद्राश्व को माल्यवान, और केतुमाल को गन्धमादन देश दिया। इस प्रकार इसके ये ही नौ बड़े २ विभाग हुये। धर्मात्मा राजा अग्नीध्र अपने पुत्रों को इन देशों का स्वामी बनाकर तपस्या करने चले गये। इस प्रकार से स्वायंभुव के नाती और प्रियव्रत के पुत्रों ने सात दीपों में राज्य स्थापित किया।

अब हम हिमक्षेत्र के राजाओं के वंश का वर्णन करेंगे। राजा नाभि के मरुदेवी में ऋषभ नामक एक पुत्र पैदा हुआ। जो वह अधिक वलवान वीर प्रतापी राजा सब क्षत्रियों में श्रेष्ठ था। फिर राजा ऋषभ ने भरत नाम का एक पुत्र पैदा किया। जो अपने सब भाइयों

में बड़े थे। राजा ऋषभ ने अपने पुत्र को हिम देश का राजा बना कर आपने सन्यास लेलिया। और इसी कारण उस भरत के दक्षिण हिम देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरत को सुमति नाम के पुत्र पैदा हुये। वह उत्तम धार्मिक ब्राह्मण थे। फिर राजा भरत ने अपने लड़के सुमति को राज्य का राजा बनाकर आपने सन्यास लेलिया। सुमति के एक तैजस नाम का पुत्र था। राजा इन्द्रद्युम्न के मरजाने पर स्वयं भगवान ने उनके वंश में प्रतिहार नाम से अवतार लिया। और फिर राजा प्रतिहार को प्रतिहर्त्ता नाम का पुत्र पैदा हुआ। फिर प्रतिहर्त्ता के पुत्र उन्नेता हुये, और उन्नेता के पुत्र उद्गीथ हुये, राजा उद्गीथ के पुत्र प्रस्तावि हुये, प्रस्तावि के पुत्र विभु हुये, राजा विभु के पुत्र पृथु हुये, पृथु के पुत्र नक्त हुये, राजा नक्त के पुत्र गय हुये, गय के पुत्र नर हुये, राजा नर के पुत्र विराट हुये, राजा विराट के पुत्र महावीर्य हुये, और महावीर्य को धीमान नाम के पुत्र हुये, धीमान राजा को महान नाम का पुत्र हुआ, और राजा महान को भोवन नाम का पुत्र पैदा हुआ, राजा भोवन को त्वष्टा नाम का पुत्र पैदा हुआ, त्वष्टा राजा को अरिज नाम का पुत्र पैदा हुआ अरिज को रजस नाम का पुत्र पैदा हुआ, रजस राजा को शतजित नाम का पुत्र पैदा हुआ, और राजा शतजित के सौ पुत्र पैदा हुये। पूरे संसार में अपना यश फैलाने का उन राजाओं ने पृथ्वी को उन्नत बनाया और फिर भारत वर्ष को बांट दिया। और उन्हीं राजाओं के वंशों से यह पृथ्वी चौयुगी पृथ्वी कहलायी। स्वायम्भुव मनु के वंशों के राजा भी उन्हीं के वंश के थे। ये स्वायम्भुव मनु के वंश का वर्णन कहा गया है। ऋषि, देव, पितर, गन्धर्व, राक्षस, किन्नर, मनुष्यों, पशुपक्षियों से यह पूरा संसार भरा हुआ है। संसार में यह सृष्टि युगों तक ऐसे ही क्रम से चलती रहती है॥

इति श्री वायु महापुराण का स्वायम्भुव वंश वर्णन नामका
तैतीसवां अध्याय समाप्त हुआ॥३३॥

—❀—

चौंतीसवाँ अध्याय

(जम्बूद्वीप का वर्णन)

ऋषि बोले—हे सूत जी, आपने सब राजाओं की कथा का वर्णन तो सुना दिया, अब आप कृपा करके यह बात बताइये, कि पृथ्वी की परिधि और विस्तार क्या है। इस संसार में कितने द्वीप हैं तथा कितने समुद्र हैं। कितने देश हैं उन देशों में कितनी नदियां हैं और उन नदियों के क्या २ नाम हैं। चन्द्र और सूर्य की गति क्या है और उनकी परिधि तथा विस्तार क्या है। महाभूतों का क्या प्रमाण है तथा लोका लोक का क्या प्रमाण है इत्यादि का विस्तार पूर्वक वर्णन सुनाइये। सूतजी बोले-हे ऋषियो, अब हम, आपको पृथ्वी की परिधी विस्तार, लोकालोक का प्रमाण, सूर्य चन्द्रमा की गति इत्यादि आपकी सब पूछी हुई बातों का वर्णन सुनाते हैं। आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये सातों द्वीपों के अन्तर्गत हजारों उपद्वीपों का अलग २ वर्णन करना असम्भव है। अतः इसलिये हम यहां पर केवल चन्द्र सूर्य, और ग्रहों को मिलाकर सातों द्वीपों का ही वर्णन करेंगे। हम नौ देशों वाले जम्बूद्वीप का वर्णन भली प्रकार से करेंगे।

इस द्वीप का परिमाण एक हजार एक सौ योजन का है। इस द्वीप में बहुत से देश हैं जिनमें तरह २ की धातुऐं पैदा होती हैं। इसमें अनेक पर्वत और नदियां हैं। यह भूतभावन देवों द्वारा व्याप्त जम्बूद्वीप नौ देशों में बटा हुआ है इस जम्बूद्वीप के चारों तरफ लवण सागर स्थिति है। जम्बूद्वीप के चारों ओर बहुत बड़े २ पर्वतों के ये नाम हैं पहला तुषाराबृत्त, दूसरा हिमवान तीसरा हेममय, चौथा हेमकूट, पाचवां सौने के समान चमकता हुआ निषध पर्वत और छठा मेरु पर्वत इत्यादि थे। इसके पूर्व का हिस्सा सफेद रंग का है और दक्षिण की तरफ से पीले रंग का है इसलिये यह वैश्यत्व माना गया है। यह पश्चिम की तरफ से काले रंग का है। इसलिये यह शूद्र माना है। उत्तर की तरफ लाल रंग का है, अतः इसलिये क्षत्रिय माना है। तरह २ के वर्ण होने के कारण इसको चतुर्वर्ण कहते हैं।

नीलगिर पर्वत मूंगा से युक्त और हिरण्यमय हैं इसकी चोटी साफ उज्ज्वल है। यह विशाल पर्वत अत्यन्त सुन्दर और स्वर्ण की तरह चमकीला है। यहां पर सिद्ध गन्धर्व निवास करते हैं। सब पर्वतों में यह पर्वत श्रेष्ठ है। इसका विस्तार नौहजार योजन का माना जाता है। इन सब पर्वतों के बीच में इलावृत्त नाम का देश स्थिति है। जम्बूदीप के परिमाण से मेरु पर्वत का परिमाण बहुत बड़ा माना जाता है। उनके बीच में नील और मध्य नामके दो पवत स्थिति हैं। इस पर्वतों का विस्तार दो हजार दो सौ योजन का बताया जाता है। जो दूसरे पर्वत श्वेत, हिमवान, श्रंगवान इत्यादि छोटे पर्वत हैं। इन पर्वतों का विस्तार बयासी हजार बानवे योजन का है। और इन पर्वतों के बीच में जो देश स्थिति हैं उनको सात भागों में अलग २ बांट दिया है। इन देशों में बहुत नदियां तथा चारों तरफ विशाल पर्वत हैं। वहां पर तरह २ की जाति के लोग आस पास रहते हैं।

जो हेमवत देश है वह भारत वर्ष के नाम से प्रसद्धि है। इस देश के आगे हेमकूट देश है और हेमकूट देश के आगे किम्पुरुष देशस्थिति है। नैषध हेमकूट देश हरिवर्ष नाम से प्रसिद्ध है। हरिवर्ष और मेरु पर्वत के आगे इलावृत देश स्थिति है। इलावृत देश से आगे चल कर नील रम्यक नामक देशस्थिति है। और रम्यक देश से आगे श्वेत देश है। श्वेत देश हिरण्यमय कहाजाता है। हिरण्यमय के आगे शृंगवान स्थिति है। यह कुरु नाम से प्रसिद्ध है दक्षिण और उत्तर दिशाओं में ये दो देश धनुषाकार हैं। वहां धनुषाकार देशों के मध्य में चार बड़े बड़े देश हैं किन्तु इलावृत्त मध्यम है। 'निषध' पर्वत के पूर्व भाग में 'दक्षिण आधी वेदी है' और नील पर्वत के पर भाग में उत्तर आधो वेदा है। इन दोनों के मध्य अर्थात् नील के दक्षिण और निषध के उत्तर में मेरु के बीच में ही इलावृत्त स्थित है। इसका विस्तार पैंतालीस हजार योजन है। इसके पश्चिम में गन्धमादन नामक पर्वत है। लम्बाई और विस्तार में माल्यवान के

समान है। इन सब में चतुर्वर्णमय मेरु ही सब से उत्तम कहा गया है। वहां सुन्दर धातु और जलाशय है वह चारों ओर से उन्नत और सुन्दर है। पूर्वजन्म के पुण्यवान, कृतात्मा पुरुष ही वहां निवास करते हैं। विनीत, महात्मा, महायोगी, सर्वलोक व्यापक, अनन्त महेश्वर यहां ही पैदा हुये हैं। वे मास मेदा और अस्थि से रहित हैं तथा ऐश्वर्य और योग से सर्व अन्तर्यामी हैं।

वह कमल जो भगवान विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ है उसी से यह पृथ्वी भी पद्म रूप में उत्पन्न हुई है। उस पद्मरूप लोक का वर्णन सुनिये--हे विप्रो! पखंड़ी के समान चार विख्यात महाद्वीप उसके चारों ओर हैं। बीच में मेरु पर्वत 'केशर' की भांति स्थित है। मेरु का पार्श्व भाग अनेकों वर्णों का है। पूर्व में सफेद, दक्षिण में पीत उत्तर में लाल, और शिखिर में कृष्ण वर्ण है। ऐसा शोभामय स्वयं शुभ्र वर्ण वाला मेरु मध्य में राजा की भांति विराजमान है। यह बाल सूर्य की भांति चमकता है। यह पर्वत अत्यन्त दिव्य है। इसका बिस्तार चौंसठ हजार योजन है। यह दिव्य औषधियों से युक्त सुवर्णमय भुवनों से घिरा हुआ है। इसके ऊपर सुन्दरी अप्सराओं के गण, सभी देवगण, गन्धर्व, उरग, राक्षस आदि देखे जाते हैं। मेरु के चारों ओर चार देश बसे हैं। उनके नाम हैं--भद्राश्व, भरत, पश्चिम, केतुमाल और उत्तर कुरु।

इस पद्म की कर्णिका (पद्मकोष) छियानवे हजार योजन की है। चारों ओर के पद्म पत्रों का विस्तार सौहजार अस्सी योजन है। हे मुनियो अब कर्णिका का संक्षेप से वर्णन सुनो। अत्रि मुनि उसको शताश्रि और भृगु ऋषि सहस्राश्रि वाले मानते हैं। सावर्णि उसे अष्टाश्रि मानते हैं। और भागुरि ऋषि चतुरस्र मानते हैं। वार्षायणि समुद्राकार और गालव शरावाकार गार्म्य ऋषि उसको ऊर्ध्व वेणी के आकार का मानते हैं और कौष्टुकि परिमण्डलाकार। उस पर्वत राज के जिस भाग में जो ऋषि निवास करते हैं वे उसको वैसा ही मानते हैं। अच्छी प्रकार तो उसे केवल ब्रह्मा जी ही जानते हैं। जो मणियों

और रत्नों से भरा हुआ हो और जो अनेक वर्णों से युक्त सूर्य की सी कान्ति वाला हो उसे ही मेरु समझना चाहिये जिसके शैल खण्डों पर विविध भांति के जीव निवास करते हैं। ऋषियों की मनोहारिणी एक 'मनोवती' नाम वाली ब्रह्म सभा है। वही ईशानदेव का निवास स्थान है। वहीं सूर्य के समान तेजस्वी सहस्राक्ष रुद्र लोकपति महाराजा महेन्द्र का भी आवास स्थान है। जो सिद्धों द्वारा वन्दनीय है। यह इन्द्रलोक संसार की सर्वश्रेष्ठ सम्पत्तियों से युक्त और देवताओं से सदा सेवित है। यहां पूर्व और दक्खिन की ओर चमचमाता हुआ एक अग्निदेव का भास्वर विमान विद्यमान है, जो स्वर्णमय छतों, बाग व क्यारियों से युक्त है। वहां ही अग्निदेव की एक तेजोवती सभा है। जहां साक्षात् अग्निदेव निवास करते हैं। ये देवों के मुख हैं और हजारों शिखा वाले ज्वाला माली हैं तथा सभी देवों के वन्दनीय हैं। ब्राह्मण लोग उन्हें विशिष्ट अधिदेव कहते हैं। वस्तुतः अग्नि ही सभी तेजों की समष्टि हैं इसमें कोई सन्देह नहीं।

इसी भांति मेरु के तीसरे किनारे पर वैवस्वत की भी एक सभा है। जो 'सुसंयमा' नाम से प्रसिद्ध है। यहां पर चौथी सभा 'कृष्णङ्गना' नाम की है जो रक्षोपति धीमान विरूपाक्ष की है। पांचवें तट पर वैवस्वत की 'शुभवती' नामक सभा भी है। वहीं 'सती' नाम की एक सभा वरुणदेव की है। इस सभा की उत्तर दिशा में छटे तट पर वायु देव की 'गन्धवती' सभा है। सातवें तट पर चन्द्रमा की महोदया नाम की सभा है जिसमें वैदूर्य मणि की वेदी बनी है। आठवें स्तर पर महात्मा ईशान की तप्त स्वर्ण की भांति चमकती हुई 'यशोवती' नाम की सभा है। इन्द्र आदि आठ देवों के आठ विमान आठों दिशाओं में स्थित रहते हैं जिसमें भी हरुपर्वत को देवलोक कहा है। विविध यज्ञ, नियम, और अनेक जन्मों के सिंचित पुण्य वाले मनुष्य ही इस देवलोक को प्राप्त करते हैं। यही देवलोक स्वर्गलोक कहा गया है।

॥ इति श्री वायु महापुराण का जम्बूद्वीप वर्णन नामक
चौंतीसवां अध्याय समाप्त ॥

पैंतीसवाँ अध्याय (जम्बूद्वीप वर्णन)

सूतजी बोले—हे ऋषियो, मैंने पहले कर्णिका मूल का वर्णन किया है अब उसके नीचे के भाग का वर्णन सुनिये। उसके नीचे के भाग का मण्डल अड़तालीस हजार योजन के परिमाण वाला है। वह इस शैलराज को चारों ओर से घेरे हुये है। यह मेरु मूल के नाम से विख्यात है। इनमें हजारों पर्वतों में अनेक महान ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं जो मर्यादा पर्वत कहलाते हैं। ये पर्वत सीमा विभाजक हैं। ये पर्वत, निकुंज, कन्दर, नदी, गुहा और झरनों से शोभित हैं। इनके मध्य भाग वाले तट पर अनेक कोठे बने हुये हैं। जो फूलों से सुशोभित हैं। वहां कितने ही कुंज हैं। वहां हजारों पक्षी हैं सिंह, व्याघ्र, शरभ आदि जीव पड़े हुये हैं। वहां हाथी चामर आदिक अनेक जीव जन्तु भरे हैं। हे द्विज श्रेष्ठ! यह अति ऊँचा मेरु पर्वत है अब उसके विष्कम्भ के विषय में सुनिये—

मेरु के चारों दिशाओं में चार बड़े-बड़े स्तम्भ पाद हैं। जो सात द्वीप वाली पृथ्वी को पकड़े हुये हैं। इससे पृथ्वी हिलती डुलती नहीं। ये पर्वत पाद दश हजार योजन विस्तार वाले हैं। इनके नीचे देव गन्धर्वों की अनेक रत्न मय कन्दरायें सुशोभित हैं। मध्य देश में पुष्पों की ढेरी लगी रहती है। वहां मैनशिल की कन्दरायें हैं। स्वर्ण एवं मणियों से चित्रित गुफायें हैं। वहां सर्वत्र आनन्द और उल्लास है। शोभा सम्पन्न हजारों महल और विमान वहां विराजमान हैं। उसके दक्षिण में गन्धमादन, पूर्व में मन्दर, पश्चिम में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व नाम के पर्वत हैं। उनके हजारों शृंगों पर दीपक और पताका के समान चार महान वृक्ष हैं उनकी शाखा में हजारों योजनों की ऊँचाई तक फैली हुई है जिनमें फल फूल सर्वदा लगे रहते हैं। उनके वृक्षों की जड़ें बहुत मजबूत थीं।

उस मन्दर वृक्ष के शिखर पर एक केतुगढ़ नामक महा-वृक्ष विद्यमान है। उसकी शाखाओं से कन्दरा में लघुपादप, और शिखिर आवृत है। उनमें घड़ों के समान बड़े बड़े फल लटके हुये हैं।

रमणीक केशर से युक्त सभी ऋतुओं वाले पुष्प महक रहे हैं। मन्द २ मारुत के झोंकों से वे पुष्प अपनी सुगन्ध से हजारों योजन तक महका देते हैं। हे वाह्मणो ! यह जो उत्तम मेरु पर्वत है अब हम उसके बारे में बतायेंगे। इसके चारों तरफ बड़े २ लट्ठे लगे हुये है जिस से पृथ्वी चारों तरफ से घिरी हुई है। ये दस हजार योजन के हैं। इनके नीचे राक्षस गन्धर्व तथा देवताओं के रहने के सुन्दर २ स्थान बने हुये हैं। हे ब्राह्मणो ! वही वरकेतु देश को भद्राश्व कहते हैं। जिस जगह मनुष्य हृषीकेश भगवान की पूजा करते हैं। हे मनुष्यो ! उसी जगह भगवान रुद्र ने कदम्ब पेड़ के नीचे स्वयं भगवान विष्णु ने अवतार लिया था इसी कारण इस देश का नाम भद्राश्व पड़ा था। दक्षिण शैल के शिखिर पर एक जम्बू नाम का पेड़ है जो देवताओं द्वारा हरा भरा फूलों से सुशोभित रहता है। इसकी जड़ें और शाखायें बहुत बड़ी और विशाल हैं। वह हर समय फूलों से शोभायमान रहता है। उस पहाड़ के शिखर से अमृत के समान मीठे मीठे फल हर समय मिलते रहते हैं। उस पर्वत से जिसके कारण एक गण्ड देश से जम्बू नाम की एक नदी निकली है। जिसमें शहद के समान मीठा रस बहता रहता है। उस नदी में सब पापों को नाश करने वाला आग के समान चमकता हुआ सोना पैदा होता है। वह सोना देवताओं के भूषणों का काम करता है। उस मीठे जम्बू नदी के रस को देवता, गन्धर्व, राक्षस इत्यादि पीते हैं। दक्षिण द्वीप में केतु रूप जम्बू वृक्ष जम्ब लोक में प्रसिद्ध है। इसी कारण यह जम्बू द्वीप के नाम से प्रसिद्ध है। उस विशाल शैल के पश्चिम शिखर पर एक बहुत बड़ी पीपल का वृक्ष है। उसकी शाखायें बहुत विस्तार में फैली हुई हैं। उसके चारों तरफ जीवजन्तु रहते हैं। स्वर्ण तथा मणियों से चित्रित उसकी पृथ्वी है। उस वृक्ष पर हर समय सभी ऋतुओं के फल लगे रहते हैं। उस वृक्ष की सेवा देवता, गन्धवर्व भी किया करते हैं। केतुमाल देश की पताका के समान वह वृक्ष है। हे ब्राह्मणो अब हम आपको यह बतायेंगे कि उस देश का नाम केतुमाल देश

कैसे पड़ा। क्षीर सागर के मथने के समय जब राक्षस लोग हार गये तब इन्द्र ने अपने गले से माला उतार कर इसी पीपल के वृक्ष पर टांग दी थी और लड़ाई में दैत्यों के प्रहार से वह माला मुरझा गई थी, सब सिद्धियों की देने वाली माला अब भी उस स्थान पर टँगी हुई है। सिद्ध लोग उसकी पूजा करते रहते हैं। उस केतुरूप वृक्ष पर इन्द्र के हाथ से टँगी माला अब भी वहां सुशोभित है। और उससे सुगन्धि निकलती रहती है इसी कारण इस का नाम स्वर्ग तथा मृत्यु लोक में केतुमाल देश पड़ा। उसी के पास उत्तर शिखर में एक बहुत बड़ा वट का वृक्ष है। तरह तरह के गन्धों से भरा रहता है। तथा उस पर लाल लाल मीठे फल लगते रहते हैं। सनत्कुमार इत्यादि महर्षियों के नाम पर ही उसका नाम कुरु पड़ा। उन महर्षियों ने शाश्वत लोक को प्राप्त किया। उन्हीं महर्षियों के नाम पर ही उस द्वीप का नाम दोनों लोकों में उत्तर कुरु के नाम से प्रसिद्ध हुआ॥

इति का जम्बूद्वीप वर्णन नाम का पैंतीसवां अध्याय समाप्त॥३५॥

* छत्तीसवाँ अध्याय *

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले–अब मैं उन चारों पर्वतों के रमणीक स्थानों को क्रम से कहूँगा। वहां यथा क्रम सभी काल में फल फूल लगे रहते हैं। सब जगह वहां पर सारिका, मयूर, चकोर, मदोत्कट, शुक और चित्रविचित्र भृङ्ग विचरते हैं। जीव जीवक, हेमक, मत्त कोकिल, वल्गु, सुकण्ठ कांचन, कलविंग आदि पक्षीगणों के मधुर निनाद से उनके प्रान्तर भाग सदा गुंजायमान और रमणीक बने रहते हैं। मतवाले और अलसाये भ्रमरों, मधुकरों से तथा किन्नरों से भी कहीं कहीं वह वन मुखरित रहता है। कोमल पल्लवों से सुशोभित सब वृक्ष वहां मन्द मन्द मारुत से कँपाये जाने पर सदा पुष्प वृद्धि करते हैं। फूलों के गुच्छे, मंजरियां और लाल लाल कोमल पत्ते मन्दवायु के झोंके से सदा हिलते हुये ऐसे जान पड़ते हैं, मानो यहां हिंडोले पड़े हों।

हे ब्राह्मणो! नाना धातुओं से विचित्र रमणीय शतशत शिलायें

और शल्ल वहां पर बिखरे पड़े रहते हैं जिनसे सारा बन प्रान्त सुशोभित रहता है यत्र तत्र, सिद्ध, देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग सिद्ध और अप्सरायें झुण्डों में वहां घूमते फिरते हैं। वहां देवताओं के चार बड़े २ और रमणीय वन हैं जहां वे क्रीड़ा किया करते हैं। उनके नाम हैं–चैत्ररथ, जो पूर्व दिशा में है, दक्षिण में नन्दनवन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सवितृवन हैं। इन चारों वनों का भीतर का भाग बड़ा ही मनोहर है। वहां सदा ही पक्षी कलरव करते रहते हैं। इन वनों में बड़े बड़े तीर्थ स्थान हैं। वहां बड़े २ नाग और महात्मा रहते हैं। वहां के जलाशयों का जल, मधुर स्वच्छ और मंगल कारक हैं। क्योंकि वहां वह जलराशि देवताओं, सिद्धों और राक्षसों द्वारा स्पर्श की जाती है। छाते के समान बड़े बड़े मनोहर, सुगन्धित और पंखड़ी वाले पुण्डरीक, उत्पलों आदि से वहां के जलाशय सुशोभित रहते हैं। वहां अरुणोद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शीतोद और उत्तर में महाभद्र नामक चार सरोवर हैं।

अरुणोद सरोवर के पूर्व के पर्वत का तत्व अब विस्तार से सुनिये। शीतान्त, कुमुञ्ज, सुधीर विकंक, मणिशील, कृष्णा, महानील, सविन्दु, मन्दर, रेणुमान, सुमेध, निषध और देवाचल तथा और भी बहुत से पर्वत मन्दर के पूर्व में वर्तमान हैं जो सदा सिद्धों के आवास स्थान हैं श्री शिखर, नमोत्तम शिशिर, कलिंग, पतंग, रुचक, सानुमान, ताम्राभ, विशाख, श्वेतोदर, समूल, विषधार, रत्नधार, एकशृंग, महामूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलाश और श्रेष्ठ पर्वत हिमवान आदि ये सब मानसरोवर के दक्षिण में हैं। ये पर्वत श्रेष्ठ तथा देवस्वभाव हैं। ये सब देवताओं के समान तेजस्वी तथा मेरु के दक्षिण में स्थित हैं।

हे ब्राह्मणो! शीतोद सरोवर के दूसरे भाग में जो उत्तम पर्वत है उनके विषय में अब आप सुनिये–सुवर्चा, शिखिशैल, काल, वैदूर्यगिरि कपिल, पिंगल, रुद्र, सुरस, कुमुद, मधुमान, अंजन, मुकुट, कृष्ण, पाण्डर सहस्रशिखिर, परिजात और शैलराज त्रिशृंग आदिक पर्वत पश्चिम दिशा में स्थित हैं। महाशैल, शंकुकूट, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल

सनुमान, इन्द्रशैल, नील, कनकशृंग, शतशृंग पुष्पक, मेघशैल, अचलोत्तम; विराज और जारुधि आदि पर्वत परम शोभायमान महाभद्र सरोवर के उत्तर में हैं। इनके बीच में जो स्थाल, अन्तर्द्रोणी और सरोवर हैं अब उनको सुनिये—

इति श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामकछतीसवां अध्याय समाप्त

सैंतीसवां अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले–शीतान्त और कुमुञ्ज पर्वतों के बीच एक द्रोणी (घाटी) है। यह तीन तीन सौ लम्बी और सौ योजन चौड़ी है। यहां नाना भांति के जीव और पक्षी निवास करतें हैं। यहां एक सरोवर है जिसका जल बड़ा मधुर स्वादिष्ट और रमणीक है। वह सरोवर पुण्डरीक और सहस्रदल कमलों से शोभित है। इसमें महानकाय दुर्धर्ष महासर्प निवास करते हैं। इसके शुभ जल में देव दानव स्नान किया करते हैं। यह सरोवर मृत्युलोक और स्वर्ग में विख्यात है। निर्मल जल से पूर्ण यह सरोवर सब देहधारियों का शरण दाता है।

वहीं ही पद्मवन में बिल्कुल बीच में एक महापद्म है जिसकी एक करोड़ पंखड़ियां हैं। वह तरुण सूर्य की भांति चमकता रहता है। वह सदा विकसित रहता है कभी भी मुर्झाता नहीं है। मतवाले भौंरे सदा गूँजते रहते हैं। मूर्तिमती लक्ष्मी का यह निवास स्थान है। इस में कोई सन्देह नहीं है। इसके पूर्वी तट पर सिद्ध गण निवास करते हैं। जहां फल फूलों से युक्त एक विल्ववन है। वह सौ योजन लम्बा चौड़ा है। इसमें विशाल तने वाले आधेकोश तक की ऊँचाई वाले हजारों वृक्ष हैं। उनकी विशाल शाखाओं में स्वर्ण के समान पीले, हरे तथा पाण्डुर वर्ण के फल लगे रहते है। जब ये पककर भर जाते हैं तब वन प्रान्त भर जाता है। यह वन संसार में श्रीवन के नाम से प्रसिद्ध है। यहां यक्ष, गन्धर्व किन्नेर, महानाग, सदा निवास करते हैं और विचरण करते हैं। विल्व के फलों के लिये यहां सिद्धगण निवास करते हैं

साक्षात लक्ष्मी यहां निवास करती हैं, सिद्धगण उन्हें प्रणाम करते हैं।

विकंक और मणिशैल के मध्य में सौ योजन लम्बा और दो योजन चौड़ा बड़ा सा चम्पक वन है। यहां भी सिद्ध चारण निवास करते हैं। फूलों की आभा से यह वन सदा जलता हुआ सा देदीप्यमान रहता है। आधे कोस तक फैली ऊँची ऊँची विशाल शाखा पत्तों के भार से झुकी रहती हैं। पाण्डु वर्ण के केसरों से युक्त और मनःशिला के चूर्ण की तरह रंग वाले, विकसित, मनोहर, सुगन्धित तीन हाथ लम्बे और दो हाथ चौड़े पुष्पों से वह सदा सुशोभित रहता है। उन पर भौंरे मँड़राते रहते हैं जिससे वन स्वयं मुखरित सा जान पड़ता है। यहां भगवान कश्यप प्रजापति का आश्रम भी है। यहां सिद्ध और मध्यजन भरे पड़े हैं और चारों वेदों का पाठ होता रहता है। महानील और कुमुंज पर्वतों के बीच भी सुख देने वाली महानदी के सिद्ध सेवित तट पर पचास योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक मनोहर तालवन है। वहां के ताड़ के पेड़ भी आधे कोस लम्बे हैं। इनका मूल भाग खूब मोटा और स्थिर है। सभी वृक्ष एक में सटे हुए हैं। उनमें सुगन्धित और रसीले फल लगे हुए हैं। इनको सिद्ध लोग खाया करते हैं। इस वन को इन्द्र के हाथी ऐरावत का वास स्थान कहा जाता है। यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है वेणुमंत और सुमेध पर्वतों के बीच सत्तर हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा एक मैदान है जहां लता पत्ता, गुल्म निकुंज आदि कुछ भी नहीं है। जीव जन्तुओं का निवास भी वहां नहीं है। यहां केवल हरी हरी दुर्वे उगी हुई हैं।

निवध शैल और देवशैल के उत्तर में हजार योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी एक विशाल खण्डमय भूमि है। यहाँ भी वृक्ष लता आदि नहीं। हां, थोड़ा सा पानी, सभी जगह फैला हुआ है। हे ब्राह्मणो, इस प्रकार यह मैंने आप लोगों को इन अनेकों प्रकार से स्तर द्रोणियों को क्रमशः बता दिया जो मेरु के पूर्व में स्थित हैं।

इति श्री वायु महापुराण का भुवन विन्यास नाम का सैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥३७॥

* अड़तीसवाँ अध्याय *

(भुवन विन्यास)

अब मैं उन स्थानों का क्रम से वर्णन करूँगा, जहां दक्षिण दिशा की द्रोणियों में सिद्ध योगी पुरुष सदा ध्यान में लीन होकर आसन लगाये रहते हैं। शिशिर और पंतग पर्वत के बीच में एक सुन्दर उदुम्बर वन है। उस वन की चिकनी मिट्टी है ऊँचे ऊँचे शिखर वाले पर्वतों के वृक्षों पर तरह तरह के पक्षि रहते हैं तथा हर ऋतुओं में लाल रंग के पके हुये मीठे फल लगे होते हैं। यक्ष, गन्धर्व देव, किन्नर इत्यादि उन फलों का बहुत खुश होकर सेवन करते हैं वहां पर बहुत मीठे तथा स्वच्छ जल की नदियाँ बहती हैं। और बहुत सरोवर भी वहां पर हैं। उस जगह कर्दम प्रजापति का सुन्दर रहने का स्थान भी है। वहां पर देवता निवास करते हैं वह वन बहुत ही सुन्दर है। उसके चारों तरफ का घेरा सौ योजन का है। ताम्र वर्ण और पतङ्ग पर्वत के बीच एक महान सरोवर है जिसकी लम्बाई चौड़ाई सौ योजन है। उसमें निकलते हुये सूर्य की तरह चमकीला कमल, सहस्र पत्र, महापद्म चारों तरफ खिले हुये हैं। तरह तरह के सुन्दर कमल पुष्पों से उसका जल शोभित हो रहा है। देवता, राक्षस किन्नर इत्यादि उस जल को पीते हैं। उसी के बीच में सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक देश है। जो गेरू के रंग की तरह शोभित है उस देश की बहुत बड़ी सड़क हैं जिसकी चारों तरफ दीवारें बन्दनवार से सजी हुई हैं। स्त्री पुरुषों से शोभित उस नगर की सड़क अपनी श्री पर अभिमान करती है। उसके बीच में एक विद्वान ब्राह्मणों का नगर बसा हुआ है उस नगर की ऊँची ऊँची अट्टालिकाऐं एक लाइन में सजी हुई हैं। जिनमें सुन्दर सुन्दर झल्लर लटक रही हैं। उसके महलों की दीवारें मणि और रत्नों से चित्रित की गई हैं। उन विद्वान ब्राह्मणों के स्वामी पुलोमा नाम से प्रसिद्ध हैं। वह तेजवान अनेक आभूषण और मालाओं से ससज्जित रहते हैं तथा उनके चारों तरफ आभूषण से सजे हुये विद्वान ब्राह्म ण

रहते हैं। विशाल और पर्वत के बीच ताम्रवर्ण सरोवर के पूर्व के किनारे पर एक आम का वन शोभित है। तरह तरह के रंगों की उस वृक्ष की शाखायें बहुत बड़ी बड़ी विशाल चारो तरफ को फैली हुई है। जिनमें तरह तरह के मीठे मीठे पके हुये फल लगे हुये हैं। उस आम के फलों को राक्षस गन्धर्व किन्नर इत्यादि बड़े शौक से खाते हैं उस मीठे रस को पीकर वहां के मनुष्य सदैव खुश रहते हैं।

हे ब्राह्मणो ! समूल और वसुधार पर्वतों के बीच में एक बिल्व स्थली है, जो चारों तरफ से एक सी चौकोर अच्छी सुगन्धि से युक्त तथा मीठे फलों से सदा शोभायमान रहती है। उसकी लम्बाई तीस योजन की थी और चौड़ाई पचास योजन की है। उस जगह पक्षी चहचहाते रहते हैं। तरह तरह के लाल पीले रंगों के बेल गिर गिर कर पृथ्वी पर फैले रहते हैं। वहां के मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि बहुत से मनुष्य नित्यप्रति बेल गिरि को ही खाते हैं। बसुधार और रत्नधार पर्वतों के बीच में एक पलाश वन है जिसकी लम्बाई सौ योजन तथा चौड़ाई तीस योजन की है। वहां के वृक्ष हर समय हरे भरे तथा रँग विरँगे फूलों से शोभित रहते हैं। फूलों की अच्छी सुगन्धि से वहां का देश हर समय सुवासित रहता है। हजारों योजन तक उसकी सुगन्धि फैली रहती है। उस जगह भगवान सूर्य का एक सुन्दर विशाल महल बना है जहां पर सूर्य भगवान प्रत्येक महीने पर जाते रहते हैं। वहां के सिद्ध पुरुष उन कान्तिमान भगवान सूर्य की पूजा करते हैं। पेचकूट और कैलाश पर्वत के बीच की जो भूमि है उसकी लम्बाई सौ योजन है और चौड़ाई तिरेसठ योजन की है। मनुष्यों के लिये वहां जाने का रास्ता बड़ा कठिन है अतः वहां कोई भी नहीं जासकता है। वहां की भूमि उज्ज्वल और स्वच्छ है। दक्षिण दिशा में उतनी द्रोणियां हैं जिनका हम पहले वर्णन कर चुके हैं। हे ब्राह्मणो ! अब हम आपको जो पश्चिम दिशा में अन्तर द्रोणियां हैं उनके बारे में क्रम से बतायेंगे। सुवक्त्र और शिखिशैल पर्वतों के बीच में एक शिला खण्ड पृथ्वी है जिसका विस्तार

सौ योजन का है वह हमेशा गर्म रहती है। उस अत्यन्त गर्म भयंकर भूमि को छूने से ही मनुष्य कांप उठते हैं। उस शिलाखण्ड के बीच में अग्निदेव का एक विशाल भयंकर स्थान है। विभावसु अग्निदेव बिना ईंधन के ही वहां हर समय जलते रहते हैं।

वहां एक दस योजन लम्बी एक 'मातुलुंगी' नामक स्थली है जो देवादि और गय नामक श्रेष्ठ पर्वतों के मध्य में है। वह वनस्थली सदा मधुमय व्यंजनों और सुरस पके फलों से परिपूर्ण रहती है। वहां ही बृहस्पति का महा पवित्र स्थान है। जो सिद्धगणों से भरा हुआ, सुखद और सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है।

उसी प्रकार कुमुद और अंजनाचल नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच में बहुत योजन तक विस्तीर्ण एक केशर द्रोणी है। वहां का वन सभी धातुओं में खिलने वाले कुसुमों से रंगीन और शोभायमान है वहां के खिले हुये फूल डेढ़ हाथ लम्बे चौड़े चन्द्रमा के समान श्वेत रंग के हैं। उनपर सदा मस्त काले भौंरे गूँजते रहते हैं। वहां देवताओं में श्रेष्ठ (गुरु) श्री विष्णु भगवान का एक चमकता हुआ मन्दिर है। जो तीनों लोकों में प्रकाशवान और सब के वन्दनीय हैं।

कृष्ण और पाण्डुर नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच ६० योजन लम्बा और ३० योजन चौड़ा एक देश है। इस देश में एक चिकनी शिला ही एक छोर से दूसरे छोर तक बिछी है। वहां लता वृक्ष आदि कुछ भी नहीं है। वहां समतल भूमि होने से चलने फिरने वालों को बड़ी सुगमता है। उसके मध्य में एक सरोवर है जहां रमणीय पद्मनी खिली हैं। उसमें असंख्य सहस्रदल कमल खिले हैं जो ऐसे मालूम पड़ते हैं मानो वह सरोवर अनेक छत्रों से अलंकृत है। यह सरोवर मनोहर गन्ध से युक्त महापद्म पुण्डरीक, और खिले हुये शतपत्र, उत्पन्न नीलपत्र एवं मत्तभ्रमर तथा मदमस्त मधुकरों से सदा शोभायमान रहता है। यह पद्मवन सदा कोमल गद्गद कण्ठ वाले किन्नरों के गीतों से सदा निनादित रहता है। यह 'पद्मिनी' स्थल विस्तीर्ण है यक्ष गन्धर्व विचरण करते हैं सिद्धचारण लोग देख रेख करते हैं

इस पद्म वन के बीच पांच योजन की परिधि में अनेक शाखा वाला विशाल न्यग्रोध (वट) का वृक्ष है। वहां असुरों का संहार करने वाले हजार मुख वाले, श्रीमान् नीलाम्बर देव विराजमान रहते हैं। उनकी कान्ति चन्द्रमा के समान है। उनका मुख पूर्ण चन्द्र की सी कान्ति वाला है। वे यक्ष गन्धर्व और विद्याधरों के द्वारा सदा पूजे जाते हैं जो पद्मों से सदा पूजे जाते हैं। यह स्थान सर्वत्र सबलोकों में 'अनन्त सदन' के नाम से प्रसिद्ध है। यह पद्ममाला तथा अन्य पुष्पों की मालाओं से सदा मण्डित है।

सहस्र शिखिर और कुमुद पर्वतों के बीच सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक ऊँचा पर्वत शिखिर है जो फैंके गये ऊँचे तीर तक की ऊँचाई वाला है। वह चारों ओर से मधु टपकाने वाले वृक्षों से मण्डित है। वहां अनेकों प्रकार के पक्षी सदा कलरव करते रहते हैं। उन वृक्षों के फल हाथी के शरीर के समान बड़े २ और स्वादिष्ट होते हैं। उस शिखर पर भगवान शुक्राचार्य का आश्रम है। वह आश्रम पवित्र, देव ऋषियों से सेवित और देदीप्यमान तथा विख्यात है। शंकुकूट और वृषभ पर्वत के बीच एक अत्यन्त विस्तार वाला 'परूषक स्थली' है जिसके बेल के समान बड़े बड़े, सुन्दर, सुगन्धित और सुस्वादु परूष फल टहनियों से टपक टपक कर वहाँ की भूमिको पंकिल बनाये रहते हैं। चारणगण परूष के रस को पीकर मत्त बने फिरते हैं। इस स्थल में सदा किन्नर उरग तथा साधुगण सदा विचरण किया करते हैं।

कपिंजल और नागशैल के अन्तराल में नाना वनों से विभूषित दो सौ योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी एक मनोहर स्थली है। यहां किन्नर उरग विचरण किया करते हैं। यहां पर सुन्दर, द्राक्षावन नागवन, खर्जूरवन, नीलवन, नील, अशोकवन, स्वादिष्ट दाड़िमों के वन, अखरोट के वन, अतसी-तिलकवन, कदलीबन और स्वादिष्ट बदरीवन हैं। वह स्थल मधुवन और शीतल जल वाली नदियों से अत्यन्त रमणीक है।

पुष्पक और महामेघ पर्वतों के बीच एक पाण्डुर वर्ण की अति समतल जो हथेली की तरह है, एक विस्तृत भूमि है जो सौ योजन चौड़ी और साठ योजन लम्बी है। वहाँ वृक्षलता आदि बिल्कुल नहीं हैं। वहां एक भी जीव जन्तु नहीं है। यह भूमि कठोर और भयंकर है। इसका नाम कानन स्थली है। यहां प्रजापति द्वारा बनाये गये अनेक क्षुद्र सरोवर वन व स्थान हैं। उनकी गिनती नहीं है जो सात आठ दश, बारह योजन की लम्बाई चौड़ाई में हैं। वहां जगह जगह पर अनेक कन्दरायें और घाटियां हैं, जहां कभी भी सूर्य की किरणें नहीं पहुँचपातीं। यहां कोई नहीं जा सकता। हे ब्राह्मणो! वहां कितने ही सरोवर हैं जो पर्वतों की कुक्षि में बने हैं जो संख्या में सहस्रों हैं। इनका जल सदा खौलता रहता है।

इति का 'भुवन विन्यास' नाम का पैंतीसवां अध्याय समाप्त ॥३५॥

उन्तालीसवां अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले–अब हम आपको उस कथा का वर्णन सुनायेंगे, जिसमें पर्वतों के जिन जिन शिखरों पर देवताओं के उत्तम घर बने हुये हैं। उन पर्वतों के बीच में शीतान्त नाम का एक महागिरि पर्वत है। उसमें से तरह तरह के रत्न पैदा होते हैं वह अनेक गैरकादि धातुओं से चित्रित है। उन सब के बीच बहुत से फूलों के ढेर पड़े हुए हैं। वह अनेक तरह के सोने चांदी और मणियों के वासों से चित्रित है। उसके चारों तरफ किनारों पर फूल लगे हुए हैं जिन पर भौंरे गुंजारते रहते हैं। उसकी पृथ्वी सोने और मूँगे से चित्रित है। पर्वत की चोटियों पर लताऐं इधर उधर फैली हुई हैं मालूम पड़ता है कि उन्होने अपने बेल बूटे काढ़ रखे हों, तरह तरह की धातुऐं जमीन पर इस तरह बिखरी पड़ी हैं जैसे जमीन पर चित्र बना रखे हों। वहां के अनेक सरोवरों के पानी मीठे और साफ हैं। वहां की कुञ्जों में फूलों के बहुत झुंड लगे हैं जिनसे वहां की शोभा और भी अधिक बढ़जाती है। वहां की नदियों में फूलों से सजी

हुई नावें बहती हैं। वहां पर बहुत सी गुफाऐं बनी हुई हैं जिनमें किन्नर इत्यादि रहते हैं। अधिक भयंकर सघन वन होने के कारण भी वह बहुत सुखदायी स्थान है। उस जगह अनेक रंगों के तथा मीठे मीठे फलों के बहुत से पेड़ लगे हुए हैं। वहां के सभी जीव जन्तुओं के खाने पीने का साधन है। उस पर्वत के बीच में बहुत सी कन्दरायें बनी हुई हैं। वहां पर बहुत से आश्रम बने हुये हैं। उस जगह श्री इन्द्रदेव का भोग विलास से युक्त एक क्रीड़ावन भी है। तीनों प्रसिद्ध पारिजात वन भी उसी जगह हैं। बालसूर्य की तरह चमकीला और सुगन्धित फूलों से वह पर्वत शोभायमान रहता है। पारिजात वन की सुगन्धि सैकड़ों योजन तक फैली हुई है। उस जगह पर बहुत सी बावड़ियां भी हैं जिनमें स्वर्ण पुष्प खिले रहते हैं। उन कमलों की जड़ें मूँगे की हैं तथा पत्ते हीरों के बने हैं। जिनपर भौंरे गुंजार करते रहते है। वहां बावड़ी का भी पानी सुगन्ध पूर्ण है। और बावड़ियों पर अनेक रंगों के शत पत्र तथा महापत्रों के भी वृक्ष लगे हुये हैं। सोने और मणियों से शोभित हजारों मछलियां पानी में तैरती रहती हैं। और ऐसी ही तरह के बहुत से कछुए भी पानी में इधर उधर घूमते रहते हैं। देवराज इन्द्र के वन में बहुत से पक्षी भी किलोल करते फिरते हैं। उन पक्षियों के पंख रत्न और सोने के फूलों से सजे हुये हैं। और बहुत से पक्षियों की चोंचों से मणि लगे हुये हैं। पक्षियों की चहचहाअट तथा भौंरों के गुंजार से वह वन हर समय शोभित रहता है। इसी कारण उसका क्रीड़ावन नाम पड़ा है। इन क्रीड़ावन के पर्वत मणिमुक्ताओं से चित्रित है। उनके पार्श्व देश सोने के बने हुये हैं और शिखरों से मणियों के छोटे छोटे कण झरते रहते हैं। तरह तरह के बन्दरों से वह वन शोभित है। पारिजात पुष्प के पेड़ हल्की २ हवा से ही फूल बरसाने लगते हैं। इन्द्र के वन में भोग विलास के अनेक स्थान हैं। वहां के सोने के स्थान तरह २ की मणियों शोभायमान रहते हैं। उस जगह न अधिक गर्मी पड़ती है न अधिक सर्दी पड़ती है क्योंकि वहां सूर्य देव हमेशा एकगति में रहते हैं।

तरह तरह की सुगन्धि से पूर्ण वह वसन्त कालीन हवा वहां बहती रहती है। यह हवा सुखदायी है। और दुख दूर करने वाली है।

देवराज इन्द्र के उस सुन्दरवन में देव, दानव,यक्ष, किन्नर, गन्धर्व विद्याधर, सिद्ध और अप्सरायें क्रीड़ा विहार करती हैं, और उस पर्वतराज के पूर्व पार्श्व में कुमुज्ज नाम का एक पर्वतराज है, जिसमें बहुत से झरने और गुफायें बनी हैं। वहीं पर दानवों के आठ पुर बने हुये हैं जिनकी चोटियां तरह की धातुओं से चित्रित हैं। वहां पर अत्यन्त वलवान भंवकर कामरूपी नीलक नाम के राक्षस भी रहते हैं। उन महानील पर्वत पर घोड़े के तरह मुँह वाले किन्नरों के भी पन्द्रह पुर बने हुये हैं। महाबाहु देव सेन और पराक्रमी इन्द्रादि हैं पन्द्रह किन्नर राज वहां के स्वामी हैं। अनेक रंगों के सोने के घेरे से वह नगर चारों तरफ से घिरा हुआ है। उस नगर में हजारों विष धारी अजगर सांप रहते हैं। जिनके देखने से ही विष चढ़ जाता है वे अत्यन्त भंयकर दुर्धुर्ष और क्रोधित होने पर भी अग्नि की तरह क्रान्तिमान होते हैं वे सुवर्ण के वश होते हैं। सर्पों के रहते हुए भी उस पर्वत पर हजारों राक्षस रहते हैं। उनके रहने के निवास स्थान और खिड़कियों पर झल्लर और बन्दरवार लगी हुई हैं।

वेणुमान नाम के पर्वत पर विद्याधरों के तीन नगर बने हुए हैं वह नगर पचास योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े हैं। उन तीनों पुरों के इन्द्र के समान तेजस्वी महावली उलूक रोमश और महा नेत्र नामके विद्याधर स्वामी हैं। बैंकंक नाम के पर्वत की चोटी पर गरुड़ जी के पुत्र सुग्रीव का निवास स्थान है वह पर्वत की चोटी अनेक रत्न और धातुओं से चित्रित है उस जगह बहुत से झरने और गुफायें भी हैं। वहां पर अत्यन्त वलवान सुग्रीव वायु, के समान शीघ्र चलने वाले दुर्धुर्ष और सर्पों के निहन्ता गरुड़ पुत्र हैं कंरज्ज पर्वत पर स्वयं भगवान और योगियों के प्रभु वृषभाङ्क भगवान जी निवास करते हैं। उस कंरज पर्वत पर तरह तरह के रूप पखने वाले दुर्धुर्ष प्रथमगण रहते हैं वसुधार हर्वत पर आठों वसु गणों के आठ घर बने हुए हैं।

गिरिवर रत्नधातुओं के ऊपर सप्तर्षियों के सात आश्रम बने हुये हैं। वह आश्रम सिद्धों के भवन से घिरे हुये हैं। हेमश्रृङ्ग पर्वत के ऊपर प्रजापति चतुर्मुखी ब्रह्माजी का रहने का स्थान है। गजशैल पर्वत पर भगवान रुद्र अपने गणों के साथ खुश होकर वहाँ पर रहते हैं। सभी मनुष्य और जीव इनको पूज्यते हैं। शैलेन्द्र सुमेधु तरह तरह की धातु अनेक रंगों से रंगी हैं। उसमें बहुत सी गुफायें, वन और कुंज बनी हुई हैं। वहाँ पर पराक्रमी आदित्य, वसु, रुद्र और अश्विनीकुमार के महल बने हुये हैं। इस पर्वत पर बहुत से सिद्ध देवों के निवास स्थान बने हुये हैं। यक्ष, गन्धर्व, किन्नर रोजाना जिनकी पूजा करते हैं। हेमकक्ष पर्वत पर प्रसिद्ध गन्धर्वों से घिरी एक नगरी बसी हुई है। जो अस्सी देवपुरों की तरह शोभासम्पन्न विशाल आकार की तथा ध्वजा और झल्लरों से शोभित है। अपत्तन नाम के सिद्धगण और युद्ध प्रेमी गन्धर्व वहां रहते हैं जिनके स्वामी राजराज कपिंजल हैं। अनल पर्वत पर राक्षस अधिक रहते हैं, और पंचकूट पर्वत पर दानव रहते हैं। ये राक्षस और अत्यन्त बलवान देवताओं के शत्रु है। शतश्रंग पर्वत पर बलवान यक्षों के सौ पुर बसे हुये हैं। ताम्राभ पर्वत पर कद्रु के पुत्र तक्षक की एक उत्तम पुरी है। स्वामी कार्तिकेयजी का एक विशाल निवास स्थान बना हुआ है। खेतोदर नाम के पर्वतराज पर गरुड़ पुत्र महात्मा सुनाभ का पुर बसा हुआ है। पिशाच नाम के पर्वत पर कुबेर का बहुत बड़ा भवन बना हुआ है। हरिकूट पर्वत पर भगवान हरिदेव का निवास स्थान है। कुमुद पर्वत पर किन्नरों का रहने ना निवास स्थान है। अंजन पर्वत पर उरगगण रहते हैं। कृष्ण पर्वत पर गन्धर्वों का विशाल भवन बना हुआ है। पाण्डुर पर्वत पर विद्याधरों का पुर बसा हुआ है जिसमें चारों तरफ तोरण और झल्लर लगी हुई हैं। सहस्र शिखर नाम के पर्वत पर दैत्यों की सुवर्ण मण्डित सहस्रपुरी बसी हुई है। मुकुट पर्वत पर पन्नगों के बहुत से रहने के स्थान बने हुये हैं। पुष्पक पर्वत पर मुनिगण आनन्द मग्न होकर रहते हैं। सुपक्ष पर्वत पर

वैवस्वत, सोम, वायु और नगाधिप के चार रहने के स्थान बने हुये हैं इन स्थानों पर गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग, सिद्ध, विद्याधर इत्यादि अपने अपने इष्ट देवों की पूजा करते हैं ॥

॥ इति श्री वायु महापुराण का भुवन विन्यास नामक
उनतालीसवां अध्याय समाप्त ॥

चालीसवाँ अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले—देवकूट नाम के पर्वत के शिखर पर विनिता के पुत्र सुपर्ण का निवास स्थान बना है। उस क्षेत्र की लम्बाई चौड़ाई सौ योजन की है। उस जगह बहुत से बड़े बड़े महल बने हुये हैं। शाल्मलिद्वीप में पक्षीराज गरुड़ का प्रथम भवन बना है। जिस जगह अत्यन्त बलवान, सर्प निहन्ता शीघ्र चलने वाले बहुत से पक्षिगण रहते हैं। सुन्दर शिखर से युक्त उस पर्वत राज की दक्षिण दिशा में सात तरह के श्रृंग हैं। उनपर देवों के बनाये हुये बहुत से भवन स्थित हैं। उन पर सोने की झल्लर लगी हुई हैं। वहां गन्धर्वों के सात नगर बसे हुये हैं। जिनकी लम्बाई चालीस योजन है और चौड़ाई तीस योजन है। आग्नेय नाम के पराक्रमी कुबरे के अनुचर गन्धर्व उन उत्तम महलों के स्वामी है। हे ब्राह्मणो ! उस भुवन महागिरि के उत्तर शिखर पर देवों के शत्रु सैंहिकेयो का निवास स्थान है। उस नगर का विस्तर तीस योजन का है। वहां पर बहुत सी अट्टालिकाऐं बाग और वन है। उनके चारों तरफ झल्लर तोरण लगे हैं, सैंकड़ों तरह के बाजे बजते रहते हैं जिससे बगीचों में खुशी की लहर फैली रहती हैं। देवकूट पर्वत पर स्थित वह नगर सिद्ध और देवर्षियों का विहार स्थल है। ब्राह्मणों ! दूसरे मर्यादा नाम के पर्वत पर तरह तरह के वर्ण के विशाल भवनों के समूह से युक्त कालिकेय नाम के असुरों का एक दुर्गम नगर है। वहां पर सुवर्ण और मणियों से चित्रित अनेक भवन और बड़े बड़े राजपथ हैं। वह हर समय नर नारियों से भरे रहते है। वह नगर सौ योजन लम्बा और साठ योजन

चौड़ा है। सुनास नामका पर्वत महा मेघ की समूह की तरह जान पड़ता है। उसी के दक्षिण शिखिर पर औत्कम्ब नाम का पर्वत है। उस पर्वत पर राक्षसों का निवास स्थान है, उसकी लम्बाई बासठ योजन की है और चौड़ाई बीस योजन की है। उस पुर में सोने की तोरण और पताका लगी हुई हैं। जो देवकूट पर्वत के बीच शिखर पर स्थिति हैं, वह सोने और मणियों की शिलाओं से चित्रित है। उस महापुर के ऊँचे ऊँचे विशाल महलों में सौ सौ और हजार हजार डगों की सीड़ियां हैं। उसी देवकूट पर्वत पर एक विशाल भूतवट नाम का वृक्ष है, जिसके चिकने पत्ते हैं उसकी जड़ें विशाल हैं और बहुत से तने तथा घनी छाया है। उस भूतवट वृक्ष के चारों तरफ जीव रहते हैं उस जगह भगवान शंकर का भास्वर नामका प्रसिद्ध स्थान है। उस स्थान में सूअर, भालू हाथी, बकरे के मुँह वाले बलवाल तरह तरह के वेश बदलने वाले राक्षस, भूतप्रेत इत्यादि निवास करते हैं। उस जगह भूतगण भगवान महादेव जी की नित्य पूजा करते हैं। तरह २ के बाजे नगाड़ों और ढोलों को बजाकर प्रमथादि गणेश्वर वहां महादेव जी की पूजा करते हैं। उस स्थान पर स्वयं भगवान महादेव जी की सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग सदा पूजा करते हैं।

इति 'भुवन विन्यास' नाम का चालीसवां अध्याय समाप्त ॥४०॥

एकतालीसवां अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले—देवकूट पर्वत के सुन्दर शिखर पर कैलास पर्वत बसा हुआ है। उसकी लम्बाई सौ योजन की है और चौड़ाई पचास योजन की है। इसका शिखर शंख की तरह सफेद शान्त और सुन्दर है। बहुत से अच्छे भक्त वहां रहते हैं। वहां एक बहुत बड़ा नगर बसा हुआ है जो सुवर्ण और मणियों से चित्रित है। वह नगर धनाधिपति कुवेर का है। उस नगर में शत्रु आक्रमण नहीं कर सकते, वह सब जगह से सुरक्षित वैभव सम्पन्न नगर है। उस नगर के बीच में अनेक स्तम्भ वाला, ध्वजा से युक्त बहुत तरह के सोने से सजी हुई

एक मनोहर विपुला नामक सभाभवन है। उसी जगह पर एक सुन्दर महाविमान है। जो तरह तरह के रत्नों से शोभित है। जिसकी इच्छा से सभी वस्तुऐं शीघ्र मिल जाती हैं। अपनी इच्छा मात्र से चलने वाला और सोने के तारों से मढ़ा हुआ है। इसी विमान पर चढ़कर धनाधिपति कुबेर देव सवारी करते हैं। उस जगह में भूतों के पूज्य एक पिंगल यक्षेन्द्र देव स्वयं निवास करते हैं, जो भगवान महादेव जी के सखा हैं। वह उत्तम देव कुबेर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, धारण और अप्सराओं के साथ सुख पूर्वक निवास करते हैं। धनाधिपति कुबेर की सभा में आठ दिव्य महानिधि स्थिति है जहां रत्न संचित रहते हैं। पद्म महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, शंख, नील और निधि श्रेष्ठ नन्दन इत्यादि आठ महानिधि है। वहां ही कुबेर का निवास स्थान है। उसी जगह के पास इन्द्र, अग्नि, यम इत्यादि देवताओं और अप्सराओं के निवास स्थान है। सब से पहले गण यक्षेन्द्र की पूजा करके उनके पीछे चलते हैं। वहां एक अत्यन्त धीरे बहने वाली मन्दाकिनी नदी भी है। जिसमें मणियों के घाट बने हुये हैं। वहां पर तरह२ के फूलों के वृक्ष लगे हुये है। उसमें यक्ष, गन्धर्वों की स्त्रियां तथा अप्सरायें स्नान करती हैं। उस मन्दाकिनी नदी के जल को देव दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नग पिया करते हैं। यह गन्ध स्पर्श के गुणों का महापद्मों से सदा सजी रहती हैं। इसके अलावा अलकनन्दा और नन्दा नाम की दो और नदियां भी वहां बहती हैं। जो सुधा के समान जल से युक्त हैं। जिसको देवर्षि जन पान किया करते हैं। इस पर्वतराज के पूर्व शिखिर पर गन्धर्वों के दस नगर हैं जो हजार योजन लम्बे तथा तीस योजन चौड़े हैं। उन गन्धर्वों के नगरों के वैभव का क्या ठिकाना है। वहां पर बड़े बड़े नगरों का क्या ठिकाना है। ये संख्या में संकड़ों हैं। वहां पर महापराक्रमी तपे अङ्गार की सी कान्ति वाले, सुबाहु, हरिकेश, चित्रसेन और जर आदिक दस गन्धर्व राज निवास करते है। यह समस्त स्थान ८० योजन लम्बा और तीस चौड़ा है। यहां ही महाशयों के तीस भवन सम्पूर्ण सिद्ध हैं।

उन भवनों में सदा आनन्द की धारा बहती रहती है। महामाली, सुनेत्र और मणीवर तीस यक्षराज महाशय वहां के उदार स्वामी हैं। वायु और अग्नि के समान तेजस्वी इन यक्षों के अधिपति श्री सम्पन्न वैश्रवण हैं। इसी कैलास के दक्षिण भाग में पर्वत राज हिमालय स्थित है। जिसमें कि ने ही कुंज हैं। वहां झरनों और गुफाओं की कोई गिनती नहीं हैं। वहां मैदान चोटी तथा सरितायें भी बहुत हैं।

यह हिमालय पूर्वी समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्रतट तक फैला हुआ है। इसमें जहां तहां किन्नरों के नगर भी बसे हैं जो सौ के लगभग हैं। ये सब नगाधिराज हिमालय के मध्य में बसे से हैं। यहां के स्त्री पुरुष सदा प्रसन्न रहते हैं। सभी प्रजा हृष्ट पुष्ट है। द्रुम, सुग्रीव, सैन्य, भगदत्त आदिक प्रमुख सौराजा इनके अधिपति हैं इस पर्वत पर महादेव जी का उमा के साथ व्याह हुआ था। भगवती उमा देवी ने यहां पर ही कठोर तप किया था। महादेव जी ने भी किरात के रूप में यहां पर ही क्रीड़ा की थी। यहां से ही महादेव और पार्वती जी ने समस्त जम्बूद्वीप का अवलोकन किया था। यहां पर महादेव जी की क्रीड़ा भूमि सदा नाना प्रकार के फल फूलों से सम्पन्न तथा भूतगणों से युक्त और आनन्द प्रद है। इस शैल प्रदेश में सदा मनोहारिणी, सुन्दर नेत्र वाली, कृशोदरी किन्नरियां रमण किया करती हैं। यहां पर विशाल नेत्र वाले यक्ष गन्धर्व और सुन्दर अप्सरायें विहार करते हैं। जहां पर भगवान शंकर ने आधेशरीर से नारी और आधेशरीर से नर का रूप धारण किया था वहां पर ही 'शरवन' है और वहीं कार्तिकेय जी उत्पन्न हुये थे। कार्तिकेय जी ने यहीं अपनी शक्ति चलाई थी। यहीं पर इन्द्रादिक देवताओं ने उन्हें देव सेनापति बनाया था। और यहीं उनका अभिषेक भी किया था। यहां कार्तिकेय जी का एक सुन्दर ध्वज पताका से युक्त, किंकणी जाल से सुशोभित एक 'सिहंरथ' है। हे विप्रो! भूतगणों से युक्त स्वामी कार्तिकेय जी के यहाँ पर अनेक स्थान हैं। यहां पर हिमालय

के पृष्ठ भाग में कुमार की एक क्रीड़ा भूमि है जिसे 'पाण्डु शिला' कहते हैं। इसके पूर्वी भाग में सिद्धों का निवास है। जिसे विद्वान लोग 'कलाप ग्राम' कहते हैं। सूकरोड, भरत, वशिष्ठ, नल विश्वामित्र, उद्दालक आदि अनेक ब्रह्मर्षियों के यहां आश्रम हैं यह गिरराज अनेक प्रकार के रत्नों की खानों से युक्त है तथा अनेक नदियां यहां से निकली हैं। नाना प्रकार के जीव जन्तु यहां पर निवास करते हैं।

हे विप्रो! अब हम पश्चिम के 'निषध' नामक पर्वत का यथार्थ में वर्णन करेंगे। इसके मध्यम शिखर पर विष्णु भगवान का एक चमकीला मन्दिर है जो स्वर्ण से विभूषित है। यह स्थान यक्ष गन्धर्व अप्सरा आदि से व्याप्त है। यहां साक्षात् पीताम्बर धारण किये हुये भगवान हरि निवास करते हैं। जो वरदान देने वाले और सृष्टि कर्त्ता हैं। सिद्ध लोग सदा उनकी सेवा किया करते हैं। उसी निषध पर भीतरी भाग में उल्लंघी नामक राक्षसों का एक नगर है। वहां चांदी सोने के द्वार तथा तोरण लगे हैं। वहां के कोठे और महल खरे स्वर्ण की भांति चमकते रहते हैं। स्थान स्थान पर अनेक सुन्दर वाटिकायें हैं। वह नगर सर्पों से सदा भरा पूरा है। द्वार पर सर्प ही रखवाली करते हैं। यह नगर तीस योजन विस्तार वाला है। और सदा हरा भरा आनन्दमय है। इसी के दक्षिण भाग में बहुत से दैत्य निवास करते हैं। यहां एक 'दुष्प्रवेश्य' नगर है। इसमें प्रवेश करने का मार्ग एक गुफा है। उस पर्वत की महातट भूमि पर एक सोमशिला है। जहां प्रत्येक माम में चन्द्रमा उतरा करते हैं। ऋषि, किन्नर गन्धर्व दानव आदि तारापति चन्द्रमा की उपासना किया करते हैं। वह पर्वत शिखिर ब्रह्मपार्श्व कहलाता है वह सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा जी का स्थान कहा जाता है। वहाँ सभी लोग ब्रह्मा जी को नमस्कार किया करते हैं। यहीं वह्नि देव का निवास स्थान है। उत्तर भाग में त्रिकूट पर भूत सिद्ध ऋषि लोग निवास करते हैं। वहां ही हेमचित्र नामक एक विख्यात नगर है। वहां तीनों देवों के तीन स्थान हैं। बवेलशाली दैत्य दानव गन्धर्वों द्वारा सदा पूजे जाते हैं। उसी के उत्तर में जातुधि नामक

देव पर्वत हैं। जिसकी अनेक चोटियां हैं। जहां साधु निवास करते हैं यहीं रमणीक आनन्द सरोवर है। जो सदा निर्मल जल से पूर्ण रहता है। यह तीस योजन लम्बा चौड़ा है। यह सुन्दर घाट और कमल आदि से अत्यन्त मनोहर है। वहां 'चण्ड' नामक अत्यन्त भयंकर नागपति निवास करते हैं। वे महाभाग सौ फन वाले हैं जिन पर विष्णु के चक्रों के चिन्ह बने हैं।

इस प्रकार इन आठों को वि चित्र देव पर्वत समझना चाहिये। ये विस्तृत पर्वत, पुण्यात्मओं से परिपूर्ण हैं। ये मेरु के केसर की तरह बिखरे हुये ये पर्वत जाल ही सिद्ध लोक कहलाते हैं। ये विचित्र अनेक आश्रम युक्त और पुण्यात्माओं के विहार स्थल हैं। यह उदार कर्मा सिद्धों की मध्यमा प्रतिमा है। यह मेरु ही स्वर्ग कहलाता है। उसके स्थान क्रम का वर्णन इस प्रकार किया गया। अनेक वर्ण, भक्ष्य अन्न, पान, आच्छादन, भूषण और भांति भांति के प्रजाजनों से युक्त यह पृथ्वी चार द्वीपों वाली कहलाई गई है। ये भद्र, भरत, केतुमाल और उत्तर कुरु नामक चार महाद्वीप है। इनमें पुण्यात्मा लोग निवास करते हैं। हे ब्राह्मणो! हमने इस प्रकार चारों महाद्वीपों और अनेक द्वीपों से युक्त बताकर सम्पूर्ण पृथ्वी का वर्णन किया। इस प्रकार की उत्तरद्वीप, शैलवन, कानन से युक्त अत्यन्त विस्तार वाली यह पृथ्वी 'पद्म' कही गई है। ब्रह्मलोक, देवलोक तथा मनुष्य लोक तक यह सब त्रिलोक कहा जाता है। सूर्य चन्द्र से आलोकित और रूप रस, गन्ध, स्पर्श आदि से युक्त यह सब जगह कहा गया है। इसको पद्म कहा गया है। सभी पुराणों में पृथ्वी के वर्णन का क्रम इसी प्रकार से किया गया है।

॥ इति भुवन विन्यास नामक एकतालीसवां अध्याय समाप्त ॥

ब्यालीसवाँ अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले—हे ऋषियो! अब मैं पवित्र जलवाली देवनदियां और गम्भीर जलवाली अन्य नदियों का यथाक्रम वर्णन करूँगा जो सरोवरों से निकली हैं। सो सुनिये। जो सब जीवों के आधार है और

जो देवताओं के सुधारक है, जो आकाश समुद्र के चन्द्र माने जाते हैं उन्हीं से एक निर्मल जलवाली पुण्यसलिला नदी निकल कर सप्तम वायुपथ की ओर चली गई है। वह नदी ग्योतिष्मराड़ल तक बहती है। वह करोड़ों तारिकाओं तथा पिण्डों से घिरी है। देवराज इन्द्र के ऐरावत द्वारा आकाश में जाकर इस नदी का जल क्रीड़ास्थल में विक्षुब्ध होजाता है। विमानों पर चढ़कर जब सिद्ध पुरुष विहार करते है तो इस नदी के जल का आचमन करते है। जिस प्रकार सूर्य देव रोजाना घूमते रहते हैं उसी प्रकार यह नदी भी वायु से लक्षित होकर जगह जगह बहती रहती है। इस नदी का विस्तार चौरासी योजन का है। यह नदी हर समय मेरु पर्वत के चारों तरफ परिक्रमा की तरह घूमती रहती है। अपने तेज बहाव के कारण जगह जगह घटती बढ़ती मेरु पर्वत चार उत्तरीय शिखरों पर गिरती है और मेरु पर्वत के ऊँचे शिखरों से टकराकर जब वह दुबारा लोटती है तो इसका जल छिन्न भिन्न हो जाता है, जिसके कारण यह चार भागों में अलग २ होकर बहती है। मेरु पर्वत के चारों तरफ साठ योजन तक यह पवित्र नदी बिना किसी सहारे के आकाश में बहती हुई मेरु के निचले भाग में चार भागों में बटकर अपने विशाल सुन्दर रूप में मन्दर पर्वत के पूर्वी भाग में गिरती है। यह पवित्र नदी पूर्वी भाग में रहते वाले सिद्ध, देवों के स्थान, झरने, कन्दराओं तथा मेरु पर्वत के सुन्दर कंदरा वाले मन्दर पर्वत को और वन देवों के दुख को मिटाने स्फटिक मणि की तरह स्वच्छ निर्मल जल वाली नदी चारों तरफ से पृथ्वी को सींचती हुई अरुणोद सरोवर में गिरती है। इसके बाद वही आकाश में घूमने वाली नदी अरुणोद सरोवर से निकल कर सुन्दर निर्झर वाले शीतान्त शैल पर गिरती है। इसी कारण इस का सब नदियों में पूज्य सीता नाम पड़ा है। जगह जगह बहती हुई फिर निकुंजों में जाकर जगह २ रुकने से उसकी कई धारायें हो जाती हैं। शीतान्त पर्वत से निकलकर वह नदी मुंकुज पर्वत पर गिरती है। फिर मुकुंज पर्वत से निकल यह नदी सुमज पर्वत पर गिरती है माल्यवान पर्वत पर गिरती हुई वैकुक पर्वत पर मिलती है वैकक पर्वत से मणिशैल में गिरती है

और फिर मणि शैल पर्वत से बहुत सी गुफाओं में होती हुई ऋषभ पर्वत पर गिरती है इस तरह हजारों योजनों से बहती हुई यह पवित्र नदी बहुत से सिद्धों के निवास स्थान वाले जठर पर्वत राज पर जाकर गिरती है। वहां से भी आगे चल कर यह पवित्र नदी देवकूट पर जाकर गिरती है। देवकूट पर्वत का पार्श्व भाग समुद्र तक फैला हुआ है। इसी तरह यह पवित्र नदी नियमानुसार क्रम से पृथ्वी पर उतरती है यह पवित्र नदी हजारों स्थलियों, पर्वतों, बहुत से वनों में और तरह तरह के सरोवरों से मिलती हुई हजारों नदियों के साथ एक होकर निर्मल पवित्र जलधार होकर बहती है। यह पवित्र नदी जगह २ बहती हुई मुख्य मुख्य द्वीपों तथा भद्राश्ववर्ष को सींचती हुई पहले पूर्व सागर में गिरती है। दक्षिण दिग्वर्ती गन्धमादन पर्वत पर जो नदी बहती है, वह अलकनन्दा नाम से प्रसिद्ध है। वह नदी देवराज इन्द्र के नन्दनवन में बहती हुई, और गन्धमान पर्वत के चारों तरफ बहती हुई, देवों के मानसरूप उत्तर मानसरोवर में गिरती है। वहां से आगे चलकर तीन शिखर वाले सुंदर त्रिकूट पर्वतराज पर गिरती है इसके बाद त्रिकूट पर्वत से कलिंग पर्वत पर गिरती है। वहां से बढ़ कर रुचक पर्वत पर गिरती है। रुचक पर्वत से निषध पर्वत पर मिलती है, फिर निषध पर्वत से ताम्राभ पर्वत पर गिरती है। ताम्राभ-पर्वत से श्वेतोदर पर्वत पर गिरती है। वहां से आगे बढ़कर सुमूल पर्वत पर गिरती है, सुमूल पर्वत से वसुधार पर्वत पर, वसुधार पर्वत से हेमकूट पर्वत पर हेमकूट पर्वत से देवश्रंग पर्वत पर, देवश्रंग पर्वत से पिशाचक पर्वत पर पिशाचक पर्वत से पंचकूट पर्वत पर और पंचकूट पवत से कैलाश पर्वत पर गिरती हुई अचलोत्तम पर्वत पर गिरती हैं। यह पवित्र विशाल महानदी हजारों पवतों के बीच में होती हुई जगह २ पृथ्वी को सींचती हुई हजारों कन्दराओं के बीच होती हुई दक्षिण समुद्र में जाकर मिलती है।

और जो दूसरी नदी है वह शैल कुक्षि में घिरी काफी विस्तार में फेली हुई है। जिस नदी को भगवान शंकर ने अपने सिर पर

धारण किया है वह घोर पापों को नष्ट करने वाली भगवान शंकरजी के अंगों से स्पर्श होकर पवित्र नदी का नाम गंगा नदी पड़ा है। हे ब्राह्मणो ! यह पवित्र नदी हिमालय पर्वत के चारों तरफ बहती हुई अलग अलग कई भागों में बट गई है। यह नदी अलग अलग नामों में हजारों नदियों के रूप में प्रसिद्ध है। जिन जिन देशों में यह नदी बहती हुई पार करती है तथा देव, मनुष्य, सिद्ध इसकी पूजा करते हैं वह देश और मनुष्य बहुत ही भाग्यशाली हैं।

अब हम उस कथा का विस्तार से वर्णन करेंगे, जिसमें मेरु पर्वत के पश्चिम दिशा में जो पर्वत बने हुये हैं। वह तरह तरह के रत्नों से शोभित हैं। जिस नदी को भगवान शंकर ने सिर पर धारण किया है वह नदी लता की तरह घूमती हुई मेरु के श्रंग पर गिरती है। मेरु पर्वत के चारों तरफ बहती हुई देवभ्राज वन में गिरती है। तरह तरह के पुष्पों से युक्त निर्मल जल वाली नदी देवभ्राज, महाभ्राज, और वैभ्राज्य महावनों के चारों तरफ बहती हुई सितोद सरोवर में गिरती है। सितोद सरोवर से आगे चलकर सुपक्ष पर्वत पर गिरती है। देवर्षियों द्वारा पूजित वह पवित्र नदी सुपक्ष पर्वत से गिरकर शिखिर-पर्वत पर गिरती है। शिखिर पर्वत से कंकपर्वत पर गिरती है और कंक पर्वत से वैदूर्य पर्वत पर गिरती है। इस तरह यह नदी जगह-जगह हजारों पर्वतों, वनों और कन्दराओं को आच्छादित करती हुई बहुत नदियों के जल से मिलकर पर्वतराज पारिजात पर गिरती है। बहुत सी गुफायें झरने और कन्दराओं से शोभित पारिजात पर्वत के बीच में होकर बहती है वह गण्डशलों से टकराती हुई पृथ्वी पर आती है और वहाँके मलुच्छों के आवास स्थान केतुमाल महाद्वीप को सींचती हुई पश्चिम समुद्र में गिर जाती है। फिर ये नदी आगे बढ़कर भद्रसोमा नाम से प्रसिद्ध होती है। यह भद्रसोमा नदी बहुत विस्तार में फैली हुई है। यह तेज बहने वाली नदी शंखकूट तट के बहुत से निर्झर और वनों को पार करती हुई शंखकूट गिरि के तट पर गिरती है फिर वहां से आगे बढ़कर नागशैल पर गिरती है।

नागशैल पर्वत से वृष पर्वत नील पर गिरती है। फिर वहां से आगे चलकर यह नदी कपिंजल पर्वत पर गिरती है और कपिंजल पर्वत से नीचे की तरफ इन्द्रनील पर्वत पर बहती है इन्द्रनील पर्वत से हेमश्रृंग पर्वत पर गिरती है। हेमश्रृंग से खेत पर्वत पर गिरती है। खेत पर्वत से सुनग पर्वत पर और सुनग पर्वत से वह नदी शतश्रृङ्ग पर्वत पर गिरती है। शतश्रृंग से आगे चलकर फूलों से घिरे पर्वतराज पुष्कर में गिरती है। पुष्कर पर्वत से आगे चलकर द्विजराज पर्वत पर गिरती है। वहां से बढ़कर वराह पर्वत पर गिरती है वराह पर्वत से शिलोच्च मयूर पर गिरती है शिलोच्च मयूर से अनेक गुफाओं वाले एक शिखर जानुधि नामके पर्वत पर गिरती है। इस तरह यह नदी सैंकड़ों पर्वतों को सींचती हुई संयुक्त त्रिश्रृंग पर्वत पर गिरती है त्रिश्रृंग पर्वत से आगे चलकर मेरुकूट के तट से भी आगे चलती है और फिर ये निर्मल जल वाली पवित्र नदी वीरुध पर्वत पर गिरती है। वहां के देश को भिगोती हुई यह नदी पश्चिम समुद्र में गिरती है।

मेरु के उत्तर पार्श्व में सुपार्श्व नामक नानाजीव संकुल सुवर्णमय पाद देश में बह, कई भागों में अलग होकर बहती है। इसके बाद कन्दराओं के बीच से निकल कर वह पवित्र नदी फूलों की विचित्र नौका को धारण करती हुई पृथ्वी पर उतर कर उत्तर कुरु को भिगोती हुई महाद्वीप के बीच में बह कर उत्तर समुद्र में जाकर गिरती है। इस तरह ये निर्मल जल वाली चारों नदियां महागिरि तट से निकल कर चारों दिशाओं में बहती हैं ब्राह्मणो हमने आपसे पृथ्वी की कथा का वर्णन किया है। यह पृथ्वी मेरु इत्यादि पर्वतों से चारों तरफ से घिरी है। इसमें चार महाद्वीप हैं चार क्रीड़ाकानन हैं। इसमें केतुस्वरूप चार महावृक्ष और सरोवर भी हैं। इस पृथ्वी पर चार महाशैल हैं और आठ उत्तर महाशैल हैं। यह पृथ्वी चार महानागों के ऊपर ठहरी हुई है और यह आठ अवर पर्वतों से युक्त है।

इति भुवन-विन्यास नामका ब्यालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४२ ॥

तैंतालीसवां अध्याय (भुवन विन्यास)

सूतजी बोले– हे ऋषियो ! गन्धमादन पर्वत के किनारे में एक गण्ड शिला है पूरब पश्चिम में यह बत्तीस हजार योजन तक फैली हुई इसका विस्तार चौंतीस हजार योजन में है। वहाँ केतुमाल के शुभ कर्म करने वाले प्राणी रहते हैं। वहां के पुरुष बलवान महावीर्यशाली और काले रंग के होते हैं लेकिन इनकी स्त्रियां सुन्दर और कोमल होती हैं। वहां पर कटहल का एक बहुत बड़ा पेड़ है। इस वृक्ष के फलों का स्वाद छओं रसों का होता है। वहां के रहने वाले इस फल के रसों को हजारों वर्ष तक पीते रहते हैं। माल्यवान पर्वत के दूसरे भाग में दूसरी पूर्व गण्ड शिला है। इसकी लम्बाई चौड़ाई भी उतनी है जितनी कि पहली की है। भद्राश्व देश के रहने वाले मनुष्य हर समय प्रसन्न दिखाई देते हैं उस जगह भद्र नामका एक साल वन प्रसिद्ध है इसके वृक्षों का कालाम्र नाम है। वहां के पुरुष गौर वर्ण के बहुत बलवान और महावीर्यशाली होते हैं। स्त्रियां भी सुन्दर और गौर वर्ण की होती हैं। ये स्त्रियां चन्द्र के समान कान्ति वाली, पूर्णमा-चन्द्र की तरह मुख वाली होती हैं यहां मनुष्य स्वस्थ होकर बिना किसी रोग के दस हजार वर्ष तक जीते हैं और कालाम्र के रस को पीते हैं। ऋषियों ने कहा– हे सूतजी आपने इन चारों द्वीपों के निवासियों के वर्ण, आयु और प्रमाण की कथा को हमें सूक्ष्म रूप से बताया है। सूतजी बोले–हे ऋषियो ! अब हम भद्राश्व के रहने वालों के स्वरूप का वर्णन विस्तार में आपको सुनायेंगे देवकूट गिरि के पूर्व की ओर से चारों ओर वर्तमान पांचों पर्वतों, नदियों, देशों का वर्णन हमने आप को बतादिया है। शैवाल, वर्णमालाग्र, कोरज्ज, श्वेत और नील ये पांच पर्वत हैं। इनके सतानों के रूप में सैकड़ों पर्वत और हैं। इन पर्वतों से मिले कितने ही देश हैं वहां पर बहुत से जीव और तरह २ जाति के मनुष्य रहते हैं उनका पालन पोषण राजा करते हैं। पर्वतों के बीच जो देश बसे हैं वे ये हैं सुमंगल, शुद्ध, चन्द्रकांत, नील मौलेये, सौवीर, विजयस्थल, महास्थल, सुकाम, महाकेश, वातरंह, सोपासंग, आदि बहुत से देश हैं इन देशों के मनुष्य महानदी गंगा का जल पीते हैं।

यह प्रसिद्ध गंगा नदी पहले शीता नाम से प्रसिद्ध थी। गंगा नदी की तरह वहाँ बहुतसी महानदी बहती हैं। ये नदियां नायिकानामसे प्रसिद्ध हैं जिसतरह चक्रा, महाचक्रा हंसवति, कांची, वक्रा, सुरसा, शाखावती, इन्द्रनदी, मेघा, कावेरी इत्यादि बहुत सी महानदियां हैं। हमने आपको पूर्व द्वीप में बहने वाली नदियों का वर्णन सुनाया है। वह भद्राश्ववर्ष देश धान्य है, जिसमें तरह तरह के वृक्ष, घने वन और अनेक पर्वत हैं। वहां की स्त्रियां हर समय खुश होकर मंगल गान किया करती हैं। भद्राश्ववर्ष में बहुत राजा राज्य कर रहे हैं वहां सदा फूलने फलने वाले बहुत से वन हैं। वहां हीरे मोतियों, बहुमूल्य रत्नों की बहुत सी खानें भी हैं यहां के पुण्यशाली मनुष्य देवताओं के साथ रहते हैं। उनका दर्शन प्राप्त करते हैं। वह दस हजार वर्षों तक जीते हैं। वे शुरू से ही सत्यव्रती और किसी भी जीव की हिंसा न करने वाले होते हैं वे श्रद्धा सहित भगवान शंकरजी की तथा भगवती गौरी की आनन्दित होकर पूजा करते हैं।

॥ इति श्री वायु महापुराण का तेंतालीसवां भुवन विन्यास नामक अध्याय समाप्त ॥

चौवालीसवाँ अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले–हे ऋषियो ! मैंने आपको भद्राश्ववासियों का यह स्वाभाविक वर्णन सुनाया है अब मैं केतुमाल देश के रहने वालों का वर्णन आपको सुनाऊँगा। पश्चिम दिग्वर्त्ती निषधाचल पर्वत से पश्चिम दिशाओं में जो सात कुल पर्वत, नदियां, और देश हैं, उनका हाल सुनिये। विशाल, कंबल, कृष्ण जयन्त, हरिपर्वत, अशोक और वर्धमान ये सात पर्वत हैं। इसके समान रूप सैकड़ों हजारों पर्वत और भी हैं। इन पर्वतों से घिरे बहुत से देश हैं। उन देशों में कई तरह की जाति के मनुष्य रहते हैं। उन प्राणियों का पालन-पोषण राजा करते हैं। पर्वतों के बीच जो देश बसे हैं उनके कुछ नाम ये हैं। सुख, भ्रमर, यूथ के माहेय अचलकूटक, सुमौल, स्तावक, क्रौंच, कृष्णांग, मणिपुंजक, कूटकवल, मौषीयकुंटभव इत्यादि बहुत से देश हैं

ये देश गौ, मनुष्य, कपोतों और पक्षियों से भरे हुये हैं। यहां के भाग्यशाली मनुष्य इन पर्वतों से निकली पवित्र नदियों का जल पीते हैं यहां की जो नदियां हैं उनके नाम ये हैं। कंबला, तामसी, श्यामा सुमेधा, वकुला, विकीर्णा, शिखिमाला, दर्भावता, भद्रानदी, शुक्लनदी, पलाशा, महानदी, भीमा, कोची, पुण्या, कुशावती, दशा, शाकवती, कालिन्दी, पुरायोदा, भारती, ब्राह्मी, विशाला पीवरी, कुंभकारी, रुषा महिषी, दराड़ा; और नदनदी इन नदियों के जल को वहां के मनुष्य पीते हैं। ये नदियां पापों को नष्ट करने वाली पुण्यमयी हैं। वह पश्चिम दिगवर्ती महाद्वीप केतुमाल देश में सतगुणी मनुष्य रहते हैं ये देश अनेक तरह के धन धान्यों से भरा हुआ है। यह देश महा-नदियों से, तरह तरह के रत्नों से सदा आनन्दमय, नित्य सुखकारी प्रसिद्ध देश है। मैंने आप लोगों को केतुमाल देश के रहने वालों के चरित्र का वर्णन सुनाया है। वह शुरू से ही प्रसिद्ध कथा है।

॥ इति श्री वायुमहापुराण का चौवालीसवां भुवनविन्यास नामक अध्याय समाप्त ॥

* पैंतालीसवाँ अध्याय *

(भुवन विन्यास)

शाशपायन ने कहा–हे प्रभो! आपने हमको पूर्व-पश्चिम दिशा के दो देशों का वर्णन सुनाया है। अब आप हमको उत्तर दक्षिण दिशा के देशों का और वहां के रहने वालों का पूर्णरूप से वर्णन सुनाइये।

सूतजी बोले–अब हम आपके कहे के अनुसार वर्णन करेंगे। आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये श्वेत पर्वत के दक्षिण और नील पर्वत के उत्तर में रमणक नाम का एक देश है। उस जगह जो मनुष्य पैदा होते हैं। वे सभी अनुकुल कामफल का प्रयोग करतेहैं। वे न तो बूढ़े होते है और न उनके शरीर से बदबू आती है। वह अपने परिवार सहित स्वस्थ और सुन्दर रहते हैं। वहां पर रोहिण नामक एक विशाल वट का पेड़ है वहां के मनुष्य उस वट वृक्ष के फलों के रस

को पीते हैं। वे मनुष्य दस हजार दस सौ पांच वर्ष तक जीवित रहते हैं। श्वेताचल के उत्तर में और श्रृंगाचल के दक्षिण में हिरण्मत नाम का एक देश है, जहां हैरण्मती नदी बहती है। वहां के मनुष्य बलवान, धनी, सुन्दर और सभी मौसम में कामफल का प्रयोग करने वाले हैं। वहां के मनुष्य ग्यारह हजार दस सौ पांच वर्ष तक जीते रहते हैं। उस देश में एक बहुत बड़ा बड़हर का पेड़ है जिसके फलों से छओं रसों का स्वाद मिलता है। वहां के मनुष्य उसी के रसों को पीते हैं। वहां श्रृंगवान पर्वत के तीन बड़े ऊँचे ऊँचे पर्वत हैं। एक पर्वत मणि का है दूसरा पर्वत सोने का है तीसरा पर्वत अनेकों तरह के रत्नों से भरा है। उन पर्वतों पर महल बने हुये हैं। उत्तर समुद्र के अखिर में दक्षिण की तरफ कुरुवर्ष है जो सिद्ध मुनियों से पूजित है। वहां के वृक्षों में तरह तरह के सुगन्धित फूल लगे होते हैं और उनके वृक्षों में मीठे मीठे फल लगे रहते हैं। उन वृक्षों में फलों के साथ साथ कपड़े तथा आभूषण मिलते हैं और बहुत से वृक्ष वहां पर ऐसे हैं जो सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाले होत हैं। और बहुत से वृक्षों से मधु की तरह मीठे फल टपकते रहते हैं। दूध देने वाले भी बहुत से वृक्ष वहां पर होते हैं। और वह वृक्ष हर समय अमृत के समान दूध देते रहते हैं। वहां की पृथ्वी मणियों से घिरी रहती है और वहां सोना बालू की तरह बिखरा रहता है। देवलोक से निकलने के बाद मनुष्य वहां पर जन्म धारण करते हैं। वहां की स्त्रियां दो दो जुड़वां बच्चे एक साथ पैदा करती हैं। और वह बच्चे उन वृक्षों का अमृत-तुल्य दूध पीते हैं वे बच्चे एक साथ बढ़ते और रूपमें स्वभाव में एक से ही होते हैं। वे निरोग होकर आपस में प्रेम पूर्वक रहते हैं। वे अत्यन्त बलवान मनुष्य तेरह हजार दस सौ पांच वर्ष तक जीते हैं। इसके बाद हम जो शैलराज जारुधि के उत्तर में जो उत्तर कुरु है उसका वर्णन करेंगे। यह उत्तर कुरु पर्वत सभी स्थानोंमें प्रसिद्ध है वहां दो बहुत ऊँचे ऊँचे कुल पर्वत हैं, जहां पर बहुतसी गुफायें, झरने और कन्दरायें हैं। वहां बहुत से वन शोभायमान हैं। वहां तरह तरहकी धातु, फल, फूल और सिद्ध मनुष्य

रहते हैं। उन पर्वतों के चारों तरफ बहुत से दूसरे पर्वत घिरे हुये हैं इन दोनों पर्वतों का नाम चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त है। इन पर्वतों के बीच में होकर भद्रसीमा नदी बहती है। वहां पर बहुत सी नदियां हैं। उन नदियों के जल कुरु के सभी रहने वाले मनुष्य पीते हैं। इनमें बहुत सी नदियां ऐसी भी हैं जिनमें दूध, मधु, मदिरा और घी बहता है। वहां पर ऐसे तालाब भी हैं जिनमें दही भरा रहता है। अमृत की तरह स्वादिष्ट मीठे फलों के ढेर लगे होते हैं। यहां के वृक्ष फूल और लताओं से शोभित रहते है। वहां भौंरे गुञ्जारते रहते हैं। हे ब्राह्मणो! वहां के हजारों सरोवरों के किनारे वनों में असंख्य पद्म और उत्पल के वन हैं। वहां सभी ऋतुओं के खाने पीने रहने सोने माला लेपन करने की सामग्री मिलती रहती है। तरह तरह के सुन्दर मुख वाले पक्षी किलोल करते रहते हैं। वहां पर बहुत बड़े बड़े विशाल भवन बने हुये हैं। जिनकी खिड़कियां सोने और मणियों से चित्रित हैं। वहां पर बाजे नगाड़े बजते रहते हैं वहां सभी नर नारी सुखपूर्वक निवास करते हैं। वहां की हवा में फूलों की सी सुगन्धि आती रहती है। जिसके छूने से शरीर सुख पैदा होता है इस कारण वह द्वीप उत्तम गुणों के कारण पृथ्वीका स्वर्ग कहलाती है। पूर्वतटमें चन्द्रकान्त पर्वत के पास रहने वाले नर काले रंग के होते हैं सूर्यकान्त पर्वत के पास रहने वाले श्याम अवदात रंग के होतें हैं और वहां के सुखी निवासी हमेशा सुखी रहते हैं। वहां के मनुष्य देवताओं के तरह बलशाली तेजवान अपनी इच्छानुसार विहार करने वाले होते हैं। वहांके मनुष्य मुकुट रंग विरंगे कपड़े पहने तथा हार कुण्डल, माला, केयूर इत्यादि पहने हुये सदा युवक बनकर हजारों वर्षों तक जाते रहते हैं। प्रजा बहुत सुखी रहती है वहांकी प्रजा का कभी वंशभी समाप्त नहीं होता क्योंकि वहाँ के वृक्षों से भी नर- नारियों के जोड़े पैदा होते हैं। वहां पर किसी प्रकार के दुख शोक और बीमारी नहीं होती हैं सभी मनुष्य एक समान होते हैं। उत्तर कुरु के दक्षिण भागमें चन्द्रद्वीप है इसका विस्तार पांचहजार योजनका है यहां चन्द्रमा का मण्डल स्थिति है।

वहां समुद्र की तरह लहरें सदा लहराती रहती हैं। इसकी लम्बाई चौड़ाई सौ सौ योजन की है। यहां पर सभी प्रकार के सुख उपलब्ध हैं। उसके बीच एक पर्वत स्थित है, जिसका नाम कुमुदप्रभ है। वहां पर सिद्ध चारण इत्यादि रहते हैं। वह पर्वत चन्द्रमा की कान्ति के समान कमनीय, सुन्दर, श्वेत मूंगे मणियों से चित्रित है। वहां पर बहुत सी निर्झर कन्दरायें, बाग बगीचे, तथा विशाल पर्वत और कुंजों से शोभा बढ़ती रहती है। उस पर्वत से चन्द्रवती नाम की एक श्रेष्ठ नदी बहती है। इसका जल चन्द्रमा की किरण की तरह निर्मल और पवित्र है। वहां चन्द्रमा के नाम का एक पर्वत है जो बहुत प्रसिद्ध है। वहां की प्रजा चन्द्रमा की तरह कान्तिमान पूरे चन्द्र की तरह मुख वाले, धार्मिक, सौम्य सत्य बोलने वाले सदाचारी होकर हजारों वर्षों तक जीते रहते हैं। यह तरह तरह के फूलों फलों, धनधान्यों से भरा देश है। यहां पर राजा राज्य करते हैं। वहां वायु देव का रत्नों से जड़ित एक सिंहासन है जहां पर वायुदेव शरीर धारण करके सदा पर्वों में पूजे जाते हैं। वहां के मनुष्य सोने के समान रंग के होते हैं तथा सोने के ही जेवर पहनते हैं। वे वीर्यशाली, बलवान आनन्दित होकर हजारों वर्षों तक जीते हैं वह तरह तरह के रंग विरंगे कपड़े तथा माला पहनते हैं।

सूतजी बोले–हे ऋषियो! जैसा आपने कहा वैसा ही वर्णन हमने आपको सुना दिया है अब आप बतायें, कि आपको मैं कौनसी कथा का वर्णन सुनाऊँ? सूतजी के इस प्रकार पूछने पर ऋषियों ने फिर कोई कथा सुनने की इच्छा की है और कहा।

ऋषियों ने कहा–हे सूतजी! यह भारतवर्ष है जहां प्रजासृष्टि की व्यापार क्रम में स्वाम्भुवादि चौदह मनु पैदा हुये हैं अब आप हमको इसके विषय में बताइये। उन ऋषियों की बात सुनकर विद्वान पण्डित श्रीमान सूतजी एकचित्त होकर विस्तार पूर्वक ऋषियों से कहने लगे।

सूतजी बोले–हे ब्राह्मणो! हमने आपको कुरुवर्ष की स्थिति का वर्णन सुना दिया है। और अब हम भारतवर्ष के विषय

में सुनायेंगे पूरब से पश्चिम की तरफ हिमालय पर्वत के दक्षिण में यह पुण्यतीर्थ भारतवर्ष है। समुद्र के उत्तर में और हिमालय के दक्षिण में जो देश स्थित है वह भारतवर्ष नाम से प्रसिद्ध है। यहां कीप्रजा भारतीकहलाती है यहां की प्रजाओंका निर्वाह करने के कारण ये मनु भरत कहलाते हैं। भरत नाम के कारण इस देश का नाम भारत वर्ष पड़ा। यहीं से स्वर्ग,मोक्ष, मध्य, अन्त गति प्राप्त होती है मृत्युलोक के निवासियों के लिये यही एक स्थान श्रेष्ठ है इस भारत वर्ष के नौ भेद हैं ये नौद्वीप समुद्र से घिरे हुये हैं। इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्णी, गभस्तिमान, नागद्वीप,सोम्य,गन्धर्व और वारुण से अलग नवाँ यह भारतवर्ष सागर से घिरा है। यह द्वीप दक्षिण से उत्तर तक हजार योजन का है। यह कुमारी से लेकर हिमालय तक त्रिर्यग भाव से उत्तर की तरफ तक नौ हजार योजन का विस्तार है। भारतवर्ष के अन्त में मलेच्छों की बस्ती है पूर्वी में किरात लोग रहते हैं। पश्चिम में यवन जाति के मनुष्य रहते हैं इसके मध्य में अलग अलग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जाति के मनुष्य रहते हैं इन चारों वर्णों के मनुष्य यज्ञ व्यापार, युद्ध द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इन चारों वर्णों के मनुष्य अपने अपने कर्मों में आपस में, व्यवहार धर्म और काम के अनरूप होता है। इसी भारतवर्ष में स्वर्ग और अपवर्ग के लिये पांच आश्रम भी बने हैं। यह नवां टेढ़ा और लम्बा द्वीप है वही यहां का प्रमुख सम्राट कहलाता है वह इस लोक में सम्राट व आकाश में विराट तथा अन्य लोक में स्वराट् कहलाता है। यहां के सात कुल पर्वत हैं जिनके नाम ये हैं सुन्दर पर्व वाले महेन्द्र पर्वत, मलय पर्वत, सत्य पर्वत शुक्ति मान, ऋक्ष, विन्ध्य पर्वत और पारियात्र इत्यादि सात कुल पर्वत हैं इसके चारों तरफ भी बहुत से पर्वत घिरे हुये हैं। इन पर्वतों के बीच बहुत से देश बसे हुये हैं उन देशों में आर्य जाति के मनुष्य और मलेच्छ वंश के मनुष्य रहते हैं। वहां के रहने वाले मनुष्य गंगा सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु चन्दभागा, यमुना, सरयु, इरावती, विपाशा, गोमती, कौशिकी, तृतीया, गंडकी,इक्षु, लोहित इत्यादि इन नदियों

का पानी पीते हैं। ये सब नदियां हिमालय पर्वत से निकली हैं वेद स्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना सतीय, महतीपरा, वेत्रपती, शिप्रा, अवन्ती, इत्यादि नदियां पहाड़ों से निकलती हैं। महानद शोशा, नर्वदा,सुमदादुमा, मन्दाकिनी,दक्षार्णा, चित्रकूटा,तमसा, पिप्पला, श्रोणी, करतोय इत्यादि बहुत सी नदियां ऋक्ष पर्वत से निकलती हैं। इनका जल मणि की तरह निर्मल और स्वच्छ है। तापी, पयोष्णी, भद्रा, कावेरी, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा, गोदावरी, भीमरथी कृष्णा, वेणी इत्यादि ये नदियां दक्षिण देश से किकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुण्यजाति और उत्पावली इत्यादि नदियां मलयाचल पर्वत से निकली हैं। इन नदियों का जल निर्मल और स्वच्छ है।

महेन्द्र पर्वत से यह नदियां निकली हैं। त्रिसामा, ऋतुकुल्या इक्षुला, त्रिदिवा, लांगुलिनी और वंशधरा इत्यादि हैं। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्द वाहिन, कृपा, पलाशिनी, शुक्तिमान पर्वत से निकली हैं। गंगा सरस्वती इत्यादि सभी नदियां समुद्र में जाकर गिरती हैं। ये सभी पवित्र नदियां संसार के पापों को नष्ट करने वाली हैं। इन नदियों से हजारों छोटी २ नदियाँ निकली हैं इनमें कुछ कुरुपाचल शाल्व, जांगल, शूरसेन, भद्रकार, वोधसतपपेश्वर तैलंग और मगध में बहती हैं। मध्यम प्रदेश के ये ही देश कहलाते हैं। सत्य पर्वत के उत्तर में गोदावरी नदी बहती है देवराज इन्द्र ने यहां गोर्वधन नामका स्वर्गपुर बनाया था और भरद्वाज मुनि ने रामचन्द्रजी की प्रिय कामना से वहां वृक्ष और औषधियों को लगाया। उत्तर की तरफ ये देश हैं वाह्लीक, वारधान, आभीर, कालतोयक, अपरीत, शूद्र, गन्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शक, रुद, कुलिन्द, परित इत्यादि बहुत देश हैं इन देशों में क्षत्रिय जाति के लोग रहते हैं। जिन देशों में वैश्य शूद्र रहते हैं वह ये देश हैं। काम्वोज, दरद वर्वर प्रियलौकिक, पीन तुषार, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक, लम्पाक, स्तनय इत्यादि अन्य देश भी अब हम पूरव दिशा की ओर जो देश हैं उनके नाम बतायेंगे। आन्ध्रवाक, अन्तगिरि, प्रवंग, वंग मालय, मानवर्ती, मगध गोविन्द

इत्यादि अन्य देश भी हैं। इनके बाद दक्षिण दिशा के देशों के नाम और उनके रहने वाले मनुष्यों के बारे में बतायेंगे। पाण्डय, केरल, चौल्य, कुल्य, सेतुक, कुमन, कुन्तल, अन्ध्र, उद्रिद, नलकाकिक, आरव्य, वर, पुलिन्द इत्यादि बहुत से देश हैं। इनके अलावा और जो दूसरे देश हैं उनके भी नाम बतऊँगा। सुर्पाकार, कोलवन, दुर्ग, पुलेय, सुराल, सपस, तापस, तुरसित, परक्षर और नासिक्य इत्यादि नर्वदा नदी के किनारे के दूसरे देश ये हैं। भानुकच्छ, समाहेय, सहस, शाश्वत, कच्छीय सुराष्ट्र, आनर्त और संगरीत इत्यादि ये सब देश विंध्याचल पर्वत के निचले भाग में स्थित हैं और इनमें अब कुछ पहाड़ी देश भी हैं। निगर्हर, हंसमगि चुरण, खस, कुशावरण, हूण, मालव, किरात और तामस हैं। भारतवर्ष में चार युग बताये हैं जो सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग इत्यादि हैं। इसके आगे का वर्णन हम पीछे करेंगे।

इति भुवन-विन्यास नामक पैंतालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

छियालीसवां अध्याय

(भुवन-विन्यास)

सूतजी बोले—ऋषियों ने इस तरह सूतजी से आनन्द युक्त वाणी सुनकर और कुछ सुनने की इच्छा की, और सूतजी से पूछा।

ऋषियों ने कहा—जिस तरह आपने भारतवर्ष के बारे में हमें कुछ कथा सुनाई, उसी तरह किं पुरुष वर्ष और हरि वर्ष के बारे में भी हमें कुछ बताइये। ऋषियों के इस तरह पूछने पर सूतजी ने कहा —

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणों! आप लोग अब जो सुनना चाहते हो उसको आनन्द से सुनें किंपुरुषवर्ष में एक बहुत विशाल वृक्षखण्ड है जो नन्दन वन के समान विशाल है। वहां पर लोगों की आयु दश सहस्र वर्ष की है। पुरुषों का वर्ण स्वर्ग के समान औरतें अप्सरा की भांति सुन्दर होती हैं। तप्त स्वर्ण की सी कान्ति वाले वे पुरुष रोज शोक से रहित और शुद्ध हृदय वाले होते हैं। वहां के निवासी प्लक्ष के वृक्ष से बहने वाले उत्तम रस को निरन्तर पीते रहते हैं।

इसके बाद हरिवर्ष का वर्णन सुनिये। वहां के लोग चांदी के वर्ण वाले हैं। वहां पर सभी लोग देवलोक से परिभ्रष्ट होते हैं अतः वे सब देव स्वरूप ही हैं। वे लोग ईख का रस पीते हैं।। यहां ग्यारह हजार वर्ष तक आन्नद पूर्वक जीवित रहते हैं। वहां के लोगों को बुढ़ापा नहीं होता और न बड़े होते हैं। हमने मध्यम इलावृत वर्ष बताया है वहां भी कोई बूढ़ा नहीं होता और न वहां कभी सूर्य की किरणें मन्द होती हैं। इलावृत में चन्द्र सूर्य और नक्षत्रों का प्रकाश नहीं होता है वहां के लोग पद्म की कान्ति वाले, पद्म के से वर्ण वाले और पद्म की सी सुगन्ध वाले होते हैं। ये लोग देवलोक से परिभ्रष्ट, अजर अमर हैं। जो सदा जामुन का फल और रस का पान करते हैं। ये सदा प्रसन्न रहते हैं। ये लोग स्वयं ही अपने नियम बनाने वाले होते हैं और सुन्दर कर्म फलों को भोगने वाले होते हैं ये तेरह हजार वर्ष तक वहां पर जीवित रहते हैं। इलावृत वर्ष मेरु की ओर नौहजार योजन विस्तार वाला है इसका कुल विस्तार २६ हजार योजन के परिमाण वाला है यह चारों ओर से चौकोर है।

मेरु के पश्चिम में नौ हजार योजन दूर गन्धमादन पर्वत है जो चौंतीसहजार योजन का है यह उत्तर और दक्षिण में नील पर्वत तथा निषध पर्वत तक फैला है। वह पृथ्वी तल से चालीस हजार योजन ऊँचा है तथा एक हजार योजन पृथ्वी में धँसा हुआ है। माल्यवान पर्वत इसके पूर्व में है जिसका परिमाण मैं पूर्व में बता चुका हूँ।

ऊपर कहे इन पर्वतों के मध्य में महामेरु स्थित है। जो नील के दक्षिण में और विषद के उत्तर में है। वह ऐसा प्रतीत होता है कि मानों सब पर्वत उसके अन्दर डूबे हुये हैं। उसका परिमाण एक नियुत योजन का है पृथ्वी मडल पर स्थित सुमेरु उससे कुछ छोटा है। मेरु के दक्षिण और निषध के उत्तर में अंजन की तरह जम्बू रसवती नदी है। वहां सुदर्शन नामका एक पुराना जामुन का पेड़ है सिद्ध लोग उसकी सदा सेवा किया करते हैं। वह महावृक्ष नौ हजार योजन का है। उसकी चोटी स्वर्ग को स्पर्श करती है तत्ववेत्ता ऋषियों के मतानुसार

इसके फलों का विस्तार आठ सौ आठ अरत्नि है इन फलों का रस नदी बनकर बहने लगता है। वह नदी मेरु की परिक्रमा करती हुई उस वृक्ष की जड़ में ही प्रवेश कर जाती है। यहां के निवासी जामुन खाते तथा जामुन का रस पीते हैं। जिससे वे कभी बूढ़े नहीं होते हैं। यहां जाम्बूनद नामक सुवर्ण भी मिलता है जो देवताओं के भूषण बनाने के काम में आता है रक्ष, पिशाच और यक्ष गण हिमालय पर, गन्धर्व एवं अप्सरायें हेमकूट पर तथा शेष, वासुकिरक्षक आदि नाग निषध पर्वत पर निवास करते हैं। तेतीस याज्ञिक देवगण महामेरु पर घूमते रहते हैं। वेदूर्यमय नील पर्वत पर विशुद्ध ब्रह्मर्षि और सिद्ध गण निवास करते हैं। दैत्य और दानव श्वेत पर्वत पर रहते हैं। श्रृंगवान पर्वत पितरों का भ्रमण स्थान है। विभागक्रम से अवस्थित इन नौ देशों में भूतगण नित्य ही निवास करते हैं। जिनकी गिनती बहुत खोज करने पर भी नहीं की जा सकती है।

इति श्री वायुमहापुराण का छियालीसवां भुवनविन्यास नामका अध्याय समाप्त ॥

* सैंतालीसवाँ अध्याय *

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले-हिमालय पर्वतके बांये भाग में कैलाश पवत है। उस स्थान पर धनाधिपति कुवेर देव राक्षसों के साथ रहते हैं कुवेर देवता वहां अप्सराओं के साथ आमोद प्रमोद किया करते हैं। केलाश पर्वत का पाद देश निर्मल जल के समान पवित्र है शीतल मन्द नामक जल निकलता है और उसी से मन्दाकिनी नाम की पवित्र नदी निकलती है उसी के किनारे नन्दन नामका एक पवित्र विशाल वन है। कैलाश पर्वत के उत्तर और पूर्व की तरफ तरह तरह की औषधियों से युक्त तथा तरह २ की धातुओं से चित्रित पवित्र सुवर्ण पर्वत के पास शुद्ध रत्न के समान चन्द्रप्रभा नामका एक पर्वत है उसी के नीचे के हिस्से में अच्छोद नामका एक सरोवर है इसी अच्छोद सरोवर से आच्छोदा नाम की नदी निकली है। इस आच्छोदा नदी के किनारे पर एक चैत्र रथ

नामका एक महान वन है। चन्द्रप्रभ पर्वत राक्षसों के सेनापति मणिभद्र अपने सेवकों के साथ रहते हैं उस स्थान पर दुष्ट स्वभाव के गुह्यक भी उ के परिवार की तरह मेल से रहते हैं। महानदी मन्दाकिनी और आक्षोदा नदी पृथ्वी के बीच में बहती हुई समुद्र में गिरती है। कैलाश पर्वत के दक्षिण पश्चिम की तरफ पिशाङ्ग नामक पर्वत है वह बहुत से शिवजी के भक्त तथा और जीवधारी नाना तरह की औषधियों मनः शिला मण्डित से युक्त है और उसी के पास स्वर्णश्रृंग से युक्त रक्त वर्ण का सूर्यप्रभ नामका एक विशाल पर्वत है। उसी के नीचे के हिस्से में लोहित नामका एक बहुत बड़ा सरोवर है। इसी सरोवर से लोहित नामका एक पवित्र महानदी निकला है उसी के किनारे पर एक विशोक नामका महावन है। वह महावन देवताओं का लीलावन कहलाता है। उसी पर्वत पर मणिवर नामक एक यक्ष रहता है। वह यक्ष गुह्यकों के परिवार के साथ मित्रता से शान्ति सद्भाव रखता है। कैलाश पर्वत के दक्षिण भाग में वैद्युत नामका एक विशाल पर्वत है वहां पर दुष्ट स्वभाव के जीव रहते हैं तथा तीन शिखर वाले वृतासुर देह से प्रकट अंजनाचल के पास हैं। इसके मूल देश में पवित्र मानस नामका एक सरोवर है। इसी सरोवर से पवित्र सरयू नदी निकली है। इस सरयू नदी के किनारे वैभ्राज नामका एक महान वन है उस वन में एक महा बलवान ब्रह्मपात नामका राक्षस रहता है वह राक्षस कुबेर देवता का सेवक तथा प्रहेता का पुत्र है। कैलाश पर्वत के पश्चिम भाग में अरुण नामका एक महान पर्वत है। वहां बहुत से जीव रहते हैं तथा तरह २ की औषधियां वहां पैदा होती हैं। इसके पास सुवर्ण के समान विशुभ्र शिलाओं से ढका शिव प्रिय श्रीमान पर्वत स्थिति हैं इस पर्वत पर निवेश धूम्र लोहित रहते हैं। इस पर्वत के मूल देश में शैलोद नामक एक सरोवर है और उसी सरोवर से शैलोदा नामकी एक महानदी निकली है यह चक्षु नदी और सीता से मिलती हुई लवण सागर में गिरती है। इस नदी के किनारे पर सुरभ नामका एक महान वन है। कैलास पर्वतके उत्तरी भाग में सुवर्णबालुकामय विन्दु नामका सरोवर है।

उस सरोवर पर राजा भागीरथ पहुंचे थे। और सरोवर के किनारे बैठ कर उन्होंने गंगा लाने के हेतु बहुत दिन तक वहां तपस्या की। पवित्र गंगादेवी वहां पर पहले से ही विद्यमान थी वह गंगादेवी सोमपाद से उत्पन्न होकर अलग अलग सात भागों में बँट गई है। वहां पर यज्ञ यूप और वितियां सोने और मणियों से चित्रित हैं। आकाश में जो तारागणों के बीच तेज चमकने वाला जो तारा है वही तारा त्रिपथगा आकाश और स्वर्ग को ढकती हुई भगवान शंकरजी के सिर पर उतरी और श्रीशंकरजी ने अपनी योगमाया से उसको वहीं रोक दिया। यह देखकर गंगादेवी क्रोधित होकर बोली तो उनके क्रोध से कुछ बूँदें पृथ्वी पर गिर पड़ीं इसीसे विन्दुसर बनगया। तब भगवती गंगा ने मन में कहा कि मैं अपने प्रवाह वेग में शंकरजी को बहाती हुई पाताल में चली जाऊँगी। भगवती गंगादेवी के मन में उन्हें ऐसा सोचते भगवान शंकर समझ गये और क्रोध में तमनमायी गंगा को पृथ्वी पर गिरते देख उन्होंने वहीं अपने सिर पर रोक रखी, और तब भगवान शंकर ने भगवती गंगा के घमंड को देखकर उन्होंने उनको अपने सिर पर छिपा लेना चाहा। इसी समय भगवान शंकर से राजा भागीरथ को अपने सामने खड़े देखा जो तप करने के कारण जो अत्यन्त दुर्बल और क्षीण होरहे थे। राजा भागीरथ ने भगवान शंकर को गंगा के लिये प्रसन्न पहले ही कर लिया, अतः उनके वरदान को सोचते हुए उन्होंने क्रोध शान्त कर लिया, और फिर ब्रह्माजी ने आकर भगवान शंकर को उनकी प्रतिज्ञा की याद दिलायी। इसके बाद भगवान शंकर ने अपने तेज से गंगा को नदी में छोड़ दिया। इसके बाद वहींसे गंगा नदी सात धाराओंमें बहनेलगी। इनकी तीन धारायें पूरबकीतरफ बहने लगीं इन तीनों गंगाके येनाम हैं-नीलनी,ह्लादिनी,पावनी इत्यादि। और तीन धारा चक्षु,सीता,सिन्धु नाम की धारा पश्चिम की तरफ बहने लगी, तब सातवीं धारा राजा भागीरथ के पीछे पीछे दक्षिणकी तरफ बहनेलगी इसी कारणउसधाराकानाम भागीरथी पड़ाहै। वह भागीरथीलवणसागर में जाकर गिरती है। सिन्धु और अरु को दो भागोंमें अलग करके यह सीता नदी पश्चिम समुद्रमें गिरती है चक्षु नदी समुद्रमें जाकर गिरती है।

आगे चलकर यह पवित्र नदी पूर्व की तरफ बहती है। कितनेही देशों और पर्वतों को ढकती हुई यह नदी समुद्र में पूरब की तरफ अदृश्य हो जाती है। और पार्वती धारा भी पूरब की तरफ बहती है और भी अनेक पूर्वी देशों को ढकती हुई नेमि मण्डल कोष्ठ के पास महासागर में गिरती है। इन नदियों की बहुत सी छोटी छोटी नदियां हैं। हीरश्रृङ्ग पर्वत के ऊपर विद्वान वशी कौवेरक रहते हैं। वहां पर कुबेरदेव के चार सेवक रहते हैं।

हेमकूट पर्वत के पीछे सायन नामका एक सरोवर है। इस सरोवर से पवित्र ज्योतिष्मती नदी निकली है। वे दोनों ही तरफ पूर्व पश्चिम समुद्र में गिरती है। निषध पर्वत पर विष्णुपद नामका एक सरोवर है। इस सरोवर से गान्धारी और नत्वली नामकी पवित्र नदियां निकलती हैं। मेरु पर्वत के पीछे चन्द्रप्रभ नाम का एक विशाल सरोवर है, वहां पर जाम्बू नाम की नदी बहती है। नीलाचल पर्वत पर शुभ पुण्डरीक युक्त पयोद नाम का सरोवर है। इसी सरोवर से पुण्डरीका और पयोदा नाम की नदियां निकली हैं।

श्वेत पर्वत से उत्तर मानस नाम का पवित्र सरोवर है इस सरोवर से ज्योत्सना और मृगकान्ता नाम की नदियां निकली हैं। वहां रुद्रकान्त नाम का एक दूसरा सरोवर भी है। वह सरोवर सब सुख से सम्पन्न है। वहां पर बहुत से सरोवर हैं। ये सरोवर जय नाम से प्रसिद्ध हैं। उनसे शान्ति और माधवी नाम की दो नदियां निकली हैं। किं पुरुष देशों में वरषा नहीं होती है वहां की नदियों से पवित्र निर्मल जल बहता रहता है। ये पवित्र नदियां लम्बे आकार में होकर लवण सागर में गिरती हैं। ऋषभ, दुन्दुभि, महागिरि धूम्र चन्द्रकंक, तथा प्रणादि पर्वतों के उत्तर में बहती हुई ये नदियां उत्तरी सीमा तक जाकर महा समुद्र में गिरती हैं सोमक, वाराह और नारद नाम की नदियां लवण सागर में गिरती हैं। बक, बलाहक और मैनाक पर्वत के बीच सवर्तक नामकी एक अग्नि है जो समुद्र के जल को पीती रहती है। बारह पर्वत इन्द्र के डर के कारण लवणो दधि में

घुस जाते हैं। श्वेत चन्द्र में जो काला शशांक है वही भारतवर्ष का चिन्ह है इन देशों के रहने वाले प्राणी आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ, और काम इत्यादि गुणों से पूर्व देशों के रहने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक वैभवशाली हैं। तरह तरह की जाति वर्ण के मनुष्य इन देशों में निवास करते हैं। इसी तरह यह पृथ्वी पूरे संसार को लोक रिथति के लिये अपने ऊपर धारण करती है।

श्रीवायुमहापुराण का 'भुवन विन्यास'नामक सैंतालीसवां अध्याय समाप्त

अड़तालीसवां अध्याय

(भुवन विन्यास)

सूतजी बोले–भारतवर्ष के दक्षिण में एक महासागर है, जिसका योजन दस हजार का है। तीन हजार योजन के विस्तार में तीन भागों में बंटा हुआ एक द्वीप है वह तरह तरह के फल फूलों से प्रसिद्ध है। वह विद्युदान नाम का एक महाशैल कुरु पर्वत है। वह द्वीप उस पर्वत के अनेक शिखरों सेशोभायमान है वहां बहुत सी नदियां हैं उन नदियों का मीठा और निर्मल जल है। उस पर्वत के अनेक दर्रों में स्त्री पुरुष प्रेम पूर्वक हंसी खुशी जीवन व्यतीत करते हैं। उस पर्वत के नीचे के हिस्से में बहुत से पुर बसे हुये हैं। यहाँ के रहने वाले मनुष्य नील-वर्ण के होते हैं वह बहुत बड़ी बड़ी दाढ़ी मूंछें रखते हैं। वे सभी मनुष्य अस्सी वर्ष तक की आयु के होते हैं। मनुष्य बन्दरों की तरह फल मूल खाकर जीवन निर्वाह करते हैं। वे मनुष्य अशुद्ध होकर आचार विचार का ध्यान नहीं रखते हैं। इस द्वीप में इसी प्रकार के असभ्य मनुष्य सदा रहते हैं। इसके बाद जो दूसरे द्वीप हैं वह तीस, पचास, बीस, साठ सौ और हजार हजार योजन के विस्तार में फैले हुये हैं। वहां पर तरह तरह की जाति के मनुष्य रहते हैं। जम्बू द्वीप में तरह तरह की वस्तुओं को पैदा करने वाले और भी छः द्वीप हैं। पृथ्वी में वह द्वीप तरह तरह के रत्नों को पैदा करते हैं। पृथ्वी में सोने और मूंगे की बहुत सी खानें हैं। वह नदी, शैल, पर्वत और वनों से शोभित लवणसागर की तरह हैं। इसकी गुफाओं में कई

तरह के जीव रहते हैं। नाग देश के बीच में वह महागिरि अनेक देशों में फैला हुआ है वहां बहुत से पर्वत हैं जो समुद्र तक फैले हुये हैं यक्ष नाम के द्वीप में भी बहुत सी रत्नों की खानें हैं वहां धातुओं से भरा हुआ द्युतिमाग नामका पर्वत है। इसी पर्वत से बहुत सी नदियां निकली हैं और इससे स्वर्ण भी पैदा होता है।

मलयद्वीप भी इसी द्वीप के समान है मलय द्वीप में भी मणि, सोने और रत्न की खानें हैं यहां पर चन्दन के वृक्ष होते हैं। इस द्वीप में मलेच्छ जाति के मनुष्य रहते हैं वहां पर मलय नामका एक विशाल वैभव शाली पर्वत है। इस पर्वत पर चांदी की खानें हैं। महामलय नामका भी एक पर्वत है दूसरा मन्दर नामका पर्वत है वह पर्वत बहुत से फल फूलों से समृद्ध है वहां पर देवर्षि रहते हैं। वहां पर अगस्त्य ऋषि का भवन है देवता और असुर उन ऋषि की वन्दना किया करते हैं। मलय पर्वत की तरह वहाँ पर एक कांचन पाद नामका पर्वत है उस पर्वत पर बहुत से ऋषियों के आश्रम बने हुए हैं। वह आश्रम तृण निकुंज और सोमलता से बने हुए हैं।

इसके बाद वहां पर त्रिकूट नामका पर्वत है। वह पर्वत नाना तरह की औषधियों से भरा है त्रिकूट पर्वत पर घरों के समान गुफायें बनी हुई हैं। त्रिकूट पर्वत का शिखर तोरण और सुवर्णमय परकोटे से चित्रित है। इस त्रिकूट पर्वत पर सौ योजन लम्बी और तीस योजन चौड़ी लंका नामकी एक नगरी है यह नगरी सभी प्रकार से वैभवशाली है। वहा के मनुष्य हर समय खुशी दिखाई देते हैं इस लंका में देवताओं के शत्रु अपनी इच्छानुरूप भेष बदलने वाले राक्षस लोग रहते हैं। इस महानगरी में मनुष्य किसी भी तरह नहीं जा सकते हैं इस द्वीप के पूर्वी दीप समुद्र के किनारे गोकर्ण महादेवजी का मन्दिर है।

इसके बाद शँख द्वीप में एक विशाल राज्य है, जिसका विस्तार सौ योजन में है वहां पर शंख की तरह स्वच्छ निर्मल एक शंखगिरि नामका पर्वत है। उस पर्वत पर तरह २ की रत्नों की खानें हैं। वहां पर भाग्यशाली मनुष्य रहते हैं उसी पर्वत से शंखनागा नाम की एक

नदी निकली है। यहां पर नाग राज शंखमुख निवास करते हैं कुमुद द्वीप में तरह तरह के फूल खिले रहते हैं। वहां महादेवजी की महा भागा कुमुदा नामकी भगिनी है वह सब जगह पूजित है वाराह द्वीप में कितनी ही जाति के मलेच्छ लोग अपने अपने घर बना कर रहते हैं। वह द्वीप धन धान्यों और धार्मिक प्रवृति के मनुष्यों से भरा है। वहां पर्वत, नदी, फल फूलों से सजा सुन्दर शिला वाला वाराह पर्वत है जिसमें बहुत सी गुफायें और दरी, झरने इत्यादि हैं। उससे पवित्र निर्मल जल वाली वाराही नामकी नदी निकली है। वहां की प्रजा वाराह रूप धारण करने वाले विष्णु भगवान की पूजा करते हैं। मैंने इस तरह चारों दिशाओं में स्थित छः अनुद्वीपों का वर्णन आपको सुनाया है भारतद्वीप दक्षिण दिशा में अति विस्तार से फैला है। एक ही भारतवर्ष में बहुत से द्वीप हैं वह द्वीप समुद्र से अलग होकर कितने ही भागों में बँट गये हैं और इसी तरह अन्तरद्वीप से मिले चार महाद्वीप हैं। जम्बू द्वीप का वर्णन मैंने आपको पहिले बता-दिया है।

इति श्री वायु महापुराण का 'भुवन-विन्यास' नामका अड़तालीसवां अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

उन्नचासवां अध्याय

(भुवन-विन्यास)

सूतजी बोले हे ब्राह्मणो, अब मैं प्लक्ष द्वीप का वर्णन करूँगा प्लक्ष द्वीप जम्बू द्वीप से दुगना है। इसकी सीमा भी उससे तिगुनी है। लवण सागर को यह द्वीप चारों ओर से घेरे हुये है यहां के निवासी परम पवित्र और दीर्घायु वाले हैं यहां न तो कभी अकाल पड़ता है। और न कोई बूढ़ा या रोगी होता है। वहां मणियों से युक्त शुभ सात पर्वत हैं और रत्नों को उत्पन्न करने वाली नदियां हैं। इन सात पर्वतों के नाम इस प्रकार हैं। प्रथम गोमेदक पवत है जिसके नाम पर गोमेदक देश बसा हुआ है। दूसरे पर्वत का नाम चन्द्र है।

यहां सब औषधियां मिलती हैं। अश्विनी कुमारों ने यहां ये औषधियां अमृत के लिए स्थापित की हैं तीसरे पर्वत को नारद कहा जाता है। अधिक ऊँचा होने से इसको 'दुर्ग शैल' भी कहा जाता है। पूर्व समय की बात है कि इसी पर्वत पर नारद मुनि और पर्वत ऋषि उत्पन्न हुये थे। चौथे पर्वत को दुन्दभि कहा गया है। इस पर्वत पर प्राचीन समय में देवताओं ने एक नगाड़ा (दुन्दुभि)बजाई थी जिसके शब्द से जीव मरने लगते थे। रज्जुदार और शाल्मल असुर यहां पर ही मारे गये थे। पांचवे पर्वत को सोमक नाम से कहा गया है। जिस पर प्राचीन काल में देवों ने अमृत रखा था जिसे गरुड़ ने हरण करके अपनी माता को दिया था। छटे पर्वत को सुमना या ऋषभ कहते हैं यहां बाराह भगवान ने हिरण्याक्ष को मारा था। सातवें पर्वत का नाम वैभ्राज है, अपनी प्रभा से यह भासित होने के कारण वैभ्राज कहा गया है। गोमेदक का गोमेदक देश, चन्द्र का शिखिर, नारद का सुरवोदय, दुन्दुभि का आनन्द, सोम का शिव, ऋषभ का सोमक और वैभ्राज पर्वत का ध्रुव प्रदेश कहा गया है इन देशों में देव, गन्धर्व, सिद्ध चारण लोग विहार करते हुये रहते हैं। इन देशों में सात समुद्र गामिनी नदियां हैं जो सप्त गंगा कहलाती हैं। इनके नाम हैं–अनुतप्ता, सुतप्ता, निष्पापा, मुदिता, ऋतु, अमृत, और सुकृता है। फिर इनसे हजारों नदियां निकली हैं देवराज यहां अधिक वृष्टि किया करते हैं। यहाँ की प्रजा वर्णाश्रम धर्म से युक्त निरोग और बलिष्ठ होती है। प्लक्ष आदि पांच द्वीपों में प्रजा का त्रेतायुग के समान काल बीतता है। यहां भी मध्य में एक प्लक्ष का महा वृक्ष है जिसके कारण हम को प्लक्ष द्वीप कहा गया है। स्थाणु यहां के पूज्य देवता हैं यह प्लक्ष द्वीप ईख के रस से भरा हुआ है अब शाल्मल द्वी का वर्णन करूँगा। सो ध्यान पूर्वक सुनिये।

सब द्वीपों में शाल्मल द्वीप अति उत्तम है। यह शाल्मल द्वीप ईख रस के सागर को चारों ओर से घेरे हुए हैं। यह प्लक्ष द्वीप से दुगना है यहां पर भी रत्नों को उत्पन्न करने वाले सात पर्वत हैं। उन पर्वतों

से सात नदियां निकती हैं तेजोमय सूर्य की तरह पहला पर्वत 'कुमुद' है। दूसरा पर्वत 'उन्नत' कहागया है। जहां गगनचुम्ब हरिताल के वृक्ष हैं तीसरे पर्वत का नाम बलाहक है चौथे पर्वत को द्रोण कहते हैं। यहां मृत संजीवनी और बलिदायिनी औषधियां हैं। पांचवे पर्वत को कंक कहा गया है। छटा मेघ की भांति वाला 'महष' नामक पर्वत है यहां महिष नाम के अग्नि निवास करते हैं। सातवां 'कुकु ज्ञान' रत्न मय पर्वत है। यहां प्रथम वार प्रजापति द्वारा प्रजा उत्पन्न करने पर वासव स्वयं वर्षा करते हैं। यहां के सात देशों के नाम है कुमद का श्वेत देश, उन्नत का लोहित, बलाहक का जीमूत, द्रोणका हरित, कंक का वैद्युत, महिष का मानस और कुमुद का सुप्रभ देश है अब नदियों के नाम सुनिये–पाणितोया, वितृष्णु, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति, ये सात नदियां उन देशों में बहती हैं। इनके पास में सैकड़ों हजारों नदियां बहती हैं। यहां भी प्लक्ष द्वीप की तरह महान शाल्मलि (सेंमर) का वृक्ष है। जिसका तना बहुत मोटा है इसके नाम पर इसे शाल्मल द्वीप कहा गया है यह द्वीप सुरा सागर से चारों ओर से घिरा हुआ है।

हे ब्राह्मणो अब चौथे कुश द्वीप का संक्षेप में वर्णन सुनिये। यह शाल्मली द्वीप से दूना बड़ा है। इसमें पहला विप्रमोच्चय, दूसरा हेम, तीसरा मेघ समान द्युतिमान, चौथा पुष्पवान, पांचवां कशेशय, छटा हरि गिर और सातवां मन्दराचल पर्वत है। जल का एक मन्दा भी है और का भेजन करके यह पर्वत निकला है। इससे इसे मन्दराचल पर्वत कहा गया है। वहां क्रमशः उन्द्विद, वेणुमण्डल, स्वैरथाकार, चौका लवण, धृतमान, प्रभाकर तथा कपिल ये सात देश वहां बसे हैं। यहां पर गौर वर्ण वाले लोग रहते हैं। इनमें चोर और मलेच्छ नहीं रहते हैं यहां भी सात नदियां हैं इनकी अन्यशाखायें भी बहुत सी पवित्र नदी हैं। यह कुश द्वीप घृत सागर से चारों ओर घिरा है।

अब क्रौंच द्वीप का विस्तार सुनिये। यह कुश दीप से दुगना है। यह दीप घृत सागर को चारों ओर से घेरे हुये है। इसका पहला पर्वत

क्रौंच है यह सबसे श्रेष्ठ है। इसके बाद वामनक वामनक के बाद अन्धकारक, अन्धकारक के बाद दिवावृत, दिवावृत के बाद दिविन्द, दिविन्द के बाद पुण्डरीक और पुण्डरीक के बाद दुन्दुभिस्वन नामका पर्वत है। क्रौंच द्वीप के ये सातों पर्वत रत्नमय हैं। इन पर अनेक फल फूल वाले वृक्ष और लतायें हैं। इन पर्वतों के बीच भूमि क्रमशः दुगनी है यहां देशों के नाम इस प्रकार हैं–क्रौंचका कुशल देश, वामन का मनोनुग, मनोनुगा के बाद तीसरा उष्ण देश, उष्ण देश के बाद प्रवारक, प्रवारक के बाद अन्धकारक, इसके बाद मुनि देश, तथा फिर दुन्दुभिस्वन देश है। ये देश सिद्ध चारणों के निवास स्थान हैं वहां के निवासी गौर वर्ण के हैं इन सात देशों में गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा ख्याति और पुण्डरीका ये सातों नदियां बहती हैं। इन नदियों के समीप में बहने वाली और भी कितनी अधिक जलवाली बड़ी २ नदियां हैं, जो समुद्र से जाकर मिलती हैं। यह दधिमण्डोदक समुद्र से घिरा हुआ है जो क्रौंच द्वीप के बराबर है। यह वर्णन मैंने इन द्वीपों का संक्षेप में कीया सविस्तार वर्णन तो इनका सौ वर्षों में भी नहीं हो सकता है।

अब आप लोग शाक द्वीप का यथार्थ वर्णन सुनिये यह क्रौंच द्वीप से दूना बड़ा है। यह दधिमण्डोदक समुद्र को चारों ओर से घेरे हुए है यहां के रहने वाले निवासी पवित्र, स्वस्थ, चिरायु और रोग शोक से रहित हैं। यहां भी मेरु, उदय, जलधार, रैवततक, श्याम, अस्तगिर, अम्बिकेय पर्वत, रम्य पर्वत है, इसे लोग केशरी भी कहते हैं। वायु यहीं से बहा करती है यहां प्रदेशों का भी वर्णन सुनिये जिनके क्रम से निम्नलिखित नाम हैं–जलद सुकुमार, रैवतक का कौमार, मणीचक्र, कुसुमोत्तर प्रदेश, मोदाक और महाद्रुम वर्ष या देश हैं इस के मध्य में एक वनस्पति है जिसका नाम शाक है। यहां चारों वर्णों के लोग रहते हैं यहां भी सातों देशों की सात नदियां हैं जिनके नाम क्रमशः हैं–गंगा या अनुतप्ता, कुमारी या सिद्धा तीसरी नन्दा या पार्वती, चौथी है शिवेतिका या त्रिदिवा, इक्षु या ऋतु, छटी धेनुका

और मृता। ये सप्त गंगा नामक नदियां वहां प्रति देश में कल्याण कारक जल को धारण करती हुई बहती हैं इसमें से अगणित परिमाण वाले जल को धारण करती हुई सहस्रों नदियां बहती हैं। ये सभी श्रेष्ठ और पवित्र हैं इनका वर्णन नहीं किया जा सकता है। हे शांशपायनजी! नदियों से घिरा हुआ तथा मेघ के समान पर्वतों से घिरा यह विस्तीर्ण द्वीप चक्र की तरह स्थित है। अनेक धातु, मणि, विद्रुम और समृद्धपुरों तथा देशों आदि से सम्पन्न इस शाक द्वीप को क्षीर सागर ने चारों ओर से घेर लिया है। यहां लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करने वाले हैं यहां व्यभिचार का नाम भी नहीं हैं अतः कोई भी मनुष्य वर्णाश्रम धर्म से हीन तथा वर्णसंकर नहीं हैं। उन्हें न कोई दण्ड देता है। तथा न वहां कोई दण्ड देने ही वाला है। वे सब धर्म जानते हैं अतः वे आचार विचार के द्वारा एक दूसरे की रक्षा करते हैं।

अब जो सातवां पुष्कर द्वीप है उसका वर्णन करूँगा सो सुनिये क्षीर सागर के चारों तरफ पुष्कर व्दीप घिरा हुआ है। यह शाक व्दीप से दुगना बड़ा है इस व्दीप में एक महान महाशिल नामका पर्वत है उस विशाल पर्वत के ऊँचे २ शिखर मणियों से चित्रित हैं इस देश के पूर्वी भाग में एक विचित्र चोटी स्थिति है। उसका विस्तार पच्चीस हजार योजन तक फैला हुआ है और उसकी ऊँचाई चौंतीस हजार योजन तक है व्दीपार्द्ध के परिमाण के समान एक उत्तम पर्वत है। वह मानस पर्वत कहलाता है यह नवीन चन्द्रमा की तरह वर्तमान है। इसकी ऊँचाई पच्चास हजार योजन की है और इसका विस्तार भी उतना ही है। इस व्दीप के अर्द्धभाग में एक मानस नामका पर्वत है, इसके एक विशाल काय शिखर है वह देश भेद से दो भागों में बंटा हुआ है इसके चारों तरफ मीठे जल का समुद्र है। पुष्कर व्दीप के समान ही इसका विस्तार है। इस द्वीप में दो देश हैं जिनके पवित्र और शुभ कारक नाम हैं ये दोनों देश मानस पर्वतके निचले भागमें मण्ड़लाकार हैं। मानस पर्वत के बाहर जो देश हैं वहा महावीत कहे गये हैं भीतरी देश धातुकी नामसे प्रसिद्ध हैं वहां लोगों की आयु दसहजार वर्ष की होती है।

वहां के मनुष्यों को सिद्धि प्राप्त होती है। वहां के सभी मनुष्य निरोग और स्वस्थ होते हैं। दोनों देशों के मनुष्यों की आयु तथा रूप में एक ही के समान होते हैं। पुष्कर द्वीप के दोनों देशों में सच, झूठ, धर्म, अधर्म, पशुपालन, क्रय विक्रय, वर्णाश्रम विषयक बात, सेवावृत्ति और बुरेवचन या शस्त्रका प्रयोग करने की समस्या नहीं है वहां का काल हर समय उत्तर कुरु की तरफ रहता है। वहां न नदी है, न झरने, न किसी प्रकार के सरोवर हैं। वहां न कभी वर्षा होती है न गर्मी सर्दी पड़ती है। वहां के मनुष्यों में न थकावट आती है न बुढ़ापा आता है वे हर समय युवक ही बने रहते हैं। हमने आपसे पुष्कर द्वीप के दोनों महावीत और धातकी खण्ड का वर्णन किया है।

यह पुष्कर सागर दीध सागर से चारों तरफ घिरा हुआ है। पुष्कर द्वीप के विस्तार और घेरे की तरह ही इसका विस्तार और घेरा है अतः इस तरह सातों द्वीप सात समुद्र से घिरे हुए हैं जो द्वीप समुद्र से घिरे हुये हैं, वे उसी के बराबर हैं। जल की वृद्धि होने के कारण ही सागरों का समुद्र नाम पड़ा है चारों वर्ण की प्रजा और ऋषियों को देश में रहने के कारण ही देश को वर्ष कहते हैं। जिस प्रकार ऋष् धातु से ऋषि शब्द बना है उसी तरह वृष् धातु से वर्ष शब्द बना है। शुक्ल पक्ष में जिस तरह चन्द्रमा बढ़ता है उसी तरह समुद्र का जल बढ़ता है। कृष्णपक्ष के चन्द्रमा की तरह ही समुद्र का जल घटता है। पर्वों के समय में समुद्र का जल एक सौ पन्द्रह अंगुल तक बढ़कर घटता है। दोनों तरफ जल बहने के कारण और सभी तरफ जल से घिरे रहने के कारण द्वीपों का नाम द्वीप पड़ा है समुद्र में जिस कारण जल रहता है इसीलिए उसे उदधि कहा जात हैं। बिना पर्व गांठ वाले गिरि कहे जाते हैं और पर्व वाले को पर्वत कहते हैं।

शाल्मल द्वीप में शाल्मलि नामका जो महान वृक्ष है वह पूज्यनीय है। कुशद्वीप में कुशनामका एक तृण है, अतः इसी के नाम पर उस द्वीप का कुशद्वीप नाप पड़ा है क्रौंच द्वीप के मध्यदेश में क्रौंच नामका पहाड़ है। शाकद्वीप में शाक नामका वृक्ष है इसी कारण वह शाक

द्वीप कहलाता है। पुष्कर द्वीप में एक वट का वृक्ष है। उस वृक्ष की सब लोग पूजा करते हैं। यहां पर भगवान शंकरजी की तथा ब्रह्मा जी की पूजा होती है। वहां पर साध्यों के साथ में ब्रह्माजी रहते हैं और तैंतीस महर्षियों के साथ देवता लोग उन की पूजा किया करते हैं।

जम्बूद्वीप में तरह तरह के रत्न पैदा होते हैं। पुष्कर द्वीप के दोनों देशों के मनुष्यों की रक्षा स्वयं आप ही वे मनुष्य करते हैं। प्रजापति ब्रह्माजी स्वयं भगवान विष्णुजी, शिवजी तथा सूर्य और पितरों के साथ दण्डविधान से वहाँ का शासन करते हैं।

पुष्कर द्वीप से आगे एक बहुत बड़ कांचनपुरी है। कांचनपुरी की पृथ्वी एक शिला की तरह समान और घनी बसी हुई है। इसके आगे सीमान्त में एक पर्वत है पर्वत के आगे एक मण्डल है। मण्डल से आगे लोकालोक है लोकालोक के बाद एक दिशा की तरफ प्रकाश है और दूसरी दिशा की तरफ अन्धकार है। पूरब की तरफ प्रकाश है और पश्चिम की तरफ अन्धकारमय है। इसकी ऊँचाई दस हजार योजन की है आलोक शब्द से ही लोक शब्द बना है। जिस भाग में अन्धकार है उसकी तरफ भी कुछ प्रकाश है प्रकाश को ही आलोक कहते हैं आलोक के कारण लोक हुआ है। अन्धकार बाहर है। बाहर भी जहां तक आलोक है वहां तक लोकों का विस्तार है। इसके बाद जल से सब ढक गया है निरालोक के बाद जो लोक है वह अण्ड लोक मण्डल से ब्रह्माजी भी ढके हुये हैं। अण्ड के बीच में सातों द्वीपों वाली पृथ्वी स्थिति है। इन लोकों के अतिरिक्त और भी बहुत लोक हैं–जैसे भुर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्य लोक इत्यादि हैं।

जिस तरह शुक्ल पक्ष की पड़वा के दिन चन्द्रमा पश्चिम दिशा की तरफ कुम्भ स्थाई होकर रहते हैं उसी तरह अण्ड का शरीर है। इस तरह के हजारों करोड़ों अण्ड हैं। ये अव्यात्मा के कारण ऊपर नीचे और बीच में स्थित हैं ये अलग अलग सात-सात प्रकृत कारणों से ढका हुआ है। इनमें एक दूसरे से दस गुने बड़े हैं और हर एक दूसरे

से मिले हुए हैं। सरिता, पहाड़ तथा जंगल आदि के बीच में गोलोक धाम स्थित है। जिस प्रकार कमल में कर्णिका हुआ करती है उसी तरह उपरोक्त सरिता और पहाड़ के मध्य में मनको हरने वाला धाम शोभित है। वहीं पर छै पल स्वर्ण का निर्मित एक पात्र है जो ४ अंगुल गहरा है जिसमें एक-एक माशे स्वर्ण के बने चार-चार अंगुल लम्बे चार कीलों से छिद्र किये जांय तथा उस पात्र को जल के ऊपर रखा जाय तो उन छेदों से जल आकर जितने समय में वह पात्र भरदे, उतने समय का एक दण्ड हुआ करता है। इस तरह मैंने आपको महान यश देने वाला यह सप्तद्वीपों का आख्यान वर्णन कर दिया।
इति श्री महावायुपुराण का भुवन-विन्यास नामक ४६ आध्याय समाप्त।

पचासवां अध्याय

(भुवन-विन्यास)

ऋषियों ने इस प्रकार सूत जी से आनन्द दायक वाणी सुनकर और कुछ सुनने की इच्छा व्यक्त की। और सूत जी से सादर पूछने लगे।

सूत जी बोले–हे ब्राह्मणो आप लोगों को अब मैं दानव और राक्षस, देव, किन्नरों आदि के विनास स्थानों का वर्णन करूंगा। सो आप ध्यना मग्न होकर श्रवण कीजिये।

समस्त विश्वों के ऊर्ध्व भाग में गोलोक स्थित है, जो कि नभ के समान फैला है। श्रीकृष्ण की दया से वह सदा नित्य अण्ड के रूप में प्रकाशित रहता है। हे राजन्! जब श्रीकृष्ण भगवान कला स्वरूप प्रकृति के साथ क्रीड़ा परायण होकर थकान की अनुभूति करने लगे तो उनके मुख से पसीने की बूँदें के जल से गोलोक धाम जल से भर गया। महा विष्णु का आधार गोलोक धाम में ही है। जल शय्या पर शयन करने वाले जो महा विराट हैं वे भगवान श्रीकृष्ण का सोलहवां अंश हैं।

उन श्रीकृष्ण के अंगों की शोभा दूर्वादल के सदृश्य श्याम है। उनके मुँह पर मुस्कराहट खेलती रहती है। वे चतुर्भुजाधारी हैं।

वे वनमाला धारण किये हैं। पीताम्बर ओढ़े हैं। आकाश में उनका नित्य वैकुण्ठ धाम हैं। ईश्वर की इच्छा से उसका प्राकट्य हुआ है।

वह आकाश के सदृश्य फैला हुआ और मूल्यवान सुन्दर रत्नों से बना है वहीं नारायण देव निवास करते हैं। भक्तों पर कृपा करने के निमित ही श्रीकृष्ण भगवान दो स्वरूपों में प्रकटे हैं—दो भुजाधारी तथा चार भुजाधरी। चार भुजाओं से वे वैकुण्ठ में निवास करते हैं और दो भुजाओं से गोलोक धाम में। वैकुण्ठ से पचास कोटि योजन गोलाकार 'गोलोक धाम' स्थित है जो सब लोकों से श्रेष्ठतम है। बहुमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित विशाल भवन उस धाम का कान्ति में वृद्धि करते हैं। वह भवन रत्नेन्द्रसार के बने अनोखे खम्भों और सीढ़ियों से सुशोभित हैं। सुन्दर मार्ग निर्मित दर्पणों से जड़े कपाट और कलशों से शोभित तथा नाना प्रकार के चित्रों से शिविर उसकी शोभा में वृद्धि करते रहते हैं। वह एक करोड़ योजन विस्तार वाला है। उसकी लम्बाई सौ करीड़ योजन है। उसका परकोटा विरजा नदी से घिरा हुआ शतशृङ्ग पहाड़ है।

विरजा सरिता की आधी लम्बाई, चौड़ाई और शतशृंग पहाड़ की आधी ऊँचाई वाले वृन्दावन से वह धाम शोभायमान है। वृन्दावन की अपेक्षाकृत अर्ध लम्बाई चौड़ाई में बना रास-मंडल गोलोक धाम का आभूषण है। सम्पूर्ण जीव अपने कर्मों के अनुसार अपने कर्मों का फल भोगते हैं, क्यों कि जो भी शुभ या अशुभ कर्म हुआ करता है, उसका नाश कोटि कल्पों में भी नहीं हुआ करता। कर्मों के अनुसार जीव ब्रह्मा, इन्द्र तथा सूर्य के भवन में जन्मा करता है। कर्म द्वारा ही जीव मनुज के घर में और कर्म द्वारा ही पशु इत्यादि योनियों में जन्मता है। कर्मों के कारण ही जीव नर्क में प्रस्थान करता है और कर्म से ही उसको बैकुण्ठ मिलता है। अपने कर्मों के अनुसार ही जीव चक्रवती राजा बन जाता है तथा स्वकर्म से ही वह नौकर बनता है। हे जगदम्बे! कर्म से ही जीव सुन्दर हुआ करता है और अपने कर्मों द्वारा ही वह सदा रोगी बना रहता है। विरजा के आस पास दो प्रदेश हैं

इनमें प्रथम के निम्नदेश में भंयकर शब्द करने वाले इन्द्र के शत्रु नमुचि का निवास स्थान और मन्दिर हैं। इस कृष्ण वर्ण के देश में शंकुकर्ण का पुर, कबन्ध का मन्दिर, प्रसन्न जनों से युक्त निष्कुलाद का पुर है यहीं भीमराक्षस और शूलदन्त का भी पुर है। इसके अलावा लोहितांक्ष, कलिंग, स्वापद, धन्नंजय, महात्मा महेन्द्र, कालियनाग और कलस आदि अनेक नाग, दानव और राक्षसों के सहस्रों नगर हैं। हयग्रीव, कृष्ण, निकुम्भ शँख, गोमुख, नीलराक्षस, मेघ, कुथन, कुकुराद, महोष्णीश कम्बलनाग, अश्वतर, कद्रु पुत्र महात्मा तक्षक आदि नाग, दानव व राक्षसों को दूसरे पाण्डुभौम तल में निवास ग्रह और नगर हैं। इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है। तीसरे तल में महात्मा प्रहलाद और दैत्येन्द्र अनुह्लाद का पुर है। यहीं तारक, त्रिशरा, शिशुमार, च्यवन खर, राक्षसेन्द्र कुम्भिल के भी मन्दिर और नगर हैं। यहां विराध, क्रूर, हेमक आदि नाग भी हैं। यहां मणिमन्त्र का पुर कपिल का मन्दिर तथा उरगपतिनन्द और विशाल के भी मन्दिर हैं।

चौथे तल में दैत्यसिंह महात्मा कालनेमिका गजकर्ण तथा कुंजर नाम के नगर हैं। जहां पर सुमालि का एक विस्तृत पुर और लोकनाथ मुंज और वृकवक्त्र के स्थान हैं। यही पर वैनतेयगरुड़ जी का हजारों योजन लम्बा चौड़ा एक नगर है जो पक्षियों से भरा हुआ है। पाचवें में दैत्यराज विरोचन का नगर है। जो अनेक योजन विस्तार वाला शर्करा के रंग की सी भूमि वाला है यहीं वैदूर्य, अग्निजिह्व आदि दैत्यराजों के भी पुर हैं। यहीं पर कर्मार, स्वस्तिक और जय नामक नाग भी यहीं रहते हैं। छटवें तल में दैत्यराज के सरि का उत्तम नगर है। वहां सुपर्वा, पुलोमा तथा महिष के नगर और उत्कोश राक्षस का नगर है शतशीर्ष और सुरसापुत्र वहां सुख पूर्वक रहा करते हैं। यह छटा शिला भौम नामक रसातल है सबके पश्चिम में सातवां रसातलहै जिसको पाताल करते हैं। यहां बलि का नर नारियों से युक्त आनन्दमय नगर हैं। यह असुर और नागों से युक्त है। यहीं पर मुचुकुन्द दैत्य का महान नगर है यह पाताल दिति के फूलों

के अनेकानेक विशाल भवनों से भरा पड़ा है। हे ब्राह्मणो! बहुत विस्तृत पाताल के अन्त में सर्पगण निवास करते हैं। ये महात्मा कुण्डली लाल कमल की तरह आंख वाले अजर अमर, धौत शंख के समान, नील वस्त्र धारण करने वाले, और विचित्र माला को धारण करने वाले हैं। ये कान्तिमान, विशाल भुजा और शरीर वाले हैं। ये नागराज अग्नि की तरह अनगिनत जिह्वाओं से ज्वाला को फेंकते रहते हैं जिससे यह कैलाश की भांति दीखते हैं सभी नागों के राजा महाद्युतिमान शेष भगवान हैं। यह भगवान विष्णु का ही शेष रूपी शरीर है जो पृथ्वी की सीमा पर स्थित है। देव असुर, नाग, महानाग और राक्षसों से युक्त इन सात रसातलों का यह वर्णन मैंने किया। इससे आगे के स्थान अगम्य हैं। तथा वे आगे से न तो सिद्धों द्वारा देखे ही गये हैं और देवता लोग ही उन्हें जान पाये हैं हे ब्राह्मणो! महर्षि लोग पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश का महत्व इसी प्रकार वर्णन करते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

अब हम सूर्य और चन्द्रमा की गति वर्णन करेंगे। ये चन्द्र और सूर्य अपने मण्डल में सदा स्थिर रहकर घूमते रहते हैं और अपनी प्रभा से प्रकाश किया करते हैं। सातों समुद्रों और द्वीपों का वही विस्तार है जो पृथ्वी का है। चन्द्र, सूर्य वहिर्भागस्थ परिधि में प्रकाश करते हैं। यह आकाश मण्डल भूमि के परिधि परिमाण के बराबर है।

प्रकाश वाचक 'अब' धातु से प्रकाश करने के कारण 'रवि' शब्द बनता है। इस भारतवर्ष में 'यही शब्द महितत्वात्' अर्थात् पूज्यत्व के कारण निपातन से सिद्ध हुआ है। भारतवर्ष का विस्तार सूर्य के विस्तृत मण्डल के समान है सूर्य का विस्तार नौ हजार योजन है। इस विस्तार से सूर्य मन्डल की विशालता तीनगुनी अधिक है चन्द्र मन्डल का विस्तार सूर्य से दुगना है। अब हम सात द्वीपों वाली पृथ्वी का परिमाण कहेंगे, मेरुमध्य के चारों ओर इस सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार पचास करोड़ योजन है। पृथ्वी का बांध विस्तार एक करोड़ पचास हजार नवासी योजन है। चारों दिशाओं में पृथ्वी का विस्तार तीन

अरब एक करोड़ योजन है। जिनमें समुद्र तथा पर्वत २५ करोड़ १० लाख योजन घेरे हुये हैं। वह लोकालोक पर्वत तक फैलते हैं इसके बाद निरालोक है। जिसकी गणना नहीं की जासती। एक बार संध्या काल में दुरात्मा राक्षसों ने सूर्य को खा जाना चाहा परन्तु प्रजापति ने उन्हें मार दिया। उस समय उनकी केवल तात्कालिक मृत्यु हुई परन्तु शरीर सदा के लिये अक्षय हो गये। ये राक्षस मन्देह कहलाते है जो संख्या में तीन करोड़ हैं। ये दुरात्मा प्रतिदिन उदय काल में सूर्य को खा जाना चाहते हैं। और कष्ट देते हैं। तब सूर्य का और उन रक्षसों का घनघोर युद्ध होता है। ब्रह्मणों के साथ देवता और ब्रह्माजी उस समय संध्या की उपासना करते हैं। तब वे गायत्री तथा ओंकार से अभिमन्त्रित जल प्रदान करते हैं। उस वज्र के सामन तेजस्वी जलसे दैत्य लोग जल्म जाते हैं। ब्राह्मण लोग सर्वत्र अग्निहोत्र करते हैं और आहुति प्रदान करते हैं। इसके बाद ब्रह्मा मरीचि तथा बालखिल्यों के साथ अपने स्थान को लौट जाते हैं।

पन्द्रह निमिषों की काष्ठा, तीस काष्ठा की कला, तीस कला कला का मुहूर्त और तीस मुहूर्तों का एक दिन-रात होता है। भाग के अनुसार दिवसों का यथा क्रम वृद्धि और ह्रास होता रहता है। किन्तु संध्या का परिमाण सदा एक मुहूर्त रहता है। जब सूर्य उदय होकर अपनी रेखा पर तीन मुहूर्त तक चल लेते हैं तो वह वह उतना समय प्रातस्तान कहलाता है। प्रातस्तन के बाद तीन मुहूर्त तक संगव काल होता है। फिर तीन महूर्त तक मध्यान्हकाल और मध्याह के बाद तीन महूर्त तक अपराह्न और इसके बाद सायाह्न काल होता है। जो तीन मुहर्त तक रहता है। जब सूर्य विषवतरेखा पर आते हैं तब १५ मुहूर्त की रात होती है। सूर्य के दक्षिणायन और उत्तरायण होने पर रात दिन घटते बढ़ते हैं। शरद व वसन्त काल में सूर्य विषवत रेखा पर आजाते है उस समय दिन रात बराबर होते हैं।

पन्द्रह दिन का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयन का एक संवत्सर

होता है। संवत्सरादि पांच प्रकार के हैं। पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर चौथा अनुवत्सर और पांचवां वत्सर। सौरे, सौम्य, नाक्षत्र और सावन नामक चार प्रकार के मान सभी पुराणों में कहे गये हैं।

श्वेत पर्वत के उत्तर शृङ्गवान नाम विख्यात है। इसका विस्तार तथा विष्कम्भ पूर्व में बताया जा चुका है इसके तीन गगन चुम्बी शृंग हैं। प्रथम और तीसरा चांदी के तथा मध्य का सोने का शृंग है। यह विषवत रेखा के पास है। शरद एवं वसन्त में भगवान भास्कर उस पर्वत पर अवलम्बन करते हैं। अनुमति और राका दो पूर्णिमा और सिकीवाली और कुहू नामक दो अमावस्या होती है। माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ उत्तरायण एवं श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष पौष दक्षिणायन है। इन्हीं बारह महिनों का एक वत्सर होता है ऋतुयें इन्ही से उत्पन्त हुई हैं। मानव को विषव रहस्य को जानकर देव पितृ कार्य करने चाहिये। नागवीथी के उत्तर और सप्तर्षि के दक्षिण एवं सविता के उत्तर जो मार्ग है, वह देवयान कहलाता है। यहां निवास करने वाले विमल, सिद्ध ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म को सदा हेय मानते हैं। इससे वे मृत्युंजय हैं। इसके बाद ऊर्ध्वरेता ८८ हजार ऋषि हैं जो सूर्य के उत्तर पथ में प्रलय काल तक वास करते हैं। ये लोक व्यवहार से रहित हैं तथा ये मैथुन आदि नहीं करते। शव्यादि दोष का भी दर्शन नहीं करते। इस कारण से इन्होंने अमरत्व प्राप्त किया है। प्रलय काल तक जीवित रहते हैं। सप्तर्षि मण्डल से ऊपर ध्रुव प्रदेश है जो विष्णु पद कहलाता है। यह आकाश में दिव्य और प्रकाशवान तीसरा पदार्थ है यहां पर किसी को कोई चिन्ता नहीं सताती। यह भगवान विष्णु का परमपद है। लोक साधक ध्रुव आदि इसी विष्णुपद के सहारे ठहरे हुये हैं। भगवान भास्कर रात्रि के संतप्त प्राणियों तथा चर-अचर की जीवन ज्योति में बल प्रदान करने के लिये प्रातःकाल अपनी नव-निर्मित शीतल रश्मियों से जगत में प्रकाश फैलाने हेतु भ्रमण करते हैं।

और मध्यान्ह में हर किसी को तपाते हैं। सूर्य निकलने से दोपहर तक अपनी किरणों को बढ़ाते हैं और दोपहर के बाद अस्त होने तक सूर्य अपनी किरणों को धीरे २ कम करते हुए अस्त हो जाते हैं। उदय और अस्त होने से ही पूर्व पश्चिम दिशा मालूम हो जाती है। सूर्य जिस तरह आगे तपते हैं, उसी तरह पीछे दोनों भागों में जहां सूर्य निकलते हुए दीखते हैं। वही उदयाचल कहलाता है और जहां वे छिप जाते हैं वहीं अस्ताचल कहलाता है। सबके उत्तर में मेरु है और दक्षिण में लोकालोक है। सूर्य की किरणें रात को नहीं दीखती हैं। ग्रह, नक्षत्र, तारा, और सूर्य के दर्शन तथा अस्त होना ऊँचे से ही जाने जाते हैं। अग्नि और जल की छाया शुक्ल वर्ण की होती है पृथ्वी की छाया कृष्ण वर्ण की होती है सूर्य की गर्मी कम होने के कारण वे लोहित वर्ण के होते जाते हैं। सूर्य के अस्त होने पर उनकी किरणें का एक भाग अग्नि में मिलजाता है इसी से अग्नि रात में बहुत दूर से मालूम पड़ती है और जब सूर्य का उदय होता है, तब उनके अस्तकालीन तेज के साथ अग्नि का तेज भी सूर्य में मिल जाता है अतः इसी कारण सूर्य देव दिन में अधिक तपते हैं। सूर्य का प्रकाश मान तेज और अग्नि का उष्ण तेज आपस में मिलकर सारे पृथ्वी के मनुष्यों के दिन रात को सतुंष्ट करते हैं सूर्य के प्रकाश से युक्त दिन है और रात्रि अन्धकारमयी है। अतः इसीलिए सूर्य के उदय और अस्त से ही दिन रात की व्यवस्था होती है और जब इस प्रकार सूर्य पुष्कर के बीच घूमते हैं तो पृथ्वी के तीन अंश को वे इस मुहुर्त में ही पार कर जाते हैं अब मैं यह बताऊँगा कि सूर्य एक मुहुर्त में कितने योजन चलते हैं।

सूर्य प्रति मुहुर्त में एक्कतीस लाख पचास हजार योजन चलते हैं। जब सूर्य इस चाल से दक्षिण दिशा में जाते हैं, तब वे उस दिशा में माघ महीने तक वहीं रहते हैं। अब मैं आपसे उनकी दक्षिण दिशा की चाल का वर्णन करूँगा।

सूर्य देव इस दिशा में एक दिन और रात में नौ करोड़ पैंतालीस हजार योजन चलते हैं। क्षीरोद समुद्र के उत्तर में उदित होकर जब

वह आगे चलते हैं तो उनके सामने के लोक में दिन और पीठ पीछे रात्रि है। इस प्रकार सूर्य देव का क्रम प्रति दिन चलता रहता है।

इति श्री वायु महापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक ५०वां अध्याय समाप्त

इक्यावनवाँ अध्याय

(ज्योतिष्प्रचार)

स्वायंभुव मन्वन्तर के वर्णन-प्रसंग में भूतकालीन वृत्तांत कह चुके हैं अब भविष्य की बातों का विवरण सुनाते हैं। यह सुनकर मुनियों ने लोम हर्षण सूत जी से पूछा कि सूर्य चन्द्र आदि ग्रहों की गति किस प्रकार की होती है।

यह ज्योतिष्चक्र गगनमंडल में किस प्रकार घूमता है। व्यूहाकार टेढ़ा मेढ़ा घूमता हुआ भी आपस में टकराते नहीं हैं। इसे कौन घुमाता है। इसे जानने की इच्छा सब करते हैं। हे सूत जी आप यह सब हमको कथा सुनावें क्योंकि यह जीवों को भ्रम में डाल देने वाली है।

सूतजी बोले—अब मैं जीवों को आश्चर्य चकित करने वाली कथा को सुनाता हूँ, सो सुनो। यह ज्योतिष्चक्र दीखते रहते हैं परन्तु फिर भी जानने में न आने से भ्रम पैदा करते हैं। सौरमण्डल के पुच्छभाग में उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव केन्द्र के रूप में विद्यमान है। वे स्वयं घूमते हैं तथा अन्यग्रहों के साथ सूर्य चन्द्र को भी घुमाते है। सभी ग्रह चक्र ध्रुव का अनुसरण करता है। ध्रुव के अनुकूल ही सूर्य चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह नक्षत्र आदि मण्डल घूमा करते हैं। वायु समूह के बन्धन द्वारा यह नक्षत्र मण्डल ध्रुव में बँधा हुआ है। उनका योग, भेद कालाचर, अस्त-उदय, उत्पात दक्षिणोत्तर अयन, विषुव, और ग्रहवर्ण ध्रुव से ही उत्पन्न होते हैं। वर्षा, धूप, वर्फ, रात दिन और संध्या तथा प्रजाजन का शुभाशुभ व्यापार ध्रुव से ही उत्पन्न होते हैं। सभी नक्षत्र ध्रुव के ही अधिकार में हैं। केवल सूर्य उन्हें ढके रहते हैं। दिवाकर भगवान ही विश्वेश लोककर्ता, सहस्रांशु, प्रजापति, सम्पूर्ण, लोकों के धारणकर्ता प्रभु और विष्णु हैं। सार्वलौकिक जल सोममण्डल में ही द्रवीभूत हुआ है। अतः सम्पूर्ण

जगत चन्द्रमा के ही द्वारा प्रतिष्ठित है। यह हमने यथार्थ बात कही है। सूर्य से ताप और चन्द्रमा से शीतलता निकलती है। यही शीत उष्ण तत्व पृथ्वी को धारण करते हैं। पवित्र और निर्मल जल वाली गंगा नदी का आधार भी चन्द्र है। हे विप्रो! सभी महानदियां चन्द्र पुत्र की पुरोवर्तिनी हैं। सभी जीव जन्तुओं के शरीर में जल है। अतः जंगम स्थावर सभी में मरने के बाद जलाने पर जल भाप बनकर निकलता है। उससे मेघ बनते हैं। जो जल के आधार स्थान है। सूर्य का तेज किरण जाल द्वारा जीव जन्तुओं से जल ग्रहण कर लेता है। समुद्र के जल को भी वायुवेग के द्वारा खींचता है। सूर्य देव ऋतु के बदलने पर स्वयं भी नवीनता धारण करते हैं। और मेघों को जल देते है। तब वायु उसे वेग द्वारा चारों ओर बरसाते हैं। 'मिहा' धातु क्षरणार्थक होती है इसी से 'मेघ' शब्द निष्पन्न हुआ है। जिससे जल भ्रष्ट न हो उसको विद्वान लोग अभ्र कहते हैं। आग्नेय, ब्रह्मज और पद्मज नाम से मेघ तीन प्रकार के हैं। ये मेघ भैंस सूअर या मतवाले हाथी के रूप के समान पृथ्वी पर उतरते हैं और चक्कर लगाते हैं। जो बिजली नहीं चमकाते और अधिक देर तक बरसते है उन्हें जीमूत कहते हैं जो जीवजन्तुओं को बढ़ावा देते हैं। ब्रह्म के निःश्वास से उत्पन्न मेघों का नाम है ब्रह्मज। ये गरते कौंधते हैं और इनका गर्जन बड़ा भला जान पड़ता है। इनके शब्दों को सुनकर भूमि इस प्रकार पुलकित हो जाती है जैसे राज्याभिषेक होने से रानी पुलकित होकर नवीन यौवन सुख का अनुभव करती है। चराचर जगत के लिये पृथ्वी इन मेघों से प्रेम करती है। पुष्करावर्तक आदि मेघ पद्म सम्भव हैं। पूर्व काल में चराचर का कल्याण चाहने वाले इन्द्रने महाबलशाली, विशाल काय और इच्छानुरूप गमन करने वाले पर्वतों का पक्ष काट दिया था। ये ही विशाल पक्ष जलपूर्ण होकर मेघाकार हो गये। इनका नाम हुआ पुष्कर। इसी कारण वे पुष्करावर्तक नाम से प्रसिद्ध हैं। तीसर मेघ कल्प के अन्त में वर्षा किया करते हैं। और महान वर्षा करके पृथ्वी मण्डल को परिपूर्ण

करदेते हैं। चार मुँह वाले ब्रह्मा जिस अण्डकपाल से उत्पन्न हुये हैं उसीसे मेघ उत्पन्न हुये हैं।

सभी मेघों में पर्जन्य श्रेष्ठ हैं और दिग्गज चतुष्टय। गज, पर्वत मेघ, और सांप सभी का उत्पत्ति स्थान जल है अतः ये अलग होने पर भी एक हैं। हेमन्त में धानों की वृद्धि के लिये दिग्गज और पर्जन्य तुषार की वृष्टि किया करते हैं। परिवह वायु भगवान इनके आश्रम स्थान हैं। हेमकूट पर्वत के पास पुण्ड्र नामक नगर में तुषार की ही वर्षा होती है। उस तुषार को आवह नामक वायु अपनी सामर्थ के अनुसार बटोर लेती है। और हिमालय से महागिर तक उसे वर्षा देती है। अन्य देशों में ऐसी वर्षा नहीं होती है। मेघ और उनकी वृद्धि-वृत्तान्त इस प्रकार कहा गया किन्तु वृष्टि तो असल में सूर्य ही करते हैं ऐसा कहते हैं। वायु सूर्य ग्रह से निकल कर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल में घूमकर दिन के अन्त में पुनः ध्रुव द्वारा घिरे सूर्य में ही प्रवेश कर जाते हैं।

अब सूर्य के रथ का संनिवेश सुनिये। इस रथ में एक चक्का, पांच अरे और तीन नभियां है। सूर्य भगवान इस तेजोमय रथ के चक्र से अधंकार को नष्ट करते हुये गमन करते हैं। इस रथ का विस्तार दश हजार योजन है। सूर्य के लिये ब्रह्माजी ने इसे प्रयोजन वश निर्माण किया। यह रथ असंग, सुवर्णमय, दिव्य और परम वेगगामी अश्वों से युक्त हैं। यह घोड़े छन्द स्वरूप हैं जहां शुक्र हैं वहां ठहरता है। इसकी उपमा वरुण के रथ के समान दी जा सकती है। सूर्य रथ के जितने अवयव हैं वे संवत्सर के अंगों से कल्पित हैं। सूर्य के रथ की मध्य का स्थान नाभि है जिसे दिन कहते हैं। यही एक चक्र भी कहलाता है। पांच ऋतु अरायें और छटी नेमि कहलाती है। गायत्री, त्रिष्टुप, अनुष्टुप आदि सात घोड़े सातों छन्द हैं। दोनों अयन दोनों जुये हैं मुहूर्त वन्धुर, कला युगकील, आदि हैं। रथ के अक्ष में चक्र मिला है और चक्र ध्रुव से मिला है। इससे अक्ष के साथ चक्र घूमता है। और चक्र के साथ २ ध्रुव घूमता

है। यह रथ अतिशय प्रभा वाला है। खूँटे से बँधा रस्सा जैसे चारों तरफ घूमा करता है उसी प्रकार रश्मियां भी घूमती हैं। उत्तरायण होने पर किरणें घूमती है तो घट जाती है और दक्षिणायन में बढ़ जाती हैं। मण्डलाकार घूमते रथ को जब ध्रुव खींचते है तो सूर्य भी खिंच जाते हैं। जब ध्रुव दोनों किरणों को खींचता है तो सूर्य भीतरी मण्डल में घूमते हैं और सूर्य दोनों दिशाओं के १८० मण्डलों का चक्कर लगाते हैं। जब ध्रुव दोनों रश्मियों को छोड़ देता है तो सूर्य बाहरी मण्डल में घूमने लगते हैं। उस समय वे मण्डलों को ढेकर चलते हुये बड़े वेग से घूमते हैं।

श्री वायु महापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक इक्यावनवां अध्याय समाप्त

बावनवां अध्याय

(ज्योतिष्प्रचार)

सूत जी बोले—देवता, गन्धर्व, अप्सरायें सर्प, ग्रामणी और राक्षस उन सूर्यदेव के रथ पर नियम से दो दो महीने रहते हैं। धाता, अर्यमा आदित्य, पुलस्त्य, पुलह, प्रजापति, वासुकि संकीर्णार सर्प, गन्धर्व, ऋतु स्थली पुञ्जिकस्थला, अप्सरायें, जातुधान, राक्षस चैत्र वैशाख के महीने में सूर्य के गण बन कर उसके साथ रहते है। इसके बाद ज्येष्ठ अषाढ के महीने में ये देव मित्र वरुण, आदित्य अत्रि वशिष्ठ, मैनका सहजन्या अप्सरा, हा हा हू हू गन्धर्व, टथस्वन, तक्षक रम्भसर्प वातधान राक्षस सूर्य के गण बन कर उनके साथ रहते हैं। इसके बाद सावन भादों के महीने और दूसरे देवता उनके गण बनकर सूर्य के साथ रहते हैं। फिर क्वार और कार्तिक के महीने में पर्जन्य पूषा आदित्य, भरद्वाज गौतम ऋषि, विश्वासु-सुरभि गन्धर्व इत्यादि देव ऋषि सूर्य के गण बनकर उनके साथ रहते है। फिर अगहन पूष के महीने में अंश भग आदित्य कश्यप-ऋतु मुनि, महापद्म कर्कोटक सर्प, चित्रसेन गंधर्व, अरिष्ट, नेमि सेनानी इत्यादि सूर्यगण बनकर रथ पर सूर्य के साथ रहते हैं। फिर माघ महीने में और फागुन के महीने में और दूसरे देवता मुनि गण बनकर उनके साथ रहते हैं। सात श्रेणी के चौरासी

देवता स्थानाभिमानी कहे जाते हैं। ये देवता अपने तेज उत्तम तेज वाले सूर्य देव को समृद्ध करते हैं। ऋषि अपने मीठे अभिमित वचनों से सूर्य की स्तुति करते हैं। गन्धर्व, और अप्सरायें अपने नाचगान से उनकी स्तुति करते हैं। सर्प सूर्य के रथ को चलाते हैं। राक्षस उनकी रक्षा करते हैं। और ऋषिमुनि प्रसन्न चित होकर सूर्य के उदय होते ही उनकी सेवा करने लगजाते हैं और उन्हें अस्ताचल पहुंचा देते हैं। इन देवों को जैसा वीर्य और तप, योग, सत्य, धर्म, बल है उसी के अनुसार सूर्य उनके तेज से तृप्त होते हैं। ये सब दो दो महीने सूर्य के पास रहते हैं। ऋषि, देव, गन्धर्व, सर्प, अप्सरा, यक्ष, राक्षस बरसते हुये तपते हुये हवा की तरह बहते हुये जीवों के शुभाशुभ कर्मों को पैदा करते हैं और उनका नाश करते हैं। कभी ये सज्जन मनुष्यों के शुभ कर्मों का नाश करते हैं और कभी पापियों के पाप का नाश करते हैं ये वीर्यशाली देवता वायु की तरह वेग से चलकर सूर्य के साथ दिव्य विमान पर चढ़कर रोजाना घूमते रहते हैं। प्रलय होने तक ये जीवों की रक्षा करते हैं। और मनुष्यों को धूप और वर्षा देकर प्रसन्न रखते हैं। इन देवताओं का स्थानों भूतभविष्य और वर्तमान समय में एक सा रहता है। ये सातों देव चौदहों मन्वतरों के समय में सूर्य के चारों तरफ इसी तरह रहते हैं। सूर्य भगवान ऋतु काल के परिवर्तन की तरह अपनी अपनी किरणों कोबदल २ कर देवता, पितर और मनुष्यों को तपाते रहते है। वे गरमी के दिनों में धूप, जाड़े के दिनों में ठंडक और बरसात के दिनों में पानी बरसा कर दिन रात का विभाग किया करते हैं। सूर्य भगवान अपनी सुषुम्न किरण से चन्द्रमा को बढ़ाते हैं और देवताओं को अमृत पिलाकर संतुष्ट करते हैं। जब चन्द्रमा शुक्ल पक्ष से पूर्ण हो जाते हैं तब कृष्णपक्ष में देवता उनके चन्द्रमा को पी जाहैं। सब अमृत पी जाने के बाद दो कला शेष रहे अमृत को कृष्ण पक्ष के समाप्त होने पर जिस किरण का क्षण करते है, उस अमृत रूपी किरण को पितर लोग स्वधा समझ कर पीते हैं। और फिर उसी अमृतरूपी किरण

को देवता लोग कव्य समझ कर पीते हैं। सूर्य की किरणों से ही जल पैदा होता है और वृष्टि से अन्न और औषधि पैदा होते हैं।

सूर्य देव हरिद्वर्ण के घोड़े पर चढ़कर हजारों किरणों से जल का शोषण करते हैं। सूर्य अपनी किरणों से अन्न की पुष्टि करते है और अन्न से मनुष्यों की तृप्ति होती है। सूर्य देव हरिद्वर्ण के घोड़े पर घूमते हुये जल बरसा देते हैं। वे इस तरह प्रलयकाल तक सूर्य देव एक चक्के के रथ पर सवार होकर मंगलकारक बलवान घोड़ों पर चढ़कर आकाश में घूमते फिरते हैं। उनके छन्द स्वरूप सातों घोडे चक्के की तरफ जुते हुये अपनी इच्छाधीन शरीर धारण करने वाले मन की तरह बहुत तेज वाले ब्रह्मवादी समर्थ हरितपिंगल रंग के एक वार ही रथ में जोते गये हैं। वे घोड़े एक वर्ष में एक सौ अस्सी मंडल की परिक्रमा किया करते हैं। कल्प के शुरू से लेकर कल्प के अन्त तक ये घोड़े सूर्य के रथ में एक ही बार जोते गये हैं। ऋषि मुनि अपने मीठे बचनों से भगवान सूर्य की स्तुति करते हैं। गन्धर्व और अप्सरायें अपने नाचगान से उनकी सेवा करते हैं। और इस तरह सूर्य भगवान अपने घोड़ों पर चढ़कर पृथ्वी की परिक्रमा किया करते हैं।

चन्द्रमा भी तारागणों की गलियों में चला करते हैं। इनकी किरण भी सूर्य की किरणों की तरह बढ़ती है और घटती हैं। चन्द्रमा के रथ में तीन चक्के होते है और दोनों तरफ घोड़े जुते हुये होते हैं। इनका रथ घोड़े और सारथी जल के भीतर से पैदा हुये हैं। चन्द्रमा के रथ में एक सौ अटायें होती है तीन चक्के होते है और उनके रथ में सफेद रंग के घोड़े जुते हुये होते हैं। इनके रथ में दस घोड़े जुते हुये होते है। ये घोड़े भी सूर्य के घोड़े की तरह ही वेगवान समर्थ और कल्प के शुरू से अन्त तक एक ही वार जोते गये हैं। चन्द्रमा के रथ में जुते हुये ये सफेद रंग के घोड़े शंख के समान कान्ति वाले चन्द्रमा के रथ को आकाश में खींचते हैं। वयु, त्रिमना, वृष, राजीवुल, वाम, तुरराय, हंस व्योमी, और मृग इत्यादि चन्द्रमा के घोड़ों

के नाम हैं। वे घोड़े चन्द्रदेव के रथ को खींचते हैं। देवता पितर इनकी सेवा किया करते हैं ये देवों और पितरों से सेवित होकर आकाश में इसी तरह घूमते हैं। शुक्ल पक्ष में सूर्य चन्द्रमा के आगे रहते हैं। फिर जो देवों के पिये अमृत को दिन के क्रम से नित्यप्रति परिपुष्ट कर तृप्त करते हैं। सुषुम्न किरण द्वारा चन्द्रमा की कला उज्ज्वलतर हो जाती है। कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा घट जाते हैं और शुक्ल पक्ष में वे पूर्ण होजाते हैं। इस तरह सूर्य के सामर्थ से चन्द्रमा का शरीर घटता बढता रहता है। शुक्ल पक्ष में दिन क्रम से चन्द्रदेव परिपुष्ट हो जाते हैं और वेपूर्णिमा के दिन उज्ज्वल परिपूर्ण मण्डल से प्रकाशित होने लगते हैं। इसके बाद कृष्ण पक्ष की दौज से चौदस तक देव तो जल का सार स्वरूप और रसमय चन्द्र के जल प्रधान और सुधामय सुन्दर मधु को पीते है। वह अमृत सूर्य के तेज से आधे महीने में इकट्ठे होकर पूर्णमासी के दिनों में देवताओं के भोजन के लिये बनाया जाता है कृष्ण पक्ष के शुरू में एक रात देवता, पितर और ऋषि मुनि सूर्याभिमुखवर्ती अमृत का पान करते हैं। इस अमृत के पीने पर उनकी कला फिर धीरे २ नष्ट होने लगती है। तेतीस सौ तीन देवता चन्द्रमा के अमृत को पीते हैं। इन देवों के अमृत पीजाने पर चन्द्रमा की कला फिर बढ़ने लगती है। अतः इसी कारण कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की कला घटती है और शुक्लपक्ष में कला बढ़ने लगती है। इसी तरह देवगण रोजाना आधे महीने तक चन्द्रमा के अमृत को पीकर अमावस्या को जाते है और फिर अमावस्या के आते ही पितर लोग चन्द्रमा के पास आजाते हैं। चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला जो बचती है उसे पितर दोपहर के समय पीते हैं। उस अवशिष्ट कला से जोस्वधा रूपी अमृत निकलता है, उस अमृत को द्विकलात्मक कालमात्र में पितर लोग पीकर उससे एक महीने तक तृप्त रहते हैं। सौम्य, वर्हिषद, अग्नि ष्वात्त और कव्य ही पितर हैं। हे ब्राह्मणो! अमावस्या पर चंद्रमा की पंद्रहवीं कला को पितरों के पीने पर जब तक उस कला का क्षय होता है, तब तक उनका अन्तिम भोग पूर्ण हो जाता है।

चंद्रमा की सोलहवीं कला का नाश नहीं होता है और पक्षादि में चंद्रमा की कला इसी तरह घटती बढ़ती है। इसका मुख्य कारण सूर्य देव ही हैं। और अब हम आगे तारों ग्रहों और राहु के रथ के विषय में कहेंगे।

बुध का रथ शुभ्र वर्ण का है और उसमें जल का तेज स्थित है। वायु की तरह तेज चलने वाले पिशंग वर्ण के आठ घोड़े उसमें जुते हुये हैं। बुध का रथ बादलों की तरह है। उस रथ पर ध्वजा पताका फहरा रही है। तरकस बाण रखे हुये हैं। उस चमकीले रथ के नीचे काठ लगा हुआ है। और उस रथ पर ऊपर लोहे की चादर ढकी हुई है। उस रथ का सारथी भी दिव्य है शुक्र का रथ सूर्य की तरह तेज और सब प्रकार से शोभा सम्पन्न है। इसमें तरह २ के रंगों के मोटे २ वायु की तरह तेज चलने वाले दस घोड़े जुते हुये हैं। ये घोड़े सब घोड़ों में श्रेष्ठ है इन घोड़ों के नाम इस प्रकार है श्वेत, पिशंग, सारंग, नील, लोहित, पीत, कृष्ण, हरित, पृषत और पृश्नि इत्यादि हैं। मंगल का रथ सोने का है। और मंगल के रथ में आठ घोड़े जुते हुये हैं। यह रथ सभी प्रकार से शोभा सम्पन्न है। इनके रथ के लोहित वर्ण के घोड़े अग्नि से पैदा हुये हैं। ये सभी जगह घूमते रहते हैं। मंगल इन्हीं पर सवार होकर सीधी और टेढ़ी गति से राशिचक्र का भ्रमण करते हैं। देवताओं के गुरु वृहस्पति का रथ सोने का है और इनके विशाल घोड़े लाल रंग के हैं। इनके रथ में वायु की तरह तेज चलने वाले आठ घोड़े सभी जगह घूमते है। ये वृहस्पति एक राशि पर एक वर्ष निवास करते हैं। शनिश्चर का रथ काले लोहे का बना होता है। इनके घोड़ों का रंग चितकबरा है और ये घोड़े आकाश में से पैदा हुये हैं और वे अपने रथ पर सवार होकर धीरे धीरे चलते है। राहु के रथ में तमोमय कृष्ण वर्ण के आठ घोड़े जुते हैं ये घोडे रथ को सदा खींचते हैं पर्व के दिनों में सूर्य मण्डल से निकलकर चन्द्र मण्डल अन्दर जाते है। और केतु के रथ के घोडे गधे के रंग की तरह धूसर वर्ण के चितकबरे और धान

के भूसे के धुएं की तरह और वायु की तरह तेज चलने वाले चौंसठ घोड़े जुते हुये हैं। ये सभी वायु किरणों द्वारा ध्रुव से संलग्न हैं आकाश में जितने तारे हैं, उतनी ही वायु की किरणें हैं वायु द्वारा आबद्ध. ज्योतिमण्डल सब जगह घूमता रहता है। रात में ध्रुव तारा को देखने से दिन भर का किया हुआ सभी पाप नष्ट हो जाता है। आकाश में जितने तारे उस ज्योति मण्डल में हैं, उतने वरषों तक ध्रुव को देखने वाला जीवित रहता है। यह शिशुमार सब काल में एक सा ही रहता है। ध्रुव की निचली ठुड्डी उत्तानपाद है यज्ञ अघट हैं धर्म मस्तक है नारायण हृदयहै अश्वनीकुमार दोपादहै वरुण अर्यमा पश्चिम के दो पाद हैं, मित्र गुह्य देश है और पूँछ अग्नि महेन्द्र मरीचि, कश्यप तथा ध्रुव है इस संवत्सर शिशुमार का कभी क्षय नहीं होता है ग्रह ताराओं के साथ चन्द्रमा सूर्य आकाश में नीचे या ऊपर मुँह कर मंडलाकार में स्थिति है। ये सभी ध्रुव द्वाराधारण किये गये हैं। और ये सभी ध्रुव की परिक्रमा किया करते हैं अग्नि और कश्यपों में ध्रुव हीश्रेष्ठ हैं यही एक ध्रुव मेरु पर्वत के मस्तक पर अधोमुख होकर मेरु को देखते हुए घूमते हैं। और इनके साथ ही साथ ज्योतिमंडल आकाश को भी चमकाते रहते हैं।

इति श्री वायु महापुराण का ज्योतिष्प्रचार नाम का बावनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥

तिरेपनवां अध्याय

[ज्योतिः संनिवेश]

शशिपायन बोले–ऋषि मुनियों ने संशययुक्त वाणी सुनकर फिर लोमहर्षण सूतजी से पूछा—

ऋषि बोले—आपने जो हमको देवताओं के प्रसिद्ध ग्रहों की कथा सुनाई है वे ग्रह कैसे हैं और उनकी प्रीतिभा कैसी है अब आप हमको इन सबके विषय में बताइये। ऋषियों के इस प्रकार मीठे वचनों को सुनकर एकाग्र चित्त होकर सूतजी कहने लगे कि इसके विषय में जैसा कि विद्वानों ने कहा है उसी के अनुसार हम भी आपको सुनाते हैं। हम आपको चन्द्रमा और सूर्य के घर से पहले अग्नि के विषय

में बताते है— अग्नि तीन तरह की होती है। द्विव्य, भौतिक और पार्थिव। परब्रह्म ब्रह्माजी की रात्रि के बीत जाने पर जब नैश अन्धकार से सब ढका था, कहीं पर भी कोई नहीं तब केवल चार भूत ही स्थित थे। उस समय जो सबसे पहले अग्नि हुये वे पार्थिव अग्नि कहे गये हैं। जो अग्नि, सूर्य में रहकर तपते हैं वे शुचि अग्नि कहे गये हैं और इन्हीं को वैद्युत अग्नि भी कहते हैं। अब हम इन अग्नियों के विषय में कहते हैं। वैद्युत जाठट और सौट अग्नि जल से पैदा हुये हैं इसी लिये जब सूर्य किरणों द्वारा जल को पीते हैं तब ये आकाश में अधिक प्रकाशमान हो जाते हैं। वैद्युत अग्नि अगर वृक्ष में चले जाते हैं, तो वे पानी से बुझते हैं। उसी तरह मनुष्यों के पेट में जो अग्नि देव हैं वे भी पानी से नहीं बुझते हैं। पेट में रहने वाले जो जाठर अग्निदेव हैं वे अधिक प्रकाशवान हैं और जो बिना गर्मी वाला शुक नाम की जो अग्नि हैं वह दिन की अपेक्षा रात को दूर से ही प्रकाशित होता है इसलिये कि सूर्य की किरण अस्ताचल में एक चरण में उसमें प्रवेश कर जाती है। इसके बाद फिर सूर्योदय होने पर पार्थिव अग्नि की गर्मी एक चरण से सूर्य के अन्दर घुस जाती है। इस कारण सूर्य तृप्त होते हैं। प्रकाश और गर्मी गुणसम्पन्न अग्नि और सूर्य का तेज आपस में घुसकर एक दूसरे को दिन रात तृप्त करते हैं। ताप एक दूसरे को बांटने वाले सूर्य की किरणों से जो जल पिया करते हैं, वे विमिश्र पार्थिव अग्नि हैं और ये ही पार्थिव अग्नि दिव्य शुचि अग्नि भी कहलाते हैं। ये घड़े की तरह गोल आकार के हजार किरण वाले हैं। ये अपनी हजार किरण से चारों तरफ का जल खींचते हैं। हिरण्यमय सूर्य गर्मी, शीत, वर्षा बरसाने वाली हजार किरणों से युक्त हैं। सूर्य अनोखे रूप वाली चारसौ किरण वर्षा करती हैं। इन सभी वर्षा करने वाली किरणों के ये नाम—हैं वन्दन, वन्द्य, ऋतन, नूतन और अर्मत नाम से प्रसिद्ध हैं सूर्य की तीन सौ शीतल किरणे हैं जिनसे शीत पड़ता है ये किरणें पीले रंग की हैं और इन तीन सौ पीले रंग की किरणों के ये नाम हैं—दृश्य, मेध्य, वाह्य, हादिनी और चन्द्र इत्यादि। इसके

बाद सूर्य की फिर तीन सौ किरण वर्षा करने वाली हैं इन तीन सौ वर्षा करने वाली किरणों के ये नाम हैं—शुक्ल, ककुभ, विश्वसृत, शुक्लवर्णाकी इत्यादि हैं। सूर्य इन किरणों से मनुष्य, देवता, पितरों को समान भाव से पोषण और तृप्त करते हैं। वे तीन प्रकार की किरणों से सबको तृप्त करते हैं। औषधि से मनुष्यों को तृप्त करते हैं और स्वधा से पितरों को और अमृत से देवताओं को तृप्त करते हैं। इस तरह सूर्यदेव की हजारों किरणों से लोकों की भलाई ही होती है वे किरणें ऋतुके क्रम से उत्ताप, तटी और जल बरसाती हैं। शुक्ल, और तेजवान सूर्य मण्डल, नक्षत्र, ग्रह, और चन्द्रमा के रहने का स्थान तथा उद्भव स्थान है। ग्रह, तारागण, नक्षत्र, चन्द ये सभी सूर्य से ही पैदा हुये हैं। चन्दमा को नक्षत्र के अधिपत(स्वामी) माना गया है और सूर्य को ग्रहों का स्वामी मानते हैं। पाँचों बचे हुये ग्रह, अपनी इच्छानुसार शरीर रखने वाले सामर्थ्यवान हैं। विद्वान लोग ऐसा कहते हैं कि अग्नि सूर्य कहलाता है और जल चन्द्रमा कहलाता है। अब हम आपको और बाकी बचे ग्रहों के विषय में बतायेंगे—

देवताओं के सेनापति स्वामिकार्तिकेय को मंगल ग्रह मानते हैं। विद्वान मनुष्य नारायण को बुध मानते हैं। लोक में भगवान शंकर को ही साक्षात धर्मराज मानते हैं और ये ही धीरे चलने वाले महाग्रह शनैश्चर माने जाते हैं। देवताओं के गुरु बृहस्पति जी और असुरों के गुरु शुक्राचार्य जी दोनों को ही महाग्रह मानते हैं। ये दोनों गुरु प्रजापति ब्रह्माजी के पुत्र हैं। इस सारे संसार में दैत्य, देव और मनुष्य भरे हैं, और इन सभी से पूर्ण यह संसार सूर्य का ही है। हे ब्राह्मणो इन देवताओं का जैसे इन्द्र, उपेन्द्र, रुद्र और चन्द्रादि देवताओं का जो तेज है वह सूर्य का ही तेज है। सूर्य से ही सब पैदा होते हैं और मरने के बाद सब सूर्य में ही मिल जाते हैं। पहले समय में लोकों की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है इसलिये यह संसार पूरा ग्रहमय है और सूर्यदेव चमकते हुये कान्तिमान सुन्दर ग्रह हैं। जिस जगह से बार बार नक्षत्र, ग्रह, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर ऋतु युग

इत्यादि पैदा होकर फिर उसी में समाजाते हैं वह सूर्य ही हैं। सूर्य देव के सिवाय और काल की संख्या नहीं करसकता है। सारे संसार को तृप्त करने वाले और जल का हरण करने वाले भगवान सूर्य के बिना स्वर्ग में भी देवताओं के कार्य बन्द हो जाते हैं। हे ब्राह्मणो! सूर्य ही काल है, और सूर्य ही अग्नि है, और सूर्य ही द्वादशात्मा प्रजापति हैं। ये ही तीनों लोकों के चराचर को तृप्त किया करते हैं। ये उत्तम हवा के मार्ग का सहारा लेकर सबको तृप्त करते घूमते हैं। सूर्य तीनों लोकों में तेजस्वी और लोकपालों के आत्मा हैं। सूर्य की हजार किरणों में सात किरण मुख्य हैं –सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा विश्व, संयद्वसु अर्वाग्वसु और स्वटाट् इत्यादि हैं। सूर्य की सुषुम्न किरण चन्द्रमा को आगे बढ़ाती है और यह सुषुम्न किरण टेढ़ीहोकर ऊपर की ओर जाती है। हरिकेश किरण आगे की तरफ रहती है। इन्हीं स्थानों से नक्षत्र पैदा होते हैं। विश्वकर्मा दक्षिण की तरफ रहती है और ये किरण बुध को मजबूत बनाती हैं। पीछे के भाग में रहने वाली विश्वश्रषा किरण शुक्र के स्थान को परिपुष्ट करती है। संयद्वसु किरण से मंगल पैदा हुये हैं। अर्वाग्वसु किरण से बृहस्पति प्रकट हुये हैं। और स्वराट किरण से शनैश्चर जी पैदा हुये हैं। इस तरह सूर्य के तेज से ही सभी की वृद्धि होती है। ये कभी क्षीण नहीं होते हैं इसी कारण इनको नक्षत्र कहते हैं। ये किरणों द्वारा क्षेत्रों को ग्रहण करते हैं इस कारण सूर्य को भी सूर्य नक्षत्र कहते हैं। इसके बाद ये तारागण सुकर्म से फैले हुये हैं इसलिये इनका नाम तारका पड़ा है। दिव्य, पार्थिव और रात्रि सम्बन्धी सभी अन्धकार को दूर करने के कारण महान तेजस्वी का नाम सूर्य पड़ा है। सूर्य और चन्द्रमा का मंडल आकाश में स्थित है। उन मंडलों में चन्द्रमा का मंडल जल प्रधान कहा गया है और सूर्य का मंडल का तेज प्रधान उज्ज्वलाकार कहा गया है। सभी मन्वन्तरों में देवता नक्षत्र और ग्रहों के साथ यहां पर रहते हैं। इसी लिये ये देवग्रह कहे जाते हैं। जो जिस घर में रहते हैं वही उसका नाम होता है जैसे सूर्य देव

सौर स्थान में रहते हैं और चन्द्रमा सौम्य स्थान में, शुक्र शोक्र स्थान में रहते हैं। शुक्रदेव की सोलह किरण हैं ये महान तेजस्वी माने जाते हैं। मंगल लोहित स्थान में रहते हैं बृहस्पति जी बृहत स्थान में रहते हैं और शनैश्चर देव शनैश्चर स्थान में रहते हैं। वे सभी स्थान सूर्य की किरणों से प्रकाशित होते हैं। सूर्य मंडल का विस्तार नौ हज़ार योजन का है और चन्द्रमा के मंडल का विस्तार इस सूर्य मंडल से विस्तार सेदूना है इन दोनो के नीचे राहु रहता हैराहु का मंडलाकर पृथ्वी की छाया से बना है। राहु का स्थान अन्धकार मय बृहत् स्थान है। यह पूर्णिमा के दिन सूर्य मण्डल से निकलकर चन्द्र-मण्डल में जाता है तभी ग्रहण पड़ता है और अमावस्या को पुनः लौटकर चन्द्रमण्डल से निकलकर सूर्यमण्डल में आजाता है। जिस कारण से वह अपनी किरणों को प्रेरित करता है इसी कारण स्वर्भानु कहलाता है। शुक्र चन्द्रमा का सोलहवां भाग है। गुरू शुक्र से एक चौथाई छोटा है और विस्तार मण्डल में एक योजन बड़ा है। पुनः शनि और भौम एक चरण कम हैं। जो तारा नक्षत्रादि स्थूलाकार देखे जाते हैं उनका विस्तार मण्डल प्रायः बुध के समान है। ये नक्ष-त्रादि प्रायशः चन्द्रमा के निकट में ही हैं। तारे नथत्रादि परस्पर दो तीन चार पाँच सौ योजनों के व्यवधान पर स्थित हैं। हम में कोई छोटा और कोई बड़ा है। शनि गुरु और मंगल सभी ग्रहों के ऊपर धीरे धीरे विचरण करते हैं। इन की गति टेढ़ी मेढ़ी है। इनके नीचे सूर्य सोम, बुध और शुक्र हैं जो तेज चलने वाले हैं। वास्तव में सत्य यह है कि जितने तारे हैं उतने ही नक्षत्र हैं। पुण्यात्मा गृहों के सब ज्योतिस्वरूप घर हैं। ब्रह्मा ने कल्प के अदिमें इन स्थानों का निर्माण किया है ये सब प्रलय काल तक वर्तमान रहते हैं। ये स्थान बारंबार होते और नष्ट होते हैं। सभी मन्वन्तरों में ये अभिमानी देवों के साथ वर्तमान रहते हैं सहस्र किरण वाले विवस्वान का स्थान अग्निमय शुक्ल वर्ण है और हजार किरण वाले चन्द्रमा का भी स्थान शुक्लवर्ण का है लेकिन जलमय हैपांच किरण वाले बुधका स्थान कष्ट वर्ण और

जलमय है सोलह किरण वाले शुक्र का भी स्थान जलमय है। नौ किरण वाले मंगल का रंग लाल और जलमय है। आठ किरण वाले शनि हैं बृहस्पति राहू का स्थान जीव जन्तुओं को कष्टकारक और तमोमय है। इसके बाद जो तारे हैं वे सब एक किरण वाले हैं। उनका स्थान जलमय है। ये तार पवित्र कीर्तिमान पुरुषों के आश्रम हैं। शुक्लवर्ण के हैं। ये कल्पके आदि में विधाताने दीप्त विधानसे निर्मित किये हैं। ये बहुत दूर हैं पर किरणों द्वारा शीघ्र दीखने लगते हैं। सूर्य जब नागवीथी में दक्षिणायन होकर चलने लगते हैं तब ये भूमि लेखा द्वारा ढक जाते हैं एवं अमावस्या और पूर्णिमा में नहीं दीखते। इनका अस्त भी शीघ्र हो जाता है। चन्द्रमा के उत्तरायण होने पर ये दीखते हैं किन्तु दक्षिणायन में कभी ये दिखाई देते हैं और कभी नहीं। नक्षत्रों की चाल के अनुसार सूर्य चन्द्र दोनों जब विषवत रेखा पर होते हैं तब दोनों का अस्त और उदय समान कालमें ही होता है।

सूर्य देव जब दक्षिण दिशा में गमन करते हैं तब वे सब ग्रहों से नीचे चलते हैं उस समय चन्द्रमा सूर्य के ऊपर अपने मण्डल का विस्तार करके घूमते हैं। नक्षत्र-मण्डल चन्द्रमा से और ऊपर विचरण करते हैं नक्षत्र से ऊपर बुद्ध, बुद्ध से ऊपर गुरु, गुरु से ऊपर शनि, शनि से ऊपर सप्तर्षि मण्डल और उससे ऊपर ध्रुव हैं। तारे और ग्रह का अन्तर ऊपर की ओर क्रमशः दो लाख योजन है। इस प्रकार हमने ग्रह नक्षत्र पृथ्वी, ज्योतिष, द्वीप, सागर, पर्वत, वर्ष, नदी और निवासियों का वर्णन किया। ये सब ग्रह पहले नक्षत्रों के रूप में उत्पन्न हुये हैं। नक्षत्रों के बीच श्रविष्ठा और अयनों में उत्तरायण श्रेष्ठ हैं। पांचों वर्षों में संम्वत्सर प्रथम है। ऋतुओं में शिशिर और महिनों में माघ, पक्षों में शुल्क, तिथियों में प्रतिपदा और दिन रात में दिन सबसे आदि में हुए हैं ऐसा कहा गया है।

मुहूर्तों के बीच में रौद्र मुहूर्त है और काल समूह के बीच में निमेषात्मक काल ही आदि हैं। श्रवण से लेकर श्रवणा तक पांच वर्षों का एक युग होता है। जो सूर्य की गति से चक्के की तरह घूमता है।

अतः इसी कारण ये सूर्य ही काल माने जाते हैं। इन्हीं को ईश्वर मानना चाहिए। ये ही चारों तरफ की चराचरों के बनाने बिगाड़ने वाले हैं। ईश्वर ने इस तरह लौकिक व्यवहार को मजबूत करने के लिए ज्योतिष चक्र को बनाया है। ये ज्योतिष चक्र सभी दिशाओं में अन्त तक वृत्ताकार आकार में स्थिति है। ये सभी श्रवण में पैदा हुए हैं ये सभी ध्रुव में संलग्न रहते हैं। यह ज्योतिष चक्र विश्व रूपी प्रकृति का एक अनोखा विपरिणाम है ज्योतिर्मण्डल का कोई भी मनुष्य चर्मचक्षु से देखकर ठीक ठीक वर्णन नहीं कर सकता है इसीलिए विद्वान मनुष्य शास्त्र अनुमान और प्रत्यक्ष एवं उत्पत्ति के द्वारा सोच समझकर इनसे भक्ति और सेवा करनी चाहिए। हे ब्राह्मणो ! ज्योतिस्तत्व के विषय में ये पांच कारण बताए जाते हैं ये पांच कारण चक्षु, शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित इत्यादि पांच कारण हैं।

श्री वायु महापुराण का ज्योतिः संनिवेश नामका तिरेपनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ५३ ॥

चौवनवाँ अध्याय

[नीलकंठ भगवान की स्तुति]

ऋषि बोले—हे पवित्र बुद्धि वाले सूत जी ! अब आप हमको इनके विषय में अच्छी तरह से समझा कर सुनाइए। ब्रह्म पुरोगामियों का पवित्र उत्तम व्याख्यान का किस देश और किस काल में वर्णन हुआ है उसे आप हमें बताइये।

सूत जी बोले—व्रत, नियम करने वाले हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! पूर्व काल में जिस प्रकार वायु देवता ने हजार वर्ष के यज्ञ में संसार के आयु स्वरूप का वर्णन बताया है और जिस प्रकार हमने सुना है, उसी प्रकार हम आप लोगों को सुनाते हैं। भगवान शंकर जी का नाम नीलकंठ कैसे पड़ा। पर्वत राज हिमालय के उत्तर शिखर पर सरोवर, नदी, तीर्थ, देवमन्दिर कन्दरा, उपवन, गिरिशिखर इत्यादि

स्थानों में उत्तम व्रत करने वाले देवताओं के भक्त श्रेष्ठ ऋषि मुनि विधि पूर्वक भगवान शंकर जी की स्तुति किया करते हैं वे चारों वेदों से, नाच गान से, पूजा से, ओंकार के जपने से और नमस्कार इत्यादि करके भगवान शिव की उपासना हमेशा करते रहते हैं। एक समय सूर्य देवता ज्योति मण्डल के बीच में आगये. नियम अनुष्ठान व्रत इत्यादि करने वाले ऋषि मुनियों की दशा भी बिगड़ गयी, इस पीड़ा से सभी को कष्ट होने लगा। तब इसी समय वायु देवता कहने लगे नील कण्ठ भगवान को प्रणाम करता हूँ। व्रत इत्यादि करने वाले श्रेष्ठ ऋषि मुनियों ने वायुदेव के मुख से ऐसा सुनकर उनसे पूछा। वे ऋषि मुनि अठासी हजार थे तथा वायु और पत्तियों के खानेवाले तथा सूर्य के साथ चलने वाले थे।

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठ सुआत्मा वायुदेव! आपने जो भगवान शङ्कर की नीलकंठ नाम से स्तुति की है, यह पवित्रात्माओं वाले श्रेष्ठ ऋषि मुनियों के लिये पवित्र तथा अत्यन्त गुप्त है। अब आप कृपा करके हमको यह कथा सुनाइये। भगवती सती के पति भगवान शङ्कर का कण्ठ किस तरह नीले वर्ण का होगया। हम यह कथा आप ही के मुख से सुनना चाहते हैं, क्योंकि वायु द्वारा प्रेरित होने पर ही वचनों के उच्चारण में ही सफाई आती है। हे वायु देव! जब आप वर्ण स्थान में जाते हैं, तब शब्दों का उच्चारण होता है। आप ही से शरीर में ज्ञान, उत्साह और प्रवृत्ति पैदा होती है। शरीर से आपके निकल जाने पर वर्णों का उच्चारण समाप्त हो जाता है, मुख से वचन नहीं निकलते और शरीर रखना भी कठिन हो जाता है। आपकी सर्वत्र गति है। हे वायुदेव! अब आप इसी के विषय में बताइये कि किस प्रकार शङ्कर जी का कण्ठ नील वर्ण का हुआ।

श्रेष्ठ पवित्र आत्मा वाले ऋषियों के शब्दों को सुनकर सब लोकों के पूज्य और महातेजस्वी श्री वायु देव बोले—

हे ब्राह्मणो! सतयुग में प्रजापति के मानस पुत्रों में एक वशिष्ठ नाम के ब्राह्मण भी थे जो बहुत विद्वान और धर्मात्मा थे। उन्होंने

श्रद्धा पूर्वक स्वामिकार्तिकेयजी से पूछा। स्वामिकार्तिकेयजी का वाहन श्रेष्ठ मयूर है वह पार्वतीजी के पुत्र और सेनापति हैं वे मां पार्वती के मन को खुश करने वाले छदन रूपधारी बालक हैं। महिषासुर की स्त्रियों के आंखों के काजल को चुरालाये हैं, क्रौंच के जीवन का हरण करने वाले हैं।

वशिष्ठजी बोले—

हे पार्वती के पुत्र हम आपको प्रणाम करते हैं। उमागर्भ, अग्निगर्भ गंगागर्भ आपको प्रणाम करते हैं। शरगर्भ, कृत्तिकासुत आपको प्रणाम है। आपके छः मुख और बारह नेत्र हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं। हे शक्ति पताका और दिव्य घंटा धारण करने वाले आपको प्रणाम है। इस तरह वशिष्ठ ने स्वामीकीर्तिकेयजी की स्तुति करके उनसे पूछा। "श्री शंकरजी के इन्दु और कुन्द की तरह सफेद कण्ठ में जो काजल की तरह शुभ नीलिमा दिखाई पड़ता है, यह क्या है? हे महाभाग! आप हमको इस पवित्र पापनाशिनी कथा के विषय में विस्तार से बताइये। हम आपके भक्त हैं, आपके सेवक हैं, आप हमारे पूज्य हैं। अतः इसी कारण हम आपसे पूछ रहे हैं। वसिष्ठ जी के वचनों को सुनकर राक्षसों की सेना पर विजय पाने वाले महा तेजस्वी स्वामिकार्तिकेयजी बोले—हे महात्मा वसिष्ठजी! मां पार्वती के गोद में बैठकर जैसा हमने सुना है, वैसा ही हम आपसे कहते हैं आप सुनिये। देवाधिदेव भगवान शंकर जी का और मां पार्वती के साथ जो संवाद हुआ है उसे हम आपसे कहते हैं हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ! तरह तरह की धातु से युक्त चित्रित, शिलातल से मनोहर, दिव्य सुवर्णमय चक्रवाक से शोभित, निकले हुये बाल सूर्य की तरह प्रकाशवान, हीरा और स्फटिक की सीढ़ियों से घिरे, मतवाले क्रौंच और मयूरों की आवाज से जिसकी कन्दरा गूँज रही हो, अप्सराओं से व्याप्त, किन्नरों से शोभित कोकिल की कूहू-कूहू से मधुर सिद्ध चारण से सेवित, नन्दी के आवाज से जिस कैलाश

पर्वत का सुन्दर शिखर गूंज रहा हो, कहीं मेघ के गर्जन से, कहीं हाथी के दहाड़ने की आवाज से, कहीं पर स्त्रियां हिंडोला झूल रही हैं। कहीं महादेव जी के गण हँस रहे हैं। उनके शरीर से विचित्र गन्ध निकल रही है, जिससे गणेश्वर खेल रहे हैं। ऐसे स्थान पर छोटे बडे, दुबले, मोटे, बडे बडे पैर वाले, मोटी जांघ वाले, लम्बे ओठ वाले, बिना पैर वाले, बिना शिर वाले एक पैर एक हाथ वाले, गोकर्ण, महाकर्ण, अकर्ण बहुत से नेत्र वाले, बिना नेत्र वाले, अन्धे भूत गणों से सहयोगी भूतपति महादेवजी घिरे हुए हैं। ऐसे समय शुद्ध मणि और मुक्ताओं से शोभित, सुवर्णमय, मनोहर शिलातल पर सुख पूर्वक बैठे हुए कामदेव के शरीर को जलाने वाले महादेव जी से भगवती पार्वती जी ने पूछा—

पार्वती जी बोलीं—हे संसार के मनुष्यों का कल्याण करने वाले वृषभध्वज महादेव भगवान! आपके कन्ठ में जो यह नीलिमा है, यह किस कारण से हुई है? यह सब किस कारण से हुई है। यह सब कथा आप हमको अच्छी तरह से बताइये, हमको आश्चर्य हो रहा है। महादेव जी बोले—देवी पार्वती के वचनों को सुनकर पार्वती प्रिय शंकर जी उस पवित्र शुभ दायिनी कथा को इस तरह कहने लगे—पहले किसी समय देवता और राक्षस मिलकर अमृत निकालने के लिए क्षीर सागर को मथ रहे थे। लेकिन अमृत निकालने से पहले अग्नि और काल के समान प्रभावाला विष निकल आया। हे वरानने! उस विष को देख कर देवता और राक्षसों के मुँह सूख गये और वे सब ब्रह्मा जी के पास गये। महा तेजस्वी ब्रह्मा जी ने सब को डरे हुए देख कर कहा—"हे महाभाग! आप सब डर क्यों रहे हो, आपका मन दुखी क्यों हो रहा है। हे देव! हमने आप लोगों के लिए ही अष्ट गुण ऐश्वर्य की सृष्टि की है। फिर आपके ऐश्वर्य का किसने हरण कर लिया है। आप सब त्रिलोकी के ईश्वर हैं, आपको कोई भी दुख नहीं होता है। आप हमें शीघ्र ही बताइये कि आपको कौन सा

दुख है। प्रजापति ब्रह्माजी की बातों को सुन कर ऋषि, प्रमुख देव और राक्षस कहने लगे कि—देवता और राक्षसों के द्वारा जो क्षीर सागर मथा जा रहा था कि उस में से एक भंयकर विष निकला, जो संवर्त्तक अग्नि की तरह कन्तिमान था, जो भुजंग, भृंग नीले मेघ की तरह काला है, वह विष काल मृत्यु की तरह, युगान्त काल में तीनों लोकों को जलाने वाली सूर्य की तेज किरण की तरह सभी दिशाओं में फैल रहा है। उस विष से जो कालाग्नि की तरह कान्ति निकल रही है उससे सभी लाल और गोरे शरीर वाले विष्णु काले होगये हैं। लाल और गोरे विष्णु को काला होते देखकर हम सभी डर गये हैं। और अब आप की शरण में आये हैं। प्रजापति ब्रह्मा जी ने देवता और राक्षसों की बातों को सुन कर संसार के हित के लिये कहा—हे तपस्वी ऋषियो और सभी देवताओ! आप लोग सुनिये—इस सागर के मथने से जो कालाग्नि के समान कालकूट विष निकला है उसे भगवान शंकर जी के सिवाय कोई और नहीं सह सकता है भगवान विष्णु जी भी उससे काले हो गये, उस विष के तेज को हम भी नहीं सह सकते हैं यह कह कर पदायोनि प्रजापति ब्रह्माजी ने अयोनि होने पर भी भगवान शंकर जी की स्तुति करने लगे। हे अनेक नेत्र वाले विरुपाक्ष, हे त्रिनयन, हे पिनाक और वज्र धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्य नाथ, भूतपति आप देवताओं के शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, आप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। सांख्य योग और भूत ग्राम आप ही से बना है। हम आपको प्रणाम करते हैं। आप त्रिपुरारी, वन्दनीय माताओं के पति, बुद्ध, शुद्ध, कपाली, कराल, शंकर, विरुप, कमल धारण करने वाले तीनों लोकों के विधाता, चन्द्रमा, वरुण आप ही। हैं आपको नमस्कार है आपउग्र, अग्र, एक रूप, शिव, वरद, नित्यानित्य, व्यक्त, अव्यक्त चिन्त्य, अचिन्त्य, भक्तों के दुखों का नाश करने वाले हैं। आपको नमस्कार है। आप उमा प्रिय हैं। दिग्वस्त्र, शिखण्डी और अनेक तरह के गुणों से शोभित भगवान शंकर जी आपको नमस्कार है।

महादेव जी बोले—कि हे पार्वती जी ! प्रजापति ब्रह्मा ने इस तरह स्तुति करके प्रणाम किया और कहने लगे कि जिनके सिर पर गंगाजल बहता है, वही, अति सूक्ष्म और योग से अचिन्त्य देव देव भगवान शंकर जी हमारी भक्ति और श्रद्धा जानकर प्रकट हों जिस प्रकार चन्द्रमा सामने रहकर भी किसी का आह्वान नहीं चाहते हैं। इस तरह लोककर्ता प्रजापति ब्रह्माजी से नाना तरह से वेद वेदांग से तथा स्तोत्रों से स्तुति करने पर हम प्रसन्न हो गये और प्रजापति पितामह ब्रह्माजी से सूक्ष्मरूप में कहा—कि हे पितामह भगवन्, लोककर्ता सुव्रत, ब्रह्माजी हम आपका कौनसा कार्य करें। हमारे इस तरह कहने पर प्रजापति ब्रह्माजी बोले कि हे भगवन् ! देवता और राक्षस दोनों क्षीर सागर का मन्थन कर रहे थे, कि नीले मेघ की तरह अधिक जहरीला भयंकर विष निकला। वह विष संवर्तक अग्नि की कान्तिमान था उस विष को देख कर ऐसा मालूम पड़ता था कि प्रलयकाल आगया है और सूर्य की किरणें तीनों लोकों को जलाने के लिये फैल गयीं। इस तरह काल और अग्नि के समान कान्ति मान विष को सामने देखकर हम सभी डर गये। हे कमल-नयन भगवान महादेवजी ! आप उस विष को संसार के कल्याण के लिये पीलीजिये। आप प्रभु सर्व शक्तिमान हैं। इस विष के पीने में आपके सिवाय और कोई तीनों लोकों में भी समर्थ नही हैं। हे वरानने ! प्रजापति ब्रह्माजी के इस तरह शब्दों को सुन कर उनकी बात मानली और देवताओं के लिये भी अधिक दुखदाई काल की तरह महाघोर विष को पी लिया। उस विष के पीने से उसी क्षण हमारा कन्ठ नीला होगया। कमल पत्र के समान और लपलपाते नागराज तक्षक की तरह उस विष को कण्ठ में लगा देखकर प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा कि हे भगवन् ! आप इस कण्ठ से अधिक शोभित हो रहे हैं। प्रजापति के वचनों को सुन कर देवता, राक्षस, गन्धर्व, भूत पिशाच उन सभी के सामने ही हमने उस घोर विष को कण्ठ में रख लिया। हे गिरि पुत्री पारवती ! तभी से हमारा नील कण्ठ नाम पड़ा है।

हे पारवती ! उस कालकूट के समान तेज विष हमारे कण्ठ में रखने पर सभी देवता और राक्षस अत्यन्त आश्चर्यवश होगये । हे गज गामिनी ! तब सभी देवता, राक्षस, प्रेत पिशाच गन्धर्व हमारी हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगे और बोले कि—हे भगवन् ! आप अधिक बल वीर्य, तथा पराक्रमशाली हैं आप प्रभु धन्य हैं । आप परब्रह्म परमात्मा हैं आपही विष्णु हैं आप ही ब्रह्माजी हैं आपका योगबल और प्रभुत्व धन्य है । आप चराचर संसार के पालने वाले और प्रलय काल में सबकी रक्षा रने वाले हैं ।

तब सभी देवताओं ने भगवान शंकर जी की स्तुति की और उनको हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और फिर सभी अपने अपने विमनों पर चढ़ कर मेरुप्रस्थ की तरफ चले गये यह सभी लोकों में प्रसिद्ध नीलकण्ठोपाख्यान परम गुह्य तथा पवित्र है । स्वयं प्रजापति ब्रह्मजी ने इस पवित्र कथाको सुनाया है जो कोई भी इस पवित्र कथा को पढ़ता और दूसरों को सुनाता है उसका जो फल होता हम उसको कहते हैं हे वरानने ! शरीर में किसी भी प्रकार का विशेष विष चढ़ जाय तो वह इस कथा के प्रभाव से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है यह कथा बुरे सपनों को नष्ट करती है । राज सभा में और स्त्रियों के बीच में सम्मान होता है । युद्ध में विजय होती है । घर में धन-धान्य भरा रहता है सभी प्रकार की सुख शान्ति रहती है । हे वरानने ! जो मनुष्य नीलकण्ठ, हरितश्मश्रु, त्रिशूलपणि, वृषयान और पिनाकधृक नाम को शरीर में धारण करता है, वह नादिया नन्दी के समान बलवान और पराक्रमशाली होकर श्री सम्पन्न हो जाता है । हे पार्वती ! जो मनुष्य हममें भक्ति और श्रद्धा रखकर हमारी कथा को पढ़ता और सुनता है, वह इस लोक और परलोक में सभी तरह से सामर्थ्य वान हो जाता है । अब हम तुमको यह बताते हैं कि वह कैसा सामर्थ्यवान होता है । ब्राह्मण वेदाध्यायी होता है, क्षत्रिय जय लाभ करता है । वैश्य धन लाभ करता है । शूद्र सुख पाता है । रोगी निरोग हो जाता । बन्दी बन्धन से मुक्त हो जाता है । कन्या को

सुन्दर पति मिलता है गर्भवती स्त्री के सुन्दर पुत्र पैदा होता है। इसका इतना फल मिलता है जितना कि एक लाख गौओं के दान करने से होता है, वह महादेवजी की कथा सुनने से मिलता है। सम्पूर्ण आधा या एक पाठ याद करने से मनुष्य शिव लोक को जाता है। हे पार्वतीजी, इस कथा को मैंने ब्रह्माजी से कहा था। सो मैंने यह तुम्हारे प्रति वर्णन की है। इस कथा को कह कर स्वामीकार्तिकेय को प्यार करने वाले शंकर जो नन्दी पर सवार होकर किष्किन्धक गुहा की ओर चल दिये। ब्राह्मणो! वायु देव इस पाप नाशिनी, महापद देने वाली कथा को कह कर सूर्य पथ की ओर चले गये। और अब हमने भी आप लोगों को यह कथा सुनादी।

[इति श्री वायु महापुराण का चौवनवाँ नीलकण्ठ नामका अध्याय समाप्त हुआ]

पचपनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठ बुद्धि वाले सूतजी! अब आप हम लोगों के इनके विषय में कुछ सुनाइये, हम सुनना चाहते हैं गुण, कर्म और प्रभाव में सबसे बड़ा और श्रेष्ठ कौन है, और किनका ऐश्वर्य प्रभाव सबसे अधिक है।

सूतजी बोले —हे द्विज! हम आपको इसके बारे में एक पुरानी कथा सुनाते हैं। देवाधिदेव भगवान महादेवजी का क्या महात्म्य है, और उनका क्या प्रभुत्व है। भगवान विष्णु ने भी त्रिलोकों के विजय के अवसर पर जिस प्रकार कहा है—त्रिलोकी के स्वामी भगवान विष्णु ने पाताल में जाकर जब बलि को बाँध लिया, तो इन्द्र देवता बहुत खुश हुये, कारण कि सब राक्षस मर चुके थे। उस समय भगवान को देखने के लिऐ इन्द्र आदि सभी देवता क्षीरसागर के पास आये। क्षीरसागर के पास जाकर भगवान हरि कि स्तुति करने लगे और वहाँ जाकर सिद्ध, ऋषि, मुनि, अप्सरायें, गंधर्व, नाग किन्नर,देवर्षि,नदी और पर्वत सभी उनकी स्तुति करने लगे। हे भगवान विष्णु! आप धन्य हैं, आप ही विधाता हैं, आप ही लोकालोक के सृष्टि कर्ता हैं।

हे भगवान् ! आपके ही प्रभाव से तीनों लोकों का शुभ कार्य होता है। हरि ! आपने राजा बलि को बांध कर सभी राक्षसों को जीत लिया है। जब देवता और बहुत से सिद्ध इत्यादि भगवान विष्णु की स्तुति कर चुके तो भगवान विष्णु बोले कि—अब हम इसका विशेष कारण तुम लोगों से कहते हैं आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये। जो सब लोकों के सृष्टि कर्त्ता हैं, काल हैं, और काल के भी सृष्टा प्रभु हैं। जिन्होंने माया से ब्रह्माजी के साथ सब लोकों की सृष्टि की है। उन्हीं के प्रभाव से हमने विजय प्राप्त की है पहले समय में चारों तरफ अन्धकार ही अन्धकार था और सभी जीव हमारे उदर में निवासते थे उस समय हम भी हजार रूप धारण करके शंख चक्र गदा पद्म धारण करके हम जल में सो रहे थे कि हमने दूर से ही एक योगी पुरुष को देखा, वे महान पुरुष, अत्यन्त कान्तिमान, प्रभा से युक्त चतुर्मुखी पुरुष कमण्डुल और चर्म धारण किये हुये थे। वे दिव्य पुरुष एक निमेष में ही हमारे पास आ गये। तब उस समय तीनों लोकों के पूज्यनीय प्रजापति ब्रह्माजी हमसे बोले कि हे प्रभो ! आप कौन हैं, और कहां से आकर आप शयन कर रहे हैं। यह सब बात आप हमको बताइये। हम प्रजापति ब्रह्मा, चतुरानन, तीनों लोकों के कर्त्ता स्वयंम्भू हैं। तब ब्रह्माजी की बातों को सुन कर भगवान विष्णु बोले कि हम सभी लोकों के कर्त्ता और पालन करने वाले तथा बार बार संहार करने वाले हैं। हम दोनों आपस में इसी प्रकार बातचीत कर रहे थे कि उसि समय हम दोनों ने उत्तर कि तरफ एक जलति हुई ज्योति दिखाई पड़ने लगी। हे श्रेष्ठ ऋषियों ! हम दोनों उस उस जलती हुई ज्योति को देखकर अचम्भित हो गये। उस जलती हुई ज्योति के तेज से सम्पूर्ण जलसागर लहरा उठा, और वह अनोखा तज धीरे धीरे बढ़ने लगा और फिर हम दोनों उस ज्योति का अन्त देखने की लालसा से उसी तरफ चल दिये। हम दोनों ने देखा कि वह ज्योति पृथ्वी और स्वर्ग लोक पार कर रही थी, उस ज्योति के बीच में तेज से चमचमाता हुआ एक अस्पष्ट शिवलिङ्ग दिखाई दिया।

उस ज्योति मण्डल के बीच में का वह शिव लिङ्ग न सोने का था न पत्थर का न चांदी का ही था, वह अचिन्त्य, कभी लक्ष्य होता तो कभी अलक्ष्य होता अत्यन्त ओजपूर्ण, महाघोर प्रतिक्षण बढ़ने वाला वह शिव लिंग प्राणियों को भयभीत करने वाला अपने तेज से अधिक बड़ा मालूम पड़ता था। इसे देख कर मैंने प्रजापति ब्रह्माजी से कहा कि इस भंयकर रूप वाले लिंग का पता लगाना चाहिये। मेरी बात सुनकर ब्रह्माजी बोले कि प्रभु! आप आलस्य छोड़ कर इसके निचले भाग की तरफ जाकर पता लगाइये और मैं ऊपर की तरफ जाकर पता लगाता हूँ। इस रहस्यमय लिंग के अन्त का पता लगाना चाहिये। इस तरह हम दोनों ही उसका पता लगाने के लिये चल दिये। इस तरह एक हजार वर्ष तक उसके अन्त का पता नहीं चला, तब हम दोनों भयभीत हो गये और चलते चलते थक गये और तब हम दोनों उसी महासागर के पास आ गये। हम दोनों भगवान शिव की माया से मोहित होकर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये, हमारी चेतना लुप्त हो गयी, और तब हम भगवान शंकर की स्तुति करने लगे—

हे देवाधिदेव भगवान शंकर! अपको नमस्कार है। भूतपति, जगदीश, शाश्वत, सिद्ध योनि आपको नमस्कार है। हे प्रभु! आप परमेष्ठी, परब्रह्म, परमेश्वर हैं। आपकी माया का कोई पार नहीं पा सकता है। आप संसार की सृष्टि करने वाले हैं। भगवान् आपको नमस्कार है आप ही यज्ञ हैं, आप ही ओंकार हैं, आप ही परमपद हैं। आप ही प्राणियों अव्यय आदि कारण हैं आप वायु का गुण, रूप, रस और चन्द्रमा हैं। आप ही काल हैं आपही सृष्टि के रचने वाले हैं हे प्रभो! आपको बार बार नमस्कार है। हे प्रभो! बारह आदित्य आठों वसु, उन्नचासों मरुत, ग्यारह रुद्र सभी आपसे पैदा हुये हैं। हे महेश्वर! आपको नमस्कार है। आप रुद्र हैं, पिनाक, सायक और चक्र धारण करने वाले हैं। भस्म से शोभित अंगों वाले तथा कामदेव को जलाने वाले भगवान शंकर जी आपको नमस्कार है। हे

नीलकन्ठ हिरण्य का चीर धारण करने वाले तथा हिरण्य की माला पहनने वाले प्रभो, आप को प्रणाम है, आप दिव्य हजार हाथों वाले हैं तथा नाच गान को पसन्द करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है। हम दोनों के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान शंकर जी वहां प्रगट हुये। उस समय शंकर जी, अधिक प्रसन्न मुख होकर हमारी तरफ देख कर कुछ बोलते हुये ऐसे शोभित हो रहे थे, कि अपने हजारों करोंड़ों मुखों से आकाश को निगल रहे हों। उनका अत्यन्त शोभायमान शरीर तरह तरह के आभूषणों से भूषित हो रहा था, वह भगवान वृषभ पर सवार थे, कृष्ण मृग चर्म का वस्त्र पहने तथा सर्पों का जनेऊ पहने और उनकी आकृति अति घोर थी। लेकिन ऐसा होने पर भी वे देवताओं के लिये भयंकर नहीं थे। उस समय भगवान शंकर जी ने बहुत जोर से गर्जना की, उस गर्जना से सभी डर गये। तब भगवान शंकर ने कहा कि हे देवों में श्रेष्ठ देव ! हम तुम दोनों पर प्रसन्न हैं और भय को छोड़ कर मेरी महामाया को देखो, पूर्व काल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही पैदा हुये हैं लोक पितामह ब्रह्माजी मेरे दाहिने हाथ हैं और यह भगवान विष्णु मेरे बायें हाथ हैं। मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ और आपको मन इच्छित वरदान देता हूं। भगवान शंकर जी की ऐसा मीठी वाणी सुनकर प्रजापति ब्रह्माजी और भगवान विष्णु दोनों ही बहुत प्रसन्न हुये। और भगवान शंकर जी के चरणों में गिरकर बार बार प्रणाम करने लगे, और कहने लगे कि भगवन् यदि आप हम पर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि आप में हमारी अटूट भक्ति और श्रद्धा हमेशा बनी रहे।

शंकर जी बोले—हे विष्णु और ब्रह्मा जी ! आप जैसा चाहते हो, वैसा ही होगा, आप नाना तरह प्रजाओं की सृष्टि करते रहो, तब भगवान शंकर जी इतना कह कर वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। यह मैंने उन्हीं योगी पुरुष भगवान शंकर का वर्णन तुम लोगों को सुनाया है। उन्हीं भगवान शंकर जी ने इस सारे संसार की सृष्टि की है।

हम लोग तो हेतुमात्र हैं, वे भगवान शंकर अज्ञात अव्यक्त भगवान स्वरूप रहित हैं। तीनों लोक में वे शिव नाम से प्रसिद्ध हैं। वे अचिन्त्य हैं अदृश्य हैं ज्ञानी भक्त जन ही उनको देख सकते हैं। हम देवाधिदेव भगवान को नमस्कार करते हैं। हे महादेव! आपको हम नमस्कार करते हैं। हे श्रेष्ट मनोहंस! आपको बार बार प्रणाम है। आप सभी देवों में श्रेष्ठ और प्रभावशाली हैं। हे प्रभो! आपको प्रणाम है।

सूतजी बोले हे ब्राह्मणों! इस तरह की बातों को सुन कर सभी देवता लोग भगवान शंकर जी को नमस्कार करके अपने अपने स्थान पर चले गये। जो मनुष्य भगवान के इस लिंग स्रोत का पाठ करता है। वह हमेशा सुखी रह कर मन इच्छित फल प्राप्त करता है और अन्त में सभी पापों से छूट कर मोक्ष को प्राप्त करता है यह कथा मैंने आप लोगों को महेश्वर की पराक्रम प्रकट करने वाली बातें सुनाई हैं। यही बातें भगवान विष्णु और ब्रह्मा जी ने भगवान शंकर जी की कृपा से बातें की थीं॥

[इति श्री वायु महापुराण का लिङ्गोद्भवस्तव नामका पचपनवाँ अध्याय समाप्त]

छप्पनवाँ अध्याय

[पितरों का वर्णन]

शांशपायन जी बोले—हे सूत जी! प्रत्येक महिने की अमावस को इड़ा का पुत्र पुरुरवा किस भाँति से स्वर्ग को जाता था और वहाँ पितरों को तर्पण कैसे करता था? सो हमको सुनाने की कृपा करिये।

सूत जी बोले—हे शांशपायन जी! इलाके पुत्र राजा पुरुरवा के प्रभाव को आप लोगों को सुनाता हुँ। चन्द्रमा का सूर्य के साथ संयोग, जल के सार भूत चन्द्रमा का शुक्ल और कृष्ण पक्ष में ह्रास और वृद्धि, पितरों के पथ का निर्णय, चन्द्रमा से अमृत की प्राप्ति; पितरोंका तर्पण कल्पोंको वहन करने वाले अग्नि और अस्तसोम पितरों का दर्शन, इलाके पुत्र पुरुरवा के द्वारा पितरों का तर्पण किस तरह किया गया। इसका विवरण और पर्वों का वर्णन कैसे किया गया सो

सो सब आप लोगों को सुनाता हूँ।

जिस समय चन्द्रमा और सूर्य एक ही मण्डल में समान नक्षत्र पर होते हैं और एक ही रात्रि को होते हैं तब अमावस्या होती है पुरुरवा हर एक मावसको अपने नाना तथा पितामह सूर्य तथा चन्द्रमा को देखने जाया करता था, तब वहां वह उनके समय की परीक्षा करके टिका रहता था। प्रसन्न होने पर चन्द्रमा से अमृत झड़ा करता था। पुरुरवा वहां पर चन्द्रमा की उपासना करने लगता था उपासक पुरुरवा चौदश युक्त मावस और परवा सहित मावस–इनको समझता मावस और कुहू की उपासना करता था। उस समय वह सूर्य युक्त अमावस्या के एक काल की प्रतीक्षा करता हुआ वह पुरुरवा वहाँ ठहरता था। पितीश्वरों की तृप्ति के लिये एक मास तक चन्द्र से अमृत की वर्षा होती है। कृष्ण पक्ष में १५ सूर्य की किरणों के द्वारा चन्द्रमा से दुहे हुये अमृत का पान किया जाता है। राजा इस अमृत से ही विधि पूर्वक पितरों को तृपा करता था।

सौम्य, वर्हिषद, काव्य और अग्निष्वात्त, ये पितर हैं। ऋतु जिसे आग कहते हैं वह सम्वतसर माना गया है उसी से आवर्त पैदा हुये है। वे आवर्त अर्धामास नामक वर्ष के प्रसिद्ध पुत्र जो देव गण हैं वे प्रपितामह नाम से प्रसिद्ध हैं। सौम्य नामक पितृगण सौम्य से उत्पन हैं। काव्य नामक पितर, कपि यानी भृगु के पुत्र हैं। सोम से उत्पन्न होने वाले सोमपायी पितर गण उपहूत नाम से याद किये जाते हैं। आज्य (घृत) पान करने वाले पितृगण काव्य कहे गये हैं। इस तरह ये पितृ गण तृप्त होते हैं। काव्य, वर्हिषद, और अग्निष्वात तथा आर्तव पितर भी होते हैं। अष्ठकापति, काव्य पञ्चाब्द नामक पितर कहे गये हैं। इनके सम्वतसर का नाम अग्नि है। परिवत्सर सूर्य है, ईद्वत्सर चन्द्रमा है। अनुवत्सर वायु है। वत्सर रुद्र है। जो युगात्मक पाँच वर्ष कहे हैं वे लेखाऊष्पपा और दिवाकीर्त्य नामों से पुकारे जाते हैं। ये हर माह में अमावस्या को अमृत पान करते हैं। राजा पुरुरवा जब तक जीवित रहे इसी तरह पितरों को तृप्त करते

रहे इस प्रकार चन्द्रमा से निकलने वाला यह अमृत, सौम्य, सुधा और मधु नाम से प्रसिद्ध है । कृष्ण पक्ष में चन्द्रमाओं की पन्द्रह कलाओं को जो जल गयी हैं, छन्द से उत्पन्न तेसीस देव गण पान किया करते हैं । देवताओं द्वारा इस प्रकार पान किया गया चन्द्रमा अमावस्या को पन्द्रहवें भाग में स्थित रहकर गमन करता है । सुषुम्ना द्वारा बढ़ाये गये चन्द्रमा के सुधामृत को क्रमशः पितरगण अमावस्या को दो कला समय तक पान करते हैं । उस तरह चन्द्रमा देवताओं के द्वारा पान किये जाने पर क्षीण हो जाने पर सूर्य अपनी उसी सुषुम्ना नामक रश्मी से सोम पीने वाले पितृगणों को तृप्त करते हैं । सूर्य पुनः चन्द्रमा को पूर्ण करते हैं सुषुम्ना के द्वारा पूर्ण चन्द्रमा की कलाओं को पुनः देवगण पान करते हैं । ये कलायें क्षीण हो जाने पर कृष्ण और पूर्ण हो जाने पर शुक्ल कहलाता हैं । पूर्णिमा को चन्द्र मण्डल पूर्ण और श्वेत दिखाई देता है ।

अब पर्व और सन्धियों का वर्णन सुनाता हूँ । जिस प्रकार ईख में या बांस में गाठों पर पोर या पर्व होते हैं ठीक उसी प्रकार आधे मास पर होने वाली शुक्लपक्षीय और कृष्ण पक्षीय तिथियों को भी काल का पर्व कहते हैं । पूर्णमासी और अमावस्या के भेद से इनकी सन्धि और ग्रन्थि कही गई है । तृतिया आदि तिथि आधे मास की पर्व तिथि हैं, अग्न्याधान आदि समिस्यायें इसलिए इनपर्वों की सन्धियों में की जाती हैं । सायंकाल में अनुमति का दो लवकाल तथा राका का तीसरे पहर का दो लव काल सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है इसी भांति कृष्ण पक्ष की अपराह्न काल में प्रतिपदा के दो लव काल सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है । सायंकाल के समय यदि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा की प्रवृत्ति होती है तो वह समय पूर्णमासी का है ।

सूर्य और चन्द्रमा आपस में युगमात्रा के अनुसार रहकर विषुवत रेखा के ऊपर सममूत्र में जब उदित होते हैं तो परस्पर दर्शन होता है उसको व्यतीपात कहते हैं । पूर्णमासी को इसी प्रकार दर्शन

होता है। सूर्य को आधार मानकर समय की संख्याओं की कल्पना की जाती है। सूर्य को आधार पर मानकर समय की विशेष संख्याओं को माना जाता है। जिस रात के संधि भाग में पूर्णिमा तिथि हो पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश हो उसको अनुमता पूर्णिमा कहा जाता है। क्योंकि पित्रगण देवों सहित उसका दर्शन करते हैं। पूर्णमासी को चन्द्रमा का प्रकाश अत्यन्त प्रखर होता है जिससे चन्द्रमा सबका रंजन करते हैं इस कारण कवि लोग इस रात्रि को राका कहते हैं।

जिस रात में चन्द्र सूर्य और नक्षत्र एक ही स्थान पर रहते हैं उस पन्द्रहवीं रात्रि को अमावस्या कहते हैं। जिस दिन तीसरे पहर में चंद्रमा और सूर्य पूर्णरूप से व्यक्ति की तरह एक दूसरे को देखते हैं उसे पूर्णिमा कहा जाता है। ऊपर के समान जिस अमावस्या को चंद्रमा और सूर्य एक ही स्थान में समागत होकर एक दूसरे को देखते हैं उसे दर्श कहा गया है। अमावस्या के दिन चंद् की कला का अधिक से अधिक क्षय हो जाता है। उसदिन सूर्य ही ग्रहण किया जाता है। अमावस्या के दिन ही सूर्य राहुकेतु के द्वारा ग्रास लिया जाता है। उन मान्य कलाओं के आधार पर ही विद्वानों ने तिथियों का नामकरण किया है। कोयल की 'कुहू' आवाज जितने समय में समाप्त होती है उतने ही समय वाली अमावस्या कुहू नाम वाली कहलाती है। जिस अमावस्या को क्षीण हुआ चंद्मा सिनी वाली के प्रमाण से सूर्य मण्डल में प्रवेश करता है उसे सिनी वाली नाम से कहते हैं। अनुमती, राका, सिनीवाली, और कुहू–इन सब के दोल व काल केवल कुहू मात्र माने गये हैं। सब पर्वों का पूर्वकाल समान रूप से प्रशस्त है। वषट् क्रिया के लिये भी प्रशस्त है। सूर्य और चंद्मा का व्यतीपात योग और पूर्णिमा पर संयोग समान फल देने वाले हैं। प्रतिपदा और पूर्णमाका पर्वकाल द्वि मात्रिक होता है कुहू और सिनीवाली का पर्वकाल दो लव मात्रा वाला होता है। चंद्मा के सूर्य और अग्नि मण्डल से युक्त रहने पर जो पर्व काल होता है वह कलाश्रम मात्र होता है। इस तरह रात्रि की पर्व सन्धियों में सम्पूर्ण

मण्डल वाला श्री सम्पन्न चंद्रमा पर ग्रहण लगता है। चंद्रमा में पन्द्रह कलायें होती हैं सोलह नहीं क्योंकि पूर्णिमा के दिन चंद्रमा पन्द्रह कला से ही युक्त होते हैं जो पूर्ण होते हैं। इससे पंचदशी (पूर्णिमा) में ही चंद्रमा का महाक्षय (ग्रहण) होता है।

इसके बाद मासश्राद्ध के भोग करने वाले पितरों का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी गति कैसे होती है उनको श्राद्ध में जो दी हुई वस्तुओं की प्राप्ति कैसे होती है। मरे हुये मनुष्य के बार बार जीने मरने को कोई सिद्ध योगी तपस्वी भी नहीं जान पाते, तो फिर मैं ही अज्ञानी साधारण मनुष्य कैसे जान सकता हूं। श्राद्ध वाले पितरों को लौकिक पितर मानते हैं। सब आयोनिजा और सौम्यदेव तथा यज्ञ करने वाले पितर देवताओं के समान माने जाते हैं। देवता और मनुष्य पितरों का आदर करते हैं। जो सोम से यज्ञ करने वाले हैं वे सोमवन्त कहे जाते हैं। जो यज्ञ करने वाले होते हैं वे मनुष्य मर कर बीर्हषद पितर कहलाते हैं जो मनुष्य यज्ञ के सत्कर्मों के अनुष्ठान में रहते हैं वे दुबारा जन्म धारणकरने के समय तक तृप्त रहते हैं! उनमें जो मनुष्य हवन परायण यज्ञीधकारियों से यज्ञ करने वाले हैं वे अग्निष्वान्त कहलाते हैं जो मनुष्य श्रद्धा और भक्ति से कर्मों को करते हैं और ब्रह्मचर्य, तप यज्ञ, सन्तान की उत्पत्ति, श्रद्धा, विद्या, दान इन सात शुभ कर्मों में जीवन भर तत्पर रहते हैं वे मनुष्य मृत्युके पीछे कष्ट नहीं भोगते हैं और सोम पान करने वाले सूक्ष्म शरीर देवों और पितरों के साथ स्वर्ग को प्राप्त करते हैं तथा पितरों को संतुष्ट करते हैं। पितरों के हेतु दिये हुये अन्न दान से उनके वर्णों में पैदा हुये बन्धु बान्धव पुत्र इत्यादि द्वारा दिये गये श्राद्ध के अन्न से सोम लोक में रहने वाले पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं। ऐसे ही पितरों को मास श्राद्धभुक पितर कहते हैं। इन मनुष्य पितरों के अलावा और भी कई प्रकार के पितर होते हैं। अपने नीच कर्मों के अनुसार तरह तरह की योनियों में प्रवेश करते हैं, वे आश्रम धर्म से भ्रष्ट स्वधा, स्वाहा से विमुख होकर बुरी आत्मा वाले शरीर के नष्ट होने पर यमपुरी में प्रेत बन कर तरह

तरह के दुख उठाते हैं। और अपने किये हुये कर्मों पर पश्चाताप करते हैं। बहुत उम्र की आयु पाकर दुर्बल शरीर होकर तथा नग्न रह कर भूख और प्यास से व्याकुल रहकर इधर उधर भटकते रहते हैं। वह खाने पीने की इच्छा से दूसरों के दिये हुये अन्न की तलाश में तथा नदी तलाब के पास पानी की खोज में इधर उधर भटकते फिरते हैं। वे भीषण तरह के नर्क में जैसे—शाल्मील नर्क, वैतरीण नर्क, कुम्भी-पाक नरक, करम्भ बालुका नरक, असिपत्रवन नरक, शिलासपेषण नरक, इत्यादि घोर नरकों में वे गिराये जाते हैं। इस प्रकार के प्रेतात्मा वाले पितरों के कुटुम्बके मनुष्यों को चाहिये कि प्रेतात्माओं के नाम गोत्रादि का नाम लेकर अप सव्य होकर पृथ्वी पर कुशा के आसन के ऊपर उन पितरों के हेतु तीन पिण्ड दान करने चाहिये। ऐसा करने से प्रेत-स्थानों में दुख पाने वाले पितरों को शान्ति मिलती है। और जो मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार प्रेतस्थानों में न जाकर यहीं पृथ्वी पर पशु, पक्षी, स्थावर इत्यादि पांच प्रकार की योनियों में तथा भूतों में तथा अनेक रूपों के जीवों में पैदा होते हैं उनके लिये श्राद्ध में दिया हुआ अन्न उन योनियों के ठीक आहार बनकर उनको मिलता है। पवित्र शुभ समय में विधि पूर्वक करके सत्कर्मी मनुष्य के द्वारा श्राद्ध के हेतु दिया हुआ पदार्थ किसी भी योनि में गये हुये पितरको प्राप्त हो जाता है। श्राद्ध में मन्त्र द्वारा जिस पितर के हेतु से अन्न दिया जाता है, वह अन्न उसको जरूर मिलता है। ये पितर वह्नक, उष्मपा और दिवाकीर्त्या नाम से भी पुकारे जाते हैं। पितरों का दिन मास का कृष्ण पक्ष माना जाता है तथा उनकी रात्रि मास का शुक्ल पक्ष माना जाता है इतने जो पितर देवता हैं और जितने मनुष्य पितर हैं उनकी श्रद्धा और भक्ति युक्त कर्म से और उनकी प्रसन्नता से सभी देव पितर प्रसन्न होते हैं।

इस प्रकार सोमपायी पितरों के भी पितरोंका वर्णन पुराणोंमें लिखा गया है। अतः इस तरह सूर्य, चन्द्रमा पितर और पुरुणों का समा-गम, सुधा अमृत की प्राप्ति, पितरों की तृप्ति पूर्णमासी और अमावस्या

का पुण्य काल, पितरों के स्थान इत्यादि का वर्णन मैंने तुमसे सूक्ष्म रूप में कहा है। यही सनातन सर्ग है। अपनी सुख समृद्धि चाहने वाले व्यक्तियों को इनकी श्रद्धा करनी चाहिये। इन सबका वर्णन बहुत बड़ा है मैंने इनका एक देश का वर्णन आप लोगों को बताया है। इसका अलग अलग वर्णन करना कठिन है। मैंने आप सबों को स्वायम्भुव मनु के सृष्टि तत्व का वर्णन सुनाया है। अब आप लोगों के और क्या सुनने की इच्छा है॥

[श्री वायु महापुराण का पितरों का वर्णन नाम का छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ]

सत्तावनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! अब आप हमको स्वायम्भुव मन्वन्तर के चार युग के स्वभाव और तत्वका वर्णन विस्तार पूर्वक बताइये। सूतजी बोले—हे श्रेष्ठ ऋषियो! मैंने पृथ्वी के वर्णन के प्रसंग में जिन चारों युगों का वर्णन किया था अब मैं विस्तार पूर्वक आपसे कहूंगा। हर एक युगों का मान संख्याओं से परिणित युग, युगधर्म, युगभेद, युगसन्धि, युगांश तथा युग सन्धान इत्यादि इन छः तरह के युगों को तत्वतः बता रहा हूं। लौकिक प्रमाण से भारतवर्ष माना गया है उसी मानव वर्ष के प्रमाण से इन चारों युगों का प्रमाण बता रहा हूं। निमेष काल, काष्ठा और मुहुर्त इत्यादि लौकिक काल के प्रमाण हैं, छोटे से अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगता है उस समय को निमेष काल मानना चाहिये। पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा होती है और तीस काष्ठा की एक कला होती है। तीस कला का एक मुहूर्त होता है। तीस मुहूर्त का एक दिन रात होता है। सूर्यदेव मनुष्य और देव दोनों के दिन रात का हिस्सा करते हैं। उसमें दिन तो कार्य करने के लिये रात्रि सोने के लिये बनाई है। पितरों का एक दिन रात एक महीने का होता है। मनुष्यों के तीस महीने पितरों का एक महीना है और मनुष्यों के तीन सौ साठ महीनों का पितरों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के वर्ष के अनुसार उसके सौ वर्ष का पितरों का तीन वर्ष और चार महीने होता है। मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक

दिन होता है। सूर्य का उत्तरायण देवताओं का दिन होता है और जब सूर्य दक्षिणायण हो जाते हैं तो देवताओं की रात होती है। देवताओं के तीस दिन रात का देवों का एक महीना होता है। मनुष्यों के तीस वर्षों का देवों का एक मास होता है। मनुष्यों के तीन सौ साठ वर्षों का देवों का एक वर्ष होता है। मनुष्यों के तीन हजार तीस वर्षों का एक सप्तर्षिवत्सर होता है और नब्बै हजार नब्बै वर्ष का एक संवत्सर होता है। मनुष्यों के छत्तीस हजार वर्षों का देवों का एक सौ वर्ष होता है इस क्रम के अनुसार देवों का वर्ष हिसाब चलता है। मनुष्यों के तीन नियुत साठ हजार वर्षों का देवों का एक हजार वर्ष संख्याविद् होता है।

भारत वर्ष में चार युग माने गये हैं पहले सतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग इत्यादि हैं। सतयुग चार हजार वर्षों का माना गया है। उसकी सँध्या और संध्याश चार सौ वर्षों का माना है। और सभी तीनों युगों में एक एक वर्ष का अन्तर माना जाता है। बारह हजार वर्षों की संख्या का सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग इन चारों युग की मानी गयी है। मणु चौदह लाख चालीस हजार मनुष्य वर्ष का सतयुग माना गया है। इन चारों युगों में सतयुग का प्रमाण देवों के चार हजारवर्षों का माना है। त्रेतायुग के शुरू में ब्रह्माजी द्वारा निर्दिष्ट किये गये श्रोत और स्मृति धर्मों का प्रचार सप्त ऋषियों ने और मनु ने किया था, सातों ऋषियों ने ऋग्वेद यजुवेर्द और सामवेद से अनुमत स्त्री परिग्रह अग्नि होत्रादि श्रौत धर्म का उपदेश दिया था उस त्रेतायुग के आदिम काल में सप्त ऋषियों और मनु के सत्य,ब्रह्मचर्य ज्ञान और तपस्या के कारण वैदिक कर्म से बुद्धि व्यापार और कर्मरयता के बिना ही उन मन्त्रों की सिद्धि हुई है। द्वापर युग में आयु की कमी और बाधापूर्वक के कारण उनका विभाग किया है। कलियुग के तथा द्वापर के आदिम काल में सबसे पहले ब्रह्माजी ने अपनी तपस्या के बल से दिव्य गुण युक्त आदि अन्त विहीन ऋषियों तथा देवताओं की सृष्टि की है।

चारों युगों के समान अर्थ वाले वेदों के वाक्य समूह युगों के स्वभाव के क्रम से धर्म, प्रजा तथा अपने विविध अंगों समेत विकार को प्राप्त हो जाते हैं।

क्षत्रिय मनुष्यों का उद्योग यज्ञ माना गया है, वैश्यों का हवनीय यज्ञ माना गया है, शूद्रों का कार्य श्रेष्ठ तीनों वर्णों की सेवा रूपी यज्ञ तथा ब्राह्मणों का जप रूपी यज्ञ करना मुख्य माना है सभी वर्णों के लोगों की कल्याणमय कार्यों में प्रवृत्ति रहती थी, सभी मनुष्य वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। त्रेतायुग में सभी मनुष्य आयु बुद्धि, बल, स्वरूप, आरोग्य धर्मपरायण होते थे। प्रजापति ब्रह्माजी ने सभी प्रजाओं के लिये वर्णाश्रम की व्यवस्था बना रखी थी किन्तु अज्ञानी बन कर प्रजाओं ने वर्णाश्रम धर्म का उल्लंघन करके आपस में लड़ लड़ कर एक उपद्रव खड़ा करके फिर मनु के पास सभी लोग गये, और तब स्वायम्भुवमनु ने अपनी स्त्री शतरूपा से उस पुरुष ने पहले प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्रों को पैदा किया। वे दोनों पुत्र राजा होकर दण्ड की व्यवस्था करने लगे और उसी समय से मनुष्य दण्ड की व्यवस्था करने वाले पैदा होने लगे, प्रजा वर्ग का रंजन करने के कारण इन लोगों का नाम राजा पड़ा है। त्रेतायुग से ही शुक्र, हवन, यज्ञ इत्यादि की व्यवस्था बनी है। त्रेतायुग में शूरवीर दीर्घायु, महाबलवान, योग्य, दण्ड देने वाले, यज्ञ परायण, कमल के समान नेत्र वाले मनोरम, विशाल वक्षस्थल वाले थे वे सभी चक्रवर्त्ती तथा महाधनुर्धर थे। राजाओं के सभी लक्षण उनमें मौजूद थे। चक्र, रथ, मणि, स्त्री, धन, अश्व और हाथी ये सात मुख्य रत्न सभी चक्रवर्ती राजाओं के मुख्य आभूषण माने जाते हैं। चक्र, रथ, मणि, खड्ग, धनुष, निधि, केतु आदि ये सात प्राण विहीन रत्न माने जाते हैं। स्त्री, पुरोहित, सेनापति, रथाकार, मन्त्री, घोडे और गज शावक इत्यादि–ये प्राण धारी रत्न माने जाते हैं। सभी मन्वतरों में चक्रवर्ती राजा इस पृथ्वी पर भगवान विष्णु के अंश से पैदा हुये हैं। इन चक्रवर्ती राजाओं के ये चार अद्भुत रत्न हैं बल, धर्म,

सुख और धन इत्यादि ।

शांशपायनजी बोले—हे सूतजी ! त्रेतायुग के आरम्भमें यज्ञ आदि की व्यवस्था किस प्रकार हुई । जब सतयुग के साथ उसकी संध्या समाप्त होगई, और त्रेतायुग के साथ कलामात्र उसकी संधि प्रारम्भ हुई । और किस तरह सभी यज्ञीय सम्भारों को इकट्ठा करके यज्ञ का प्रचलन किया । शांशपायनजी की बात सुनकर सूतजी बोले—हे शांशपायन जी अब मैं आपको यह बताऊँगा कि त्रेतायुग के प्रारम्भिक समय में यज्ञ की प्रथा किस प्रकार प्रचलित हुई है । जब त्रेतायुग में आरम्भ में वर्षा होने के बाद सभी तरह की औषधियां पैदा हुईं, लोग घर, द्वार, आश्रम, नगर की व्यवस्था में लीन होगये, उस समय देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था की, उस समय अश्व-मेधयज्ञ का कार्य प्रारम्भ हुआ सभी ऋषि महर्षि वहाँ आ आकर उन सभी में इकट्ठे हो गये और मेध्य पशुओं द्वारा यज्ञ का कार्य प्रारम्भ हुआ सुनकर सभी लोग देखने के लिये आ गये । उस समय सभी पुरोहित उस निरन्तर चलने वाले यज्ञ कार्य में व्यस्त हो गये, हवनीय पशुओं का वध होने लगा, देवताओं के होता गण अग्नि में हविष की आहुति देने लगे । सभी देवता इद्रियादिक गणों की पूजा करने लगे । उस यज्ञ मण्डल में पशुओं का वध होते देखकर सभी महर्षि गण बोले हे देवराज इन्द्र हे सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुओं का वध शुभ कल्याण प्रद नहीं है । इन दीन पशुओं की हिंसा करके तुम अपने धर्म का नाश कर रहे हो । यह पशु की हिंसा करना धर्म नहीं है । यदि तुम्हें यज्ञ करना है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो । वेद विहित यज्ञ करना अधिक अक्षयफलदायी होता है । उन यज्ञ बीजों से तुम यज्ञ प्रारम्भ करो, जिनमें हिंसा का नाम नहीं है । सभी ऋषियों ने इन्द्र के साथ मेल करके राजा वसु से कहा—

ऋषि बोले—हे राजन् ! आप प्रतापी राजा उत्तानपाद के प्रतापी पुत्र हैं । आप हम लोगों के इस भ्रम का निवारण कीजिये । राजा ने ध्यान पूर्वक मनन करके कहाकि शास्त्रों के उपदेशों के अनुसार

यज्ञ राधन करना चाहिये शास्त्रों में लिखा है कि मेध्य पशुओं द्वारा या बीजो और फलों द्वारा यज्ञराधन करना चाहिये। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा करना है। हे ऋषियो! यदि उन मन्त्रादिकों के बचन सत्य हैं तो हिंसा करके यज्ञ अनुष्ठान आप लोग करें। राजा वसु की इस तरह बात सुनकर ऋषि बोले कि हे राजा तू राजा होकर भी झूठ बोल रहा है। अतः तू चुप रह और ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की तरफ बने हुये भवन की तरफ देखा और कहा कि तू अब रसातल में जा कर रह मुनियों के इस प्रकार कहने पर राजा वसु आकाश में घूमने बाले रसातल में जाकर रहने लगे। स्वायम्भुव मनु के अतिरिक्त कोई भी ज्ञानी धार्मिक मनुष्य निश्चित रूप से धर्मतत्व का निर्णय नहीं कर सकता। इसी कारण ऋषियों ने जीव हिंसा को धर्म का द्वार नहीं बनाया। इसके बाद उस अश्वमेध यज्ञ में सभी ऋषि हिंसात्मक यज्ञ के अद्भुत धर्म पथ को देख गजा वसु की कही हुई बातों का अनादर करके अपने अपने स्थानों को लौट गये। इसके बाद ऋषियों के चले जाने पर देवताओं ने यज्ञ का कार्य समाप्त किया पुराने समय में प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेंधातिथि, वसु, सुमेधा, विरजा, शंखपाद, रज, प्राचीनबर्हि, पर्जन्य और हविर्धान प्रभृति अनेक तपस्वी सिद्ध महात्मा ब्राह्मण और क्षत्रिय राजा जो महा तेजवान, प्रतापी वैभवशाली होगये हैं, उन्होंने अपने तप के प्रभाव से सिद्धि प्राप्त करके स्वर्ग में स्थान पाया है। इन्हीं सब कारणों से सभी स्थानों पर यज्ञ की अपेक्षा तपस्या विशेष फल दायी मानी है। प्रजापति ब्रह्माजी ने अपने तप के प्रभाव से ही समस्त संसार की सृष्टि की है। तप की अपेक्षा यज्ञ कभी भी श्रेष्ठ नहीं हो सकता है। इस पूरे संसार का मूल तप ही है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ की प्रथा इसी प्रकार शुरू हुई थी तभी से लेकर आज तक प्रत्येक युगों में यह यज्ञ होता आरहा है।

[श्री वायु महापुराण का सत्तावनवां अध्याय समाप्त ॥]

अट्ठावनवाँ अध्याय

सूतजी बोले—अब मैं आपको द्वापर युग के स्वभाव का वर्णन सुनाऊंगा। त्रेतायुग के समाप्त होने के बाद द्वापरयुग शुरू होता है। इस द्वापरयुग के आदि काल में त्रेतायुग की जो सिद्धियां मनुष्यों को प्राप्त थीं, वह भी युग साथ ही समाप्त हो जाती हैं। द्वापर युग में उन्हीं प्रजाओं के मन में लोभ, वृत्ति, अधैर्य, युद्ध वृत्ति, ब्रह्मादि वर्णों में आपस में मतभेद, याचना, वध, नौकरी करना, दण्ड, मद, निर्बलता, दम्भ, अक्षमा इत्यादि इन सभी अवगुणों की रजोमय और तपोमय प्रवृतियां पायी जाने लगती हैं। सतयुग के आदि में धर्म नहीं था. त्रेतायुग में उसकी प्रवृति होती है। द्वापर में वह व्याकुल रहता है औरकलियूग में समाप्त हो जाता है। द्वापर युग में मनुष्यों की अल्पायु के कारण वेदव्यासों ने वेद को चार भागों में बाँटा है। इस प्रकार मैंने आपको द्वपर युग के वारे में बताया। अब कलियुग के विषय में सुनो। द्वापर युग की संध्याश समाप्त हो जाने पर कलियुम की पृवृति होती है। हिंसा असूया, झूठ भाषण, माया, तपस्वियों का संहार ये कलियुगके स्वभाव हैं। उस युगकी प्रजा काल के अनुसार इनका पालन करती है। इन बातो से कलि धर्म के कारण वेदानुमत धर्म सम्पूर्ण रूप से समाप्त हो जायगा। मन, वाणी और कर्म से अधिक प्रयत्न करने पर भी लोगों की जीविका में सन्देह बना रहता है। कलियुग में महामारी, क्षुधा, दुर्भिक्ष आदि अनावृष्टि तथा देशो में उथल पुथल सदा मची रहतीहै क्षोभ स्मृतियों का सर्वथा लोप हो जाता है। कोई गर्भ में मर जाता है तो कोई जवानी में। कलियुग में सभी लोग धर्म हीन अनाचारी, अज्ञानी, क्रोधी, अल्प बुद्धि वाले और झूँठ बोलने वाले होते हैं। सभी वर्गों के लोग कर्तव्य हीन हो जाते हैं। जीवों में अधिक क्षोम होता है वेदपाठ तथा यज्ञ का अनुष्ठान द्विजाती लोग नहीं कर सकते हैं।

राजा लोग अधिकतर शूद्र जाति के होते हैं। और पाखण्ड को बढ़ाते हैं। शूद्र ब्राह्मणों की भांति तथा ब्राह्मण शूद्रों की भांति आचरण करते हैं। चोर राजाओं पर शासन और दण्ड की व्यवस्था करते हैं, नौकर स्वामि भक्ति से रहित होते हैं स्त्रिओं अतिशय दुशील, व्रतादि न करने वाली, मदिरा मांस पसन्द करने वाली, मायाविनी होने लगती हैं। हिंसक जीवों की अधिकता तथा गौओं का ह्रास होने लगता है। साधु लोगों का सर्वथा अभाव होने लगता है। चारों आश्रम शिथिल हो जाते हैं। शूद्रों को ब्राह्मण लोग नमस्कार करने वाले हो जाते हैं। सभी लोग दूसरे की स्त्री में चित्त लगाकर अपने अपने धर्म से भृष्ट हो जायेंगे। व्यवसायी लोग कपट पूर्ण तौल से खरीददारों को ठगा करेंगे। उस युग के अन्त में स्त्रियों की अधिकता और पुरुषों की कमी होगी। लोग कच्चा मांस खाने लगेंगे। सभी लोग घोर पतित कामों के करने में शंका नहीं करेंगे और शरीर से बहुत ही कमजोर होंगे यही युगान्त का लक्षण जानना चाहिये। पूरी पृथ्वी पर कहीं भी कोई मनुष्य जीव इत्यादि नहीं रहेगा। पृथ्वी पर मनुष्यों की रक्षा करने वाले राजा लोग रक्षा करने से असहाय हो जायेंगे। दुष्ट राजा लोग दूसरों के रत्नों को तथा स्त्रियों को छीन लेंगे। बुरे दुष्ट राजा बहुत कामुक होंगे तथा विद्या बुद्धि उनकी नष्ट हो जायगी। उस युगान्त के समय के पुरुष अपने बालों को बिखेर कर धूल धारण करने वाले होंगे वे सोलह वर्ष से भी कम आयु में सन्तान उत्पत्ति करेंगे। उस समय अन्न की चोरी करने वाले तथा वस्त्रों की चोरी करने वाले चोर होंगे बुद्धि और अच्छे कर्मों के समाप्त होने पर सभी लोग अकर्मण्य हो जायेंगे। उस समय दुष्ट जीव मनुष्यों को दुखी करेंगे। सुभिक्ष आरोग्य, कल्याण, सामर्थ्य ये सभी चीजें मनुष्यों को दुर्लभ हो जायेंगी ऐसे समय में सभी भूख प्यास से व्याकुल होकर भयभीत होंगे और वहां पर उल्लुओं का समूह रहने लगेगा। सभी दुखों से दुखी होकर कलियुग के मनुष्यों की उम्र अधिक से अधिक सौ

वर्षों की होगी। शास्त्र, वेद, पुराण कहीं पर रहेंगे कहीं पर लोप हो जायेंगे। धर्म कार्य बिल्कुल नष्ट हो जायेंगे, बिना पढ़े लिखे मनुष्य गेरुआ रंग के कपड़े पहनकर वेदों का विक्रय करेंगे। उस समय ब्राह्मणलोग अपना धर्म छोड़देंगे व शूद्र लोग धर्मके पण्डित माने जायेंगे कलियुग में प्रजावर्ग स्त्री हत्या, गौहत्या, आपस में मारपीट करके एक दूसरे को वध करके जीवन यापन करेंगे। प्रजावर्ग में गर्भ हत्या का घोर पाप बहुत होता है, इन्हीं सब पापों के कारण उस युग के मनुष्यों की आयु, बल, रूप इन सबका नाश होजाता है। घोर पाप के कारण उस युग में यज्ञादि शुभ कर्मों का विलोप हो जाता है, उस कलियुग में मनुष्य थोड़े ही समय में सिद्धि प्राप्त करते हैं, उस युगान्त के उत्तम श्रेष्ठ ब्राह्मण धन्य माने जाते हैं, जो श्रुतियों और स्मृतिओं द्वारा अनुष्ठान करते हैं। त्रेतायुग में जो धर्म का फल एक वर्ष में प्राप्त होता है वही धर्म का फल द्वापर युग में एक महीने में प्राप्त होता है और कलियुग में वही धर्म का फल एक दिन में प्राप्त होता है। अब हम आपको कलियुग की संध्याश का वर्णन सुनायेंगे। अभी तक हमने आपको कलियुग के विषय में सुनाया। हर एक युगों की सिद्धियां पहले युग की सिद्धियों से कम हो जाती हैं। इसी तरह युग के प्रभाव से उसकी सिद्धियां संध्या में एक पाद रहती हैं। और संध्याश में संध्या के स्वभाव की एक पाद शेष रहती हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तर के आदि कलियुग के संध्याश के उपस्थित होने पर बुरे मनुष्यों को दण्ड देने वाला भृगु वंशीय की मृत्यु के बाद उन्हीं वंश में पैदा हुआ। चन्द्रमा के गोत्र का प्रमति नाम का राजा विष्णु के अंश से पैदा हुआ, वह राजा पूरी पृथ्वी के चारों ओर हजारों शस्त्रधारी मनुष्यों के साथ म्लेच्छों का संहार करता है। हर एक मन्वन्तर में सप्त ऋषि युगक्षय होने तक धर्म की व्यवस्था के लिये उन प्रजाओं में विराजमान रहते हैं। अल्पशेष कलियुग के धार्मिक प्रजा से सतयुग की प्रजा की उत्पत्ति होती है। सुख, आयु, बल, रूप इत्यादि ये सभी हर एक युगों में अपने

अपने स्वभाव के अनुसार एक एक चरण कम हो जाते हैं। इन चारों युगों के एक हजार बार समाप्त हो जाने पर ब्रह्माजी का एक दिन होता है, और उतने ही बार फिर समाप्त होने पर उनकी एक रात होती है। यही सभी युगों का लक्षण जानना चाहिये। इन्हीं चारों युगों की आवृति जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है तो एक मन्वन्तर होता है। ये सभी समान लक्षण वाले होते हैं इसी तरह सभी मन्वन्तरों का भी यही लक्षण जानना चाहिये। इसी प्रकार सभी युगों का अदल बदल चिट प्रवृत सनातन जानना चाहिये। नाश होना और पैदा होना इन दो विशेष स्थिति में जीव समूह बदल कर एक हालत में स्थित नहीं रह सकता। सभी युगों के मन्वन्तरों का हाल मैंने आपको सुना दिया है। अभिमानी मन्वन्तरों के स्वामी आठ प्रकार के देव, ऋषि तथा मनु गण हैं, वे सभी नाम और रूप में एक बराबर प्रयोजन सिद्धि करने वाले हैं। इसी तरह हर एक युगों में वर्णाश्रम का विभाग होता है अब मैं आपको विस्तार पूर्वक क्रमशः सभी युगों की सृष्टि और स्थिति का वर्णन सुनाऊँगा, आप सब सुनिये॥

[वायु महापुराण का स्तुति नीलकण्ठ नाम का अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ]

उनसठवाँ अध्याय

[ऋषियों के लक्षण]

सूत जी बोले—ऋषि! अब आप उनका हाल सुनिये, जोकि प्रत्येक युगों में जो प्रजा उत्पन्न होती है। राक्षस, सर्प, गन्धर्व, असुर—इन सब प्राणधारियों को यदि कोई न मारे तो ये पूरे युग तक जीवित रहते हैं। पशु, पक्षी, मनुष्य और स्थावर जीव गण अपने युग धर्म के अनुसार सभी युगों में पूरी उम्र तक जीवित रहते हैं। कलियुग में मनुष्यों की आयु अनिश्चित होती है। देवों और असुरों की ऊँचाई के नाप से मनुष्यों की ऊँचाई सात सात अंगुल कम होती है। कलियुग में देवता और असुरों की ऊँचाई एक सौ अट्ठावन अंगुल की होती है। कलियुग के मनुष्यों के

चरण से लेकर सिर तक की ऊँचाई अपने चौरासी अंगुल की होती है। देवों को प्रिय लगने वाले सुन्दर स्वरूप ये जीव तद्रूप होकर देवों के निवास स्थान में दुबारा फिर पैदा होते हैं। इनका फिर देवों द्वारा भोग होता है। स्थावर और जंगम जीवों के ठीक प्रमाण के अनुसार उन्ही के स्वरूप के अनुसार रूप रख कर ये जीवगण सुख का अनुभव करते हैं।

इसके बाद अब मैं आपको सज्जन, साधु और विद्वान पुरुषों के विषय में सुनाऊँगा। जो मनुष्य ब्रह्मवान होते हैं वे सन्त कहलाते हैं। जो मनुष्य दस प्रकार के विषयों में और आठ प्रकार के कारणों में फँस कर कभी रोते हैं कभी हँसते हैं उन मनुष्यों को जितात्मा कहते हैं। दोनों प्रकार के धर्मों का पालन करते हैं, वे मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैष्य लोग द्विजाती कहलाते हैं। गुरु का हित करने वाला ब्रह्मचारी व्यक्ति साधु कहलाता है। अपनी सत्य क्रियाओं में रहने वाला गृहस्थी मनुष्य भी साधु कहलाता है। जो धारण करने योग्य नहीं है और जिसके आचरण से महत्व की प्राप्ति नहीं होती, उसे अधर्म कहते हैं। जिसके आचरण से इष्ट की प्राप्ति होती है, विद्वान मनुष्य उसे धर्म कहते हैं जो मनुष्य बूढ़ा लोभरहित, आत्मनिष्ठ, जिसमें घमण्ड न हो, विद्वान विद्याधर, विनम्र, सरल हों ऐसे मनुष्योंको आचार्य कहते हैं शष्ट शब्द शिष्ट शब्द से बना है उन्हीं शिष्ट लोगों के आचारों को शिष्टाचार कहते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर के समाप्त होने पर धार्मिक प्रकृति के मनु और सप्तऋषि प्रभृति वाले मनुष्यों की सत्तालोक में सन्तान उत्पत्ति के बीजारोपण और धर्म की मर्यादा ठीक रखने के लिये बाकी रहती है। उन्हीं को शिष्ट कहते हैं। पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में धर्म के प्रत्येक अंगों का यही लक्षण ऋषियों ने बताया। अब इसके बाद मैं आप लोगों को मन्वन्तर के विषय में बताऊँगा। प्रत्येक मन्वन्तर में सम्पूर्ण श्रुतियों का तरह तरह के रूप से विधान होता है। ऋक्, यजु, साम, देवता, स्तोत्र, विधि हवन ये सभी पहले की तरह ही बदलते बदलते रहते हैं हर एक मन्वन्तर

जिस तरह जिसि प्रकार के देवगण निवास करते हैं, उन्ही के अनुसार ब्रह्माजी चार प्रकार के स्तोतों का प्रवर्तन करते हैं। पहले मन्वन्तरों में स्थित रहने वाले तपस्वी अपनी तपस्या में लीन होकर ईश्वर की इच्छावश तारों का दर्शन से सन्तोश, भय, दुख, सुख और शोक इन पांच कारणों से सभी की उत्पत्ति हुई है। इसके बाद अब में अतीत और भविष्य के ऋषियों के ऋषित्व का लक्षण बताऊंगा ! वे ऋषिगण पांच तरह के माने जाते हैं। सभी संसार के नास हो जाने पर जब सत्य, रज, और तम इन तीनों गुणों की समान अवस्था हो जाती है तब देवों के ओमतत्व का भी कोई पता नहीं रहता, उन दोनों का एक रूप अतिदेश हो जाता है तब उस समय प्रधान तत्व में विना बुद्धि के व्यापार किये ही अपने आप ही चेतना आजाती है। ये रिषिगण पांच प्रकार के ज्ञान का अनुशीलन करते कहे जाते हैं। रिषियों की जाति पांच प्रकार की होती है। उन रिषियों के नाम ये हैं—भृग, मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलह, क्तु, मनु, दक्ष, वहिष्ठ और पुलस्य ये दस रिषिगण अति ऐश्वर्यशाली और ब्रह्माजी के मानस पुत्र माने जाते हैं। वे रिषि सृष्टि के शुरू में स्वयं ही पैदा हुए थे। अतः महान स्वयमेव उन पूरे रिषियों के रूप में बदल कर पैदा होता है। उन्हीं को महर्षि कहते हैं। अब में आपको इन एश्वर्यशाली रिषियों के पुत्रों के विषय में बताऊंगा। ये समस्त रिषिगण अपने ज्ञान बल से रिषित्व को प्राप्त करते है। रिषियों के पुत्र रिषि गर्भसे ही पैदा हुए हैं। इन रिषियोंके ये नाम हैं:-काव्य, बृहस्पति, कश्यप, उशना,उतथ्य, वामदेव, अयोज्य, औशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति बाल खिल्य, धटा इत्यादि रिषि थे। इनके बाद वत्सर, नग्रहू, भारद्वाज, शरद्वान, अगस्त, दीर्घ-तामा, बाजश्रवा, सुग्राक, वेश परायण इत्यादि रिषिगण अपने सत्य के बल पर रिषित्व को प्राप्त करते हैं। रिषियो ? हे वसिष्ठ, शक्ति,पराशर इन्द्र, प्रमति, भरद्वसु, मैत्रावरुण और कुगिड़न ये सात रिषि ब्रसक्षेत्र के निवासी कहे जाते हैं। यह ब्रह्म क्षेत्र ब्रह्माजी ने परम पवित्र कुरुक्षेत्र में स्थिति किया है। ब्रह्माजी ने अपने हाथों से स्वयं इसको बनाया था

उस परम पवित्र तीर्थ में सभी देवों ऋषियों और मुनियों का बहुत बड़ा समागम हुआ था।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! हम लोगों ने वायु देवता के दर्शन किये नहीं हैं। तभी उसी समय बातचीत करते हुये ही ऋषियों को एक अणु दिखाई दिया। वह अणु एक पुर के रूप में बदल कर दिखाई पड़ने लगा, उसका वायुपुर नाम पड़ा। उस वायुपुर में अठारह हजार ब्राह्मणों के रहने के लिये स्थान बना हुआ था। ब्रह्मवादी वायु देवता ने उस स्थान पर धर्म की रक्षा के लिये तीनों देवों की आज्ञा से उन ब्राह्मणों की स्थापना की थी, उसी स्थान पर रुद्र भगवान स्थायी रूप से सभी दिशाओं में स्थित रहते हैं। जो बहुत प्राचीन समय समाप्त हो गया है उसे पुराकल्प कहते हैं। पुरा शब्द के पुरानी चिन्ह होने के कारण पुराकल्प शब्द बना है। उस पुराकल्प में घटित होने वाली घटनाऐं शुद्ध सुविस्तृत नहीं होती, सिर्फ अनिश्चित भाव से ही उनके निश्चय की मान्यता की है। जिस तरह इस वर्तमान कल्प में वर्णित हो रहा है उसी प्रकार वह प्राचीन कल्प भी है। जैसा वह कल्प था वैसा यह भी है। यह ब्राह्मणों का उपदेश है। पुराने समय में विद्वानों ने ब्राह्मणों का यही लक्षण बताया है। मन्त्र से धातु मंत्र की उत्पत्ति हुई है और ब्रह्माजी की आज्ञा का पालन करने के कारण मनुष्यों के श्री वायु महापुराण का ऋषियों का ब्राह्मण नाम पड़ा है। लक्षण नाम का उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

साठवाँ अध्याय

(महास्थान तीर्थ में वेद शाखाओं का वर्णन)

ऋषि बोले—हे महामते सूतजी ! पुराने समय में वेदों का किस प्रकार विभाजन हुआ, आप हम सबको इनके विषय में सुनाइये।

सूत जी बोले— हे श्रेष्ठ ऋषियो ! स्वायम्भुव मन्वन्तर के

द्वापर युग में इसी कथा को ब्रह्माजी ने मनु को सुनाया था । वही कथा हम आप लोगों को सुना रहे हैं ।

ब्रह्माजी बोले—हे तात ! युग के बदलने पर ब्राह्मणों का तेज और वैभव कम हो जाता है, क्योंकि युग दोष के कारण सभी ब्रह्माणादि वर्णों के तेज और वैभव कम हो जाते हैं। इस तरह सतयुग की अपेक्षा लोगों के पराक्रम, तेज, वैभव बल, वाक्य-ये सभी दस हजारवें भाग में बचे रहते हैं। और अन्त में सब एक साथ नष्ट हो जाते हैं वेदों के नाश होने पर यज्ञ का भी नाश हो जाता है । इसके बाद यज्ञों का नाश होने पर देवों का भी नाश हो जाता है और जिससे सभी का नाश हो जाता है। इस युग में परम तपस्वी पराशर मुनिके पुत्र वेदव्यास व्दैपायनजीने ब्रह्माजीकी आज्ञानुसार इस वेद का हिस्सा किया ये व्दैपायन व्यास जी भगवान विष्णु के अंश माने जाते हैं। व्यासजी ने वेद का प्रचार करने के लिये अपने मुख्य चार शिष्य बनाये, जिनके नाम ये हैं—जैमिनी, सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल थे। इनके एक पाँचवें लोमहर्षण नाम के शिष्य और थे परम तेजस्वी भगवान व्यास ने अपने शिष्य ब्राह्मण पैल को ऋग्वेद का ज्ञाता पंडित बनाया, वैशम्पायन शिष्य को यजुर्वेद का ज्ञाता बनाया, अपने तीसरे शिष्य जैमिनी को साम वेद का ज्ञाता पंडित बनाया, और अपने चौथे शिष्य ऋषिवर्य्य सुमन्तु को अथर्ववेद का ज्ञाता बनाया। इतिहास और पुराण की परिभाषा के लिये उन्होंने मुझे नियुक्त किया। ये ही ऋषिगण वेद की साखा के पृवर्तक कहे गये है। अपने ज्ञान के घमण्ड से गर्वित होकर शाकल्य वेद मित्र नाम का ब्राह्मण राजा जनक के यज्ञ में नष्ट हो गये।

शांशपायन जी बोले—हे सूतजी ! राजा जनक के अश्वमेध यज्ञ में क्यों उपद्रव हुआ, और वे मुनि किस प्रकार अपने गर्व के कारण मृत्यु को प्राप्त हुये। आप हम सबको ये बातें विस्तार पूर्वक बताइये।

सूत जी ने कहा—हे ऋषियो ! राजा जनक के अश्व मेध यज्ञ में बहुत देव, ऋषि एकत्रित हुये थे, बहुत से देशों से हजारों ऋषि मुनि यज्ञ के दर्शन करनेकी इच्छा से आ आ कर इकट्ठे हो गये। सारे जनसमूह को देख कर राजा जनक के मन में यह इच्छा हुई कि इन ब्राह्मणों में सबसे उत्तम और श्रेष्ठ कौन है ! यह बात सोच कर राजा ने एक तरकीब सोची और उन्होने एक हजार गायें, एक हजार से अधिक सोना बहुत से गाँव, कीमती रत्न और सेवकों को साथ लेकर मुनियों से कहा कि हे श्रेष्ठ पवित्र ऋषियो ! मैं आप सबों को सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। आप सब लोगों में जो सर्व श्रेष्ठ हों, वे मेरे इस लाये हुये धन को स्वीकर करें। कारण कि ब्राह्मण लोग अपनी विद्या के धनी होते हैं। उनकी विद्वता का परिचय विद्या से ही होता है। राजा जनक की ऐसी बातें सुनकर सभी ब्राह्मण लोग आपस में एक दूसरे को वाद विवाद के लिये पुकारने लगे, सभी मनुष्य उस राजा जनक की धन की इच्छा करने लगे। वे सभी अपने अपने मन में सोचने लगेकि यह धन हमारा है और इसी प्रकार उन ऋषिगों में उन धन राशि के लोभ के कारण आपस में तरह तरह के उपद्रव खड़े हो गये। उसी समय परम तेजस्वी ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ महान ऋषि याज्ञवल्क्य नाम के एक दूसरे ऋषि वहाँ आये, वे ऋषि ब्रह्माजी के अंग से समुन्नत उत्पन्न हुये थे, वे अपने शिष्यों से बोले कि अरे तुम सब इस धन को उठालो। हे वत्स तुम सब धन को उठा कर घर ले चलो, अरे यह सब हमारे ही हैं इसमें भ्रम मत करो। मैं ही सब ब्राह्मणों में श्रेष्ठ और विद्वान हूँ मेरे समान प्रवक्ता यहाँ कोई नहीं है याज्ञवल्क्य जी के ऐसे शब्द सुनकर उस यज्ञ में आये हुये सभी ऋषि वृन्द क्रोधित हो गये, फिर याज्ञवल्क्य हँसकर बोले कि हे सत्यवादी ब्राह्मणो आप हमारे ऊपर क्रुद्ध न होइये, मैं सत्य बोल रहा हूँ आप सब लोग सलाह करके निश्चिय कीजिये। इसके बाद वहाँ और अनेक तरह के उपद्रव खड़े हो गये। उस महान बाद विवद में एक तरफ सभी ऋषि समूह और दूसरी तरस सिर्फ अकेले

याज्ञवल्क्य थे। याज्ञवल्क्य जी ने सभी ऋषियों से एक एक करके प्रश्न पूछे किन्तु किसी ने भी ठीक उत्तर नहीं दिया। तब परम तेजस्वी रिषि याज्ञवल्क्य ने सभी रिषियों को हरा कर शाकल्य नामके रिषि से कहा कि क्या विचार कर रहे हो, शीघ्र बोलो चुप क्यों पड़े हो। याज्ञवल्क्य के इस प्रकार अपमान करने पर शाकल्य का मुख और नेत्र क्रोध से लाल होकर सभी ऋषियों के पास ही उन्होने कठोर शब्दों में कहा कि हे याज्ञवल्क्य! तुम हम सभी रिषियों को हराकर सभी मूल्यवान धन लेना चाहते हो। शाकल्य के इस तरह कहने पर याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि विद्वान पुरुषों की परीक्षा विद्या से होती है। ब्राह्मण लोग अपनी इच्छा के अनुकुल प्रश्न करते हैं। अतः मैंने भी अपनी इच्छा से तुम लोगों से प्रश्न किया है। राजा जनक का भी यही मत था कि जो पुरुष विद्या में सर्व श्रेष्ठ सिद्ध हो, वही पूज्य है। इसीलिये मैंने यह धन लिया है। तब शाकल्य मुनि ने क्रोध में आकर याज्ञवल्क्य जी से एक हजार प्रश्न किये, जिनमें कि सभी का उत्तर याज्ञवल्क्य जी ने शीघ्र ही दे दिया, तब शाकल्य को चुप होना पड़ा उन्हें चुप देख कर याज्ञवल्क्य जी बोले कि हे शाकल्य तुम मेरे एक प्रश्न का उत्तर दो, लेकिन प्रश्न के उत्तर से पहले शर्त यह है कि यदि तुम ठीक उत्तर न दे सकोगे तो तुम मर जाओगे। अति गर्वीले शाकल्य की बुद्धि में नहीं आया और वे शीघ्र ही मर गये। इस महान द्रव्य के पीछे और रिषियों और याज्ञवल्क्य जी में बहुत वाद विवाद हुआ लेकिन अन्त में सभी को हरा कर सम्पूर्ण धन राशि अपने शिष्यों के साथ अपने घर ले गये। परम बुद्धिमान, पदों के अर्थों को जानने वाले विश्वर्य्य वेदमित्र शाकल्य पाँच संहिताओं का प्रणयन किया था, उनके पाँच शिष्य थे। शाकपर्ण रथीतर ने तीन संहिताओं का प्रणयन किया उनके चार ब्राह्मण शिष्य थे। शाकल्य के मरने के बाद सभी ब्राह्मण रिषियों को ब्रह्महत्या का पाप लगा, और वे अति चिन्तित होकर ब्रह्माजी के पास गये, तब ब्रह्मा जी ने उनकी इच्छा समझ कर उन्हें पवनपुर भेज दिया और कहा कि तुम लोग

वहाँ जाओ तुम्हारे सब के पाप नष्ट हो जायेंगे। वहाँ पर बारहों सूर्य, वालुकेश्वर, ग्यारह रुद्र और वायु पुत्र को प्रणाम करके तथा चारों कुण्डों में स्नान करके तुम्हारे सब पाप नष्ट हो जायेंगे। ब्रह्मा जी की इस प्रकार बातें सुनकर सभी लोग वहाँ जाकर स्नानादि करके वायु पुत्र को प्रणाम करके सभी अपने पापों से छूट गये। उसी समय से वह वायु पुर नामक स्थान पापों को नष्ट करने वाला तीर्थ समझे जाना लगा है। उसका वायु पुर को पूर्वकाल में वायु देव ने बनवाया था। जिस समय अंजनि के गर्भ से पैदा होने वाले पवन पुत्र हनुमान उत्पन्न हुये थे, उसी समय वायु देव ने उसको बनवाया था। उस पुर में ब्रह्मणों का ही शासन अधिक है। गौ हत्या करने वाला मदिरा पीने वाला दूसरों की स्त्री को चुराने वाला इत्यादि ऐसे पापों के करने वालों के पाप उस वायुपुर नाम के तीर्थ के स्नान और प्रणाम करने से छूट जाते हैं॥

[श्री वायु महापुराण का महास्थान तीर्थ वेद शाखा प्रणयन नामका साठवाँ अध्याय समाप्त]

इकसठवाँ अध्याय

(प्रजापति के वंश का वर्णन)

ऋषि बोले—भारद्वाज, याज्ञवल्क्यर्जा, गालीक, सालीक, बुद्धिमान शतबलाक, नैगम, इत्यादि इन रिषियों ने तीन संहिताओं को बनाया था। रथीतर ने जो संहिता बनाई थी वह चौथी संहिता थी, उन रथीतर रिषि के तीन विद्वान पंडित शिष्य बने थे उन रिषियों के ये नाम थे। नन्दायनीय, पन्नगारि, प्रतापी आर्यव नाम के थे। ये तीनों शिष्य बहुत विद्वान और संहिताओं के पारगामी विद्वान पंडित थे, अतः इन्होने संहिताओं का विस्तार से वर्णन किया था।

यजुर्वेद की छियासी संहिताओं का वैशम्पायन जी ने वर्णन किया है। वैशम्पायन जी ने उन संहिताओं की शिक्षा अपने पूरे शिष्यों को दी और उन शिष्यों ने वह दीक्षा ग्रहण की। याज्ञवल्क्य

जी ने ही उन की शिक्षा ग्रहण नहीं की, फिर वे भी छियासी संहिताओं की रचना करने वाले पंडित हुये थे। सभी शिष्यों में इस तरह तीन भेद माने जाते हैं। नौं भेद से मिली संहिताओं के भी तीन मुख्य भेद माने जाते हैं। उनमें से भी उत्तर देश वालों को श्यामायनि और मध्य देश वालों को आरुणि और त्रयोदश्यादि, पूर्वी देश वालों में आलम्बि मुख्य माने जाते हैं। ये सभी संहिता के जानने वाले ब्राह्मण लोग चरक नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋषियों ने इस प्रकार की बात सुनकर सूत जी से कहा ये ऋषि किस कारण से चरक नाम से प्रसिद्ध हुये उन्होने ऐसे कौन से पुण्य कार्य किये थे। अब आप हमको वह कथा बताइये जिस प्रकार उन अध्वर्युगणों को चरकत्व प्राप्त हुआ था।

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! पुराने समय में एक बार सभी ऋषि मिल कर सुमेरु पर्वत पर जाकर सब सम्मति के लिये इकट्ठे हुये, और उन्होंने यह घोषणा की, कि जो ब्राह्मण सात रात के बीच में हमारी इस सम्मति के लिये नहीं आयगा, उसे ब्रह्म हत्या का पाप लगेगा, ऐसा सुनकर सभी ऋषि ब्राह्मण तो वहाँ आ गये लेकिन वैशम्पायन जी नहीं आये, अतः उनको ब्राह्मणों के कहे अनुसार ब्रह्म हत्या का पाप लगा, तब उन्होने अपने शिष्यों से कहा कि तुम सब मिल कर मेरे इस ब्रह्म हत्या के पाप को भोगो। आप सब लोग बताइये कि क्या मेरी यह बात सुख कर नहीं है।

याज्ञवल्क्य जी बोले—मैं इस ब्रह्म हत्या के पाप को भोगूंगा, आपके साथ ये सभी मुनि गण रहें, मैं अपनी तपस्या के द्वारा इस ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाऊँगा। याज्ञवल्क्य जी की ऐसी वाणी सुन कर वैशम्पायन जी क्रोधित होकर बोले-तुमने जो कुछ पढ़ा है वह सब मुझ को वापस लौटा दो। वैशम्पायन जी के इस तरह कहने पर ब्रह्मणों में श्रेष्ठ ऋषि याज्ञवल्क्य ने वमन के द्वारा रुधिर से भीगे हुये सम्पूर्ण वेद को मूर्तरूप में गुरू के पास वापस कर दिया इसके बाद उन्होने ध्यान चिन्तन करके सूर्य की आराधना की, उस समय

आकश मण्डल में जितनी ऊपर सूर्य ब्रह्मरूप में स्थित थे, उतने ही ऊपर जाकर यजुर्वेद सूर्य मण्डल में आश्रय लेने लगा। उनसे सन्तुष्ट होकर मार्तण्ड सूर्य देव ने समस्त यजुर्वेद याज्ञवल्क्य जी को प्रदान कर दिया, जिन वैशम्पायन के शिष्यों ने उनके साथ ब्रह्महत्या का अनुभव किया था वे सभी चरक नाम से प्रसिद्ध हुये। जैमिनी ने अपने पुत्र सुमन्तु को सम्पूर्ण यजुर्वेद का अध्ययन कराया था, वैभवशाली सुमन्तु ने अपने पुत्र सुत्वा को उसे पढ़ाया, फिर प्रतापी सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को यजुर्वेद की शिक्षा दी, फिर सुकर्मा ने इन हजार संहिताओं को थोड़े ही समय में अपने तेजस्वी एक हजार शिष्यों को इसकी शिक्षा दी। लेकिन अनाध्याय के दिनों में अध्ययन करने से इन्द्र ने उन सभी शिष्यों को मार डाला, जिससे सुकर्मा बहुत दुखी हुये और दुखी होकर मरने के लिये तैय्यार हो गये। इस प्रकार सुकर्मा को क्रोधित होते देख कर इन्द्र ने उन्हें फिर वरदान दिया कि तुम्हारे अग्नि के समान दो प्रतापी शिष्य होंगे। हेश्रेष्ठ ब्राह्मण! आपके वे दोनों शिष्य बहुत विद्वान होंगे। और इन एक हजार संहिताओं का ज्ञान अध्ययन उनको थोड़े ही दिन में हो जायेगा। इतना कह कर देवराज इन्द्र वहीं पर अन्तर्ध्यान हो गये। उन सुकर्मा के दोनों शिष्यों के ये नाम हैं—पौष्य जी, और हिरण्नाम कौशिका थे। पौष्यञ्जी ने अपने पाँच सौ शिष्यों को संहिताओं का अध्ययन कराया। पौष्यञ्जी के वे सभी शिष्य उदीप के नाम से प्रसिद्ध थे। राजा कौशिल्य ने भी अपने पाँच सौ प्रतापी शिष्यों को पाँच सौ संहिताओं का अध्ययन कराया। तपस्वी श्रंगपुत्र ने तीन संहिताओं का अध्ययन न किया। लांगलि और शालिहोत्र ने छः छः संहिताओं का अध्ययन किया। हिरण्यनाम ने चौबीस संहिताओं का अध्ययन किया है। शांशपायनजी संहिता को छोड़ कर सभी वेद शाखाओं में लोमहर्षण जी की शाखा ही मुख्य है। उसके बाद कश्यप की संहिता मुख्य मानी गयी है। तीसरे स्थान पर सावीर्णक की संहिता मानी गयी है ये संहिता यजुर्वेद की मानी गयी हैं। इन सब

शाखाओं के अलावा शांशपायन जी की संहिता अर्थ सम्बन्धी है। वे सब आठ हजार छः सौ ऋचायें हैं। चौदह विद्या होती हैं। मीमांसा, न्याय, धर्म शास्त्र, पुराण इन चारों को मिला कर विद्याओं की संख्या अठारह होजाती है। सबसे पहले ब्रह्मर्षि, फिर देवर्षि, फिर राजर्षि को जानना चाहिये, ये तीनों ऋषियों के उत्पत्ति करने वाले हैं। इन्हीं से सब ऋषियों की उत्पत्ति होती है। कश्यप, वशिष्ठ, भृगु अंगिरा और अत्रि इन पांचों गोत्रों में ब्रह्मवादी ऋषियों की उत्पत्ति होती है। वे रिषि ब्रह्मर्षि के नाम से प्रसिद्ध हैं। धर्म, पुलस्त्य, क्रतु, पुलह, प्रत्युष, प्रभासहृत्यादि के पुत्रों को देवर्षि कहते हैं। धर्म के दो पुत्र हैं जिनके नाम नर और नारायण हैं। पुलह के पुत्र का नाम कर्दम रिषि है, और क्रतु के पुत्र बालखिल्य हैं। कश्यपजी के दो पुत्र हैं, पर्वत और नारदजी, प्रत्यूष के पुत्र का नाम अचल है पुलस्त्य के पुत्र का नाम कुबेर है। सतयुग इत्यादि सभी युगों में सबसे पहले पहल महर्षिगण बार-बार वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था करते हैं। त्रेतायुग के आदि काल में फिर रिषिगण इस पृथ्वी पर निम्नरूप से वर्णाश्रम धर्म की फिर व्यवस्था करते हैं। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता और पिता के उत्पन्न होने पर पुत्र इस प्रकार बिना विच्छेद के वे ऋषि युगक्षीण होने तक वर्तमान रहते हैं। गृहस्थाश्रम में रहने वाले अट्ठासी हजार मुनि थे। जब सूर्यदेव उत्तरायण होते हैं उस समय जो मुनिगण पितरों का मार्ग आश्रय लेते हैं और स्त्री के साथ सम्बन्ध रखते तथा अग्निहोत्र के पूजा करने वाले होते हैं, और वे सन्तान उत्पत्ति के लिये बताये गये हैं। जो ऋषि, मुनि सूर्य देव के उत्तरायण होने पर मर कर श्मशान का सहारा लेते हैं, उन मुनियों की संख्या गिनती में अट्ठासी हजार है।

इस तरह मन्वन्तर के आदि में बची हुई प्रजाओं को जो बचे रहते हैं वे शिष्टाचार का अध्ययन करते हैं। उस समय सातों ऋषि, मनु और मनुष्य देवताओं के साथ सृष्टि शुरू करते हैं। इसके बाद त्रेतायुग के शुरू होने पर जब चारों तरफ धर्म की प्रतिष्ठा हो जाती है, तब सबसे पहले देवता फिर मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा रिषियों के

ऋण से, सन्तान उत्पत्ति करके पितरों के ऋण से और यज्ञ से देवों के ऋण से मुक्त हो जाते हैं। वे मनुष्य इस तरह लाख वर्ष तक वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था में लगे रहते हैं।

मन्वन्तर के खत्म हो जाने पर वे सब लोग अपना-अपना स्थान छोड़कर मन्त्रों के प्रभाव से महर्लोक में चले जाते हैं। इन्द्रियों को जीतने वाले वे विकार विहीन ज्ञानी पुरुष महाप्रलय तक स्थिति रहकर मन्वन्तर का बदलना देखते हैं। इसके बाद उन सभी देवों के समाप्त हो जाने पर त्रिलोकी में सब जगत शून्य ही दिखाई पड़ता है तब उस समय वे स्वर्गवासी देव वहां आते हैं। और फिर वे देवता अपने सत्य, बल, ऐश्वर्य से उन स्थानों पर स्थिति रहते हैं। सभी मन्वन्तरों में पहले मन्वन्तर की तरह ही प्रलय काल में निश्चित परिवर्तन के साथ सृष्टि की स्थिति होती है। मन्वन्तरों के खत्म होने पर सभी देव ऋषि, मनुष्य महर्लोक में चले जाते हैं। इसके बाद महर्लोक से जन लोक को जाते हैं फिर तपोलोक को जाते हैं फिर सत्यलोक को चले जाते हैं।

वायुदेव ने जिसका वर्णन किया है, वे ऋषियों के आदर पूर्ण हैं दिव्य दृष्टि सम्पन्न धर्मात्मा मनु के जीवन का वर्णन वायुदेव ने सुनाया है। किसी-किसी जगह पर व्यास की शैली में वर्णन हो चुका है। राजर्षि, देवर्षि, देवता और सर्पों का वर्णन किया है। देवों के देव इन्द्र सातों ऋषि, पितरों, प्रजापतियों के अदलने बदलने से युक्त हैं। गोपनीय परम पवित्र, स्वर्ग को प्राप्त करने वाले पुत्रप्रद और सर्वश्रेष्ठ इस कथा को बड़े-बड़े पर्वों के समय जपना चाहिये। इसके जपने से बुरे सपनों का दीखना बन्द हो जाता है और सुख शान्ति मिलती है। इसके जपने से मनुष्य निरोग होकर दीर्घायु प्राप्त करता है। इस कथा के वर्णन में सभी देवों के चरित्रों का वर्णन है। अच्छी सन्तान की उत्पत्ति का विषय है। इस महापुराण के सुनने और पढ़ने से मनुष्यों को सब सिद्धियां प्राप्त होती हैं। मैंने आप लोगों के स्वायम्भुव मन्वन्तर का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

(श्री वायु महापुराण का प्रजापति के वंश का वर्णन नाम का इक्यहत्तरवां अ० समाप्त)

बासठवाँ अध्याय

(पृथ्वी का दुहा जाना)

शाँशपायन जी बोले—हे सूत जी ! अब आप हमको मन्वन्तरों का क्रमशः और उन मन्वन्तरों में होने वाले देवताओं कावर्णन कीजिये।

सूत जी बोले—अब मैं आपको मन्वन्तरों में होने वाले देवों के विषय में तथा मन्वन्तर का क्रम पूर्वक वर्णन सुनाऊँगा, आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये। मनुओं में सबसे पहले स्वायम्भुव मनु पैदा हुये, इसके बाद स्वारोचिष मनु होते हैं, फिर उनके बाद औत्तम मनु हुये, फिर तामस मनु पैदा हुये, तामस के बाद रैवत मनु का समय आता है रैवत मनु के बाद चाक्षुष मनु का समय आता है। ये छैओं अतीत काल के मनु माने जाते हैं। इन मनुओं के बाद आठ भविष्य काल के मनु माने गये हैं। अब में आपसे वैवस्वत मनु के वर्णन के साथ साथ इन चार मन्वन्तरों का वर्णन भी करूंगा। इसके पहले आप बीते हुये पाँच मनुओं का वर्णन सुनिये। स्वारोचिष मन्वन्तरों में तुषित तथा विद्वान पारावत नाम के दो देवगण थे, दोनों देवगण स्वारोचिष मन्वन्तर के समय के हैं। तुषित के गर्भ से समुत्पन्न स्वारोचित क्रतु के पुत्र पारावत और शिष्ट हैं। वे बारह बारह गणों के रूप में माने जाते है। स्वारोचिष मन्वन्तर में छन्दज देवगण चौबीस माने जाते हैं। ये सभी क्रतु के पुत्र हैं और अमृत के पीने वाले देवगण हैं। इनमें बारह अज के नाम से प्रसिद्ध हैं और बारह तुषित के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रचेता विश्वदेव, समज्ञ, विश्रुत, अरितर्छन इत्यादि बहुत से पराक्रमी पारावत के गण माने हैं। ये सभी स्वारोचिष मन्वन्तर के देवगण माने जाते थे, ये सभी चौबीस देवगण उस समय सोम का पान करते थे। इन देवों के स्वामी देवराज इन्द्र थे। स्वारोचिष मनु के वंश की वृद्धि करने वाले अनगिनत पुत्रों का पुराणों में वर्णन किया गया है। प्रत्येक मन्वन्तर के सातों ऋषि, मनु और देवगण और पितर ये चार मूल माने जाते हैं। मनु से क्षत्रिय, वैश्य, ब्राह्मण और सातों ऋषि की उत्पत्ति हुई है।

जिस तरह स्वायम्भुव मनु ने सृष्टि पैदा की है उसी प्रकार स्वारोचिष मनु ने भी सृष्टि पैदा की है। तीसरे औत्तम मनु के मन्वन्तर में पाँच देवगण माने जाते हैं। इन पांचों देवगणों में हर एक की बारह की है। ये बारह सत्य गण के नाम से पुकारे जाते हैं। यज्ञ करने वाले बारह देवगण दूसरे माने जाते हैं। ये मैंने आपसे तीसरे औत्तम मनु के मन्वन्तर का संक्षेप में वर्णन किया है। जिस तरह स्वारोचिष मनु के मन्वन्तर में सृष्टि पैदा हुई उसी तरह की सृष्टि औत्तम मनु के मन्वन्तर में भी पैदा हुई है। अब मैं आपसे चौथे तामस मनु के मन्वन्तर का वर्णन करूंगा। तामस मन्वन्तर में सत्य, हरि, स्वरूप सुधी कामके चार देवगण माने जाते थे। इनमें प्रत्येक गणों के पच्चीस देवता थे तामस मनु के मन्वन्तर में पुलस्त्य के पुत्र पैदा हुये थे। सत्य, प्राण, परम श्रेष्ट मुनि थे उनके एक सौ इन्द्रियां थी, उस समय वे ही देवगण इन्द्रिय समूह माने जाते थे। उनका प्रतापी शिवि देवता था वही देवता उस मन्वन्तर का इन्द्र माना जाता था। इसी प्रकार चौथे चारिष्ण नाम के मनु के मन्वन्तर में वशिष्ठ प्रजापति के अमृतात्मा, आभूतरज, विकुण्ठ और सुमेधा नाम के चार देवगण थे, इन चारों देवगणों की सख्या में चौदह देव गण माने जाते थे। ये कुल देवगण चारिष्ण नाम के मन्वन्तर में अमृता नाम से प्रसिद्ध होते हैं। अब पांचवे मन्वन्तर में सभी देव गणों में श्रेष्ठ विभु नाम का इन्द्र हुआ था, ये सातों ऋषि पांचवे रैवत नाम के मनु के मन्वन्तर में हुये थे, ये चारिष्णव के पुत्र कहे जाते थे। अब मैं आपसे पांचों मनु के मन्वन्तरों का वर्णन संक्षेप कर चुका हूँ।

स्वारोचिष, औत्तम, तामस और रैवत–ये चारों मनु राजा प्रिय व्रत के वंश में पैदा हुये थे। इनके बाद मैं आपसे छठे चाक्षुष मनु के मन्वन्तर का वर्णन करूंगा। आक्ष, प्रसूत, भाव्य पृथुक, लेखा ये पांचों उस मन्वन्तर के देव गण कहे जाते हैं। यह सृष्टि देवों की माताओं के नाम से प्रसिद्ध है।

ये सभी देवता प्रजापति अत्रि के पुत्र आरण्य ऋषि जी के नाती माने जाते हैं। इन पांचों देव गणों के हर एक के आठ आठ देवों की संख्या मानी जाती है। ये सभी आठ आठ, देव गण आद्य नाम से पुकारे जाते हैं। श्येनभद्र, पश्य, सुमना सुवेता, रेवत, सुप्रचेत । इत्यादिप्रसूति केपत्र माने जाते हैं और देव गण-विजय, सुजय, मन उद्यान, सुमति, सुपरि, विसात और अर्थपीतइत्यादि भाव्य के पुत्र माने जाते हैं। और ये देव गण अजिष्ट, शाक्यन, वानपृष्ठ, शांकर, विष्णु, विजय इत्यादि और देवगण पृथुक के पुत्र में ने जाते हैं।

अब मैं आपसे लेखा के पुत्रों का वर्णन करूँगा। आप सब सुनिये। मनोजव, प्रचेता, अयन, बृहस्पति, वात, ध्रुवक्षिति इत्यादि ये लेखा के पुत्र माने जाते हैं। उस छठे मन्वन्तर के देवगणों के स्वामी मनोजव इन्द्र था। भृगु गोत्रोत्पन्न, उन्नत, अंगिरा के पुत्र हीवध्मान, सुधामा, वशिष्ठ, गोत्रोत्पन्न विरज, पुलस्त्य के गोत्र के अतिप्रान, पुलह के गोत्रों से उत्पन्न सहिष्णु इत्यादि ये ऋषि चाक्षुष मन्वन्तर के सप्त ऋषि माने जाते हैं, और दूसरे महर्षि चाक्षुष मन्वतर के दसवें पुत्र माने जाते हैं। ये सभी पुत्र नावद्वेलय के नाम से पुकारे जाते हैं।

ऋषि बोले—हे सूतजी ! जो मनुष्य चाक्षुष मनु के पुत्र कश्यप ऋषि के गोत्र में पैदा हुये हैं, हमें उनके विषय में भी आप कुछ बताइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! अब मैं आपसे चाक्षुष मनु का वंश वर्णन करूँगा, आप सब सुनिये। चाक्षुष मनु के वंश में वेन राजा का एक प्रतापी पुत्र राजा पृथु हुआ था। राजा पृथु के अलावा और भी दूसरे प्रजापति गण पैदा हुये थे, उन प्रजापतियों में प्राचेतस दक्ष नाम के प्रजापति थे। अत्रि प्रजापति के उत्तानपाद नाम का पुत्र हुआ। दक्ष प्रजापति का पुत्र राजा था। स्वायम्भुव मनु ने उसे अत्रि को सौंप

दिया। धर्म के सुनीति नाम की एक धर्मज्ञा कन्या थी उस धर्मज्ञा कन्या से राजा उत्तानपाद ने ध्रुव नाम के पुत्र पैदा किये। माता सुनीति धर्मज्ञा, धर्म परायण ध्रुव की कल्याणी माता थी, वह सुन्दर हँसने वाली धर्म की लक्ष्मी नाम की पत्नी में उत्पन्न हुई थी। राजा उत्तानपाद ने अपनी रानी से ध्रुव, कीर्तिमान्, अयस्मान और वसु नामके पुत्रों को और दो सुन्दर कन्याओं को पैदा किया परम प्रतापी ध्रुव ने विपुल यश की इच्छा से दस हजार वर्षों तक घोर कठिन तपस्या निराहार रह कर जंगल में की थी। स्वायम्भुव मनु के नाती जब त्रेतायुग के प्रथम चरण में भूख, प्यास से रहित होकर योग-बल से आत्मा को स्ववश रखकर कठोर तप में लीन थे, तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उन्हें आकाश के तारागणों में परम श्रेष्ठ स्थान दिया वह स्थान महाप्रलय तक स्थाई रहने वाला था, अस्त और उदय से रहित वह स्थान हर समय एक सा ही रहता है। ध्रुव की ऐसी परम उन्नति देख कर देवता, असुर और दानवों के आचार्य शुक्राचार्यजी ने उनकी बहुत प्रसिद्धि की, उनकी घोर तपस्या को धन्य है और उनके सत्कार्य हवनादि धन्य हैं जिनके प्रताप से सातों ऋषियों के ऊपर निश्चल पद को जिसने प्राप्त किया है। बहुत वैभवशाली भगवान सूर्यदेव भी आकाश मण्डल में ध्रुवजी का सहारा लेते हैं। भूमि ने ध्रुव के संयोग से पुष्टि और भव्य नाम के पुत्रों को पैदा किया, ऐश्वर्य शाली पुष्टि ने अपनी छाया से कहा कि तू स्त्री होजा। उस समय पुष्टि के इस प्रकार करने पर छाया शीघ्र ही सुन्दर गहनों और कपड़ों को पहन कर सब स्त्री अंगों से शोभित होकर स्त्री के रूप में बदल, गई तब उस पुष्टि ने अपनी छाया नाम की पत्नी से प्राचीन गर्भ, वृषक वृक, बृकल, और धृति नाम के पाँच पुत्रों को पैदा किया, जो सभी पुत्र निष्पाप थे। प्राचीन गर्भ ने अपनी सुवर्चा नामकी स्त्री से उदारधी नाम का पुत्र पैदा किया, वह उदारधी नाम का राजा पहले जन्म में देवराज इन्द्र के पद पर नियुक्त था।

उस परम प्रतापी राजा ने एक हजार वर्ष के बीतने पर सिर्फ एक बार भोजन करके एक मन्वन्तर तक इन्द्र के पद को प्राप्त किया था। भद्रा ने उदारधी के संयोग से दिवंजय नाम का पुत्र पैदा किया। इसके बाद वरांगी ने राजा दिवंजय के संयोग से रिपु नाम के पुत्र को पैदा किया, फिर बृहती ने रिपु के संयोग से परम प्रतापी राजा चाक्षुष को पैदा किया, उस चाक्षुष का पुत्र मनु कहलाया, वह मनु ब्राह्मण और क्षत्रियों को पैदा करने वाला हुआ। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! वैशज नाम प्रजापति महात्मा अरराय की नद्वला नामकी कन्या में उस चाक्षुष मनु के संयोग से दस श्रेष्ठ पुत्रों को पैदा किया। उन दस पुत्रों में उरु सबसे बड़े थे, फिर आग्नेयी ने अपने पति उरु के संयोग से अतिशय वीर छः पुत्रों को पैदा किया उन पुत्रों में भी अंग सबसे बड़े पुत्र थे, अंग ने अपनी पत्नी सुनीथा के संयोग से राजावेन को पैदा किया, जब राजा अत्याचारी वेन के अत्याचारों से सब प्रजा में घोर असन्तोष फैल गया तब ऋषियों ने संतान की उत्पत्ति के लिये उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया, तब उस समय वेन के हाथों के मथने पर परम प्रतापी राजा पृथु पैदा हुये। राजा वेन का पुत्र पृथु अपने असहाय तेज से जलते हुये की तरह धनुष और कवच धारण करके प्रकट हुये। उन्होंने अपने पराक्रम और तेज से सारे लोक की रक्षा की। उस समय सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल पर राज सूर्य यज्ञ के सभी राजओं में सबसे श्रेष्ठ और वीर पराक्रमी पृथु ही था। राजा पृथु की स्तुति करने के लिये दो सूत मागधजन उस समय वहाँ पैदा हुये। उस श्रेष्ठ राजा पृथु ने ऋषि, देवों, पितरों, यक्षों, गन्धर्वों सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों, पर्वतों के समूहों के साथ गौ रूपी पृथ्वी से अन्न राशियों का दोहन किया, दोहन के समय अलग-अलग पात्रों में पृथ्वी ने सभी दुहने वालों को क्षीर प्रदान किया, उस क्षीर से सम्पूर्ण लोक की रक्षा हुई।

ऋषियों नें कहा—हे सूत जी! आप हमको राजा प्रथु के जन्म का हाल विस्तार पूर्वक बताइये, और उन्होंनें प्राचीन काल में किस

प्रकार पृथ्वी का दोहन किया। देवताओं, नागों, ब्रह्मर्षियों, यक्षों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ जिस प्रकार और जिस विधि विधान से पृथ्वी का दोहन किया, उनके जो जो पात्र हुये, उनमें कौन दुहने वाला था, उससे किस तरह का दूध हुआ और कौन कौन बछड़े हुये। इन सबका हमको विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये इनको हमें जानने की बड़ी इच्छा है। इसके साथ ही जिस प्रकार राजा वेन का हाथ मथा गया तथा महर्षियों ने जिस कारण से क्रोध करके उसको मृत्यु का शाप दिया है। वह सभी हमको बतलाने की कृपा करिये।

सूत जी बोले— हे विप्रो! अब मैं वेन के पुत्र राजा पृथु के जन्म का वृत्तान्त कहता हूँ सो आप लोग एकाग्र और शान्त चित्त होकर सुनिये। इस पवित्र जीवन चरित्र को कभी भी किसी अपवित्र, अशिष्य। अहितकारी एवं व्रतादि से उन्मुख रहने वाले पुरुष को नहीं कहना चाहिये। ऋषियों के द्वारा कही गई यह कथा, यश को बढ़ाने वाली, आयु देने वाली, वेद सम्मत और अत्यन्त गोपनीय है। जो अनसूयक अर्थात किसी की निन्दा न करने वाला, इसे सुनाते हैं। यथा ब्राह्मणों को प्रणाम करके औरों को सुनाते हैं। उनको अपने किये हुये का शोच नहीं करना पड़ता।

वह राजा अत्रि ऋषि के समान महान शोभा वाला और सब प्रकार से धर्म का रक्षक और महान तेजस्वी था। महर्षि आत्रि के वंश में एक अंग नाम के प्रजापति थे वेन उनका ही पुत्र था। वेन कोई परम धार्मिक राजा नहीं था। वेन की माता सुनीता मृत्यु की पुत्री थी इस कारण उसमें नाना के दोषों की प्रधानता थी इससे वह क्रूर था। धर्म को पीछे रख कर अपनी कामनाओं से घिर कर वह लोभी बन गया था। उसने धर्म विरुद्ध मतों की स्थापना की है। वह अधर्मी वेद शास्त्रों का उल्लंघन करने लगा था। उसके राज में प्रजा स्वाध्याय और वशट्कार से हीन हो गई। देवता यज्ञीत द्रव्यों को भक्षण करने तथा सोमरस पीने को तरसने लगे। वेन प्रजापति के राजत्वकाल में प्रजा को यह आदेश था कि कोई भी यज्ञ नहीं कर सकता है और

न कोई हवन ही कर सकता है। यज्ञों में ब्राह्मण लोग एकमात्र मेरी पूजा करें मेरे लिये ही, मेरे सम्मान में ही यज्ञ की क्रिया करें। इस प्राचीन मर्यादा का उलंघन करके अनुचित ढंग से पूजा कराने वाले अत्याचारी वेन से मरीचि आदि ऋषियों ने जाकर कहा–हे राजा वेन हम लोग अनेक वर्षों तक आपको धर्म का उपदेश तथा दीक्षा देंगे। अतः तुम अब अधर्म करना छोड़ दो। जो तुम कार्य करते हो वह सनातन धर्म नहीं है तुमने अपने पिता की मृत्यु के बाद यह प्रतिज्ञा की थी कि "मैं प्रजा का पालन करूँगा।" यह ऋषियों की बातें सुनकर अधर्मी वेन ने हँसकर कहा–इस संसार में धर्म बनाने वाला दूसरा मेरे सिवा और कौन है? मैं किसकी बातें सुनूँ। इस जगत में पराक्रम, शास्त्र ज्ञान, तपस्या और सैन्य साधनों में मेरे समान भला इस पृथ्वी पर और कौन है? तुम लोग मुझे सर्व साधन सम्पन्न महात्मा जानो। मुझको सभी धर्मों और लोगों की उत्पत्ति करने वाला समझो। मैं अपनी इच्छा से ही इस पृथ्वी को जला दूँ या जल में डुबोदूँ। अथवा इसकी नई सृष्टि करदूँ या इसे निगल जाऊँ। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है।

इस प्रकार उसे अनेक प्रकार समझाने बुझाने पर भी वेन ठीक रास्ते पर नहीं लाया जा सका तो उन महर्षिगों ने क्रुद्ध होकर उसको पकड़कर उसके बांये हाथ का बड़े क्रोध से मन्थन किया। हे ब्राह्मणो! मन्थन करने पर उसके बांये हाथ से एक अल्पकाम कृष्णवर्ण का चेष्टा में दीन हीन पुरुष पहिले उत्पन्न हुआ। वह अत्यन्त भयभीत और हाथ जोड़े हुए था। उसको ऐसा भयभीत देखकर ऋषियों ने कहा 'निषीद' (बैठ जाओ) इस कारण वह पुरुष निषाद वंश का कर्त्ता हुआ। उसने वेन के पापों से उत्पन्न धीवरों को पैदा किया। विन्ध्य पर्वत पर, म्लेच्छ, खस, म्लेच्छ, जाति के अधर्मी लोग उसी वेन के पाप से उत्पन्न हुए हैं। इसके बाद ऋषियों ने क्रुद्ध होकर वेन के दाहिने हाथ का बड़े वेग से मन्थन किया। तब उस हाथ के शीघ्रता से घर्षण करने पर 'पृथु' उत्पन्न हुआ। पृथु का अर्थ है 'करतल'। वह अपने शरीर की कान्ति से साक्षात् अग्नि के समान चमक रहा था सर्वप्रथम उसने तेज टंकार करने वाले 'आजगव' नामक महा धनुष को

और बाणों को प्रजा की रक्षा के लिये उठाकर अत्यन्त चमकते हुये कवच को धारण किया। उसके पैदा होने पर सभी जीव अति प्रसन्न हुये। सभी नदी तथा समुद्र गण बहुमूल्य रत्नादि और पवित्र जल लेकर उसके अभिषेक को आये। अंगगरा आदि ऋषियों के साथ ब्रह्मा जी ने आकर पृथु का अभिषेक किया इससे पृथु का प्रताप और बढ़ गया। पिता से अप्रसन्न रहने वाली प्रजा को अति प्रसन्न किया। प्रजा पर अधिक अनुराग रखने के कारण उसका नाम 'राजा' पड़ा। राज में सर्वत्र आनन्द होने लगा।

तभी पितामह के पवित्र महायज्ञ का आरम्भ हुआ। जिसमें उसी दिन सूती के गर्भ से सूत जी का जन्म हुआ। उसी महायज्ञ में परम बुद्धिमान मागध भी उत्पन्न हुये। जिस समय सामवेद का गायन हो रहा था उस समय असावधानी से विश्वदेव के स्त्रुक और पात्र में इन्द्र की हवि के साथ बृहस्पति को हवि मिल गई और देवताओं ने उस हवि को इन्द्र के लिये हवन किया इससे सूत जी की उत्पत्ति हुई। सामगाम के समय वे मागध कहलाये। इस असावधानी के कारण नीच ऊँच के पारस्परिक संयोग से पापाचरण माना गया इस कारण मागध और सूत के वर्णों में विकार आया। हीन योनि क्षत्रियों की हवि के साथ ब्राह्मण की हवि का यत संयोग हुआ इससे पूर्व जाति (ब्राह्मण) के साधर्म्य के कारण सूत उसी के (ब्राह्मणों) के समान धर्म वाले कहे गये। सूत का मध्यम धर्म क्षत्रियों के समान जीविका करना हुआ रथ, हाथियों का परिचालन और औषधि आदि निन्द्य कामों को करने लगे।

देवता और ऋषियों ने महाराजाधिराज प्रथु के लिये उन दोनों सूत मागधों को बुला कर कहा कि तुम राजा को प्रसन्न करो. इनकी स्तुति करो, इनके योग्य जो भी कार्य करने पड़े वह सब करो। यह तुम्हारी स्तुति करने के सर्वथा योग्य हैं। सूत मागध ने कहा कि हम ऐसा ही करेंगे परन्तु हमें राजा के कार्यों और लक्षण का ज्ञान नहीं है न उनके यश का हमें कुछ ज्ञान है। ऋषियों ने कहा–कि इनके द्वारा जो भविष्य काल के कार्य हैं उन्हीं का ध्यान करते हुये इनकी स्तुति करो। राजा प्रथु धार्मिक, सत्यवादी, और युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले तथा रोजाना धर्म पूर्वक दान करने वाले हैं।

राजा पृथु ने सभी काम रीज और सदाचार पूर्वक किया था । सूत और मागधों ने राजा पृथु की स्तुति की । फिर स्तुति करने के बाद राजा पृथु ने उन दोनों सूत मागधों को मगध प्रदेश का राज्य दे दिया । उसी समय से सूत मागध राजाओं की स्तुति गान किया करते हैं और उसी समय से ये सूत मागध और बन्दीजन, अपने शुभ वचनों और आशीर्वादों से राजाओं को सुबह भोर होते ही जगाते हैं ।

सभी ऋषियों ने खुश होकर अपनी प्रजाओं से कहा कि यह पृथु तुम्हारे राजा हैं और यह तुम्हारे खाने पीने की व्यवस्था करेंगे। ऋषियों के ऐसे कहने पर सभी जनता राजा से कहने लगी कि हे राजन् ! आप हमारे खाने पीने की व्यवस्था कीजिये । प्रजा के ऐसे शब्द सुनने से राजा धनुष बाण लेकर पृथ्वी को भयभीत करने लगा तब वह भयभीता पृथ्वी गौ का रूप धारण करके ब्रह्माजी की शरण में गई, लेकिन राजा पृथु भी वहीं पर पृथ्वी के सामने धनुष बाण लेकर खड़े थे, पृथ्वी ने सामने पृथु को देखा पृथु अपने तेज से उस समत अति शोभित होकर चमचमा रहे थे । उस समय पृथ्वी ने अपने दुख से छुटकारा न पाते देखकर और देवों से भी न हारने वाले परम तपस्वी तथा अपने कर्म से न डिगने वाले राजा पृथु की शरण में आयी और वह गौ रूपी पृथ्वी ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे राजन् ! तुम इतने तपस्वी और धर्मात्मा हो, क्या तुम्हें एक स्त्री के मारने से पाप नहीं लगेगा, और तुम मुझे मार कर किस प्रकार प्रजा का पालन करोगे, जब मैं ही नहीं रहूँगी तो अन्न धान किस प्रकार पैदा होंगे। हे राजा ! मेरे अन्दर ही समस्त लोक स्थित हैं । मैं ही पूरे संसार को धारण करती हूं। हे राजा यदि आप प्रजा की भलाई और उनका पालन करना चाहते हैं तो मेरी बात मानिये, और मुझे मत मारिये। आप अपना क्रोध दूर करिये और मैं अन्न के रूप में बदल जाऊँगी, हे राजा कीट पतंग पशु आदि तिर्यक योनि में भी स्त्री के वध करने को पाप समझते हैं आप मेरी बात मान कर अपने धर्म से नीचे न गिरिये। पृथ्वी की इस प्रकार बात सुन कर

राजा पृथु ने अपना क्रोध त्याग कर पृथ्वी से बोले कि यदि एक मनुष्य के मरने से हजारों मनुष्यों के प्राणों की रक्षा होती हो तो उसे पाप नहीं लगता है और यदि हजारों मनुष्यों के मरने से एक मनुष्य बचता है तो उसे भारी पाप लगते हैं। हे पृथ्वी ! मैं सम्पूर्ण प्रजा की भलाई के लिये तुम्हें मार रहा हूं। यदि तू मेरी बात नहीं मानेगी, तो मैं तुझको मार कर यहाँ पर अपना राज्य स्थापित करके पूरी प्रजा का धर्म पूर्वक पालन करूँगा। हे भद्रे ! तू मेरी बात मान कर प्रजाओं का पालन कर और मैं तुझको वरदान देता हूं कि तू मेरी कन्या बन जा। राजा पृथु के ऐसा कहने पर पृथ्वी ने कहा कि हे राजन् ! आप जैसा कहोगे वैसा ही मैं करूँगी। आप मुझको एक बछड़ा सौंप दीजिये मैं अपने मातृक हृदय के वात्सल्य स्नेह के कारण सभी को क्षीर प्रदान करूगी, और आप मुझको चारों तरफ से एकाकार कर दो जिससे कि ये क्षीर सभी को प्राप्त हो सकेगा। इसके बाद राजा पृथु ने भारी भारी पर्वतों को हटा कर चारों तरफ से पृथ्वी को एकाकार कर दिया। बीते हुये मन्वन्तर पृथ्वी पर न कोई नगर बसा था न कोई गाँव था, पृथ्वी कहीं पर विषम, कहीं पर सम होकर अत्यन्त दुर्गम हो रही थी उस समय न अन्न पैदा होता था न कोई व्यापार होता था। वैवस्वत मन्वन्तर में पृथ्वी पर सभी कार्य शुरू होने लगे जिस जगह पृथ्वी पर कोई नहीं था, उस जगह मनुष्य आ आ कर रहने लगे, और पृथ्वी पर सभी चीजें पैदा होने लगीं। पृथ्वी पर नष्ट होकर लुप्त होने वाली औषधियों की राजा प्रथु ने रक्षा की। इसके बाद राजा प्रथु ने चाक्षुष मनु को बछड़ा बना कर पृथ्वी को देकर अपने हाथों से अन्न राशि को पैदा किया। इस प्रकार राजा प्रथु ने गौ रूप धारिणी पृथ्वी से चाक्षुष मनु को बछड़ा बना कर पृथ्वी के पात्रों में अन्न का दोहन किया। जिससे उस सम की प्रजा की जीविका चली ऐसा भी सुना है कि फिर कभी पृथ्वी का दोहन ऋषियों ने भी किया उस समय चन्द्रमा बछड़ा थे और दोहने वाले देव गुरू वृहस्पति थे। दोहनी गायत्री आदिक छन्द बने। उन ऋषियों का क्षीर शाश्वत ब्रह्म

एवं तप था । इसके बाद इन्द्रादिक देवों ने सोने के पात्र में पृथ्वी से अमृत को दुहा । इसी अमृत से इन्द्रादिक देवता जीवित रहते हैं । नागों ने स्तुति करके विष को दुहा। उनमें जमीन को दुहने वाले वासुकि थे । उसके साथ कद्रू के सभी तेजस्वी पुत्र थे ।

इसके बाद वैष्णव नामक यक्ष को बछड़ा बनाकर यक्षों ने जमीन को कच्चे पात्र में दुहा । जिसमें वैश्रवण नामक यक्ष मुख्य था । दुहने वाला मणिवर यक्ष का पिता जतुनाम था । उसी समय जातुधान, राक्षस, पिशाच आदि ने दोहन किया । राक्षसों ने कपाल में अन्तर्धान होकर क्षीर का दोहन किया । पितरों ने चाँदी के पात्रों में जमीन का दोहन किया । उनका अमृत स्वधा हुआ । दुहने वाले अर्यमा नामक पितर और बछड़ा यमराज थे । उस स्वधा रूपी क्षीर से देवताओं की एक माह तक की तृप्ति हो जाती है । गन्धर्व एवं अप्सराओं के समूहों ने कमल के पात्र में चित्ररथ और शुचि को बछड़ा बनाकर जमीन को दुहा । उसमें मुनि का पुत्र विश्वावसु महा तेजस्वी दोहने वाले थे ।

इसके पश्चात पर्वतों ने वसुन्धरा का दोहन किया । उसमें बछड़ा हिमालय और सुमेरु थे दोहन का पात्र पर्वत ही थे और क्षीर रूप में मूर्तिमती औषधित या रत्न प्राप्त हुए । फिर वृक्ष और लताओं ने दोहन का कार्य किया । जिसमें पत्तों के पुरोहों को तोड़ने पर जो दूध निकलता है उसको प्राप्त किया । इस प्रकार सबके मनोरथों को पूर्ण करने वाली, भूतभाविनी, यशवाली वसुन्धरा को धारण करने वाली, पालन और सभी प्रकार के विधान करने वाली जमीन का दोहन राजा पृथु ने लोक कल्याण के लिये किया । यह सुना गया है । इसलिये यह जमीन सम्पूर्ण जीवों की आश्रय और उत्पन्न करने वाली है ।

॥ इति श्री वायु महापुराण का पृथ्वी दोहन नामक ६२ वाँ अध्याय समाप्त ॥

———

तिरेसठवाँ अध्याय

(पृथु वंश का वर्णन)

सूतजी बोले-यह समुद्र तक विस्तार वाली सम्पूर्ण जमीन मेदिनी नाम से विख्यात है। मेदनाम चर्बी का है। अतः चर्बी से उत्पन्न होने के कारण इसे मेदिनी कहा है। वसु अर्थात् धन या अन्न धारण करने के कारण वसुधा नाम से कही जाती है। यही जमीन पूर्वकाल में मधु और केटभ नामक दानवों की चर्बी से आकीर्ण थी। यही कारण है कि समुद्र तक फैली हुई यह जमीन मेदिनी नाम से प्रसिद्ध है। राजा प्रथु की पुत्री होने से इसे जमीन कहा जाता है। परम बुद्धिमान राजा प्रथु के द्वारा यह वसुन्धरा प्रसिद्धि को प्राप्त हुई अनेक भागों में बांटी गई और बड़े बड़े नगर समूहों से युक्त की गई। ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के लोगों से व्याप्त की गई। इस प्रकार श्रेष्ठ राजा बेन का पुत्र प्रथु इसका प्रभावशाली सम्राट था। सभी जीव उसकी पूजा करते थे तथा नमस्कार करते थे। वह ब्रह्म से समुद्रभूत था उसका प्रभाव कभी नष्ट होने वाला नहीं था। अनेक राजा लोग उसको नमस्कार करते थे। उसका प्रभाव कभी नष्ट होने वाला नहीं था। रणभूमि में महान योद्धा लोग उसकी प्रार्थना करते थे। जो वीर पुरुष रणभूमि राजा प्रथु का नाम लेकर जाते हैं वे कल्याण के पात्र और विजयी होते हैं। वह वैश्यों के लिये भी नमस्कार के योग्य हैं क्योंकि उनको भी वे वृत्ति देते हैं।

सर्व प्रथम प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने जमीन का दोहन किया था। उस समय वायु को बछड़ा बनाकर बीजों का दोहन किया गया था। फिर अग्नीध्र ने मनु को बछड़ा बनाकर जमीन को दुहा। फिर स्वारोचिष मन्वन्तर में चैत्र ने मनु को बछड़ा बनाकर इसका दोहन किया। पुनः देवभुज ने भी मनु को बछड़ा बनाकर जमीन को दुहा। और अन्नों का दोहन किया। इसके बाद पांचवे तामस मन्वन्तर में भी वलवन्धु ने तामस मनु

को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन कार्य किया। पुनः पुराण ने चरिष्णव को बछड़ा बनाकर दुहा इसी प्रकार चाक्षुष को, भी पुराणों ने बछड़ा बनाकर पृथ्वी को दुहा। पुनः वैवस्वत मन्वन्तर में वेन के पुत्र पृथु ने इसका दोहन किया जिसका वर्णन मैंने विस्तार से किया।

अब इस राजा पृथु की प्रजाओं के बारे में आप लोग सुनें। राजा पृथु के दो महान बलशाली पुत्रथे एक का नाम था अन्तर्धि और दूसरे का नाम था पाली। इसमें अन्तर्धि के उसकी पत्नी शिखण्डिनी से हविर्धान नामक पुत्र हुआ। आग्नेयी धिषणा ने हविर्धान के संयोग से प्राचीन बर्हिस, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामक छै पुत्र उत्पन्न हुए। परमप्रतापी बर्हिस एक प्रजापति थे। वे अपने बालशस्त्र ज्ञान, तपस्या, पराक्रम आदि से सम्पूर्ण भूमण्डल के एक छत्र सम्राट थे। इस प्रजापति एवं सम्राट ने समुद्र-पुत्री सवर्णा से विवाह किया था। सवर्णा से उसके दस पुत्र हुए। जो सबके सब प्रचेता कहलाते थे और धनुर्वेद के पारंगत थे। उन प्रचेताओं ने दश हजार वर्ष तक समुद्र के जल में शयन कर तप किया उस समय सभी वृक्षों ने बढ़कर सब पृथ्वी को ढक लिया आकाश को छूने लगे इससे प्रजा को महान कष्ट हो रहा था। तब प्रचेताओं ने अपने मुख से वायु और अग्नि को छोड़ा जिन्होंने उन्हें सुखाकर जला डाला। इस प्रकार उन वृक्षों का नाश हो गया।

इसके बाद चन्द्रमा के द्वारा समझाने पर प्रचेताओं ने वृक्षों पर से अपना क्रोध हटा लिया तथा शेष कुछ वृक्षों को जीवित छोड़ दिया। और चन्द्रमा के कहने पर वृक्षों की कन्या मारिषा को उन्होंने धर्म पूर्वक पत्नी बनाया। सभी ने मानसिक संकल्प से मारिषा में गर्भाधान किया। दश प्रचेताओं के अंश से उसमें दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न हुए। जो चन्द्रमा के अंश के कारण महान तेजस्वी और पराक्रमी थे। दक्ष ने प्रथम मानसिक सृष्टि उत्पन्न की, संभोग से नहीं। उस दक्ष ने पहले अचर, चर, द्विपद (मनुष्य) और चतुष्पदों (पशु) की सृष्टि की। पुनः स्त्रियां उत्पन्न कीं। उनमें से दस धर्म को,

तेरह कश्यप को तथा सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा के लिये दे दिया। चार कन्यायें अरिष्टनेमि को, दो अंगिरा को, तथा एक कृशाश्व को दी। इस बीच में छटा चाक्षुष और सातवां प्रजापति वैवस्वत मनु का भी कार्यकाल बीत गया उन दक्ष कन्याओं ने देवता, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सराएँ एवं अन्याय जातियों को उत्पन्न किया। इसके उपरान्त इस पृथ्वी पर प्रजायें सम्भोग के द्वारा उत्पन्न होने लगीं। इनके पहले सृष्टि संकल्प, दर्शन, एवं स्पर्श से होती थी।

ऋषियों ने पूछा—हे सूतजी! देवता, दानव तथा देवर्षियों की उत्पत्ति आपने प्रजापति महान आत्मा दक्ष से पहले कही है और दक्ष का जन्म प्राण से कहा है सो उस महा तेजस्वी दक्ष ने कैसे प्रचेताओं के पुत्र होने का गौरव प्राप्त किया—इस सन्देह को आप निवारण करने की कृपा करें तथा साथ ही आप यह बतलाने की कृपा भी करें कि वह चन्द्रमा का श्वसुर कैसे हुआ।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! यह जन्म मरण सदा सभी जीवों में हुआ करता है। विद्वान लोग इसमें मोह को नहीं प्राप्त होते हैं। हे ब्राह्मणो! ये दक्ष आदि प्रजापति हर युग में होते रहते हैं और विनाश होते हैं। इसमें विद्वान मोह नहीं करते हैं। हे द्विजवृन्द! पूर्व समय में इनमें छोटे बड़े का भी भाव नहीं था। केवल तपस्या ही महत्वपूर्ण मानी जाती है। इनका व्यक्तिगत प्रभाव ही प्रभावशाली होता है। चाक्षुष मनु की इस चराचर सृष्टि के वृतान्त को जो व्यक्ति अच्छी तरह जानते हैं वे अपनी आयु आनन्द से बिताकर अन्त में स्वर्ग को जाते हैं। और वहाँ पूजनीय होते हैं। मैंने आपसे चाक्षुष मन्वन्तर की सृष्टि का सूक्ष्म रूप में वर्णन किया है। स्वायम्भुव मनु के अन्त तक छः मन्वन्तरों का वर्णन किया है। वैवस्वतमनु के मन्वतर की सृष्टि दूसरे मन्वन्तरों के समान ही आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ और काम सभी दृष्टियों से अनन्त है। जो मनुष्य किसी गुणों में दोष निकालने के भाव को छोड़कर सात्विक विचार से इसको पढ़ते और सुनते हैं। उसको सभी सुख प्राप्त होते हैं तथा आरोग्य होकर

सन्तान और धन से सुखी रहते हैं। अब आपसे वैवस्वत मनु के मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन विस्तार सहित करूँगा, आप सब ध्यान देकर सुनिये।

श्री वायु महापुराण का पृथु वंश वर्णन नामक तिरेसठवाँ अध्याय समाप्त

चौंसठवाँ अध्याय

(वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन)

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! अब हम आपसे वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन कर रहे हैं। सातवे वैवस्वत मन्वन्तर में कश्यप ऋषि से देवता और महर्षि पैदा हुए। उसमें ये आठ देवगण प्रधान माने जाते हैं। आठों देवगणों के ये नाम हैं-आदित्य गण, वसुगण, रुद्रगण, विश्वेदेवगण, मरुदगण, भृगुपुत्र और अंगिरा के पुत्र हैं। इनमें ये तीन आदित्यगण, मरुदगण, रुद्रगण ये तीनों कश्यपजी के पुत्र माने जाते हैं। इनके बाद ये तीन गण धर्म के पुत्र माने जाते हैं। साध्यगण, वसुगण और विश्वेदेव ये तीन हैं। फिर भृगुजी के पुत्र भार्गव माने जाते हैं और अंगिरा के पुत्र अंगिरस माने जाते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में ये देवगण छन्दों से उत्पन्न हुए हैं। महा प्रलय तक ये लोग सृष्टि के कार्यों के साथ चलेंगे। यह शुभ वर्तमान मरीचि नन्दन कश्यप के वंशधरों का जानना चाहिये। इन सबका स्वामी इन्द्र साम्प्रत नामक महान बलशाली है। भूतकाल के भविष्यत् काल के और वर्तमान काल के मन्वंतरों के जो इन्द्रगण हैं वे सब लक्षणों में एक समान हैं वे सब तीनों कालों के स्वामी हैं। वे हजार नेत्र वाले, पुरंदर, मघवान, श्रंगी हैं तथा वज्र तथा धारण करने वाले हैं। ये सभी सौ यज्ञ पूर्ण करने वाले तथा व्यक्तिगत सैकड़ों गुणों से सम्पन्न होते हैं। तीनों लोकों में जितने भी बलशाली, गतिवाले, और निर्बल प्राणी मात्र हैं उन सबमें इन्द्र सबसे अधिक बल सम्पन्न हैं। उनका वर्णन मैं अब करूँगा सो सुनिये—

ब्राह्मणों ने तीन लोक बताये हैं-भूतभव्य, एवं भविष्य में तीन लोक हैं। भूलोक यह पृथ्वी, भुवलोक अन्तरिक्ष और भव्यलोक स्वर्ग

कहा गया है। अब मैं उनके लक्षणों को कहता हूँ।

सबसे पहले ब्रह्माजी ने सन्तान की कामना से 'भूः' इस अक्षर का उच्चारण किया। उसी समय यह भूलोक हो गया। भू धातु का सत्ता में या विद्यमानता में प्रयोग होता है। लोक दर्शन में भी उसकी प्रसिद्धि मानी गई है। विद्यमान रहने तथा लोगों के दृष्टिगोचर होने के कारण यह भूमि भूलोक कही गई है। ब्राह्मणों ने इसको प्रथम वेद माना है। इस लोक के आविर्भाव हो जाने पर ब्रह्मा ने फिर 'भवत्' ऐसा दूसरा उच्चारण किया। भवत् शब्द से वर्तमान काल में होने वाले का बोध होता है। निरुक्त के जानने वाले लोग भवत् शब्द से भुवर्लोक की निरुक्ति करते हैं। इस प्रकार अन्तरिक्ष को दूसरा 'भुवर्लोक' कहते हैं। इस भुवः लोक की उत्पत्ति हो जाने पर ब्रह्माजी ने 'भव्य' शब्द का उच्चारण किया। इससे भव्यलोक का आविर्भाव हुआ। भव्य शब्द भविष्यत् काल के अर्थ का बोधक है इसीलिये इसे भव्य लोक कहा जाने लगा। इसको दिव (स्वर्ग) लोक के नाम से स्मरण किया जाता है।

इसके बाद ब्रह्माजी ने 'स्व' शब्द का उच्चारण किया जिससे भाव्यलोक का प्रादुर्भाव हुआ। भाव्य इस धातु का भविष्यतकाल के अर्थ में प्रयोग होता है। इस प्रकार यह भूमि भूलोक, अन्तरिक्ष भुवलोक और स्वर्ग का भाव्यलोक के अर्थ में कहे गये हैं। यही तीनों लोकों के समूह हैं। इन्हीं तीनों लोकों के संयुक्त उच्चारण से तीनों भूः भुवः स्वः महाव्याहृतियाँ कही जाती हैं। धातु जानने वाले विद्वान 'नाथ' धातु को 'पालन' अर्थ में प्रयोग करते हैं। इसलिये इन्द्रगण भूतलोक, भव्यलोक और भवत् लोक इन तीन लोकों के पालन करने वाले हैं। अतः ब्राह्मण उनको भूत भव्य और भवत तीनों का नाथ कहते हैं। प्रत्येक मन्वंतर के जो यज्ञ के देवगण हैं उनमें इन्द्र प्रमुख देवगण हैं। ये इन्द्र देवताओं के स्वामी, गुरु, नाथ, राजा एवं पितर आदि सभी कुछ हैं। ये मैंने देवेन्द्रों का संक्षिप्त लक्षण बतलाया। अब सप्तर्षियों का लक्षण सुनिये।

इन सप्तर्षियों में जो इस समय स्वर्ग में हैं, उनमें बुद्धिमान कुशिक गौत्र

वाले गाधि के पुत्र विश्वामित्र महान तपस्वी हैं। भृगु गोत्रीय उसके पुत्र जमदग्नि हैं। बृहस्पति के पुत्र परम तेजस्वी भारद्वाज हैं। उतथ्य के पुत्र गौतम शरद्वान हैं। स्वयंभू ब्रह्मा जी के पुत्र भगवान अत्रि पांचवे ऋषि हैं, छटे वसुमान नामक ऋषि हैं जो वशिष्ट के पुत्र हैं सातवें कश्यप गोत्र वाले वत्सार हैं। ये श्रेष्ठ पुरुषों के पूज्य इस वैवस्वत मन्वंतर के ऋषि हैं। जो सप्ताष कहे जाते हैं। इक्ष्वाकु, नाभाग धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभ, उद्विष्ट, करुष पृषध्र और वसुमान ये दस (नौ) मनु वैवस्वत मनु के पुत्र कहे गये हैं। हे द्विज गणो, मैं आपके सामने सातवें मन्वंतर का वर्णन कर चुका। इस दूसरे चरण का भी विस्तार से वर्णन कर चुका हूँ। अब आगे क्या विषय वर्णन किया जाय यह बताने का कष्ट कीजिये ।

इति श्री वायु महापुराण वैवस्वत सर्ग नामक ६४वां अध्याय समाप्त

॥ द्वितीय अनुषंग पाद समाप्त ॥

❀ अथ उपोद्घात् नामक तृतीय पाद ❀

पैंसठवाँ अध्याय

(प्रजापति के वंश का वर्णन)

ऋषि बोले—शांशपायन जो ने कहा; कि हे महायते सूतजी! आपने हमको अनुषङ्गपाद के विषय में तो बता दिया, अब आप हमको तीसरे उपोद्घात पाद के विषय में विस्तार सहित बताइये। शांशपायन जी के ऐसे शब्द सुनकर सूतजी बहुत प्रसन्न हुए और ऋषियों से कहा—

सूत जी बोले–हे ऋषियो ! अब हम आपको उपोद्घातपाद के विषय में विस्तार सहित वर्णन करेंगे, आप सब एकनिष्ठ होकर सुनिये। वैवस्वत मनु की सृष्टि का विस्तार में वर्णन करूँगा यह पहले बताया जा चुका है कि इकहत्तर बार चारों युगों के बीत जाने पर एक मन्वंतर का कार्यकाल समाप्त होता है। देवताओं, ऋषियों, दानवों, पितरों, गंधर्वों, यक्षों, राक्षसो, भूतों, मनुष्यों, पशुओं,

पक्षियों एवं स्थावरों के साथ इस वैवस्वत मन्वन्तर के सृष्टि क्रम का वर्णन और भविष्यत् काल में होने वाली कथाओं को, मैं विवस्वान को प्रणाम करके कहूँगा। पहले स्वायंभुव नामक मन्वन्तर में जो सृष्टि के कार्य चलाने वाले सात ऋषि थे। चाक्षुष मन्वंतर के बीत जाने पर जब वैवस्वत मन्वंतर प्रारम्भ होता है तो उस काल में भी वही सात ऋषि पुनः महेश्वर के शाप के कारण प्रकट हो जाते हैं। दक्षप्रजापति, भृगु आदिक महान तेजस्वी ऋषि महात्माओं का भी उस काल में प्रादुर्भाव होता है। वे ही सातों ऋषि ब्रह्मा के मानस पुत्र के रूप में उत्पन्न होते हैं। स्वयं ब्रह्मा जी उनको पुत्र रूप में नियुक्त करते हैं। इसके बाद वे सभी सप्तऋषि सन्तान पैदा करने की इच्छा से फिर सृष्टि शुरू करते हैं। मैं उन ज्ञानी धार्मिक कार्य प्रवृति रखने रिषियों की सन्तान के विषय में वर्णन करूँगा। उन रिषियों के वंश में पैदा होने वाली प्रजा से ग्रहों और नक्षत्रों से भरी यह सम्पूर्ण पृथ्वी फिर दुबारा पैदा होती है। सूतजी ऐसी सन्देहमयी वाणी सुनकर रिषियों के मनमें संदेह हुआ, और वे अपने संदेह को मिटाने के लिये सूतजी से कहने लगे—

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! ये सभी सप्तरिषि पहले समय में किस प्रकार पैदा हुए, और ये किस प्रकार प्रजापति ब्रह्माजी के मानस पुत्र माने गये हैं, आप हमको इन सबके विषय में विस्तार सहित बताइये। इसके बाद सूतजी ने उन रिषियों को उपयुक्त कथा के बारे में विस्तार सहित बतलाया।

सूतजी बोले—हे रिषियो! मैं आपको यह बताऊँगा, कि ये सभी रिषि किस प्रकार महादेव जी के श्राप मिलने से अपनी सिद्धिदात्री तपस्या से भंग हो गये, और ये किस प्रकार स्वायम्भुव मनवंतर में अपनी सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। ये सभी सप्तर्षि समूह जन लोक में एक बार ही जन्म लेते हैं। वे रिषि लोग जनलोक में आकर आपस में विचार करने लगे, और एक दूसरे से कहने लगे कि चाक्षुष मन्वन्तर में वरुण देव के यज्ञ समाप्त हो जाने पर हम सभी प्रजापति

ब्रह्माजी के मानस पुत्र होंगे, और जभी हमारा कल्याण होगा। वे सभी ऋषि स्वायम्भुव मन्वन्तर में अपने सत्य व्रत के लिये उनको श्री महादेव जी का श्राप मिला था, और उस श्राप के द्वारा उन को जन लोक में जन्म लेना पड़ा था। ब्रह्माजी देवों के यज्ञ में वरुण देव का शरीर धारण करके संतान को उत्पत्ति की इच्छा से अपने वीर्य का अग्नि में हवन करके उन्होंने दुवारा ऋषि को उत्पन्न किया। भृगु अंगिरा मरीचि, पुलस्त्य, प्रलह क्रतु, अत्रि, और वशिष्ठ ये आठ ब्रह्मा जी के पुत्र हैं। वरुध के उस विशाल यज्ञ में सभी देवता सम्मिलित हुए थे। यज्ञ के सभी अंग एवं वषट्कार मूर्ति धारण करके आते थे। हजारों साम ए वं यजुर्वेद के मूर्त स्वरूप मंत्र थे। पदक्रम से विभूषित ऋ-टग्वेद भी वहाँ पर मूर्त रूप में उपस्थित था। ॐकार रूप मुख से उज्वल , यज्ञ सूक्त, ब्राह्मण और मन्त्र भाग से संयुक्त वृत से संवलित यजुर्वेद के मूर्त स्वरूप थे। विश्वावसु आदि गन्धर्वों के साथ सामवेद अपने सभी उपकरणों से संयुक्त शोभामय था। इसके अलावा लक्षण, स्वर, स्तोम, नियुक्त, स्वरों की भक्ति, आश्रम रूप वषट्कार, निग्रह, प्रग्रह आदि भी उपस्थित थे। दिशा, दीक्षि, इला, देवी सभी दिशायें, विदिशियायें, दिगपाल देवकन्यायें देवपत्रियाँ मातृकायें तथा आयु–ये सब भी स्वरूप धारण कर वरुण का रूप धारण करने वाले देव के अग्नि मुख में हवन करते समय उपस्थित रहे। उन सब स्त्रियों को देख कर स्वायंभू ब्रह्मा जी का वीर्य स्खलित हो गया। पितामह ब्रह्मा जी ने पृथ्वी पर अपने वीर्य को गिरता देख कर स्रुवा पर रख कर घी की तरह मन्त्र से विधि पूर्वक हवन कर दिया। प्रजापति ने इस प्रकार अनेक जीवों की सृष्टि की। पृथ्वी पर कुछ क्षीण तेज वाले उस वीर्य को गिर पड़ने के कारण सत्वगुण रजोगुण तथा

तपोगुण मय सृष्टि उत्पन्न हुई। ब्रह्मा जी ने जिस समय अपने वीर्य को अग्नि में हवन किया उससे उनके समय उनके कर्मज पुत्रों की उत्पति हुई। आग में वीर्य के हवन कर देने पर महाषयों का प्रादुर्भाव हुआ। सातों ऋषियों के शरीर उज्वल एवं देदीप्यमान थे उनमें बालकों के भी सभी गुण वर्तमान थे। पहलीबार अग्नि में वीर्य का हल न करने पर लपटों से कवि (भृगु) की उत्पति हुई। ब्रह्मा जी ने उनका नाम भृगु रखा क्योंकि उन्होंने प्रथमवार भृगु शब्द का उच्चारण किया था। उस ब्रह्मर्षि को देखकर महादेव जी ने कहा--हे प्रभो! पुत्र प्राप्ति की कामना से मैं दीक्षा ग्रहण कर इस यज्ञ को कर रहा था। अतः यह ब्रह्मर्षि मेरा पुत्र हो। स्वायंभू ने कहा ऐसा ही हो। तब प्रभु भृगु को शिव ने अपना पुत्र स्वीकार किया। इसी कारण भृगुवंश में उत्पन्न होने वाले वरुथ वंशीय कहे जाते हैं। भृगुशिव की सन्तान हैं।

इसके बाद पुनः दूसरी बार ब्रह्माजी ने यज्ञाग्नि में अपने वीर्य की आहुति की। अंगारों पर बीर्य पड़ने से अंगिरा ऋषि उत्पन्न हुए। उसे देखकर अग्नि ने पुत्र रूप में मांगा। अग्नि की बात का ब्रह्मा जी ने अनुमोदन किया और ऐसा ही हो, कहा। इसीलिये अंगिरा गोना वाले अग्नी गोत्र के भी कहलाते हैं। इसके बाद ब्रह्मा जी ने छैं बार अपने वीर्य को अग्नि में हवन किया। जिससे छैं ब्राह्मण उत्पन्न हुए। जिसमें पहले थे मरीचि जो अग्नि की मरीचियों से पैदा हुए। पुनः क्रतु, अत्रि, पुलस्त्य, वसुमान, वशिष्ठ ये ब्रह्मा जी के छै मानसिक पुत्र हैं। ये सभी लोक की सन्तानों की वृद्धि करने वाले हैं। इन्हींसे प्रजा की वृद्धि हुई जिससे ये प्रजापति कहलाये।

इन्हीं के द्वारा दूसरे पितर नामक ऋषिप गण भी पैदा हुये हैं । वे लोक प्रसिद्ध सात पितर गण हैं जिनके नाम हैं—मारीच, भार्गव, आंगिरस पौलस्त्य, पौलह, वशिष्ट, और आत्रेय के नाम से ये संसार में प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार मैंने संक्षेप से पितरों का वर्णन किया। इनके राजा का नाम यम है जिनके पाप तपस्या द्वारा नष्ट हो गये हैं।

अब आप लोग अन्य प्रजापतियों के विषय में सुनिये। कर्दम, कश्यप, शेष विक्रान्त, सुश्रवा, बहुपुत्र कुमार, विवस्वान, शुचिश्रवा, प्रचेतस, आदि के विषय में सुनिये जो पूर्वकाल में प्रजापति हो गये हैं। इनमें कुशोच्चय और बालखिल्य ऋषि गण अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जो सभी मन के समान वेग वाले, सब जगह गमन करने वाले, तथा सार्वभौम हैं। वैखानस यज्ञ की भस्म से उत्पन्न हुये हैं। उस ब्रह्मा से अति रूप वाले दो अश्विनी कुमारों का जन्म हुआ। नेत्र से उत्पन्न होने वाले निष्पाप जन्म से इन्द्रिय को स्ववश रखने वाले तथा सात्विक प्रकृति वाले ऋषि गण इस वृत्तान्त को जानते हैं। उसके कानों से अन्नान्य श्रेष्ठ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। उसके रोमकूपों से अन्यान्य ऋषियों की उपत्ति हुई। उनके स्वेद तथा मल से भी कुछ प्रजापतियों की उपत्ति हुई। उसकी देह की कान्ति से रुद्र तथा आदित्य गणों का प्रादुर्भाव हुआ। अंगारों से दिव्य एवं मानुष ज्योतियों का प्राकट्य हुआ इस प्रकार से ब्रह्मा जी इस लोक सृष्टि के आदि कर्ता और मूल पुरुष हैं। वे सब मनोरथों को देने वाले कहे गये हैं। सभी ऋषियों ने उस महायज्ञ में देव गणों के साथ ब्रह्मा जी से सन्तान की अभिलाषा से प्रार्थना की। तब इन ऋषियों और देवताओं के अंश में स्थान एवं काल को निश्चय करने वाली सन्तानें हुईं।

सर्व प्रथम भृगुवंश का विस्तार से वर्णन करूँगा जो प्रथम प्रजापति हैं। इन महात्मा भृगु की दो पत्नी थीं। एक तो दिव्या थी जो हिरण्यकशिपु की कन्या थी। दूसरी परम सुन्दरी प्रलोभ की कन्या थी जिसका नाम पौलोमी था। दिव्या ने भृगुके संयोग से

असुरों के आचार्य कविपुत्र प्रसिद्ध ग्रह शुक्र को उत्पन्न किया। वे शुक्र, उशना काव्य नामों से प्रसिद्ध हैं। शुक्र की पत्नी एवं सोमपान करने वाले पितरों की कन्या 'गो' ने चार पुत्र उत्पन्न किये। वे त्वष्ट वरुत्री तथा शण्ड और अमर्क के नाम से विख्यात हैं। वरुत्री के रंजन, पृथुरश्मि और विद्वानों में श्रेष्ठ 'बृहद्गिरा' नामक पुत्र हुए। जो देवताओं के पुरोहित हैं। इनको मनु से तर्क करने पर इन्द्र ने विनिष्ठ कर दिया। यजनी या जयन्ती नामक पत्नी में शुक्र की पत्नी देवयानी उत्पन्न हुई। विरोचन की कन्या यशोधरा में त्वष्ठा के तीन शिर वाले विश्वरूप एवं उनके छोटे भाई विश्वकर्मा की जुड़वाँ उत्पत्ति हुई। भृगु के बारह पुत्र उत्पन्न हुये जो भृगुगणदेव नाम से विख्यात हैं काव्य ने देवी में उन सभी आत्मजों को पैदा किया जिनके नाम इस प्रकार हैं—भुवन, भावन, अन्य, अन्यायन, क्रतु, श्वा मूर्धा, व्यजय, व्यश्रुष, प्रसव, अज, एवं अधिपति नाम हैं।

पुलोमा की पुत्री पौलोमी ने ब्रह्मनिष्ठ जितेन्द्रिय परम प्रभाव-शाली पुत्र को उत्पन्न किया। कठोर कार्य से उनका गर्भ आठवें महिने में ही गिर गया। गिरने से (च्यवन) नामक पुत्र हुये। और प्रचेतस से चेतन हुआ। उन भृगु पुत्र च्यवन ने अपनी सुकन्या नामक धर्मपत्नी में आत्मवान् और दधीचि नामक दो पुत्रों को पैदा किया दधीचि ने सरस्वती नामक पत्नी में सारस्वत नामक पुत्र उत्पन्न किया। राजा नहुष की पुत्री रूची आत्मवान की पत्नी हुई। आत्मवान के ऋषि 'उरु' जंघा को फाड़ कर उत्पन्न हुआ। उस उरु का पुत्र 'ऋचीक' हुआ। ऋचीक मुनि की पत्नी सत्यवती में जमदग्नि ऋषि पैदा हुये, जगदग्नि के संयोग से रेणुका में इन्द्र के समान तेजस्वी, ब्रह्मबल एवं क्षात्रबल से युक्त परशुराम जी उत्पन्न हुए 'उरु' के पुत्र ऋचीक के सौ पुत्र थे जिनमें जमदग्नि सबसे बड़े थे। उन सौ पुत्रों के एक हजार पुत्र हुये। उन सभी भृगुवंशियों के वंशज परस्पर अन्य ऋषियों से वाह्य विवाहादि कार्यों में योग्य माने गये वत्स विश्व, अश्विषेण, पाण्ड, पथ्य और शौनक इन सात गोत्रों में

ये भार्गवगण बँट गये।

अब अग्नि पुत्र 'अंङ्गिरा' के वंश का हाल सुनिये। जिनके गोत्र में भारद्वाज गौतम और इषुमान नामक मुख्य देव गण हुये हैं। आंगिरस अथर्वा की मरीचि नन्दिनी सुरूपा, कर्दम पुत्री स्वराट और मनु-कन्या पथ्या ये तीन पत्नी थीं। उनकी सन्तानों का पूर्ण विवरण आपको सुनाता हूँ—सुरूपा में बृहस्पति का जन्म हुआ। स्वराट से गौतम उत्पन्न हुये और पथ्या में अवन्ध्य, वामदेव, उशिज, उतथ्य और धिष्णु पैदा हुये और संवर्त तथा विचित्त उसके मानस पुत्र हुये। उतथ्य के पुत्र शरद्वान हुये। उशिज के पुत्र दीर्घतमा तथा वामदेव के पुत्र बृहदुत्थ हुये। धिष्णु के पुत्र सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र ऋषय हुआ। ऋषय के रथकार नाम वाले देव गण तथा परम प्रसिद्ध ऋषि गण पुत्र रूप में उत्पन्न हुये। बृहस्पति के पुत्र यशस्वी परम विख्यात भारद्वाज हुये। संवर्त नामक जो आंगिरस के पुत्र हैं उनकी सन्तानें देवगण के रूप में कही जाती हैं जिनका विवरण इस प्रकार है-ये आंगिरस गोत्रीय देवगण सुरुपा के औरस पुत्र रूप में पैदा हुये थे। जो संख्या में दस हैं उनके नाम औरस, आयु, दनु, दक्ष, दर्भ, प्राण, हविष्मान, क्रतु, और सत्य हैं। अयस्य, उतथ्य, वामदेव, भारद्वाज, गोत्रीय शांकृतिक, गार्ग्य, कण्व, रथीतर, मुँगल, विष्णुवद्ध, हरित, वायव भारद्वाज गोत्रीय भात्त, आर्षभ और किंभय-ये पन्द्रह आंगिरा के गोत्रीय हैं जो अन्यान्य ऋषियों के गोत्रों से विवाहादि सम्बन्धों में अंगीकार किये गये हैं। अँगिरा के गोत्र में उत्पन्न होने वालों की संख्या बहुत अधिक कही जाती है।

अब मैं मरीचि-पुत्र का वंश वर्णन करूँगा- जिनके वंश में सम्पूर्ण चर अचर जगत की उत्पत्ति हुई है। सबसे पहले मरीचि ने जल की कामना की। और संतति की इच्छा से उसी के द्वारा ध्यान मग्न हुये। मरीचि के मन में यह भावना उठी कि "सभी गुणों से

सम्पन्न, संततिवान, शुभिरुचि वाले पुत्र की उत्पत्ति से लोक में प्रतिष्ठा बढ़ती है। इस प्रकार आवाहन करने पर सभी जल समूह उनके पास आये। भगवान मरीचिने उस जलराशि में निवास किया। उसमें स्थित होकर मरीचि ने परम तेजस्वी जितेन्द्रिय अरिष्टनेमि नामक पुत्र उत्पन्न किया। जो प्रजापति कहलाये। अरिष्टनेमि सूर्य के समान तेजस्वी था। उन्हीं अरिष्ट नेमि का दूसरा कश्यप था कश्यप सविता के जनक (पिता) थे। अतः इनकी महत्ता ब्रह्म के ही समान थी। सभी मन्वन्तरों में वे ब्रह्म के अंश से उत्पन्न होते हैं। दक्ष ने कन्या के लिए जब सभी प्रजाओं को अप्रसन्न कर दिया तब अरिष्टनेमि ने कश्य (मद्य) का पान किया। उसी कश्य (मद्य) के पीने के कारण उनका कश्यप नाम पड़ा। और कन्या के लिये दक्ष द्वारा कुपित उन्होंने कठोर वाक्यों का प्रयोग किया। अत कश्यप नाम से प्रसिद्ध हुये। परमेष्ठी ब्रह्मा के अनुरोध पर तथा कश्यप की प्रार्थना पर दक्ष ने अपनी कन्यायें कश्यप को सौंप दीं वे दक्ष कन्यायें ब्रह्म वादिनी और लोक मातायें थीं। इस परम पवित्र पुण्यदायी वारुण सृष्टि के वृतान्त को जानता है या धारण करता है वह पुण्यवान, परम पवित्र और परमानन्द को प्राप्त होते हैं तथा सभी पापों से मुक्त होते हैं।

इसके बाद उन ऋषियों ने रोमहर्षण सूतजी से फिर पूछा हे सूतजी! चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर यह वैवस्वत मन्वन्तर किस प्रकार प्रवृत्त होता है। सो बतलाइये।

सूत जी बोले—स्वायंभू ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति को आज्ञा दी कि प्रजाओं की सृष्टि करो तो ब्रह्मा की इस आज्ञा पर दक्ष प्रजापति ने चर अचर सभी प्रकार के जीव समूहों की सृष्टि की। उस समय वे जरायुज अण्डज उद्भिज और स्वेदज चारों प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि के लिये प्रवृत्त हुए दस हजार वर्ष तक घोर तप करके अणिमा आदि सिद्धियों तथा योगबल से सम्पन्न होकर उन्होंने

अपने शरीर को मनुष्य, सर्प, राक्षस, देव, असुर, गन्धर्व, प्रभृति दिव्य प्रजाओं और सम्पत्ति ऐश्वर्य और तेज में अपने ही समान ऐश्वर्य सम्पन्न, विभूतियों के रूप में विभाजित किया। इस तरह खुश होकर उन्होंने अन्य प्रजाओं की सृष्टि की इच्छा से अनेक तरह के सृष्टि में जीव जन्तुओं को, मनुष्यों, गन्धर्वों, राक्षसों, यक्षों, पिशाचों पशुओं को और मृगादिकों को अपने मानसिक संकल्पों के द्वारा पैदा किये। लेकिन जब मानसिक संकल्प के द्वारा भी सृष्टि की वृद्धि नहीं हुई, तब श्री महादेव जी के कटु वचन कहने पर इन्होंने सम्भोग कर्म के द्वारा तरह २ की सृष्टि पैदा करने का विचार किया, और फिर इन्होंने वीरण नाम के प्रजापति की लड़की असिन्की को अपनी पत्नि के रूप में ग्रहण किया। इनकी पत्नि असिन्की अपने कठिन तप के कारण समस्त लोक का पालन करने वाली हुई और सम्पूर्ण संसार को अपने ऊपर धारण करने वाली हुई। प्रजापति वीरण की पुत्री असिन्की के साथ व्याह करते समय दक्ष ने दस लाख बहने वाले कुओं को बनवाया। वे कुऐ आगे चलकर नदी और पर्वतों में मिल गये। दक्ष को इस तरह ऐश्वर्य सम्पन्न देख कर सभी ऋषियों ने कहा कि ये राजा दक्ष सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि करने वाले होंगे, इस तरह राजा दक्ष की पहली सृष्टि सन्तान के रूप में बदल गई और दूसरी सृष्टि प्रजा के रूप में बदल गई, और इस तरह दस लाख कुओं को बनवाकर प्रजापति दक्ष ने वीरण की पुत्री असिन्की के साथ विवाह किया। उस तेजस्वी प्रजापति दक्ष ने उस असिन्की से एक हजार पुत्रों को पैदा किया प्रजाओं की वृद्धि की इच्छा रखने वाले दक्ष के पुत्रों से ब्रह्मा जी के पुत्र नारद जी ने उनके नाश के लिये और अपने श्राप के लिये उनसे कलह प्रिय बातें कीं। जिस तरह नारद जी कश्यप जी के पुत्र कहे जाते हैं, उनका असली कारण यही है नारद जी के दक्ष पुत्रों से कलह पूर्ण बातें करने के कारण ही नारद जी को दक्ष के श्राप से भयभीत होकर कश्यप के पुत्र के रूप में जन्म लेना पड़ा। इसके बाद दक्ष के श्राप के कारण वे कश्यप जी के मानस

पुत्र के रूप में पैदा हुये। नारद जी का कश्यप जी के यहाँ मानस पुत्र के रूप में जन्म लेना, उनका दूसरा जन्म माना जाता है। ब्रह्मर्षि नारद जी सबसे पहले ब्रह्मा जी के पुत्र के रूप में पैदा हुये। प्राचीन काल में दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नामके सभी पुत्रों का बुराई के कारण मार डाला था। जब दक्ष ने अपने सभी पुत्रों को मरते देखा, तो वे नारद जी को भी मारने के लिये तैयार हो गये, तब प्रजापति ब्रह्मा जी अपने साथ सभी ब्रह्मर्षियों को साथ लेकर दक्ष से माफी माँगने आये, तब उस समय दक्ष ने ब्रह्मा जी से कहा कि मैंने जो आपको कन्या दी है, उस कन्या से नारद जी पुत्र रूप में पैदा होंगे। तब दक्ष ने अपनी कन्या परमेष्ठी ब्रह्मा जी को दी, जिसके गर्भ से डरे हुये नारद जी शान्त रूप में पैदा हुये। ऐसी सन्देह मयी वाणी सुन कर सभी ऋषियों को आश्चर्य हुआ, और उन्होंने परम विद्वान सूत जी से पूछा—

ऋषियों ने पूछा—हे सूत जी! नारद जी ने दक्ष के हर्यश्व नाम के पुत्रों को किस कारण से मार डाला, ऋषियों के इस तरह पूछने पर महामते सूत जी ने कहा कि ऋषियो—

दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नाम के एक हजार पुत्रों को नारद जी ने अपने पास आते देखकर कहा–हे दक्ष प्रजापति के मूर्ख पुत्रो! तुम सब भूगोल के तत्व को नहीं जानते हो कि इस पृथ्वीके ऊपर नीचे क्या है। इसका अन्त कहां होता है तुम इन सब बातों को न जानते हुये किस तरह प्रजाओं की सृष्टि करोगे, तुम बिना जाने यदि सृष्टि कार्य करोगे तो अधिक और थोड़ी के कारण पाप के भागी बनोगे। तुम बिना जाने कर ही क्या सकते हो। नारद जी की ऐसी बात सुन कर सभी दक्ष के पुत्र चारों दिशाओं में जाकर और वायु मण्डल को प्राप्त करके शिथिल और अदृश्य हो गये, और वे सभी दक्ष पुत्र वायु मण्डल में जाकर वायु के साथ घूमते घूमते वहीं खत्म हो गये और आज तक नहीं लौटे अतः इस प्रकार नारद जी की कटुपूर्ण बातों में आकर वे सभी दक्षपुत्र वायु के साथ घूमते रहते हैं।

प्रजापति दक्ष ने अपने सभी पुत्रों को खत्म होते देखकर प्राचेतस दक्ष ने वैरिणी में एक हजार पुत्रों को पैदा किया, दक्ष के उन एक हजार पुत्रों ने प्रजा की वृद्धि की इच्छा रखने वालोंसे भी नारद जी ने वही पुरानी बात कही, और उन पुत्रों ने नारदजी की बातों को सुना और आपस में सलाह करने लगे कि बात तो ठीक है। हम सबको भी अपने बड़े भाइयों की राह पर ही चलना चाहिये, बिना पृथ्वी का प्रमाण इत्यादि जानकर सृष्टि करना ठीक नहीं है अतः वे भी चारों दिशाओं की तरफ चले गये और आज तक नही लौटे। विद्वान मनुष्यों का कथन है कि बड़े भाई की खोज के लिये छोटा भी भाई यदि जाता है तो वह भी नष्ट हो जाता है। अपने शवलाश्व नाम के सभी दूसरे पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दक्ष प्रजापति ने नारद जी को श्राप दे दिया, कि तू भी मृत्यु को प्राप्त होगा और फिर दोबारा गर्भ में रहने का कष्ट अनुभव करेगा। उन वैरिणी के सभी पुत्रों के मर जाने के बाद दक्ष ने फिर वैरिणी से साठ प्रसिद्ध कन्याओं को पैदा किया, और दक्ष प्रजापति ने अपनी उन साठ कन्याओं का विवाह विधि पूर्वक, कश्यप, धर्म, चन्द्रमा तथा और अनेक ऋषियों के साथ कर दिया। जो मनुष्य ध्यान पूर्वक मन से इस दक्ष की सृष्टि कम की कथा को सत्य रूप से पढ़ता और सुनता है, वह कभी दुखी नहीं रहता है, अतः वह हमेशा दीर्घायु, धन धान्य से समृद्ध पुत्र पौत्रों से सुखी रहता है।

श्री वायु महापुराण का प्रजापति वंश का वर्णन नाम का
पैंसठवां अध्याय समाप्त

छियासठवाँ अध्याय

(कश्यप के सन्तानों की सृष्टि कथा)

ऋषि बोले—हे सूतजी ! अब आप हमको वैवस्वत के होने वाले देवता, दानव और दैत्यों की सृष्टि के विषय में बतलाइये।

सूतजी बोले–हे ऋषियो ! मैं आपको धर्म की प्रजा की सृष्टिके विषय

में वर्णन करूँगा,आप सब मन लगाकर सुनिये। धर्मकी दस पत्नियां थीं, अरुन्धती, वसु, यामी लम्बा भानु, मरुत्वती, सकल्पा, मुहुर्त्ता साध्या, और धर्मा इत्यादि थी। प्राचेतस दक्ष ने अपनी इन दस कन्याओं का विवाह धर्म के साथ किया था। धर्म ने साध्या के संयोग से बारह पुत्रों को पैदा किया वे सभी पुत्र साध्यगणों के नाम से प्रसिद्ध हुए। वे सभी साध्यगण छन्दों से उत्पन्न होने वाले और यज्ञ में भाग पाने वाले कहे जाते हैं ब्रह्मा जी ने सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा रख कर अपने मुँह में से जय नामके देवगणों को पैदा किया। वे जय नाम के सभी देवगण मन्वन्तर में मंत्रमय शरीर वाले कहे जाते हैं। दश, पौणमास, वृहत, रथन्तर, चिति, विचिति, आकूति, कृति, विज्ञाता, विज्ञान, मन और यज्ञ ये सभी जय नाम के देवगणों के नाम हैं। वे जय नाम के देवगण ब्रह्माजी के शाप के कारण स्वायम्भुव ये मन्वन्तर जित नाम से पैदा होते हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर में वे तुषित नाम से उत्पन्न होते हैं और उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से पैदा होते हैं। तापस मन्वन्तर में वे हरि नाम से उत्पन्न होते हैं। वे रैवत मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से पैदा होते हैं, चाक्षुष मन्वन्तर में वे छन्दोज देवगण साध्य नाम से पैदा होते हैं। स्वरोचिष मन्वन्तर में तुषित नाम के होने वाले देवगण ही फिर दुबारा चाक्षुष मन्वन्तर में स्वयंभू के पुत्र धर्म के यहां बारह पुत्रों के रूप में पैदा हुए। स्वारोचिष मन्वन्तर में नर, नारायण भी दुबारा जन्म धारण करते हैं। उनमें विपश्चित से इन्द्र और सत्य से हरि नाम से प्रसिद्ध हैं। दोनों मन्तन्तरों में दोनों तुषित नाम के देवगणों में शामिल थे। उन तुषित नाम के देवगण ही साध्यगण नाम से प्रसिद्ध हुये, उनके नाम इस प्रकार हैं। मन, अनुमन्ता, आण, नर, यान, हय, नय, हंस, नारायण प्रभव, और विभु इत्यादि ये बाहर देवगण साध्य नाम से पैदा हुए थे। और स्वारोचिष मन्वन्तर में वे ही देवगण तुषित नाम से प्रसिद्ध होते हैं उनके नाम भी इस प्रकार हैं। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन हैं

पूर्व काल में उन तुषितों के नाम भी इस तरह के हैं। प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान ही था। धर्म ने वसु के संयोग से वसु गणों को उत्पन्न किया। वे गण साध्यों के भाई के रूप में पैदा हुये। इन आठ वसु गणों के नाम भी इस प्रकार हैं। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष, और प्रभास हैं। धर के द्रविण नाम के पुत्र पैदा हुये, और हुत हव्यवाह नाम के भी पुत्र धर के पैदा हुये ध्रुव के भव नामका पुत्र पैदा हुआ, वह भव नाम का पुत्र सम्पूर्ण लोक के संहार करने वाला हुआ, सोम के वर्चा और बुध नाम के दो पुत्र पैदा हुये। बुध फिर नवग्रहों में बदल गये। सोम के सर्व प्रसिद्ध दोनों पुत्र उनकी रोहिणी नामकी स्त्री के गर्भ से पैदा हुये। चन्द्रमा के तीन पुत्र और भी पैदा हुये, उन तीनों पुत्रों के ये नाम हैं, धारा उर्मि, कलिल इत्यादि। अग्नि के कुमार नाम के पुत्र का जन्म सरपतों के समूह में हुआ, उनका दूसरा नाम स्कन्द था ये स्कन्द और सनतकुमार अग्नि के चतुर्थांश तेज से पैदा हुये। इनके शाख विशाख और नैगमेय नाम के छोटे भाई भी पैदा हुये थे। अनिल ने अपनी स्त्री शिवा के संयोग से मनोजव और अविज्ञात गति नाम के दो पुत्रों को पैदा किया। प्रत्यूष के देवल नामका पुत्र पैदा हुआ। देवलके क्षमावान और मनीषी नामके दो पुत्र पैदा हुए। बृहस्पतिजी की बहन ब्रह्मचारिणी वरस्त्री थी, वह वरस्त्री बिना किसी आशक्ति सम्पूर्ण संसार में घूमती थी। वह वरस्त्री आठवें वसु प्रभास की स्त्री हुई और उनके विश्वकर्मा नामका सम्पूर्ण शिल्पियों का प्रजापति नामका पुत्र पैदा हुआ वह विश्वकर्मा नामका सम्पूर्ण शिल्प कला का कलाकार और देवताओं का बढ़ई था। विश्वकर्मा सभी देवों के विमानों को स्वय बनाता था। धर्म के विश्वा नामकी पत्नी से दस पुत्र पैदा हुए। वे सभी पुत्र विश्वेदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए उन दसों विश्वेदेव के ये नाम हैं। —क्रतु, दक्ष, सत्य, काल, काम धुनि कुरुवान, प्रभवान और रोचमान हैं। ये शुभ कर्म करने वाले देवगण धर्म की विश्वा पत्नी से पैदा हुये। मरुत्वती से मरुद्गण

नाम के पुत्र पैदा हुए और भानु ने मानुगण नाम के पुत्रों को पैदा किया और मुहूर्ता ने मुहूर्त नाम के पुत्रों को पैदा किया, जम्बा ने घोष नाम का एक पुत्र पैदा किया। संकल्पा संकल्प नाम के पुत्रों को पैदा किया। यामी से सम्पूर्ण नाग पैदा हुए और अरुन्धती से अनेक तरह के जीव गण पैदा हुए।

हे ऋषियो! अब तक मैंने आपसे धर्म की सृष्टि का वर्णन किया है। इसके बाद अब मैं आपसे सभी प्रकार के मुहूर्तों का, शुभ व्रतों की विधि का वर्णन और उनके स्वामियों का नाम सहित विस्तार पूर्वक वर्णन करूँगा, आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये। उसी के विषय में मैं आपसे दिन रात का विभाग होना, सभी नक्षत्रों का, उनकी गति का तथा दिन रात में आने वाले मुहूर्त का वर्णन करूँगा। एक दिन और रात के भीतर छःसौ कलाएँ होती हैं। सूर्य की गति के आधार पर ऋतुएँ बनती हैं, और उन्हीं ऋतुओं में सभी प्रकार के मुहूर्त स्थित हैं। वेदों के तत्वों के जानने वाले उन्हीं मुहूर्तों और पर्वों के आधार पर तिथियों और नक्षत्रों को बनाते हैं। तथा तिथि इत्यादि के भेद के अनुसार भिन्न भिन्न समय में पितृदान किये जाते हैं। रौद्र, सार्प, मैत्र, पिण्डय, वासव, आप्य, वैश्वदेव, ब्राह्म मध्यान्ह, प्राजापत्य, ऐन्द्र, इन्द्र, निर्ऋति, वारुण, आर्यम्ण एवं भाग ये दिवस काल पर आश्रित रहने वाले मुहूर्त हैं। ये सूर्य के द्वारा निर्मित हैं। शंकु (कील) आदि गाढ़ कर उसकी छाया से इसका प्रमाण देखा जाता है। अज, अहि, बुध्न, पूषा, यम देवता, आग्नेय, प्राजापत्य, ब्राह्म, सौम्य, आदित्य, बार्हस्पत्य, वैष्णव, सावित्र त्वाष्ट्र और वायव्य ये पन्द्रह क्रम से एक रात में रहने वाले मुहूर्त हैं। चन्द्रमा की गति से इनका उदय एवं इनके अंशों का ज्ञान होता है। ये मुहूर्त समय के एक विशेष मापक हैं तथा देवता के रूप में स्वीकृत किये जाते हैं।

सभी ग्रहों के उत्तर मध्य और दक्षिण नामक तीन स्थान हैं।

मध्य मार्ग में जारद्भव नाम का स्थान है। उत्तर में रोरावत और दक्षिण ने वैश्वानर नामक स्थान है। अश्विनी, भरिणी, कृत्तिका ये तीन नागवीथी के नाम से कही गई हैं। पुनर्वसु, पुष्य तथा श्लेषा ये ऐरावती बीथी हैं। हस्त, चित्रा, स्वांती, की गोवीथी कही गई हैं। विशाखा ज्येष्ठा, और अनुराधा की जारदुगली बीथी कहलाती हैं। इन तीन बीथियों का मध्यम मार्ग है। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ को अजबीथी कहा गथा है। इनका मध्यम मार्ग है। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष की गार्गी वीथि है। पूर्वभाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, और रेवती की वैश्वानरी बीथी कही है। विद्वानों ने इन तीनों का दक्षिण मार्ग कहा है। ये सताईस दक्ष की कन्यायें थी जिनको दक्ष ने चन्द्रमा को सौंप दिया था। ये सभी नक्षत्र नाम वाली हैं तथा ज्योतिष में अति प्रसिद्ध नाम वाली हैं। इनमें उत्पन्न तेज वाली दक्ष कन्यायें उत्पन्न हुईं। उन सत्ताईस के अलावा १४ शेष दक्ष कन्याओं को कश्यप ऋषि ने स्वीकार किया था। ये सबकी सब लोक माता थीं। इनके नाम इस प्रकार हैं–अदिति, दिति, दनु, कला, अरिष्ठा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा इरा, कद्रू और मुनि। अब इनकी सन्तानों का विवरण सुनिये–चरिश्रवण मन्वन्तर के वैकुण्ठ नामक देवगण चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से विख्यात हुये। वैवस्वत मन्वन्तर में देवगण अदिति द्वारा अति आराधित हुये जिससे एकत्र होकर उन्होंने आपस में यह परामर्श किया कि वैवस्वत मन्वन्तर में हम लोग योगाभ्यास बल से इस अदिति के गर्भ में अपने तेजो बल से प्रवेश कर पुत्र रूप रूप में उत्पन्त होंगे इस तरह तै करके वे देवगण पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि पुत्र कश्यप के संयोग से बाहर आदित्य गणों के रूप में पैदा हुये। इन्द्र और विष्णु ये दो श्रेष्ठ देव इस वैवस्वत मन्वन्तर में नर नारायण के रूप में उत्पन्न हुये। इस प्रकार इन देवताओं का

भी जन्म मरण होता है। जैसे इस लोक में सूर्य का उदय और अस्त होता है उसी प्रकार ब्रह्मा विष्णु और शंकर का भी आविर्भाव और तिरोभाव होता है। विषयों में अनुराग रखना ही जन्म का कारण माना है। स्वायम्भू मन्वन्तर में ब्रह्माजी के श्राप से जय नाम के देवगण जित नाम से पैदा हुए। स्वारोचिष मन्वन्तर में वे ही तुषित और उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से पैदा होते हैं। तामस मन्वन्तर में हरि नाम से उत्पन्न होते हैं। चाक्षुष मन्वन्तर में वे ही वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न होते हैं। इसके बाद चाक्षुष मन्वन्तर में वे ही साध्य नाम से पैदा हुए और इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में अदित्य नाम से उत्पन्न हुए। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान् पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, और विष्णुजी। इन सब में भगवान विष्णु सबसे छोटे हैं और सबसे छोटे होते हुये भी सर्व श्रेष्ठ माने जाते हैं। ये बारह आदित्यगण कश्यप जी के पुत्र माने जाते हैं। अपनी घोर परम तपस्या से सती सुरभी ने श्री महादेव जी को प्रसन्न करके कश्यप के संयोग से ग्यारह रुद्रों को पैदा किया। उन के नाम इस प्रकार हैं। अङ्गारक, सर्प, निऋति, सदस्पति, अजैकपात्, अहिबुध्न, उर्ध्वकेतु, ज्वर, भुवन, ईश्वर, मृत्यु और कपाल हैं। त्रिलोकी में इन परम ऐश्वर्यशाली रुद्रों को सती सुरभी ने कठिन तपस्या करके पैदा किया, सती सुरभी ने दो कन्याओं को भी पैदा किया, उन कन्याओं के नाम रोहिणी और गान्धारी था, रोहिणी रुद्र के समान सुन्दर कांतिमयी थी और गान्धरी भी परम यशस्वनी थी। रोहिणी ने चार कन्याओं को पैदा किया, वे चारों कन्याऐं संसार में प्रसिद्ध मानी जाती हैं। उन कन्याओं के ये नाम हैं। सुरुपा, हंसकीला, भद्रा, कामदुधा हैं। सुरुपा और कामदुधा ने दो पुत्रों को पैदा किया और हंसकीला ने कुछ मनुष्यों और महिषों को पैदा किया, और भद्रा ने गन्धर्वों को पैदा किया कि गन्धर्व उच्चैः श्रवाप्रभृत्ति श्वेत, लाल, पिशग, हरे, रुद्र, तथा अर्जुन वर्ण के आकाश में शीघ्र चल

ने वाले थे। ये ह गन्धर्व योनि में पैदा हुये थे। इन गन्धर्वों ने देवताओं के कार्य में सहायता की थी। इसके बाद सती सुरभी ने दक्ष नाम का एक वृषभ पैदा किया, वह वृषभ चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दर, गले में नीलमणि के बने हुये शुभ पत्र की शोभा से युक्त था। वह वृषभ अमृत के प्रभाव से उत्पन्न हुआ था, सती सुरभी ने उस वृषभ को महादेव जी के वाहन के लिये दे दिया। ये आदित्य गण, विश्वेदेवगण और साध्यगण सभी धर्म के पुत्र माने जाते हैं। मैंने आपसे कश्यप के पुत्रों, आदित्यों और रुद्रगणों का वर्णन किया है।

अरिष्टनेमि ने अपनी स्त्रियों से सोलह सन्तानों को उत्पन्न किया। बहुपुत्र के चार सन्तानें विद्युत के नाम से पुकारी जाती हैं। देवर्षि कृशाश्व के पुत्र देवप्रहरण के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे हर एक हजार युग के बीत जाने पर पैदा होते हैं। हे ब्राह्मणो ! ये तैंतीसगणों में अलग अलग हुये देवगण छन्दोज माने जाते हैं। जिस तरह संसार में रोजाना सूर्य निकलता और डूबता है, उसी प्रकार ये देवगण भी हर एक युगों में उत्पन्न होते हैं।

ऋषि बोले—हे सूतजी ! ये सभी देवगण अपने किस प्रभाव और कर्म से प्रसिद्ध हुये, और ब्रह्मा, विष्णु, महादेव जी का इन सब में आपस में क्या अन्तर है। आप हमको इन सब के विषय में विस्तार पूर्वक बतलाइये।

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! अब मैं आपको उन तीनों के आपस के अन्तर को बताऊंगा, आप सब प्रसन्न चित होकर सुनिये स्वयम्भू की तीन मूर्तियाँ मानी गयी हैं-राजस गुणमयी, तामसगुण-मयी, और सात्विक गुणमयी हैं। ये सभी मूर्तियाँ समय समय पर पैदा होती हैं। श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! इन सब के पारस्परिक अन्तर नहीं बतलाये जा सकते हैं, क्यों कि इनमें पारस्परिक तीनों गुणों को घटने बढ़ने का कारण विग्रह और अनुग्रह दो तरह के बन्धन माने

जाते हैं। बन्धन निवृति और प्रवृति के होते हैं। उन त्रिमूर्ति में ब्रह्माजी की मूर्ति रजोगुणी है रुद्र की मूर्ति तमोगुणी है और विष्णुजी की मूर्ति सतोगुणी है। अब उनके कर्मों का वर्णन कर रहा हूँ। ब्रह्मा जी की जो रजोगुणी मूर्ति है वह रजोगुण से युक्त प्रजाओं को उत्पन्न करती है जो भगवान विष्णु की सतोगुण से युक्त सतोगुणी है, वह प्रजाओं का पालन करती है। इसके बाद जो रुद्र की तीसरी तमोगुणों से युक्त तमोगुणी है, वह समय समय पर सभी प्रजाका संहार करती है। जिस समय रजोगुण के संयोग से ब्रह्माजी की मूर्ति प्रकट होती है उस समय भगवान विष्णु की पौरुषी मूर्ति अपने सतोगुण के संयोग से निवृत्ति हो जाती है जिस समय तमोगुण के संयोग से रुद्र की तमोगुणी मूर्ति प्रकट होती है उस समय ब्रह्माजी की रजोगुणी मूर्ति निवृत हो जाती है। भगवान विष्णु की सत्व-गुण के प्रभाव से जिस समय मूर्ति प्रकट होती है उस समय उनकी काल संज्ञक मूर्ति पैदा नहीं होती है। त्रिलोक में इस प्रकार भगवान के नाम कर्म और रूप के अनुसार सृष्टि के पालन और संहार के बन्धनों के कारण निवृत होते रहते हैं। जिस समय तक ब्रह्माजी की सत्ता कायम रहती है, उस समय तक रुद्र की मूर्ति का अस्तित्व नहीं रहता है। अतः इसी प्रकार जिस समय पुरुष की सत्ता रहती है, तब तक ब्रह्माजी की मूर्ति तथा रुद्र की मूर्ति की सत्ता नहीं रहती है। जिस समय रुद्र की मूर्ति की सत्ता रहती है उस समय तक ब्रह्ममूर्ति तथा पुरुष मूर्ति का अस्तित्व नहीं रहता। जिस प्रकार आश्रय, भेद और निर्मलता के कारण कई प्रकार के ढंग में होकर रक्त पीतादि विविध रूपों में लक्षित होते हैं उसी प्रकार भगवान स्वयम्भू सत्व, रजस और तमोगुण के कारण विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र के रूप में प्रकट होते हैं। वह एक ही स्वयम्भू तीन ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के रूप में व्याप्त है। एक ही स्वयम्भू की ये तीन मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियां वाही, पौरुषी और तीसरी अन्तकारी काल की मूर्ति हैं। रजोगुणी मूर्ति प्रजा को पैदा करती है सतोगुणी मूर्ति प्रजा का पालन करती है तथा तीसरा

तमोगुणी मूर्तिपूजा का संहार करती है। उस रजोगुणी ब्रह्माजी की मूर्ति से मरीचि और कश्यप जी पैदा हुए। प्रजा का संहार करने वाली तमोगुणी मूर्ति से रुद्र पैदा हुए और जो सतोगुणी भगवान विष्णु की मूर्ति है उनसे विष्णु जी पैदा हुए। अतः इस तरह त्रिलोकी में स्वयम्भू की ये तीन मूर्तियां प्रसिद्ध हैं। ये तीनों मूर्तियाँ सम्पूर्ण प्रजा के विविध प्रयोजनों को सिद्ध करने वाली हैं। मैं आपसे स्वयंभू की ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री इन तीनों मूर्तियों का वर्णन कर चुका हूँ। स्वयम्भू के पृथक्त्व और एकत्व को देखने वाले उनकी प्रतिष्ठा और मर्यादा को जानने वाले तत्व दर्शी ऋषियों ने स्वम्भू की एक मूर्ति वेदों, में धर्मशास्त्रों में, ग्रन्थों में निरूपित की है। स्वयम्भू की इस एकतत्व और पृथकत्व की बात पर प्रजाओं में भिन्न भिन्न तरह के मत हैं यह सबसे अच्छा पवित्र है यह अच्छा नहीं है ऐसा विचार रखते हैं। प्रजाओं में कोई तो ब्रह्माजी को ईश्वर मानते हैं कोई शिवजी को मानते हैं तो कोई भगवान विष्णु को ईश्वर समझते हैं। संसार में स्वयम्भू से अवश्य रूपों और नामों से देवताओं के रूप में पुकारे जाते हैं। इसीलिये जो मनुष्य इन तीनों त्रिमूर्तियों में किसी की भी बुराई करता है वह तीनों की बुराई मानी जाती है। जो मनुष्य इस तरह की भावना रखकर इन तीनों मूर्तियों को एक रूप में मानता है वह मनुष्य ब्रह्मवादी माना जाता है। विद्वान पुरुषों को देवताओं की बुराई नहीं करनी चाहिये। जो मनुष्य इन तीनों में एक की भी पूजा करता है वह तीनों की पूजा करता है। इस कारण इन तीनों देवताओं में कोई अन्तर नहीं माना जाता है। न इनमें एकत्व और पृथकत्व का भी विचार होता है। इनके एक होने का अथवा बहुत होने का पार तो कोई भी मनुष्य नहीं जान सकता है। अतः तीनों कालों में गुण भेद के वश होकर वे सभी प्रजाओं

को पैदा करके पालन करते हैं और समय आने पर स्वयं ही उनका संहार भी करते हैं। अतः वे तीनों एक ही रूप माने जाते हैं। स्वयं प्रजापति ब्रह्मा जी ही रजोगुणमय होकर प्रजा की सृष्टि करते हैं औ: सत्वगुणी होकर प्रजा का पालन करते हैं। इसके बाद फिर वही तमोगुणी होकर प्रजा का संहार करते हैं। हे ब्राह्मणो! एक आदि देव ही ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, लोकपाल, नारायण, ऋषि, दानव इत्यादि नामों से पुकारे जाते हैं। ब्रह्माजी और विष्णु जी प्रत्येक मन्वन्तर में और प्रत्येक कल्प में पुनः पुनः अवतार ग्रहण करते हैं। ब्रह्माजी अनुग्रह वश होकर अपने तेज, यश, बुद्धि, ज्ञान, और अपने पराक्रम इत्यादि गुणों से युक्त अपने समान प्रजाओं के रूप में उत्पन्न होते हैं। ब्रह्माजी ने रजोगुण युक्त होकर राजसी मूर्ति में अपने अंश से मरीचि और कश्यप जी को पैदा किया फिर ब्रह्माजी ने तमोगुणी होकर अपने अंश से कालरूपी रुद्र को पैदा किया और इसके बाद सत्वगुणमयी सात्विकी मूर्ति में पुरुष के अंश से भगवान विष्णु को पैदा करते हैं। ब्रह्माजी के अंश से पैदा होने वाली तीनों मूर्तियाँ तीनों कालों में पैदा हुए। कल्पान्त के समय में वह सप्तऋषि दिवाकर की मूर्ति में प्रकट होकर संवर्तक नाम के आदित्य होकर तीनों लोकों को भस्म करता है, काल होकर फिर वे ही रुद्र रूप में प्रजा का संहार करते हैं। विष्णु भगवान समय समय पर अनेक रूप और नामों के द्वारा प्रजा का पालन करते हैं। ब्रह्माजी की सत्वगुणमयी जो पौरुषी मूर्ति है, उसी के अंश से स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे प्रभु आकूति के गर्भ से पैदा हुए। इसके बाद स्वारोचिष मन्वन्तर में वे प्रभु तुषिताके गर्भसे तुषित देवगण के साथ पैदाहुए फिर औत्तम मन्वंतरमें वे तुषित नामसे पुकारे जाते हैं। वशवर्ती देवो के थाथ पैदा होने के कारण वे हरिवशवर्ती रूप में पुकारे जाते हैं।

इसके बाद फिर वे सत्या के गर्भ से पैदा होने के कारण सत्य नाम से पुकारे जाते हैं। तामस मन्वन्तर में वे हरि हर्य्या के गर्भ से हरि नाम के देवों के साथ हरि रूप में पैदा होते हैं। चारिष्णव मन्वन्तर में वे हरि फिर विकुण्ठा के गर्भ से आभूतिरजस नाम के देवों के साथ वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न हुये। चाक्षुष मन्वन्तर में वे धर्म के रूप में नारायण देव साध्य देवगणों के साथ साध्य रूप में पैदा हुए। वैवस्वत मन्वन्तर में वे कश्यप के संयोग से अदिति के गर्भ से वामन रूप में प्रकट हुए। उन्होंने केवल तीन पगों में ही पूरी पृथ्वी को नापकर समस्त देवों के साथ इन्द्र को दे दिया। सातों मन्वंतरों में वे प्रजापति की सात मूर्तियाँ पैदा हुईं। वामन भगवान अपने शरीर से इस सारे संसार में प्रविष्ट हो गये इस संसार में जिन जिन देवों के अंश से जो जो देवता पैदा होते हैं वे अनुग्रह बल तेज, बुद्धि, ज्ञान और पराक्रम में एक समान होकर पैदा होते हैं। इस संसार में जो जो गौरवशाली श्रीमान जीव या पदार्थ पैदा होते हैं वे सभी भगवान विष्णु के अंश से पैदा होते हैं। एक ही ईश्वर अपनी महा महिमामयी प्रभु शक्ति से अनेक रूपों में पैदा होते हैं और फिर अनेक रूपों में होकर वे एक रूप में हो जाते हैं। इसीलिये वे आदि देव प्रजापति ब्रह्मा जी के तेजोभेद के सभी मन्वंतरों में अच्छे मनवासी स्थावर जंगम सभी प्रजाएँ पैदा होती हैं, और वे ही सृष्टि के शुरू में पैदा होकर महाप्रलय पर्यन्त तक अपनी सत्ता रखते हैं और कल्प के अन्त में प्रत्येक बार रुद्र ही प्रजाओं का संहार करते हैं। योगेश्वर भगवान अपने योग बल से सूर्य के तेज के समान अपने और दूसरों के हजारों प्रति मूर्तियां बनवाकर उनके साथ व्यवहार करते हैं और अपनी अपनी कठिन तपस्या के द्वारा सभी भोगों को प्राप्त करते हैं। इसके बाद वे फिर सबका नाश करते हैं।

श्री वायु महापुराण का कश्यप प्रजा सृष्टि नाम का छयासठवाँ अध्याय समाप्त हुआ

—

सड़सठवाँ अध्याय

[कश्यपजी की प्रजाओं की सृष्टि]

ऋषि बोले—सूतजी के इस प्रकार कहने पर सभी ऋषियों ने इस प्रकार कहा कि हे रोम हर्षण ! सातों मन्वन्तरों में इन्द्र, विष्णु इत्यादि ये देव किस प्रकार पैदा हुए। उन श्रेष्ठ ऋषियों के इस तरह पूछने पर सूतजी ने सादर पूर्वक कहा—

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! प्रत्येक मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि करने हेतु ब्रह्माजी ने अपने मुख से जिन जिन देवताओं को पैदा किया वे सब मन्त्रमय शरीर कहे जाते हैं। (१) दर्श, पौर्णीमास, बृहत्, रथन्तर, आकूतिकी, आकूत की गिनती, वित्ति सुवित्ति, कृति, अधीष्ट अधीति, और विज्ञाति इत्यादि ये बारह मनु हैं ये बारह मनु ब्रह्माजी के पुत्र माने जाते हैं। ये बारह मनु बारह वर्षों के समूह सूचक माने जाते हैं। ब्रह्माजी ने इन बारह पुत्रों को देखकर कहा कि हे जय गण ! तुम सब और दूसरे देवताओं को पैदा करो, तुम लोग स्त्री परिग्रह, अग्नि होत्र, और यज्ञ इत्यादि करना और शुभ कार्यों को पूरा करो, ऐसा कह कर ब्रह्मा जी वहीं पर अन्तर्धान हो गये। उन सभी ब्रह्माजी के पुत्रों ने पितामह की बात न मान कर और समात संसार के अनेक कर्मों में अनेक दोष देखकर मनसा, वाचा, कर्मणा सिद्ध होने वाले कर्म को छोड़कर वे यम नियमादि के साथ रहने लगे। वे सभी सांसारिक कार्यों के कर्मों के फलों के अस्थायी फल को देखकर और सन्तानों की निन्दा करते हुये ममता और आलस्य से परे हो गये। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान का सहारा लेकर वे अपने असली तेज और बल का संचय करके मुक्ति पाने के लिए प्रयत्न करने लगे। उन सब को इस प्रकार देखकर ब्रह्माजी को क्रोध पदा हुआ और फिर ब्रह्माजी ने उप निरुत्साही देवों से इस प्रकार कहा कि हे वत्स। मैंने तुमको सृष्टि पैदा करने के लिए ही पैदा किया था। मैंने तुमको दूसरे बलव से पैदा नहीं किया और तुमसे यह भी कहा था कि तुम

लोग सन्तान पैदा करो और यज्ञ इत्यादि शुभ कार्यों को करो। लेकिन तुमने हमारी बात का उल्लंघन करके वैराग्य की ओर जाते हो, मैं तुम लोगों का अनादर करते हुए शाप देता हूं कि तुम सात बार इस पृथ्वी पर जन्म लोगे। ब्रह्माजी के इस तरह शाप देने पर जय नाम के देवगण उनकी स्तुति करने लगे, हे प्रभो! आप हमारे अपराधों को क्षमा करें हमने अज्ञान वश होकर ऐसा कार्य किया है। उन जय नामक देवों की स्तुति करने पर ब्रह्माजी बोले कि इस लोक में कोई भी देव, दानव, मनुष्य बिना मेरी आज्ञा के स्वतन्त्रता पूर्वक व्यवहार नहीं कर सकता, मैं इस पूरे संसार में व्याप्त हूँ मेरी बिना इच्छा के कोई भी शुभ या अशुभ कार्य नहीं कर सकता है। इस पूरे संसार में जो भी कुछ सत् या असत् पदार्थ हैं उन सबमें मैं व्याप्त हूँ। मैंने सृष्टि के बढ़ने के कारण ही यह सब कार्य शुरू किये हैं। इस सम्पूर्ण संसार के प्राणी तथा जीव समूह जो भी सोचते विचारते हैं वह सब हमको मालूम रहता है। यह सम्पूर्ण स्थावर जंगात्मक संसार मेरे बनाये हुए आशामय तत्व में स्थित है। उसे मिटाने की हिम्मत किसी की नहीं हो सकती। इस संसार में हमारी इच्छा के विरुद्ध कोई कार्य नहीं कर सकता है जय नाम के देवगणों को जिनको कि ब्रह्माजी ने शाप दिया था उनसे इस प्रकार कहकर फिर उसने कहा–कि हे देवगणो। तुमने पहले मेरे साथ बुरा व्यवहार करके संसार के कार्यों से ऊबकर सन्यास ले लिया था और उसी भावना से तुम्हारे किये गये प्रयत्न भी नष्ट हो गये। लेकिन इसका फल तुम्हारे सबके लिये अच्छा होगा, तुम्हारे वे जन्म सुखदायी होंगे। हे देवो! तुम्हारी वह पैदायश स्वयं ही होगी, और स्वायम्भुव से वैवस्वत मन्वन्तर तक छैः मन्वन्तरों में तुम अविद्या और मोह

रहित होकर जन्म को सुख प्राप्त करोगे। इसके बाद उन जय नाम के देवगणों से इस प्रकार बात करके फिर ब्रह्माजी ने उनको एक पुराना श्लोक सुनाया। जिसका अर्थ इस प्रकार है कि ऋग् यजु साम तीनों वेदों की विद्या, ब्रह्मचर्य, सन्तानोत्पत्ति, श्राद्ध यज्ञ तथा दान इन समस्त सत्कर्मों के करने वाले सत्वगुण से युक्त होकर दूसरों के द्वारा प्रशंसित जीवन बिताते हुए निवास करते थे।

ब्रह्माजी ने ऐसा श्लोक सुनाकर उन जय नामक देवगणों से फिर कहा–हे देवगणो! अन्तिम वैवस्वत मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर आप हमारे समीप पुनः आओगे। और सभी तुम्हें सदा रहने वाली सिद्धि मिलेगी वह कहकर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्धान हो गये। इसके बाद वे देवगण निर्भय हो गये और अणिमा आदि से युक्त होकर योग के अभ्यास में मन लगाने लगे। इससे उन सबके शरीर समुद्र के समान विशाल बारह सरोवर बन गये जो 'जय' नाम वाले सरोवर कहलाये।

इसके बाद स्वायंभू मन्वन्तर में वे देवगण अजिता के गर्भ से रुचि के १२ पुत्रों के रूप में पैदा हुए। जो अजित गण कहलाये। इनके नाम इस प्रकार हैं–

विधि मुनय क्षेत्र, नन्द, अव्यय, प्राण अपान, सुधामा, क्रतु शक्ति, ध्रुव और स्थिति ये बारह अजित हैं जो ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाते हैं। ये स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ के भाग देवों के साथ ही अधिकारी माने गये।

पुनः ये स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषिता के गर्भ से मनु पुत्र हुए।

उस समय ये तुषिय और प्राण इन दो नामों से प्रसिद्ध हुये। यज्ञ का भाग भी पाने का इन्हें अधिकार मिला। फिर औत्तम मन्वन्तर में ये सत्या के गर्भ से उत्तम मनु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुये। और उसी मन्वन्तर में ये सत्य नाम से प्रसिद्ध हुए। पुनः तामस नामक मन्वन्तर में तामस की पत्नि हर्या में हरि नाम से उत्पन्न हुये। इसके बाद चारिष्णव नामक मन्वन्तर में वे वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुये। और साध्या के गर्भ से धर्म के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। इसके बाद ये देवगण वैवस्वत मन्वन्तर के प्रारम्भ में त्रेता युग के प्रारम्भिक समय में अंश भाग से अदिति में कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए। इस प्रकार इस वैवस्वत मन्वन्तर में इनकी १२ आदित्यों के नाम से ख्याति हुई।

ब्रह्मा के शाप से होने वाली देवताओं की इन सात उत्पत्तियों का वर्णन जो श्रद्धा पूर्वक पढ़ते हैं वे पाप में लिप्त नहीं होते। अब आप लोग क्या सुनना चाहते हो सो कहो

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! अब आप हमको दैत्य, दानव, गन्धर्व, उरग, सर्प, राक्षस, भूत पिशाच, पशु, पक्षी, लता और वृक्षादि की उत्पति तथा विनाश का वृतान्त सुनाने की कृपा करो।

सूत जी बोले–हे ऋषियों! कश्यप के द्वारा दिति के दो पुत्र हुए। वे दोनों पुत्र उनकी अन्य सभी सन्तानों में सबसे ज्येष्ठ (बड़े) थे। कश्यप के अश्वमेध यज्ञ में उनका प्रथम पुत्र सौतल दिवस के समय गर्भ से निकल कर पुरोहित के सिंहासन पर जा बैठा। इस अद्भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु कहलाया।

ऋषियों ने पूछा–हे प्रभो! दैत्यों का स्वामी हिरण्यकशिपु की कथा को विस्तार पूर्वक सुनाइए।

सूतजी बोले–हे ऋषियो! प्राचीन काल में पुष्कर में कश्यप का एक अश्वमेध यज्ञ हुआ।

उसमें सभी देवता, ऋषि, गन्धर्व समूह ने आकर उस यज्ञ की शोभा को बढ़ाया। उस यज्ञ में शास्त्रीय विधि के अनुसार आख्यान आदि के लिये पाँच सोने के सुन्दर सिंहासन स्थापित किये गये। तीन पर कुशा के आसन बिछे थे, चौथे पर कूर्च (कुशा की मुट्ठी) थी और पाँचवे पर फलक था। चार मुख्य पुरोहतों के लिये उन चार की स्थापना की गई थी। उनमें से पाँचवाँ जो सर्वश्रेष्ठ आसन था वह होता के लिये था। वह दिव्य आसन नीचे से ऊपर तक स्वर्णमय था। गर्भवती दिति कश्यप की पत्नी उनकी बगल में बैठी थीं। उनके उदर में दस हजार वर्ष का गर्भ था। ठीक उसी समय वह गर्भ माता के उदर से निकलकर उस स्वर्ण सिंहासन पर जा बैठा। वहीं से पाँचवे वेद का व्याख्यान देने लगा। उस बालक का ऋषियों ने तदनुकूल नाम रख दिया। इस अद्भुत कर्म के कारण उसको सबने हिरण्यकशिपु कहा। उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष था और छोटी बहन सिंहिका थी। वह सिंहिका विप्रचित्ति की पत्नी और राहु की माता हुई।

उस दैत्यों में श्रेष्ठ हिरण्यकशिपु ने बहुत ही कठोर तप किया। एक लाख वर्ष तक नीचे सिर करके निराहार रहकर तप किया। हे ब्राह्मणो! इससे ब्रह्माजी उस पर प्रसन्न हुए और उसे वरदान दिया; जिससे उसने सभी देवताओं के धर्मों को प्राप्त कर लिया तथा सभी जीवों द्वारा मृत्यु को प्राप्त नहीं होना और योगबल द्वारा देवताओं को पराजित करने का वरदान प्राप्त किया। इसके अलावा उसने वर मांगा कि असुर और दानव भी देवताओं के समान पराक्रम शाली हो जांय। वायु में जो महान ऐश्वर्य है वह भी हमें प्राप्त हो जाय। ब्रह्माजी उसकी इच्छानुसार वरदान देकर अन्तर्धान हो गये।

उसके ऐश्वर्य को पुराने लोग श्लोकों में गाया करते थे। वास्तव में वह हिरण्यकशिपु बड़ा प्रभावशाली था। यह बात सबको मालूम है कि उस हिरण्यकशिपु को मारने के लिये नरसिंह रूप वाले विष्णु भगवान स्वयं ही आये थे। उन्होंने नखों से उस दैत्य को

छाती को फाड़ डाला। किन्तु उनके नख न तो गीले हुए न सूखे ही रहे, ऐसा कहा जाता है।

हिरण्याक्ष के महा बलशाली उत्कुर, शकुनि, कालनाभ, महानाभ और भूत सन्तापन नामक पाँच पुत्र थे। हिरण्याक्ष के दो पुत्र बड़े वीर थे जो देवों द्वारा पराजित नहीं किये जा सकते थे। उनके पुत्र पौत्रादि एक लाख थे जो वाडेयगणों के नाम से विख्यात थे। ये सब तारकामय संग्राम में नष्ट हो गये।

हिरण्यकशिपु के चार बलवान पुत्र थे। सबसे बड़े का नाम प्रहलाद था। उससे छोटा अनुह्लाद था उनसे छोटे संह्लाद और ह्रद थे। अब ह्रद के पुत्रों के नाम सुनिये। ह्रद के ह्राद तथा निसुन्द नामक दो पुत्र हुए उसमें निसुन्द के सुन्द और उपसुन्द दो पुत्र हुए। सुन्द के ब्रह्माण्ड और मूक और मारीच हुए जो ताड़का से उत्पन्न थे। यह ताड़का रामचन्द्रजी के द्वारा मारी गई। मूक को किरात युद्ध में सव्यसाची अर्जुन ने मारा। इन दैत्य के वंशधर तीन करोड़ तक थे। उन सबका संहार सव्यसाची ने ही किया।

अनुल्हाद के पुत्र वायु और सिनीवाली हुए। इनके पुत्र पौत्रादिकों की संख्या लाखों थी। जो सबके सब हलाहल गण के नाम से पुकारे जाते हैं। प्रहलाद का पुत्र विरोचन हुआ। उसके पांच छोटे भाई और कहे जाते हैं जिनके नाम गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, वाष्कल और शुम्भ हैं। इनमें शुम्भ निशुम्भ और विष्वकसेन ये तीनों गवेष्ठी के पुत्र थे। जम्भ का पुत्र शतदुन्दुभि था। जम्भास्य, शतदुन्दुभि, दक्ष और खण्ड ये चार दम्भ के पुत्र थे। विरोध, मनु, वृत्रायु और कुशलीमुख ये चार वाष्कल पुत्र थे। अब कालनेमि के पुत्रों के वर्णन करता हूँ सो सुनो–

कालनेमि के ब्रह्मजित, क्षत्रजित, देवान्तक और नारान्तक पुत्र

थे। शुम्भ के पुत्र इस प्रकार थे–धनुक असिलोमा, नाबल, गोमुख, गवाक्ष और गोमान ये शुम्भ के पुत्र कहे गये हैं। विरोचन का केवल एक पुत्र हुआ जिसका नाम बलि था जो परम प्रतापी था। उस बलि के सौ पुत्र हुए जो सबके सब राजा हुए। उन सौ पुत्रों में चार पुत्र महान पराक्रमी और प्रबल थे। उनमें सबसे बड़ा सहस्रबाहु बाण था, यह बाण बड़ समृद्धशाली देव था। अन्य तीन कुम्भनाभ गर्दभाक्ष और कुशि थे। इनके अतिरिक्त अन्य भी थे। बलि की शकुनी और पूतना नामक दो पुत्री थीं बलि के पुत्र पौत्रों की संख्या हजारों तक थी वे सब बलिगण कहलाते थे। वे सब परम विक्रमशील थे। इन्द्र के समान तेजस्वी बाण की राजधानी लौहित्यपुर में थी।

पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दिति ने कश्यप जी को सेना द्वारा संतुष्ट किया और वरदान मांगा कि भगवन्! आदिति के पुत्रों ने मेरे सभी पुत्र नष्ट कर दिये हैं अतः इन्द्र को भी मारने वाला एक पुत्र मुझे वरदान में दीजिए। ऋषि ने कहा–ऐसा ही होगा। दिति ने हर्षित होकर कुशल वन में तपस्या आरम्भ की उस समय सहस्राक्ष इन्द्र ने उसकी भली भांति परिचर्या की। उससे प्रसन्न होकर दिति ने इन्द्र से कहा।

दिति बोली–हे देवों में श्रेष्ठ इन्द्र! तुम्हारे कल्याण के अभी दश वर्ष और शेष हैं जब तुम अपने भाई को देखोगे। तब मेरी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण ह जायेंगी उसके साथ समस्त त्रिलोक विजय का मैं भी सुख अनुभव करूँगी। मध्याह्न के समय ऐसा कह कर वह इन्द्र की दोनों जांघों पर सिर रखकर सो गई इन्द्र ने अवसर पाकर अपवित्र अवस्था में दिति के गर्भ में प्रवेश किया और गर्भ को वज्र से सात भागों में काट दिया।

वह गर्भ रोने लगा। इन्द्र ने उसे रोने से मना किया और फिर उस कटे हुए सात टुकड़ो को भी पुनः सात सात टुकड़ों में काट दिया। तब तक दिति जग गई और इन्द्र से बोली–इसे मारो मत, मत मारो। इन्द्र बज्र सहित बाहर निकल आया और हाथ जोड़कर दिति से बोला–हे देवि! आप अपवित्र अवस्था में सो गई थीं। आपके पैरों पर केश बिखरे हुए थे। ऐसे अवसर को पाकर मैंने अपने शत्रु का संहार कर दिया। मुझे क्षमा कर दीजिये।

दिति को इस गर्भ से इस प्रकार निष्फल हो जाने पर बड़ा दुख हुआ। फिर उसने इन्द्र से कहा–यदि मेरे ही अपराध से यह मेरा गर्भ निष्फल हुआ है तो इसमें कोई तुम्हारा अपराध नहीं। क्योंकि शत्रु का बध करने में कोई दोष नहीं। इससे मैं तुम्हें शाप नहीं दे रही हूँ। तुम्हारा मंगल हो। अब मेरे गर्भ का कल्याण करो। स्वर्ग में मेरे इन्द्र पुत्रों को सात स्थान प्राप्त होने चाहिये। मेरे ये पुत्र वायु के सात स्कन्धों में मरुत नाम से विचरण करें। उनके एक एक गण में सात-सात मरुत हों। इनका प्रथम स्कन्ध पृथ्वी पर, दूसरा सूर्य मण्डल पर, तीसरा चन्द्रमा में, चौथा ज्योतिष मण्डल में, पाँचवाँ स्कंध ग्रहों में, छटा सप्तर्षि मन्डल में तथा अन्तिम सातवां ध्रुव मन्डल में होगा। मेरे ये पुत्रगण ऊपर कहे स्कन्धों में सदा घूमा करें। और तुम्हारे द्वारा रखे गये 'मरुत' नाम से प्रसिद्ध हों। इस प्रकार माता ने तथा पुत्र इन्द्र ने उन सबका नामकरण भी किया।

इन्द्र के द्वारा 'मा रोदी' अर्थात् मत रोओ कहने पर उन सबका नाम मरुत पड़ा। उनके अलग अलग नाम इस प्रकार हैं—सत्व ज्योति, आदित्य, सत्य ज्योति, तिर्यक ज्योति, सज्ज्योति, ज्योतिष्मान् और रोहित ये प्रथम स्कन्ध के मरुत गण हैं। ऋतजित, सत्यजित, सुषेण, सेनजित, सत्यमित्र, अभिमित्र, और हरिमित्र, ये द्वितीय मरुत गण हैं। ऋत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिय, आह्वय, ये तीसरे तथा चौथे स्कंध के मरुत गण हैं। ईदृक, अन्यादृक्, प्रतिकृत, यादृक, ऋक् समिति

और संरम्भ ये पाँचवें मरुत गण हैं। ईदृक, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस समिता, समिदृक्ष और प्रतिदृक्ष ये एक मरुत गण हैं मरुतिद, सरत, दिश, यजु, अनुदृक्, साम, मानुषीविष, दैत्य, देव ये सात सात के एक गण हैं, ये सभी गण उनचास मरुत गण के नाम से प्रसिद्ध हैं। इनके नाम और संख्याकी गणना इन्द्र और दिति ने की है। इन सबके ठीक प्रकार नाम रखने के बाद दिति ने इन्द्र से कहा कि हे पुत्र ! ये सभी हमारे पुत्र वायु स्कन्धों में घूमा करें, ये तुम इनको इस प्रकार बताओ, ये सभी पुत्र देवताओं के साथ सुख पूर्वक घूमा करें। दिति के इस प्रकार कहने पर देवराज इन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा कि हे माता ! आप जिस प्रकार हमसे कहेंगी, हम वैसा ही करेंगे। ये आपके सभी पुत्र देवताओं के समान हैं ये देवताओं के साथ यज्ञ में भाग लेते हैं।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! इन्हीं कारणों से मरुतगण देवताओं के साथ रहते हैं और इन्द्र के भाई होने के कारण इनको अमरत्व प्राप्त हुआ है, ये सभी दिति के पुत्र माने गये हैं ये सभी दिति के पुत्र होकर भी अमर माने जाते हैं दिति मां इस प्रकार का शब्द सुनकर बहुत खुश हुई, और दिति अपने घर चली गई और देवराज इन्द्र भी स्वर्ग को चले गये। जो भी प्राणी इन मरुत गणों की कथा को सुनता और पढ़ता है वह निरोग दीर्घायु होकर सुख और शान्ति प्राप्त करता है।

श्री वायु महापुराण का कश्यप की प्रजा-सृष्टि का वर्णन
नामक ६७वां अध्याय समाप्त।

अड़सठवाँ अध्याय

(कश्यप की सन्तानों की सृष्टि)

सूतजी बोले–हे ऋषियो ! अब मैं दनु के पुत्रों का वृत्तान्त तुम्हारे लिये सुनाता हूं सो सुनो। दनु के वे दोनों पुत्र अपने वंश में परम विख्यात और महान पराक्रमी दैत्य हुए। उन सबमें विप्रचित मुख्य था जिनकी संख्या सौकड़ों थी। वे सब पराक्रमी थे। उन सभी को

वरदान मिले हुए थे, वे तपस्वी, दृढ़ प्रतिज्ञ, परम विवेकी और क्रूर थे तथा मायावी थे। ब्राह्मण धर्म के विरोधी और यज्ञादि से विपरीत बुद्धि वाले थे। उन्हें दानव कहा जाता था। उनके प्रधान दानवों के नाम कुछ इस प्रकार हैं—द्विमूर्धा शंकुकर्ण शंकु निरामय शंकुकर्ण महाविश्व गवेष्ठि दुन्दुभि अजामुख शिल-वामनस मरीचि रक्षक महागार्ग्य अंगिरावृत विक्षोभ्य सुकेतु सुवीर्य सुहृद इन्द्रजित विश्वजित सुरविमर्दन एकचक्र सुबाहु तारक वैश्वानर पुलोमा प्रवीण महाशिरा स्वर्भानु वृषपर्वा महाअसुर मुण्डक धृतराष्ट्र सूर्य चन्द्र इन्द्र तापिन सूक्ष्म निचन्द्र अर्णनाभ महागिरि असिलोमा सुकेश सदबलक गगनमूर्धा कुम्भनाभ महोदर प्रमोदाह कुपथ पराक्रमी हयग्रीव असुर विरूपाक्ष महाअसुर सुपथ अज हिरण्यमय शतमायु शम्बर शरभ और शलभ ये प्रमुख दानव गण कहे गये हैं। सूर्य और चन्द्र ये दोनों पहले असुरों के देवता थे और इस समय ये देवताओं के देवता हैं। दनु के वंश में पैदा हुए ये दानव प्रधान हैं। ये असंख्य और अनन्त सन्तानों वाले हैं।

इनके अलावा एकाक्ष, ऋषभ, अरिष्ट, प्रलम्ब, नरक, इन्द्रबाधन, केशी, शंक, धेनुक, गवेष्ठि गवाक्ष, पराक्रमी, तालकेतु ये दनु के पुत्र मेरे विचार में मनुष्यों के समान धर्म कर्म का आचरण करने वाले हैं।

विप्रचिति के चौदह पुत्र दैत्यों और दानवों के संघर्ष में सिंहिका के संयोग से उत्पन्न हुए। इस कारणवश वे चौदह महान असुर सैंहिकेय के नाम से विख्यात हुए। उन चौदहों के नाम इस प्रकार हैं—शतगाल, बलवान न्यास, शाम्ब, अनुलोम शुचि वातापि सितांशुक, हर कल्प कालनाभ भौम और नरक। इन सबमें बड़े का नाम राहु था जो चन्द्रमा और सूर्य को कष्ट देने वाला था। १४ पुत्र जो सिंहिका हैं ये देवताओं से भी न जीते जाने वाले थे। इनके अलावा

भी एक दस हजार राक्षसों का समूह (ग्रोह) है वह भी सिंहिकेय (गण) के नाम से प्रसिद्ध है। उनको जामदग्न्य परशुराम ने नष्ट किया।

स्वर्भानु की कन्या थी प्रभा, पुलोमा की पुत्री शची थी। मय की पुत्री, उपदानवी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी, पुलोमा और कालिका दोनों वैश्वानर की पुत्रियां थीं। प्रभा का पुत्र नहुष था, शचीका पुत्र जयन्त था। शर्मिष्ठाका पुत्र पुरु और उपदानवी का दुष्यन्त नामक पुत्र उत्पन्न हुए। वैश्वानर की दोनों पुत्री कालिका और प्रलोमा, मरीचि पुत्र कश्यप की पत्नी थीं। उन दोनों के एक हजार दानव पैदा हुए। ये पौलोम और कार्तिकेय कहलाये। ये दानव महान बलशाली थे सव्यसाची अर्जुन ने इनका बध किया।

मयदानव के पुत्र भी बड़े बलवान, वीर और पराक्रमी थे। उनके नाम मायावी दुन्दुभि वृष महिष वाजिक और वज्र कर्ण थे। मय दानव की पुत्री का नाम मन्दोदरी था। यह दैत्य दानवों की सृष्टि का वर्णन हुआ। दनायुषा के अरुरु, बाल, जन्म वृत्र और विष ये पाँच पुत्र थे। अरुरु का पुत्र धुन्धु था जो बड़ा ही क्रूर था उसका संहार उतंग के कहने पर कुवलाश्व ने किया।

बलि के दो तेजस्वी और पराक्रमशाली पुत्र थे। कुम्भिल और चक्रवर्मा। यह बलि पूर्व जन्म में कर्ण था। विरुच के भी काल और वर नामक दो पुत्र थे। विष के श्रद्धहा यज्ञहा पशुहा और ब्रह्महा नामक चार क्रूर पुत्र थे।

अब वृत्र का वर्णन सुनाता हूँ सो सुनो–इन्द्र के साथ घोर युद्ध करते समय इस वृत्र के श्वांसों से महाबलशाली भरण पोषण करने वाले बहुत से राक्षसों की उत्पत्ति हुई। उनमें से एक लाख तो शिवजी के अनुचर हैं। शिव के अनुचर ये राक्षस गण सबके सब धार्मिक और ब्रह्मज्ञानी तथा सूक्ष्म मूर्तिधारी हैं।

प्रवाही ने यज्ञ क्षेत्र में सुप्रसिद्ध गायक पुत्रों को पैदा किया जिनके नाम हैं–सत्वन, सत्वात्मक, कलाप, वीर्यवान, कृतवीर्य, ब्रह्मचारी, सुपाण्ड्र, पन तरण्य और सुचन्द्र। ये दशों पुत्र दैतों के गन्धर्व हैं इनका वर्णन मैंने पीछे कर दिया है।

इति श्री वायु पुराण का उपोद्घात् पादका कश्यप प्रजा सर्ग नामक ६८ वाँ अध्याय समाप्त हुआ

उनहत्तरवाँ अध्याय

[कश्यप की प्रजा-सृष्टि]

सूतजी ने कहा–हे ऋषियो ! पुण्यात्मा गन्धर्व और अप्सराएँ मुनि की ही सन्तानें हैं। चित्रसेन, उग्रसेन, अर्णायु अनघ, धृतराष्ट्र, पुलोमा, सूर्यवर्चा, युगपत, तृणपत, कालि, दिति, चित्रण भ्रमिशिरा पर्जन्य, कलि और नारद ये सोलह मुनि के पुत्रदेव गन्धर्व कहे गये हैं। इन सबसे छोटी कल्याणमयी अप्सराएँ हैं जो संख्या में चौंतीस हैं। इनके नाम निम्न प्रकार हैं।

अन्तरा, दारवत्या, प्रियमुख्या सुरोतमा, मिश्रकेशी, चांशी, पर्णिनी, अलम्बुशा, मारीचीपुत्रिका, विधुद्वर्षा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्षणा, देवी, रम्भा, मनोरमा, सुवरा सुवाहु पुर्णिता, सुप्रतिष्ठता मण्डरीका सुगन्धा सुदन्ता सुरसा हेमा शारद्वती सुवृत्ता कमला सुभुजा और हंसपादा। (गिनने पर इनकी संख्या ३१ होती है) ये लौकिक अप्सराएँ कही जाती हैं। ये मुनि की सन्तान हैं। पूर्व में जिन गन्धर्व पुत्रियों का निर्देश किया है उनके नाम इस प्रकार हैं– सुयशा गान्धर्वी विद्यावती चारुमुखी सुमुखी और बरानना।

इनमें सुयशा के प्रचेता के संयोग से पराक्रमी-यक्षगण उत्पन्न हुए। इनके नाम थे कम्बल हरिकेश कपिल कांचन और मेघमाली। सुयशी की चार अप्सराएँ कन्याएँ कही हैं। उनके नामों को मैं भली भांति जानता हूं–उनमें सबसे बड़ी लोहेयी थीं। उससे छोटी भरता। उसके बाद जो दो थीं उनके नाम कुशांगी और विशाला थे-ये दोनों अनुपम सुन्दरी अप्सराएँ थीं। ये चारों कन्याओं से महापराक्रमी

लोहेय भरतेय कुशांगेय और विशालेय नाम के चार यक्ष पैदा हुए थे। विक्रान्त ने श्रेष्ठ गन्धर्वों के नायक बालेय नामक गन्धर्वों को पैदा किया विक्रय एवं औदार्य गुण से सम्पन्न, महाबलवान एवं पराक्रमी थे। जिनकी नामावली निम्न प्रकार है- वे महावीर चित्रांगद, चित्रवर्मा महाभाग्य शाली चित्रकेतु और बलवान सोमदत्त थे। तीन कन्यायें थीं। जिनके नाम क्रमशः—अग्निका, कम्बला तथा तीसरी वसुमती थी। ये अनुपम रूपवती एवं तेजस्विनी थीं। इन तीन गन्धर्वों की कन्याओं के कुमार नामक गन्धर्व ने तीन पुत्रों को उत्पन्न किया जो प्रमुख गन्धर्व माने जाते थे। ये आग्नेय काम्बलेय और वसुमती नाम वाले थे। महान पराक्रमी औह युद्ध कौशल में निपुण थे। इन गन्धर्व गणों से यह समस्त चराचर लोक व्याप्त हो गया। महात्मा विक्रान्त ने विद्यमान, रूप, विद्या एवं सम्पत्ति से समृद्ध गन्धर्वों को भी उत्पन्न किया। उनके नाम थे हिरण्यरोमा, कपिल, सुलोमा मागध, चन्द्रकेतु, गांग एवं महाबलवान गोद थे। इनके अलावा सुन्दर नैनों वाली शिवा और सुमना नामक दो कन्यायें थीं। उन कन्याओं से विश्रवा ने शैवेय, विक्रान्त और सोमनस नामके गणों को पैदा किया, ये तीनों गण बहुत विद्वान थे, इन तीनों विद्वान गणों से यह लोक व्याप्त हो गया और फिर इन गणों से सौ विद्याधर गण उत्पन्न हुये ये सभी विद्याधर आकाश में बिहार करने वाले थे। इनके बाद फिर विक्रान्त से अश्व के मुख की तरह बहुत से किन्नर उत्पन्न हुये, उन किन्नरों के नाम इस प्रकार हैं—समुद्रसेन, कालिन्द, महानेत्र, महाबल, सुवर्णघोष, सुग्रीव, महाघोष इत्यादि थे। ये सभी किन्नर अश्वमुख धारी थे। हे शांशपायन जी! इसके बाद भी फिर उन्हीं विक्रान्त से मनुष्य मुखधारी किन्नर भी उत्पन्न हुये। उन मनुष्य मुखधारी किन्नरों के नाम भी इस प्रकार हैं-हरिषेण सुषेण, वीरषेण रुद्रदत्त, इन्द्रदत्त, चन्द्रद्रुम, महाद्रुम, बिन्दु, बिन्दुसार इत्यादि थे। ये सभी मनुष्य मुखधारी किन्नर चन्द्रवंश के थे, ये सभी श्रेष्ठ सुन्दर किन्नर लोक में प्रसिद्ध थे। हे ऋषियो! इन किन्नरों से सैकड़ों गण

उत्पन्न हुए, ये सभी गण नाच गान में बहुत चतुर थे। ये सभी यक्षगण लौहेय नाम से लोक में प्रसिद्ध हुए। सुन्दरी सुरविन्दा नाम की कन्या बहुत सुन्दर और सिद्धों के आदर करने योग्य थी। कंरालक ने उषाया के तन नाम के भूतगणों को स्वयं ही उत्पन्न किया था। अब मैं उनके नाम भी आपको बताऊँगा। ये सभी भूतों के गण, काल भवन, निर्देशक और विशेषक नामों से पृथ्वी पर प्रसिद्ध थे और जो आकाश में घूमने वाले भूतों के गणों में श्रेष्ट होते हैं, वे भूत गण इस लोक में भूतनायक नाम से प्रसिद्ध हैं। ये भूतगण पेड़ों पर तथा आकाश में घूमते फिरते हैं। हे ऋषियो! मैंने आपको इस प्रसंग में देव गन्धर्वों के बारे में बताया है। उन देव गन्धर्वों को देवताओं की पूजा करनी चाहिये। नाच गीत में चतुर तथा सभी लोकों में रहने वाले व्यवहार में कुशल देवगण इन गन्धर्वों के साथ, विष्णु सुरगुरु कमल नेत्र नारायण भगवान प्रजापति ब्रह्माजी सार संसार के कल्याण कर्त्ता भगवान महादेव जी, इन्द्र रुद्रगण आदित्यगण और वसुगण, इन सब की पूजा करते थे। देवताओं से पूजित वरिष्ण ने आठ पुत्रों को पैदा किया, इनमें सबसे बड़े का नाम हंस था, कनिष्ठ का नाम अन्यथा बीचके पुत्रों का नाम हहा हूहू था, चौथे पुत्र का नाम धिषण था, पांचवे पुत्र का नाम वासिरुचि था छठे पुत्र का नाम तुम्बुरु था और इसके बाद विश्वावसु नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। इन पुत्रों की पत्निबहुत सी दिव्य सुन्दर अप्सराएँ थीं. इन अप्सराओं के नाम इस प्रकार हैं–वरिष्टा अनवद्या अनवशा अन्वन्ता मदनप्रिया अरुपा सुभगा और मासी इन सबको अरिष्टा ने उत्पन्न किया, तुम्बुक के मनोवती और सुकेशा नाम की दो कन्यायें थीं। इनके अलावा पंचचूड़ और दैविकी नाम की दस सुन्दर स्वर्ग की अप्सराएँ हैं. उन अप्सराओं के नाम ये हैं–मेनका सहजन्या पर्णिनी पुञ्जिक

स्थला घृतस्थला घृताची विश्वाची पूर्वची प्रम्लोचा और अनुम्लोचन्ती हैं। इन दस अप्सराओं के अलावा एक ग्यारहवीं अप्सरा और भी है वह अप्सरा भगवान नारायण के उस भाग से सब अंगों से निर्दोष और सुन्दर उर्वशी नाम से पैदा हुई। यह अप्सरा स्वर्ग की ग्यारहवीं अप्सरा मानी जाती है। ब्रह्मज्ञानी और प्रसन्नचित्त मेनकी कन्या मेनका थी। ये सभी अप्सराएँ ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यास में तत्पर रहने वाली कही जाती हैं उन अप्सराओं के चौदह पवित्रगण प्रसिद्ध हैं आहूत और शोभयन्त उनमें से दो गणों के नाम हैं। आहूतगण की अप्सराएँ ब्रह्माजी की मानस कन्याएँ हैं और शोभयन्त की अप्सराएँ मनु की कन्याएँ हैं। वेगवंत की अप्सराएँ अरिष्टा की कन्याएँ हैं, अग्नि सम्भव नाम के गण ऊर्जा के संयोग से पैदा हुए, आयुष्मती नाम की अप्सराएँ सूर्य की किरणों से पैदा हुईं कल्याण प्रदायनी कुरु नाम की अप्सराएँ चंद्रमा के तेज से पैदा हुईं उस चंद्रमा का तेज मर्भ में आहित हुआ। शुभा नाम की अप्सराएँ यज्ञ से पैदा हुईं ऋक् और साम से अन्य अप्सराएँ पैदा हुईं वे अप्सराएँ बहिन नाम से प्रसिद्ध हुईं और वारिजा नाम की अप्सराएँ अमृत से पैदा हुईं वे अप्सराएँ अमृत नाम से प्रसिद्ध हुईं सुदा नाम की अप्सराएँ वायु से पैदा हुईं। भवा नाम की अप्सराएँ भूमि से पैदा हुईं, रूचा नाम की अप्सराएँ विद्युत से पैदा हुईं भैरवा नाम की अप्सराएँ मृत्यु से पैदा हुईं शोभयंती नाम की अप्सराएँ काम से पैदा हुईं ये सभी अप्सराएँ अप्सराओं के चौदह गण माने जाते हैं। इंद्र विष्णु इत्यादि देवताओं ने इन अप्सराओं में सुंदरता प्रदान की। इन सभी अप्सराओं में परम सुंदरी तिलोत्तमा को सर्व सुंदरी माना गया है।

प्रभावती सुरनारी ब्रह्माजी के अग्निकुण्ड से उत्पन्न हुईं, ये प्रभावती सुरनारी स्वरूप और योवन से भरपूर थीं। वेदवती सुरनारी ब्रह्माजी के वेदीतल से उत्पन्न हुईं, ये वेदवती भी प्रभावती की तरह योवन और स्वरूप से समृद्ध थी। इन दोवों से सुन्दर रूपवाली हेमानाम की सुन्दर सुरनारी यम की कन्या थी, इनके शरीर की कान्ति आग में तपते हुए लोहे के समान थी इनकी आंखें बहुत सुन्दर थीं। इसी प्रकार बहुत सी सुन्दर अप्सराएँ उत्पन्न हुईं। ये अप्सराएँ बहुत से देवों और ऋषियों की माता और पत्नी बनीं। ये सभी अप्सराएँ एक समान चम्पा के फूल की तरह गोरे रंग की और सुगन्धित शरीर वाली थी ये मद्यपान नहीं करती थीं और बिना मद्यपान के ही पति के साथ सहवास करती थीं इनके स्पर्श करने से इनके पति सन्तुष्ट होकर आनन्द विभोर हो जाते हैं। पुराने समय की बात है कि नारद नाम के पर्वत पर प्रजापति ब्रह्माजी का वीर्य स्खलित हो गया, उस वीर्य के स्खलित होने से उस जगह नारद और पर्वत नाम के दो ऋषि उत्पन्न हुए। इन दोनों भाइयों के एक बहिन और थी, जो अरुन्धति नाम से प्रसिद्ध हैं ये अरुन्धति प्रजापति ब्रह्माजी की तीसरी सन्तान मानी जाती है। उसी पर्वत पर सूर्य नारद और पर्वत पर इन सबका जन्म हुआ।

विनता के दो पुत्र हुए, जो अरुण और गरुड़ नाम से प्रसिद्ध हुए। इन दोनों भाइयों की सहोदरा छत्तीस छोटी बहिन भी हैं। गायत्री आदि के छन्द पंखों से उड़ने वाले समस्त पक्षी और सभी विभिन्न दिशाओं में रहने वाले सभी हव्यवाहगण इत्यादि ये सभी विनताके गर्भसे ही उत्पन्न हुए। कद्रू से चलने वाले और न चलने वाले दोनों तरह केसर्प पैदाहुए। अब मैं आपको उन नागोंमें मुख्य नागों के कुछ नाम बताऊँगा। शेष वासुकि, तक्षक, सकर्णी, जम्भ, अंजन, मानव ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, ऐलपत्र शंख, ककोटक, धनंजय महाकर्ण, महानील, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुमार, पुष्पदन्त, सुमुख, दुर्मुख [illegible] शिखीमुख, दधिमुख, काजोय, शालि-पिराइक, विन्दुपाद,

पुण्डरीक, आपूरण, कपिल, अम्बरीष, धृतपाद, कच्छप, प्रह्लाद, पद्मचित्र, गन्धर्व, मनस्विक नहुष, खररोमा और मणि इत्यादि प्रधान सर्प माने जाते हैं। मैंने आपको कद्रू के पुत्रों का वर्णन सुनाया, अब मैं आपको खशा के पुत्रों के विषय में बताऊँगा।

खशा के दो पुत्र पैदा हुए, वे दोनों पुत्र राक्षस प्रकृति के मनुष्यों के खाने वाले थे। पश्चिम संख्या की तरफ ज्येष्ठ और पूर्व संख्या में मनुष्यों की उत्पत्ति हुई। सबसे पहले खशा ने विलोहित विकर्ण नाम के पुत्र को पैदा किया। वह पुत्र चार हाथों वाला, चार पैरों वाला दो सिर वाला और दो प्रकार से चलने वाला था उसके पूरे शरीर में बाल थे, वह मोटे मोटे शरीर वाला, ऊँची नाक वाला महोदर, स्थूलशीर्ष, महाकर्ण, मूंज की तरह पीले रंग के बालों वाला, मनोरथ मोटे मोटे हाथी के समान होठों वाला, बड़ी बड़ी जांघों वाला, लम्बी दाढ़ी वाला, रक्त जीभ वाला, स्थूलकाय, काले और चितकबरे रंग के कानों वाला तथा बुरा और जोर से शब्द करने वाला महानन्द और महासुख था, इस तरह के अति भयानक पुत्र को खशा ने उत्पन्न किया। इस पुत्र के बाद खशा ने इसके दूसरे भाई को पैदा किया वह खशा का दूसरा पुत्र भी तीन शिर वाला, तीन हाथ वाला, तीन पैर वाला, काली आंखों वाला, हरे रंग की दाढ़ी वाला, छोटे कद का, शिला के समान मजबूत शरीर वाला महाकाय, महावलिष्ठ, कान तक फटे हुए मुख वाला लम्बी भौंहें वाला, स्थूल नाक वाला, मोटे होठ वाला, आठ दाढ़ों वाला, दो जीभ वाला, कील की तरह कान वाला जटाधारी, पीले शरीर वाला महाकर्ण, महाकाय, महान वक्षस्तल, बिना कमर के, कृश उदरयुत बड़े बड़े नाखूनों वाला था, खशा ने ऐसे दूसरे भयानक पुत्र को पैदा किया। ये दोनों पुत्र पैदा होते ही अपने प्रमाण से बहुत अधिक बढ़ गये और फिर शीघ्र ही उपभोग के समर्थ होकर सामने आये। इस तरह इन दोनों पुत्रों ने अपनी माता के पास आकर उनको प्रणाम किया। इन दोनों में जो बड़ा पुत्र था वह

बहुत दुष्ट नीच प्रकृति का था, उसने अपनी माता को ही घसीटना शुरू किया, और अपनी माँ से बोला कि हे माता मैं बहुत भूखा हूँ, मैं तुमको खाऊँगा। तुम मेरे पास आओ।

बड़े भाई का ऐसा बुरा विचार देख छोटा भाई उससे बोला—अरे मूर्ख तू माता को छोड़ दे। और अपनी भुजाओं से पकड़कर उसने अपनी माता को छुड़ा लिया। उसी समय कश्यप जी जो उनके पिता थे वहां आये और उनको लड़ते देखकर बोले—अरे, दुराचारी पुत्रो, रुको ठहरो! पिता को देखकर वे अपनी माया से शीघ्र ही अल्प काम होकर माता की गोद में छिप गये। ऋषि ने अपनी पत्नी से उन पुत्रों की सारी बातें पूछीं। क्योंकि पुत्र मामा के अनुसार होता है और पुत्री पिता के गुण और स्वभाव से युक्त होती है। पृथ्वी के रंग के अनुसार ही जल, जो पृथ्वी पर रहता है, का भी रंग होता है।

अदिति बल, शील आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त और धर्म का आचरण करने वाली हमारी पत्नी है। दिति भी नित्य तपस्या और अध्ययन में लगी रहती है। अरिष्टा गीतों को खूब अच्छी प्रकार से जानती है। दनु को छल तथा मामा को जानकार कहा गया है। विनता को आकाश में उड़ने का शोक है। सुरभि का जीवन अत्यधिक तमोमय है। कद्रू क्रोधिनी है। दनायुषा समयानुसार दया और क्रोध दोनों करती है। ये अनेक प्रकार के स्वभाव मनुष्यों में कर्म, यत्न, बुद्धि, रूप बल और क्षमा आदि के वश से आते हैं। संसार में प्राणियों के स्वभाव सात्विक, राजसी तथा तामसी तीन प्रकार के होते हैं। हे महाभायवाली! तू क्रोध करती है तेरे पुत्रगण गुणों में एवं आचरण में अपने मामा के अनुसार हैं।

कश्यप ऋषि ने अपनी सुन्दरी पत्नि खशा से ऐसा कहकर उन पुत्रों को प्यारसे पास बुलाया। खशा ने उन पुत्रों का सब वृतान्त

कश्यप को सुनाया। माता ने जैसा जैसा पुत्रों को बताया कश्यप ने वैसा ही उनका नाम रख दिया। बड़े पुत्र ने माता को भक्षण करना और खींचना कहकर सम्बोधन किया था इससे उसका नाम यक्षयति धातु के आधार पर 'यक्ष' नाम रखा। दूसरे पुत्र ने मेरी माता की रक्षा करी, कहा था इससे रक्ष (पालन करने वाली) धातु के आधार पर उसका नाम राक्षस रखा। बाद में उनको भूखा जानकर अति आश्चर्य में होकर उनको रक्त चर्बी भक्षण करने की आज्ञा दी और पुनः वरदान दिया कि रात्रि के समय में ही तुम्हें सब वस्तुएँ मिल सकेंगी। तुम दोनों रात्रि में आहार विहार करने वाले होंगे। और दिन में सोया करोगे। तुम दोनों अत्यन्त बलवान होगे। इस समय तुम धर्म का पालन करते हुए अपनी माता की रक्षा करो। ऐसा कहकर पिता कश्यप जी अन्तर्धान हो गये। पिता के चले जाने पर उन दोनों पुत्रों ने प्राणियों की हिंसा करके बुरे मांस इत्यादि अखाद्य वस्तुओं का खाना शुरू कर दिया और अपने पिता के कहे अनुसार विपरीत कार्य करने लगे। वे दोनों बहुत बलवान पराक्रमशाली विशाल शरीर वाले थे। वे बड़ी कठिनता से किसी दूसरे के वश में होते थे। ये दोनों बहुत मायावी थे, एक क्षण में कहीं दिखाई देते थे और कहीं छिप जाते थे, ये दोनों बडी भीषण क्रूर प्रकृति के थे। अपनी इच्छानुसार रूप रखकर घूमने वाले थे। ये अपनी भीषण आकृति वालों का भोजन भी उन्हीं के अनुरूप बहुत अधिक और भीषण था, ये दोनों जहां भी देवता, ऋषि, मनुष्यों को सर्पों, पिशाचों, गन्धर्वों, किन्नरों, पशुओं पक्षियों को देखते थे उन्हें खाने के लिये दौड़ते थे। एक बार इन राक्षसों ने देवराज इन्द्र को खाने के लिये पकड़ लिया और फिर इन्होंने इन्द्र को न मारकर उनसे दो वरदान मांग लिये। एक बार यक्ष रात को अपने खाने की खोज करता हुआ घूम रहा था कि कुछ दूरी पर उसे कुछ बातचीत की आवाज आई और वह उसी आवाज की तलाश करते२ आगे बढ़ा।

आगे जाकर उसने दो विशाल जानु वाले पिशाचों को देखा, उन पिशाचों की आंखें पीली थीं और उनके रोम ऊपर की तरफ खड़े थे आंखें गोल थीं, वे पिशाच अत्यन्त भयानक आकृति के रक्त और चर्बी को खाने वाले थे वे मनुष्यों को खा जाते थे। उन विशाल पिशाचों के साथ उनकी दो कन्याएँ थीं, वे दोनों कन्याएँ अपनी इच्छानुरूप शरीर धारण करने वाली परम सुन्दरी थीं, परम सुन्दरी होते हुए भी वे दोनों कन्याएँ पिशाचों के समान आचरण करने वाली थीं। उन कन्याओं को साथ लेकर वे पिशाच अपने भोजन की खोज में घूम रहे थे। उन सब पिशाचों ने इस महा बलवान राक्षस को घूमते देखा, वे राक्षस और पिशाच दोनों आपस में आमने सामने मिलकर अपनी अपनी जान बचाने की चिन्ता करने लगे। इसके बाद तब वे दोनों कन्याओं के पिता पिशाच अपनी कन्याओं से कहने लगे कि तुम दोनों इस राक्षस को शीघ्र ही जीते जी पकड़ लाओ तब वे दोनों कन्याओं ने अपने पिता के कहे अनुसार उस राक्षस को पकड़ लिया और अपने पिता के पास ले आईं। तब उन पिशाचों ने उस राक्षस से पूछा कि तुम कौन हो? किसके पुत्र हो! तब उस राक्षस ने अपना परिचय बताया। उस राक्षस का हाल जान कर बलवान अज और खराड़ नाम के पिशाचों ने सन्तुष्ट होकर अपनी दोनों कन्याओं का विवाह उसके साथ कर दिया। अज और खराड़ ने अपनी सुन्दर दांत वाली पुत्री का विवाह विधिपूर्वक उसके साथ कर दिया, फिर उसने राक्षस को अपनी कन्या के गुण स्वभाव और धन का परिचय सुनाया। खराड़ ने कहा जो मेरी ब्रह्माधना नाम की कन्या है इसके शरीर में रोम नहीं है यह सात्विक उपायों से पैदा किये हुए धन का आहार करती है और ब्रह्म की आराधना में तत्पर रहती है। हमारी जो दूसरी जन्तुधना नामकी पुत्री है वह जन्तुओं का भोजन करती है। इस तरह उन दोनों पिशाचों ने कन्याओं का परिचय उस राक्षस को सुनाया। जन्तुधना नाम की जो कन्या है इसके पूरे शरीर के अंगों में बाल हैं और जो ब्रह्माधना है इसके कान के ऊपर तक रोम हैं उस ब्रह्माधना के ब्रह्मधन पुत्र और तत्वला कन्या हुईं

इन पिशाचों की कन्याओं ने इस प्रकार दो दो सन्तानों को उत्पन्न किया। अब मैं आपसे इनके द्वारा होने वाली प्रजाओं की सृष्टि का वर्णन क्रम पूर्वक करूंगा।

हेतु, प्रहेतृ, उग्र, पौरुषेय, वध, विस्फूर्जि, वात, आपव्याघ्र, और सर्प इत्यादि ये दस राक्षस यातुधान के आत्मज और सूर्य के मनुचर हैं, ये राक्षस सूर्य के साथ ही घूमते हैं। हेतु के पुत्र का नाम लंकु के माल्यवान और सुमाली नाम के दो पुत्र पैदा हुए। उसके बाद अब में आपको प्रहेतृ के पुत्रों का वर्णन सुनाऊंगा। प्रहेतृ के पुलोमा नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह बहुत प्रसिद्ध था अपने समय में बध के दो पुत्र विघ्न और शमण नाम के उत्पन्न हुये, ये दोनों पुत्र बहुत ही दुराचारी थे। रुमन नाम का राक्षस विद्युत का पुत्र था, वह भी बहुत दुराचारी निकला। स्फूर्ज के पुत्र का नाम निकुम्भ था, वह बहुत उग्र प्रकृति का और ब्रह्म राक्षस था। बात के पुत्र का नाम विराग था और आप के पुत्र का नाम जम्बुक था। व्याघ्र के पुत्र का नाम निरानन्द था वह निरानन्द नामका राक्षस जन्तुओं को कष्ट देता था। ये सभी राक्षस क्रूर प्रकृति के परमवीर शाली राक्षस थे। अब मैं ब्रह्मधान के पुत्रों का वर्णन सुनाऊंगा। यज्ञ, पिता, धुनि, क्षेम, ब्रह्मा, पाप, ब्रह्मास्वाकोटक, कलि और सर्प-ये दस ब्रह्म धना के पुत्र माने जाते हैं। इन दसों पुत्रों की बहिनें ब्रह्मराक्षसी थीं, इनमें चार ब्रह्म राक्षसी दुष्ठ स्वभाव की थीं, इन चारों के इस प्रकार नाम हैं। रक्त कर्ण, महाजिह्व अक्षया, और उपहारिणी हैं। इन ब्रह्म राक्षसियों के गर्भ से ही पूरी पृथ्वी पर निवास करने वाले राक्षसों के जन्म हुए, ये ब्रह्मराक्षस गण प्रायः लिसोढे के वृक्षों पर रहते हैं। अब यक्ष के पुत्रों का वर्णन करूंगा। यक्ष ने क्रतुस्थली नामकी पांच अव्यवों से स्थूल अंगों वाली अप्सरा को पाने की इच्छा की। उस अप्सरा को पाने के लिए वह यक्ष नन्दन बन में घूमता रहना, और वह गौभ्राज और चैत्ररथ नाम के बनों में भी घूमता फिरता, लेकिन उसको पाने के लिए उसे कोई उपाय नहीं मिला, अपनी

कुरूपता को और बुरे कर्म से दूषित होने के कारण वह अपने मनमें सोचा करता था कि इसी कारण से मुझ से सभी जीव भयभीत और अद्धंग्न रहते हैं। अतः तब उसने एक युक्ति सोची, और उसको हल करने का उपयोग किया। उसने वसुरुचि नाम के गन्धर्व का सुन्दर रूप धारण करके अप्सराओं के बीच में ऋतु स्थली नाम की अप्सरा को पकड़ लिया, अप्सरा ने वसुरुचि को जान कर उस यक्ष के साथ पूर्ण मनोयोग और सद्भाव के साथ व्यवहार किया। फल स्वरूप उन सब अप्सराओं के सामने ही उस यक्ष ने क्रतुस्थली के साथ सम्भोग किया और उसी समय उसी स्थान पर उस अप्सरा के फलस्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह पुत्र लम्बाई चौड़ाई में अपने पिता यक्ष की तरह विशाल था और पैदा होते ही वह पुत्र सभी शोभा से युक्त था। उस पुत्र ने पैदा होते ही अपने पिता से कहा कि मैं "राजा हूँ, मेरा नाम नाभि है" पिता ने पुत्र से कहा कि तुम्हारे यहां पर पैदा होने पर कोई डर नहीं है, वह यक्ष पुत्र नाभिस्वरूप में माता के समान सुन्दर और पिता के समान वीर हुआ। ऐसे पुत्र के उत्पन्न होने पर वह यक्ष अपने स्वाभाविक रूप में आगया, इस प्रकार स्वाभाविक रूप में आकर क्रतुस्थली अप्सरा को विस्मित करता हुआ बोला कि हे सुन्दर कटि वाली! सुन्दरी। अब तुम अपने पुत्र को साथ लेकर मेरे घर चलो। यक्ष के ऐसा कहने पर और उसका वास्तविक रूप देख कर सभी अप्सराओं की क्रोध के मारे बुद्धि भी क्षीण हो गई, और भयभीत होकर भग गई। उन सभी अप्सराओं के साथ क्रतुस्थली भी अपनी सखियों के साथ पीछे पीछे चल दी, उसके पुत्र ने उसको सांत्वना दी और उसे गन्धर्वों और अप्सराओं के समूह में पहुँचा र वापिस लौट आया। अप्सराओं ने क्रतुस्थली के गर्भ से यक्ष द्वारा पुत्रउत्पन्न होते देखा था, अतः उन सभी अप्सराओं ने मिल कर एक स्वर से क्रतुस्थली से कहा कि तू यक्षोंकी माता है। इसके बाद यक्ष अपने पुत्र के साथ अपने घर को चला गया, उस स्थान पर यक्ष बरगद के वृक्ष पर रहते थे बरगद के वृक्षों पर यक्षगण निवास

करते हैं यक्षों को बरगद का वृक्ष सभी प्रकार से प्यारा लगता है। य रजत नाम के गुणकों का पितामह था, उसने अनुहलाद नाम के दैत्य की परम सुन्दरी कन्या भद्रा के साथ अपना विवाह किया, भद्रा से जितेन्द्रिय मणिवर नाम का पुत्र तथा दूसरा पुत्र मणिभद्र नाम का उत्पन्न हुआ, ये मणिभद्र इन्द्र के समान वीर पराक्रमी था। इन दोनों पुत्रों की पत्नियां आपस में सगी बहनें थीं, ये दोनों बहनें क्रतस्थली की कन्या थीं। इन कन्याओं का नाम पुण्यजनी और देवजनी था। पुण्यजनी ने मणिभद्र के संयोग से बहुत से शुभ आचार करने वाले चौबीस पुत्रों को उत्पन्न किया, ये चौबीस पुत्र सदाचारी और पुण्यात्मा थे। इनके नाम इस प्रकार हैं। सिद्धार्थ, सूर्यतेज, सुमन्त, नन्दन, कन्यक, यविक, मणिदत्त, वसु सर्वानुभूत, शंख, पिंगाक्ष, भीठ, मन्दरशोभि, पद्म, चन्द्र प्रभ मेघपूर्ण, सुभद्र, प्रद्योत, महौजस, द्युतिमान, केतुमान, मित्र, मौलि, और सुदर्शन थे। ये सभी पुत्र मणिभद्र के संयोग से पैदा हुये, इनके पुत्र और पौत्रादि भी पुण्यकार्य करने वाले सदाचारी थे।

इसके बाद मैं आपको देवजनी की सन्तानों का वर्णन सुनाऊंगा। देवजनी ने मणिवर के संयोग से बहुत से पुत्रों को उत्पन्न किया, उन पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं। पूर्णभद्र हेमरथ, मणिमत, नन्दिवर्धन, कुस्तुम्बुरु, पिशंगभ, स्थूल कर्ण, महाजक, श्वेत, विपुल, पुत्रवान, भयावह, पद्मपूर्ण, सुनेत्र, यक्ष, बाल, बक, कुमुद, क्षेमक, वर्धमान, दम, पद्मनाभवरांग, सुवीर, विजय, कृति पूर्णमास हिरण्याक्ष सुरुप इत्यादि ये सभी पुत्र देवजनी ने मणिवर के संयोग से उत्पन्न किये थे। ये सभी पुत्र गुह्यकों के नाम से पुकारे जाते हैं। इन में कुछ पुत्र तो सुन्दर रूप वाले थे कुछ कुरूप भी थे लेकिन सभी माला धारण करने वाले थे और देखने में सभी प्रिय लगते थे। इन पुत्र पौत्रादिकों की सख्या सौकड़ों से सहस्त्रों तक की थी। खशा के पुत्र जो दूसरे थे वे इच्छानुसार रूप बदलने वाले राक्षस थे, उन मुख्य पुत्रों का नाम इस प्रकार है। लालावि कुथन भीम सुमाली मधु विस्फूर्जित विद्युजिह्व मामग धूम्रित चन्द्रार्क सुकट, बुध्न कपिलोम प्रहासक क्रीड परशुनाभ चक्राक्ष शंत

दष्ट्र, राक्षस तुण्ड केश, यक्ष अकम्पन, दुर्मुख, और शिलिमुख ये सभी श्रेष्ठ परम पराक्रमी राक्षस तथा गण रूपी थे। ये सभी देवताओं के समान सभी लोकों में घूमा करते थे, इन पुत्रों के अलावा खशा के सात कन्यायें भी थी, मैं अब आपको उन कन्याओं से प्रजा की सृष्टि का वर्णन सुनाऊंगा। इन कन्याओं के नाम इस प्रकार हैं। आलम्बा, उत्कचा, कृष्णा, निऋजा, कपिला, शिवा, और केशिनी थे, ये सात कन्या ऊपर लिखे सभी राक्षसों की बहिन थीं। संसार में मांस खाने वाले जीव हिंसक, अत्यन्त पराक्रम दिखाने वाले बड़े-बड़े राक्षस गणों को इन कन्याओं ने उत्पन्न किया। इनमें से कुछ अच्छे भी थे। आलम्बा से आलम्बेय नाम के राक्षस सभी दुष्ट स्वभाव वाले थे। उत्कचा के उत्कचेय नाम के पुत्र दुष्ट स्वभाव वाले ही पैदा हुए। केवल काष्ठोप और शैनेय वाले राक्षस अच्छे स्वभाव वाले थे।

इसी तरह से महादेव जी के अनुचरों गणेश्वरों के चर ने नैऋर्त नामक प्रजा को उत्पन्न किया। उस प्रतापी ने यक्षों और राक्षसों को उत्पन्न किया। ये सभी प्रतापवान नैर्ऋत नाम से प्रसिद्ध हुए। ये सब देव राक्षस कहे जाते हैं। इन सबों का स्वामी विरूपक हुआ। नैऋत की प्रजा भगवान शंकर के गण बने। दैत्यों के प्रतापी राजा कुम्भ ने प्रतापी वीर और साहसी कपिलेय नाम के दैत्यों और राक्षसों को उत्पन्न किया। कम्पन नामक यक्ष ने केशनी के गर्भ से और दूसरे राक्षसों को पैदा किया जो महाबलवान थे। केशनी की कन्या नीला के संयोग से आलम्बेय गण के सुरसिक नाम के राक्षसों से बहुत से दुष्ट स्वभाव वाले राक्षस उत्पन्न हुये। ये सभी राक्षस नैल नाम से विख्यात हुए। इनके वन्शों में होने वाली सन्तान बहुत है। इसका वर्णन करना कठिन है। नीला की एक कन्या थी जिसका नाम विकचा राक्षसी था। वह दुष्टा तथा मध्यम पराक्रम वाली थी। उसके भी निर्ऋत के द्वारा सुरों (असुरों) की उत्पत्ति हुई। उनका वर्णन इस प्रकार है।

वे घोर असुरगण विकराल दाड़ों वाले कुरूप, लम्बे कान और बड़े पेट वाले थे । उनके नाम हारक, भीषक, क्रामक, वैनक, पिशाच वाहक और प्राकशक थे। ये राक्षक भूमि पर रहते थे । इनका पराक्रम मनुष्यों के तुल्य था। इन भूमि के राक्षसों से जो पराक्रमशाली अधिक होते हैं वे आकाशगामी होते हैं। ये अति लघु शरीर वाले होने से थोड़ी देर तक आकाश में उड़ते रहते हैं। इन्होंने तथा दूसर दुष्ट राक्षसों ने चारों तरफ से प्रायः आ काश को घेर लिया है। संक्षेप से इन क्षुद्र राक्षसों की आठ माताएँ हैं। नके अनुसार इनके आठ विभाग हैं। उनके क्रम से नाम इस प्रकार हैं इनमें से एक का नाम भद्रिका है और गण का नाम निकर है। इनमें ज्ञान और उन्नति के कारण हैं। दूसरी पूतना है। गण का नाम मातृ सामान्य है। यह पूतना मानव लोक के बच्चों को पकड़ने वाली तथा बच्चों को बहुत कष्ट देने वाली है। इन भूतों व गणों के अनेक गण इस पृथ्वी पर घूमा करते हैं। पुण्यजन, गुह्यक और देवजन नाम के यक्ष ये सब गुह्यक के अन्तर्गत कहे हैं। अगस्त, पौलस्त्य, विश्वामित्र के गोत्र में जो राक्षस गण पैदा हुए हैं उनके राजा कुबेर कहे गये हैं। ये अलकापुरी के स्वामी हैं। ये यक्षगण केवल आंखों से देखकर मनुष्य के मासचर्बी खून को पी जाते हैं ये राक्षसगण मनुष्य के शरीर के भीतर घुसकर चूस लेते हैं। पिशाचगण बुरी तरह से पीड़ित करके पी जाते हैं जो सभी प्रकार से पराक्रमी, तेजस्वी, बलशाली, देवताओं के समान अधिकारी हैं वे असुर नाम से कहे जाते हैं। गन्धर्व लोग देवताओं की अपेक्षा तीन पापों से कम होते हैं। सभी गुह्य (यक्ष) गन्धर्वों की अपेक्षा प्रभाव में तीन पादों से हीन होते हैं। राक्षस भी यक्षों के समान प्रभावशाली होते हैं। इन यक्षों से पिशाच तीन गुण हीन होते हैं। इस प्रकार धन बल यश व पराक्रम में ये सब गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पिशाच, देवता और असुरों की अपेक्षा हीन होते हैं।

सूतजी बोले—हे ऋषिगणो ! अब मैं आपको क्रोध के वश में रहने वाली प्राजाओं का वर्णन सुनाऊँगा। इससे आपका कल्याण होगा। क्रोध में स्वयं उत्पन्न होने वाली १२ कन्याएँ पैदा हुईं जो प्रलह ऋषि की पत्नियां बनीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—मृगी, भृगमन्दा, हरिभ्रडा, इरायती, भूता, कपिशा, हंष्ट्रा, निशातिर्या, श्वेता, स्वरा और सुरसा। मृगी के हिरण नामक पुत्र भृग खरगोश बारहसिंगा, शरभ, रुरु प्रशत नाम के पशु भी हुए भृगमन्दा के गर्भ से सिंह उत्पन्न हुए। इन्हीं से ही नीलगाय, महिष, ऊंट बराह, गैंड़ा तथा गौरमुख नामक जंगली पशु उत्पन्न हुए। हरि ने बन्दरों का उत्पन्न किया। इनसे ही लांगुली बन्दर भेड़िया तथा और दूसरी जाति के बन्दर, किन्नर, बाघ, किंपुरुष, आदि जीव पैदा हुए।

इसके अनन्तर इरावती के पुत्रों को सुनाता हूँ। एक समय भौवन ने सूर्य के दो अन्य कपालों को लाकर अपने दोनों हाथों से पकड़कर रथन्तर का गान किया। उस समय वहां शीघ्र ही एक हाथी प्रकट हुआ। भौवन ने इरावती के साथ संगम किया था। अतः वह इरावती के गर्भ ये उत्पन्न हुआ था इसलिये वह ऐरावत नाम से प्रसिद्ध हुआ। देवराज इन्द्र का वाहन होने के कारण वह हाथियों (मतंगों) का राजा माना गया। ऐरावत अति शोभा सम्पन्न चार दांतों वाला तथा श्वेत वर्ण का है। ऐरावत के अंजन सुप्रतीक, वामन और पद्म ये चार पुत्र थे। उसकी हथिनी का नाम अभ्रमु था। श्वेता ने चार दिग्गज भद्र, मृग मन्द और संकीर्ण दिग्गजों को उत्पन्न किया। संकीर्ण और अंजम यमराज के वाहन हैं। भद्र और सुप्रतीक जो हरे रंग के हैं वे वरुण के वाहन हैं। पद्म और मन्द जो श्वेत वर्ण के हैं वे कुवेर का वाहन है। मृग जो श्याम वर्ण के हैं वे अग्नि के वाहन हैं पद्म नामक हस्ती

वरुण के वाहन में से एक है। उसके आठ पुत्र हुए—वे सब दुष्ट स्वभाव वाले हुए। उनके वंश में सफेद बाल व नाखून वाले पीले रंग के मतंगज उत्पन्न हुए। उन तथा अन्य नागों का वर्णन सुनाता हूँ—

पुण्डरीक नामक गज, कपिल (भूरे) रंग का तथा रथान्तर पुष्प के वर्ण की शोभा वाला गज है। इन दोनों से सुप्रतिष्ट तथा प्रमर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इसके अलावा श्वेत, शूल, स्थूल, प्रभूति, ऊँचे सिखलि, शुद्ध बाल तथा नाखून वाले बलवान गज हुए। ये सब आकुलिक नाम से कहे गये है। इनके वंश में पुष्पदन्त बृहत्सामा षड़दन्त, दन्तपुष्पवान, तरुपर्णो नाम के गज उत्पन्न हुए। इनके हथिनियों के समागम के द्वारा पुत्र उत्पन्न हुए। इनके वंश के लम्बे होठों वाले सुन्दर दीखने वाले, श्यामवर्ण के, दुष्ट स्वभाव के लम्बे मुँह वाले और अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करने में सशक्त गज उत्पन्न हुए।

वामदेव नाम का हाथी काजल के समान काले रंग का है। साम से वामन नाम का गज पैदा हुआ। इसकी स्त्री अंगदा थी। उसके नीलवत और लक्षण दो पुत्र हुए। ये सभी गज दुष्ट स्वभाव वाले थे। इनके कन्धे और शिरोभाग देखने में सुन्दर थे। वक्षस्थल उनके विशाल थे तथा अति वेग से चलने वाले थे। इन गजों के वंश में जो विकृत नाम के गज पैदा होते हैं वे मनुष्यों द्वारा बंधन में डाले जाते हैं। सुप्रतीक के समान सुन्दर आकार वाला कोई भी गज दूसरा नहीं है। उसके प्रहारी संपाती और पृथुश्चिति नाम के तीन पुत्र हुए। अंजन से अंजना और साम से अंजावती का जन्म हुआ। इन दोनों की माता भी आयु रज की पुत्री मानी जाती है। इनके वंश में काले अलग अलग सिर वाले चौड़े मोटे ताजे काले वर्ण के पीले चौड़े मुख वाले हाथी पैदा होते थे।

चन्द्रमा और साम के पिंगला, कुमुदद्युति पैदा हुए। पिंगला के महापद्म और उर्मिकाली नाम के दो पुत्र हुए। उसके वंश में अत्यन्त दुष्ट स्वभाव वाले, बलशाली लम्बे पेट वाले, बड़े २ दांत वाले, हाथी युद्ध में रुचि वाले नाग उत्पन्न हुए। देवासुर संग्राम में देवताओं ने अपनी विजय के लिये इन्हीं हाथियों को अपने पास रखा था। विजय पाने के बाद उनको छोड़ दिया। इसके बाद सभी हाथी विभिन्न दशाओं को चले गये।

इनके वंश में उत्पन्न विनम्र स्वभाव वाले हाथियों को देवताओं ने अंग, लोमपाद, सूत्रपाद को दिया। दो (रद) दांत होने के कारण इनका नाम हिरद पड़ा। हस्त (सूँड) होने के कारण इनको हस्ती या हाथी कहा जाता है। कर (सूँड) के कारण इनको करी भी कहा गया है। वरण (पूजन) होने के कारण से इसको वारण, दो दांत होने के कारण दन्ती, गर्जन (चिंघाड़ने) के कारण नाग, मतंग से उत्पन्न होने के कारण कुँजर, नागों (वृक्ष या पहाड़ो) के दुश्मन होने से नाग इनको सूँड़ तथा मुँह दोनों के द्वारा जलपान करने के कारण द्वित कहते हैं। सामवेद के गान करने पर ये पैदा हुए हैं इसलिये ये 'समाज' कहलाते हैं। इनकी जीवपीछे को लौटी रहती है जिसके कारण ये बोल नहीं सकते हैं ऐसा इनको अग्नि का शाप होने के कारण हुआ है। इनके बल की स्फूर्ति न रहना लिंग और अंडकोष का छिपा रहना सब कुछ ब्रह्मा (स्वयंभू) तथा देवताओं के शाप से हुआ है। देव दानव गन्धर्व पिशाच सर्प राक्षस आदि जिन कन्याओं से पैदा हुए उन्हीं कन्याओं में दिग्गजों के संयोग से इन हाथियों की उत्पत्ति हुई है। इन हाथियों की कथा कह चुका। इन हाथियों का राजा विभावसु है पूर्व दिशा में कौशिकी से समुद्र पर्यन्त एवं उसके बाद गंगा तट से समुद्र तट तक पूरा प्रदेश

अंजन नामक हाथी और उसके वशज के अधीन कहा जाता है। विन्ध्याचल से दक्षिण तक गंगा के निकलने की जगह से लेकर कुरुष देश तक का जंगल सुप्रतीक नामक हाथी का जंगल है। उत्कल प्रान्त के पश्चिम से लेकर वेदि देश तक जो पांचग जंगल है वह वामन नामक हाथी के वंशजों का जंगल है। लौहित्य के दूसरे किनारे से पच्छिम समुद्र के किनारे के पर्वतों के पास तक का जंगल यम वन कहा गया है।

हे प्रभो ! रुद्र के अनुचर भूत भूति से पैदा हुए हैं। इनमें से कुछ बहुत ही छोटे, कुछ समान आकार वाले थे। और कुछ भूत लम्बे कान वाले, लम्बे होठ, और जीभ वाले लम्बे स्तन वाले तथा लम्बे पेट वाले हैं। कुछ एक समान रूप वाले थे तथा कुछ एक दम कुरूप थे। इनमें कुछ के नितंब बहुत लम्बे थे, किसी के मोटे पिण्डाकार पेट थे। ये भूत गया सरोवर, समुद्र, नदी, इत्यादि जल के किनारे रहते हैं, इनमें कुछ काले रंग के हैं, कुछ गोरे रंग के हैं, कुछ नीले रंग के हैं, कुछ श्वेत रंग के, कुछ पीले गहरे रंग के, कुछ लोहित रंग के, कुछ लाल रंग के हैं तथा कुछ चितकबरे रंगों के हैं। इन सभी भूत गणों के स्वभाव दुष्ट राक्षसों के स्वभावों की तरह ही दुष्ट स्वभाव हैं। इनमें से कोई मूंज की तरह केश वाले कोई हषी केश तथा कोई सर्प का जनेऊ पहनने वाले थे। किसी की आंखें फूटी हुई थी, किसी की कुरूप आंखें थीं किसी की एक आंख फूटी हुई थी। किसी के बहुत शिर थे किसी के एक भी शिर नहीं था किसी के एक शिर था। कोई बहुत ही दुष्ट स्वभाव के थे। कोई बहुत रोम वाले थे कोई बिना रोम के थे। कोई कोई बहुत लम्बी जटाओं वाले थे, कोई कुबड़े थे, कोई बौने थे, किसी के एक कान था, कोई कोई के बहुत बड़े कान थे, किसी के कान खूटें के समान थे, कोई बिना कान के थे, किसी के नाखून बहुत बढ़े हुये थे, किसी के एक भी दांत नहीं था, किसी के दो जीभें थीं किसी के एक हाथ थे किसी के दो हाथ थे, किसी के तीन हाथ थे, किसी

के एक भी हाथ नहीं था। किसी के एक पैर था, किसी के दो पैर थे तो किसी के तीन पैर थे, किसी किसी के बहुत से पैर थे। बहुत से बहुत बलवान हैं। बहुत से योगाभ्यास करने वाले हैं। बहुत से क्रूर बुद्धि के हैं, कोई कोई अपनी इच्छानुसार रूप रखकर घूमने वाले हैं बहुत से शुभ कल्याणकारी तथा पुण्य कार्य करने वाले तथा मीठा बोलने वाले थे, कोई कोई अपने हाथों में कुश रखते थे। कोई कोई हाथों से खाने वाले थे, कोई शिर से खाने वाले थे, कोई कोई मुण्डमाला पहनते थे कोइ कोई हाथों में धनुष बाण रखते थे, कोई कोई मुग्दर हाथोंमें रखते थे। कोई कोई तलवार और भाले रखते थे, किसी किसी के नेत्र चमकते हुए होते हैं। कुछ अन्न के खाने वाले होते हैं। कुछ मांस के खाने वाले होते हैं। बहुत से सुन्दर होते हैं, बहुत से कुरूप होते हैं, बहुत से रात के समय तथा सन्ध्या के समय घूमने वाले होते थे। बहुत से केवल दिन में ही घूमते थे। ये सभी निशाचर ब्रह्मचारी होते थे, इनमें किसी के स्त्री तथा पुत्र नहीं था। ये सभी निशाचरों को भूत ने पैदा किया। इन सभी आत्म योगी भूतों की संख्या गिनती में एक लाख थी। मैंने आपको भूति के सभी पुत्रों का वर्णन सुना दिया है। कपिशा कुमाराड़ी ने कुष्माराड के सम्भोग से पिशाच दम्पतियो को पैदा किया, ये सभी कपिश भूरे रंग के थे। कपिश रंग के होने के कारण इनको पिशाच कहते हैं। ये सभी मास खाने वाले थे, इनके अलावा सोलह पिशाच दम्पती और हैं अब मैं आपको उनके वंशधरों का नाम सुनाऊँगा, ये सभी मनुष्यों के खाने वाले थे। इन सोलह दम्पति के नाम इस प्रकार हैं—छगल और छगली, दूसरा वक्र और वक्रमुखी तीसरा सूचीमुख और सूची चौथी कुम्भपात्र और कुम्भी पाँचवां वज्रदंष्ट्र और दुन्दुभि छठा उपचार और अपचार सातवां उलूखल उलूखली आठवां अनके और अनकी नवां कुखण्ड और

कुखण्डिका, दसवां पाणिपात्र और पाणिपात्री, ग्यारहवां पांशु और पांशुमती, बारहवां नितुराड़ और नितुराड़ी, तेरहवां निपुण और निपुणा, छलाद और उच्छेषणा तथा पुस्कन्द और स्कन्दिका ये सोलह पिशाच दम्पतियों के गण माने जाते हैं अजामुखी, बकमुख, पूती, स्कन्दी, विपाक, अंगारिक कुम्भपात्र, प्रकुन्दक, उपचार, उलूखलिक, अनर्क, कुखण्डिक, पाणिपात्र, नैतुण्ड अर्णश, निपुण, सूचीमुख, और उच्छेषणाद कहे जाने वाले सोलह, कुल हैं। कुष्माण्ड के कुल में उत्पन्न होने वाले इन कुलीनों का वर्णन किया है। इन्हीं के वंशों में ही अन्य पिशाच गणों की उत्पत्ति जाननी चाहिए। इनके पुत्र पौत्रादि की संख्या अनन्त हैं, जो अत्यन्त भयानक है। अतः उन पिशाचों के लक्षण सुनिये—

पिशाचों के सभी अंग केश से भरे रहते हैं। गोल आंखें दांत तक नाक आदि होते हैं। परन्तु अंग टेढ़ा मेढ़ा है। ये मनुष्य का भक्षण करते हैं और मुख नीचे को किये रहते हैं। कुष्मांडिक कहे जाने वाले पिशाचों के केश होते ही नहीं। यहां तक कि रोम भी नहीं होते। चमड़े, चर्बी, को अपने शरीर पर वस्त्रों की जगह लपेटे रहते हैं। वे हमेशा मांस तथा तिल का आहार करते हैं। वक्र नामक पिशाचों के सभी अंग हाथ पैर आदि टेढ़े मेढ़े होते हैं। वे चलने में भी वक्र होते हैं। नितुन्दक नामक पिशाच लम्बे पेट वाले, ऊँचीनाक, छोटा शरीर, छोटे शिर हाथ वाले हैं, वे तिल भक्षी और सुन्दर कान वाले हैं। अनर्क मर्क नामक पिशाच गण बौने हैं वे अधिक वाचाल तथा उछल उछल कर चलने वाले हैं वे वृक्षों पर निवास करते हैं और वहीं पर आहार विहार करते है। पांशु पिशाचों की बाहें ऊपर को रहती हैं। उनके रोम भी ऊपर को खड़े रहते हैं। वे अपने अंग से धूल गिराते रहते हैं। उपवीर नाम पिशाच श्मशान में निवास करते हैं। वे अपनी धमनियों को जानने वाले, दाड़ी मूँछ धारी तथा वस्त्र धारणा करने वाले होते हैं।

उलूखल नामक पिशाच झुण्डों में चलते हैं उनकी लम्बी जीभ होती है तथा अपने होठों को चाटने वाले हैं। हाथी तथा ऊँट की तरह मोटे शिर वाले हैं। कुछ कुम्भ पाक नाम के पिशाच गण हैं जो बिना देखे हुए अन्न का भोजन करते हैं वे अति सूक्ष्म होते हैं। इनके शरीर पर रोम तथा पीले वर्ण के होते हैं। ये कहीं दीखते हैं। कहीं अदृश्य हो जाते हैं। निपुण नाम के पिशाच भूमि पर मनुष्यों को अकेले देख कर उनको खाने दौड़ते हैं। उनके मुँह कान तक फैले हुये होते हैं। उनकी भौंहें लम्बी होती हैं और उनकी नाक मोटी होती हैं। पूरण नाम के पिशाच निर्जन स्थान में रहते हैं जहाँ पर कोई भी जीव नहीं रहता है उस जगह पिशाच पूरण नाम के रहते हैं। इनके शरीर मोटे तथा हाथ पैर छोटे छोटे होते हैं। ये पिशाच छोटे छोटे बच्चों को पकड़ कर खाते हैं ये हमेशा प्रसूतिगृह में रहते हैं। इन पिशाचों के हाथ पैर पीछे की तरफ है। तथा छोटे शरीर के होते हैं तथा शीघ्र तेज चलने वाले होते हैं। ये युद्ध में जाकर खून को पीते हैं। स्कन्दी नाम के पिशाच नगे रहते हैं पिशाचों के बाल लम्बे होते हैं तथा ये पिण्डाकार होते हैं। इनके रहने का स्थान ठीक नहीं है कभी कहीं रहते हैं, कभी कहीं रहते हैं, और भी बहुत से पिशाच गण हैं वे पिशाच झूठा खाने वाले कहे जाते हैं। मैंने आपको इस तरह सोलह पिशाच जातियों का वर्णन सुनाया है। ब्रह्माजी ने अपनी ऐसी अल्प बुद्धि युक्त तथा तरह तरह की सूरत वाले पिशाचों को अन्तर्धान होने का तथा अपनी इच्छानुसार स्वरूप धारण करने का वरदान दिया।

पिशाच गण दोनों संध्याओं के समय इधर उधर घूमते रहते हैं। ये पिशाच उन स्थानों पर रहते हैं जो स्थान टूटे फूटे हो तथा जिस जगह अत्याचार पाप होते हों बिना लिपे पुते हों (जिस जगह कभी दीपक न जलता हो) इसके अलावा राजमार्ग गलियां, घर के समीप के उपवन, चबूतरे, चौराहे, द्वारदेश अकेले मार्ग में, नदियाँ, तीर्थ, देवीदेवताओं के कल्पित वृक्ष और श्मशान के पथ में ये सर्वत्र

पिशाच गण निवास करते हैं। अधार्मिक जन, वर्णाश्रम के हीन, शिल्पीजन, आदि को पिशाचों की आजीवि का कहा गया है। चोरी, विश्वासघात, एवं अन्यान्य कुत्सित ढंग द्वारा पैदा किया हुआ धन भी पिशाचों की जीविका है। मधु, मांस, भात, दही, तिल का चूरा, मदिरा, आसव, धूमा, हल्दी, तेल खिचड़ी, गुड़, मोथा, गुड़ और भात एक काले कपड़े में रखकर, धूप और पुष्प, इन सबके साथ पर्वों के दिन पिशाचों को बलि प्रदान करनी चाहिए। महेश्वर सभी भूतों का स्वामी है। द्रष्टा के व्याघ्र और सिंह पुत्र रूप में पैदा हुए। चीते, बाघ, और शेर, आदि भी पैदा किये।

इसके पश्चात् अब आप लोग ऋषा की सन्तानों का वर्णन सुनें। ऋषा की मीना, माता, कृत्ता, परिकृत्ता, और अनुवृत्ता ये पांच पुत्रियां थी। इनके पुत्र मकर (जो हजार दांत वाले हैं) पाठीन (जल जन्तु), तिमि, (विशेष मछली) रोदित (रोहू) ये सभी मछलियां मीना की सन्तानें हैं। इसके अतिरिक्त छोटे बड़े आदि चारों तरह के ग्राह, निष्क, और शिशुमार आदि भी मीना की सन्तानें हैं।

वृत्ता के जन्म के जन्तु जैसे कच्छप (कछुआ) सभी प्रकार के शंख आदि पैदा हुये। अनुवृत्ता ने मेढ़कों के सभी प्रकार (जाति) को ऐणेय और शम्बूक (घोंघा) के सभी भेदों को जन्म दिया। तथा कालकूर और जलौकट को भी उत्पन्न किया। ये ऊपर कही गई पांच शाखायें ऋषि के वंश की वर्णन कीं। तिर्यक योनि के वंश का विस्तार तो बहुत ही विशाल है। अब मैं स्वेज (पसीने से पैदा होने वाले जीवों) का वर्णन करूँगा।

हे द्विजो! इन स्वेदज जन्तुओं के पैदा करने वाले तो मनुष्य ही हैं। स्वेद और मल से पैदा होने वाले जीव जन्तु उशना कहलाते हैं। शिरवाल और वस्त्रों में होने वाले जूंआ आदि जीव यूका कहलाते हैं! सूर्यचन्द्र और अग्नि से तपी भूमि में जो जीव उत्पन्न होते हैं। तथा जो बादलों के पानी से भीगने पर तृण आदि

में जो जीव पैदा हो जाते हैं। वे सब स्वेदज कहलाते हैं। धूप से जल में, वर्षा के कारण, मृगादिक के शरीरों में जो अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं वे मीनक, पिघल, दंश, तित्तरपुत्रक, नील चित्र, अलक, आदि की संख्या बहुत अधिक है। ये जन्तु जलद तथा स्वेदज दोनों ही कहे जाते हैं। इनके अलावा, घी, उर्द, मूँग से भी जन्तु उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार बेल, जामुन, आम, सुपारी आदि फलों से भी अनेक जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं। मूँग, कटहल, चावल सूखे वृक्षों की कोटर तथा बहुत समय की रखी वस्तुओं से उत्पन्न भी अनेक से जन्तु विशेष होते हैं। हे ब्राह्मणों, काठादि वस्तुओं घुन और क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं। वृक्षों से एक प्रकार की नीली मक्खियां भी पैदा होती हैं। सभी प्रकार की सूखी वस्तुओं से पुत्रिका उत्पन्न होती है। शतिवों से अनेक प्रकार के वर्षा कालीन सर्प पैदा होते हैं। सूखे गोबर से विच्छू उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार गाय और भैंसों के शरीर से भी स्वेदज जीव उत्पन्न होते हैं। मछली आदि जन्तु तो अण्डे से पैदा होते हैं। इसी प्रकार कबूतर, कुरर आदि पक्षी भी अण्डे से पैदा होते हैं। छोटे छोटे सूक्ष्म जूं (यूक) भी अण्डों से उत्पन्न होते है। केकड़ा (आठ पैर वाला जन्तु विशेष) भी अण्डे उत्पन्न होता है। सभी प्रकार की मक्खियां भी अण्डों से उत्पन्न होती हैं।

कुछ मक्खियां झूंठी वस्तुओं, कीचड़ व जल में रहती हैं। सभी प्रकार के मच्छर, भौरे, पुत्रिका, पुत्रसक्तक आदि तुच्छ जन्तु तृणों से उत्पन्न होते हैं। माणिच्छेद तथा व्याल ये पोतज कहलाते हैं। करीषों से उत्पन्न शतवेरि के बहुत से भेद हैं। इस प्रकार से स्वेदज जन्तुओं की संख्या असंख्य है। मैंने इन्हें संक्षेप में तुम्हें कह दिया ये सब जन्म प्राक्तन कर्म के आधीन हैं।

इसके अतिरिक्त नैऋत प्राणी उपसर्गज कहे जाते हैं। जन्म लेने वाले कुछ प्रापरिपूत कहलाते हैं तथा कुछ औत्पत्तिक कहे जाते हैं। सभी देवता लोग औत्पत्तिक हैं और कुछ देवता योनि के द्वारा

उत्पन्न होते हैं। श्याम, शबल, अर्जुन, कृष्ण, धूम्र, अरुण, और तुलालाबू ये कद्रू की सन्तानें हैं। सुरसा के एकसौ शिरोमृत नाम वाले पुत्र थे सर्पों का राजा तक्षक और नागों का राजा वासुकि है। ये तमोगुणी तथा क्रोध वाली प्रजा हैं।

इसके बाद अब पुलह की सन्तान जो पुलह के पुत्र के योग से ताम्रा में उत्पन्न हुई इनका वर्णन सुनो ? ये सन्तानें खूब प्रसिद्ध हैं। श्येनी, भासी, क्रौंची, धृतराष्ट्री और शुकी ये ताम्र की सन्तानें हैं। इनमें श्येनी तो अरुण की पति हुई। उसके सम्पति और जटायु दो बलवान पक्षी उत्पन्न हुए। जटायु के जो पुत्र उत्पन्न हुए कौवा गद्ध और अश्वकर्णी हैं। सम्पति ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया।

भासी क्रौंची शुकी धृतराष्ट्री और भद्रा ये गरुड़ की पत्नि बनीं। जिनकी सन्तानें निम्न प्रकार से हुईं। उनको यथा क्रम आप लोगों को सुनाता हूं। इन पक्षियों में से गरुत्मान के द्वारा शुकी ने त्रिशिर सुमुख बल महाबली पृष्ठ सुन्दर त्रिशंखनेत्र और सुरस नामक छै पुत्रों को जन्म दिया। इस गरुत्मान् (गरुड़) के पौत्रों की संख्या चौदह हजार है। उनके इन पुत्र पौत्रादिकों की संख्या द्वारा ही संसार में जहां जहां अपना वास करके रहते हैं उनको (स्थानों को) मैं आपसे वर्णन करता हूं।

समस्त शाल्मलि द्वीप सारा देवकूट पर्वत पर्वतों का राजा मणिमान और सहस्र शिखिर पर्णमोल सुकेश शतशृंग कौरज पंच-शिखिर क्षेम कूट आदि पर्वतों पर वे पक्षीगण सदानिवास करते हैं। बहुत बलशाली गरुड़ के नामसे पुकारे जाते हैं। उल्लू कबूतर मुर्गी मोर गौरेया कौआ तीतर इत्यादि पक्षी भासी के पुत्र माने जाते हैं। क्रौञ्ची से वार्धीणस नामके पक्षी पैदा हुए। कुरर सारस बगुले इत्यादि मांसाहारी पक्षी लेस्येनी से उत्पन्न हुए। हंस कलहंस चकवा इत्यादि पक्षी को धृतराष्ट्री ने पैदा किया।

इनके पुत्रों और पौत्रादिकों की संख्या असख्य है। मैंने आपसे गरुड़ की सन्तान का वर्णन किया है अब मैं आपको इस सन्तानों का वर्णन सुनाऊंगा। इस से बहुत सुन्दर कमल के समान नेत्र वाली तीन कन्याएँ पैदा हुई, उन तीनों कन्याओं ने लता पेड़ पौधे और अनेक तरह की वनस्पतियों को पैदा किया। उन कन्याओं के लता वल्ली, वीरुधा नाम थे। लता ने बनस्पतियों को पैदा किया और फूल फल से शोभित वृक्षों को पैदा किया। वल्ली ने गुल्मों को पैदा किया। और बांस इत्यादि को पैदा किया। वीरुधा की सन्तान वीरुध के नाम से प्रसिद्ध है, अभी मैंने आपको कश्यप के वंश की सन्तान का वर्णन सुना दिया है मैं आपको कश्यपजी की प्रजाओं की सृष्टि का वर्णन आपको सूक्ष्म रूप में सुना चुका हूँ इस सृष्टि क्रम को बहुत विस्तार के साथ हजारों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता है कश्यपजी की दो स्त्रियां थीं, इनमें अदिति धर्म परायण थीं और दिति बलशाली थीं। ये दोनों अपनी कठिन शुद्धात्मा के कारण मायाविनी कहलाती हैं। मुनि अध्ययन करने वाली तथा गन्धशीला कहलाती हैं। अरिष्टा गाने वाली कहलाती है तथा खशा क्रोध करने वाली कहलाती है। क्रूर बहुत दुष्ट स्वभाव की कहलाती है। और क्रोञ्ची बहुत सुनने वाली तथा अध्ययन करने वाली कही जाती हैं। इरा अनुग्रह करने वाली कही जाती हैं तथा दनायु भक्षण करने वाली कहलाती हैं। विनता भार ढ़ोने वाली कही जाती है तथा ताम्रा पाश रखने वाली कही जाती हैं, शील सदा चारी स्वभाव ये सब लोक में पूज्य माताओं का संक्षेप में वर्णन है। कश्यपजी की सम्पूर्ण प्रजा अपनी अपनी माताओं के कुल और स्वभाव के अनुसार थी। देवता, असुर गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, राक्षस, सर्प, पशु, पक्षी लता बल्ली इत्यादि सभी प्रजाऐं इस तरह की मानी जाती हैं। मनुष्य के ये चार साधन ही धर्म अर्थ काम मोक्ष साधक हैं सभी मन्वन्तरों में मनुष्य का जन्म ही श्रेष्ठ माना गया है। मृत्युलोक में सुर और असुर अपने कार्य सिद्धि के लिए बार-बार

मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं। देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, पिशाचों, सर्पों, पक्षियों पशुओं, कीड़ों, मनुष्यों, ब्राह्मणों तथा सभी प्रकार की औषधियों का वर्णन मैंने आपसे किया है। जो मनुष्य इस कथा को श्रद्धा सहित पढ़ता और सुनता है वह दीर्घायु होकर धर्म, धान्य, वैभव तथा सुख प्राप्त रता है। अतः इस कथा की कभी निन्दा नहीं क नी चाहिए। ऐसा कह मनुष्य इस लोक में भी सुखी रहता है। और परम गति को पाता है। श्री व यु महा-पुराण का उपोद्घात् पाद में कश्यप की प्रजास्टष्टि नामक ६६ वां अध्याय समाप्त हुआ।

सत्तरवाँ अध्याय

[ऋषियों के वंशों का वर्णन]

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! इसके बाद प्रजापति ब्रह्माजी ने कश्यप जी द्वारा सभी सृष्टि पूर्ण होने के बाद उनके ऊपर उनका स्वामी (राजा) बनाने का विचार किया। सम्पूर्ण ब्राह्मणों, बीरुधों, नक्षत्रों, ग्रहों, यक्षों के ऊपर प्रजापति ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को राजा बनाया। अंगिरा ऋषि की समस्त प्रजा का राजा वृहस्पति को बनाया। भृगुजी के वंश की सभी प्रजाओं का राजा शुक्र जी को बनाया। आदित्यों का राजा विष्णु जी को बनाया, मरुतों का राजा वासव को बनाया। दैत्यों का राजा प्रह्लाद को बनाया, साध्यों का राजा नारायण को बनाया। रुद्रों का राजा शंकर को बनाया तथा दानवों का राजा विप्रचित्ति को बनाया। जल का राजा वरुण को बनाया, राजाओं, यक्षों, राक्षसों के धन सम्पत्ति का राजा कुबेर को बनाया। पितरों का राजा यम को बनाया, भूत पिशाचों के राजा भगवान शंकरजी हुये पर्वतों का राजा हिमालय बने नदियों का सागर राजा हुये, गन्धर्वों के राजा चित्ररथ हुए, अश्वों के राजा उच्चैश्रवाः हुए। गाय बैल, हिरण तथा अन्य सभी प्रकार के पशुओं का राजासिंह को बनाया। सभी प्रकार के पक्षियों का स्वामी गरुणजी को बनाया। अशरीरी भूतों में गन्ध का स्वामी मारुत को बनाया। शब्द आकाश

तथा बल का स्वामी महाबली वसुदेव को बनाया। दांत वाले सभी सर्पों का स्वामी शेष जी को बनाया। और नागों का स्वामी वासुकी के बनाया। सरीसृप, सर्प और नागों का स्वामी तक्षक को बनाया। सभी नदी, पर्वत, सागर, मेघ, और आदित्य का स्वामी पर्जन्य को बनाया सभी अप्सराओं का स्वामी कामदेव को बनाया। ऋतुमास पक्ष, विपक्ष, मुहूर्त, पर्वकाल, काष्ठा आदि के प्रमाण, दोनों अयनों के गणित, और योग का स्वामी संवत्सर को बनाया इसके पश्चात् प्रजापति ने पूर्वादिशा में रज के पुत्र सुधामा को राज नियुक्त किया। फिर पश्चिम दिशा में रज के पुत्र महात्मा केतुमान अच्युत को राजा बनाया। इसके बाद सूर्य भगवान के पुत्र महाराज मनुको सभी मनुष्य मात्र का अधिपति नियुक्त किया। ये सभी अधिपतिगण आज भी सातद्वीपों एवं नगर वाली सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसी प्रकार धर्म पूर्वक प्रजा का पालन कर रहे हैं।

पूर्व काल में स्वायंभुव मन्वन्तर में ब्रह्मा जी ने इन सबको राज्य पद पर अभिषेक किया था। हर एक मन्वन्तर में जो मनु होते हैं वे ही राजा बनाये जाते हैं। इस प्रकार बीते हुए मन्वन्तरों में न जाने कितने राजा बीत गये हैं और आगे के मन्वन्तरों में और भी अनेक राजाओं का अभिषेक किया जायगा। ये भूत एवं भविष्य के राजा लोग मन्वन्तरों के अधीश्वर कहे जाते हैं। इन्ही नरपतियों ने राजा पृथु को राज सूययज्ञ में अभिषेक किया था।

समस्त प्रजाओं के अधिपति कश्यप जी ने कठोर तप करके यह विचार किया कि मेरे दो पुत्र गोत्रों की वृद्धि करने वाले हों। उस समय कश्यप को दो पुत्र ब्रह्मा के मनोयोग पूर्वक वत्सार और असित नामक दो पुत्र हुए। वत्सार के निध्रुव और रैम्य का जन्म हुआ। रैम्य की सन्तानों को रैम्य गण कहते हैं। निध्रुव की सन्तानें निम्न प्रकार जाननी चाहिए।

च्यवन के सुमेधा की उत्पत्ति सुकन्या के गर्भ से हुई। निध्रुव की पत्नि जो थीं वह कुण्डपायिगणों की माता थी। असित के एक

पर्ण नामक पत्नि में ब्रह्मिष्ठ का जन्म हुआ। शांडिल्यों की बातें सुनकर दैवल परम यशस्वी पुत्र हुये। निध्रुवगण शाण्डिल्यगण और रेम्यगण सभी (तीनों गण) कश्यप गोत्रीय हैं। वर आदिक देवगण देवल की सन्तानें हैं' 'मनु' के ग्यारहवें चतुर्युग बीत जाने पर इन प्रजाओं की सृष्टि हुई है। मानस के पुत्र रिष्यन्त थे। रिष्यन्त का पुत्र दम नाम से प्रसिद्ध हुआ। इनके पुत्र भी मानस कहलाये। इन्हें तृण विन्दु भी कहा गया है। तीसरे त्रेता युग के प्रारम्भ में वे राज करते थे। इनकी कन्या इडविला अपने सौन्दर्य में अनुपम थी। वह कन्या पुलस्त्य को व्याही थी। इडविला में पुलस्त्य के द्वारा विश्रवा ऋषि का जन्म हुआ। उनकी चार पत्नियां थीं। देवाचार्य वृहस्पति की परम यशस्विनी कन्या देववर्णिनी विश्रवा को व्याही थी। माल्यवान की पुष्णेतकरा और वाका नामक कन्यायें भी विश्रवा की पत्नि थीं। तथा माली की कैकसी नामक कन्या भी विश्रवा को व्याही थीं। अब उनकी सन्तानों को सुनिये—

सबसे बड़े पुत्र वैश्रवण (कुवेर) को देववर्णिनी ने उत्पन्न किया। उनका स्वरूप राक्षसों का था। ज्ञान ऋषियों का सा था और विधान देवों के समान था। उसमें बल असुरों का सा था। तीन चरण थे। शरीर अति विशाल था। सिर बड़ा था। आठ दाँत थे। हरे रंग की दाढ़ी थी। कान खूँटे के समान खड़े थे। वे लाल रंग के थे। एक भुजा लम्बी और एक छोटी थी वह देखने में पीले वर्ण का भयानक लगता था। उसे संसार की माया आदि का पूर्ण ज्ञान था। ऐसे विश्वरूपधारी पुत्र को देख कर पिता ने कहा—यहस्वयं कुवेर है। (कुत्सित या भद्दा) वेर (शरीर) अर्थात जिनका शरीर भद्दा हो यह कुवेर विश्रवा का पुत्र वैश्रवण नाम से भी प्रसिद्ध हुआ कुवेर के ऋद्धि नामक पत्निमें नल कूवर का जन्म हुआ जो परम विख्यात पुत्र हुये।

इसके अतिरिक्त विश्रवा की पत्नि कैकसी के गर्भ से रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण का जन्म हुआ। रावण का कान खूँटे की तरह

उसके दश कण्ड थे। वह पिंगल वर्ण का था। बाल उसके लाल रंग के थे। जन्म से ही काजल के समान काला था। बड़े बड़े दात थे। कण्ठ लाल थे। बड़ा भारी बलवान था। उसकी सेना भी बलवान थी। वह सत्यबुद्धि था। शरीर दृढ़ तथा राक्षसों जैसा ही था। स्वभाव से वह क्रूर और भयंकर था। बहुत जोर का रव (शब्द) करने के कारण उसका नाम रावण पड़ा। पूर्व जन्म में वह दैत्यराज हिरण्यकशिपु नाम का था। इस राक्षस राज ने चारों युगों तक राज किया। वह राक्षसों के राजाओं में तेरहवां राजा था। इसके शासन काल की अवधि विद्वानों ने पांच करोड़ इकसठ नियुत बताई है। साठ लाख वर्षों तक वह रावण देवता और ऋषियों को घोर कष्ट देकर चौबीसवें त्रेता युग में अपनी तपस्या के नष्ट हो जाने पर वह महाराज दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी के हाथों से सेना सहित मारा गया।

पुष्पोत्कटा के महोदर, प्रहस्त, महापार्श्व और खर नामक पुत्र तथा एक 'कुम्भीनसी' नामकी कन्या हुई। वाला की सन्तानों में निशरा दूषण विद्युज्जह्व नामक राक्षस पुत्र और असलिका नामक कन्या पैदा हुए। ये दश राक्षस पुलस्त्य के वंश में बड़े क्रूर और देवताओं से भी अजेय थे। कुबेर सभी पक्षों का पुलस्त्य गोत्रीय राक्षसों का अगस्त और विश्वामित्र के गोत्र के वेदपणिगणों का व्रत आदि करने वाले किन्तु क्रूर ब्रह्म राक्षसों का वह राजा बनाया गया। अन्दराक्षस गण यज्ञ मुख हैं। यातुधान ब्रह्मधान और वार्ता ये तीनों दिन में गमन करते हैं। रात में नहीं। चौथे राक्षस निशाचर कहे गये हैं जो रात में गमन करते हैं। पुलस्त्य गोत्रीय ये राक्षस सात प्रकार के कहे गये हैं। ये राक्षस गोली आंख के पिंगलवर्ण महानकाय विशालपेट आठ दांत काले शंकु के समान कान वाले तथा ऊपर को उठे हुए रोम वाले हैं। इनके मुख कान तक फटे होते हैं। इनके बाल मूँज और धूँयें के समान होते हैं। शिर बड़े होते हैं कोई कोई देखने में सफेद मालूम पड़ते हैं। कोई बहुत छोटे और कोई बहुत

छोटे और कोई कोई बहुत बड़ी भुजा वाले थे। किसी किसी के मुंह तांबे के समान लाल और जीभ तथा होठ लम्बे लम्बे होते थे। नाक मोटी और भौहें लम्बी होती हैं। किसी के मुख तांबे के समान चमकते हुए हैं। किसी किसी के वर्ण नीले रंग के थे। ग्रीवा लाल वर्ण की थीं। देखने में महा भयंकर समूह बांधकर चलने वाले, अति भयानक कर्म करने वाले, कुण्डल, अंगद तथा माला चन्दन पहने हुए; मुकुट, पाग बांधे हुए अति दारुण थे। ये अन्न खाते थे तथा मांस भी भक्षण करते थे। ये सबके सब मायावी हैं इसलिए इनके बल व पराक्रम का किसी को पता नहीं चलता।

पुलह के सभी पुत्र मृग, व्याल, एवं दंष्ट्रा वाले जीव पैदा हुये। इसके अलावा भूत प्रेत पिशाच, भौरे, हाथी, बन्दर, किन्नर, मोर किंपुरुष, तथा अन्य मायावी एवं महाक्रोधी जीवों को उत्पन्न किया। वे सब पुलह की सन्तानें हैं। वैवस्वत मनवन्तर में महर्षि क्रतु के कोई सन्तान नहीं हुई। अपने तेज को समेट कर वे अपने ही स्थित रहे। वे नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। अब तीसरे प्रजापति अत्रि के वंश का वर्णन सुनिये।

अत्रि के दस पत्नियां थीं। जो महासुन्दरी तथा अति पतिव्रतायें थीं। भद्राख की दस कन्यायें घृताची अप्सराओं में पैदा हुई थी। जिनके नाम भद्रा, सूद्रा, शालदा, मलदा वेला, खला, गोचपला, मानरसा, और रत्न कूटा थे। इन सबका पति अग्नि गोत्रीय (वंशका) प्रभाकर था। उसने भद्रा में सोम को पैदा किया।

एक बार सूर्य राहु के द्वारा आहत होने पर पृथ्वी की ओर गिरने लगे। सभी भू मण्डल अंधकार मय हो गया। उस समय प्रकाश दान देने वाले ये यशस्वी सौम ही थे। आकाश मण्डल से जब सूर्य गिर रहे थे। तब ऋषि ने आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा कल्याण हो, इससे वे आकाश से गिरे नहीं।

दस स्त्रियों में उनसे दस पुत्र उत्पन्न हुए वे कल्याण दायी और वेदों के पारगामी विद्वान थे। उनके परम विख्यात, यशस्वी, महा-

वसिष्ठ के वंशज अठारह गोत्र कर्त्ता हैं ये उपर्युक्त आठ ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। ये सब महा भाग्यशाली हैं। ये समस्त भू मण्डल में प्रसिद्ध हैं उनकी संख्या सैकड़ों नहीं आपितु हजारों तक है। इन्होंने समस्त पृथ्वी को सूर्य की किरणों के समान व्याप्त कर रखा है।

इति श्री वायु महापुराण के उपोद्घात पाद का ऋषि
वंश कीर्तन नामक
सत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥७०॥

—❀—

इकत्तरवाँ अध्याय

[श्राद्ध की प्रक्रिया]

यह सुन कर आत्मज्ञानी सूत जी की ये बातें सुन ब्राह्मणों ने पुनः पूछा—

शांशपायन ने कहा—हे सूतजी! भव जो महादेव जी हैं उनकी पत्नि सती कैसे दूसरी बार पैदा हुईं? हिमालय ने पितरों की कन्या मेना से विवाह किया था। वे पितरण कौन हैं? जिनकी यह मैना मानसी पुत्री है। मैनाक उनका दौहित्र है। पर्ण (पत्ता) खाकर तपस्या करने वाली भगवती उमा उनकी दौहित्री हैं। नदियों में श्रेष्ठ सुरसरि उनकी सबसे बड़ी सन्तानें हैं। यह तो हमने सब जान लिया है आप कृपाकर हमारी यह जिज्ञासा भी शान्त करिये। इन सबको जानने की हमारी उत्कट अभिलाषा है कि पितृगण कौन हैं? ये कहां पर निवास करते हैं। तथा श्राद्ध की विधि क्या क्या होती हैं। ये किसकी सन्तानें हैं तथा इनका नाम पितर कैसे पड़ा? स्वर्ग में रहने वाले पितृगण कौन हैं जो देवों के भी गुरु हैं। हम लोग श्राद्ध पूर्वक जो कुछ उन्हें भेंट करते हैं वह उन्हें कैसे सन्तुष्ट करती हैं। ये पितृगण दीखते क्यों नहीं कौन से पितृगण स्वर्ग में जाते हैं और कौन से नरक में जाते हैं।

पिता को, बाबा को तथा पिता मह को पिण्डदानों में नामोच्चारण

पूर्वक विधि समेत कौन कौन से श्राद्ध देने चाहिए ? श्राद्ध की वस्तुयें पितृश्वरों को कैसे मिलती हैं। जो नरक में निवास करते हैं, वे पितर किस प्रकार उनको ग्रहण करते हैं ? देवता भी स्वर्ग में पितरों की पूजा और श्राद्ध करते हैं ? इस सब विषय को विस्तर से हमें वर्णन कर के सुनाने की कृपा करिये।

सूत जी बोले—हे ऋषिगण ! आप की बातों का उत्तर मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तथा श्रुति के अनुसार देता हूं, सो सुनो· प्रत्येक मन्वन्तर में ये पितृीगण देवताओं के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं। बीते हुए मन्वन्तर में ज्येष्ठ और भविष्य में कनिष्ठ रूप से उत्पन्न होते हैं। बीते हुए तथा वर्तमान पितरगणों को कहता हूँ सो आप सुनिये।

मनुष्यों के द्वारा श्रद्धा पूर्वक दी गई वस्तुयें ही श्राद्ध कहलातीं हैं। पूर्व काल में ब्रह्मा की सृष्टि में इन लोगों ने पूजा आदि कुछ भी नहीं की थी। तब ब्रह्माजी ने इन्हें शाप दिया कि तुम चेतना हीन हो जाओगे तुम कुछ भी नही जानते। ब्रह्माजी के शाप के कारण समस्त लोक मोह वश हो गये। वे अत्यन्त विनीत होकर ब्रह्मा जी ये पुनः प्रार्थना करने लगे। ब्रह्माजी ने उनसे नेक कल्याण के भाव से कहा तुमने महान पाप और अत्याचार किया है उसका प्रायश्चित करो और उसका विधान अपने अपने पुत्रों से पूछो। तब आप लोगों को ज्ञान प्राप्ति होगी। तब उन सब ने प्रायश्चित की विधियां बतलाई। पुत्रों द्वारा प्रायश्चित जानकर इन्हें पुनः चेतना प्राप्त हुई। उन्होंने अपने पुत्रों से निवेदन किया कि तुम लोग ही हम सब के पिता हो। क्योंकि तुम्हारे द्वारा ही हमें ज्ञान एवं चेतना प्राप्त हुई है। तुम्हें धर्म ज्ञान या काम कोई भी वरदान हम दे सकते हैं, बतलाओ क्या चाहते हो ?

देवताओं के ये भाव देखकर वे बोलें कि तुम लोग सत्यवादी हो अतः जो भी तुम मांगते हो वह सब होगा। अन्यथा कुछ नहीं होगा। तुमने अपने पुत्रों को अपना पिता कहा है। अतः वे

अतः तुम्हारे पिता ही हों। यही वरदान उन्हें दो। ब्रह्माजी के इस प्रकार कहने पर ऐसे ही हुआ और देवपुत्रगण पितृकोटि में आगये और उनके पिता पुत्र कोटि में आगये। इस तरह ये पितृगण (देवपुत्र) कहलाते हैं। वे पुत्र होने पर भी पितृभाव युक्त हैं। पुनः ब्रह्माजी ने वंश वृद्धि के लिये पितरों से कहा—

श्राद्ध कर्म में जो पितरों की पूजा बिना किये किसी अन्य क्रिया का अनुष्ठान करते हैं उनकी उस क्रिया का फल राक्षस और दानव प्राप्त कर लेते हैं श्राद्धों द्वारा सन्तुष्ट किये गये पितृगण अव्यय सोम को सन्तुष्ट करते हैं। तुम लोगों से सन्तुष्टि प्राप्त करके वे सर्वदा तुम्हें वृद्धि प्रदान करेंगे। श्राद्ध आदि में इस भांति सन्तुष्ट किया गया (पितरों द्वारा) वह सोम समस्त लोक, पर्वत, वन चराचर जगत सबको सन्तुष्ट करेगा। जो लोग लोक के पोषण की दृष्टि करेंगे उन्हें पितृगण सदा सर्वदा पुष्टि एवं सन्तान प्रदान करेंगे। श्राद्ध में आपके प्रपितामह तक का नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर जिन पितरों को कुछ दे दिया जायगा, वे पितरगण उस श्राद्ध दान से अति सन्तुष्ट होकर देने वाले की सन्ततियों को सन्तुष्ट रखेंगे। परमेष्ठि ब्रह्मा ने यह आज्ञा पूर्वकाल में दी है उन पितरों की कृपा से ही दान, अध्ययन, तपस्वी सब में सिद्धि मिलती है इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। पितरगण एवं देवता दोनों परस्पर में एक दूसरे के देवगण तथा पितरगण हैं।

ऋषिगण पूछने लगे—हे सूत! इन पितृगणों के कितने समूह कहे गये हैं। देवों के पूज्य तथा चन्द्रमा की पुष्टि करने वाले ये पितृेश्वर किस समय वर्तमान रहते हैं?

सूतजी बोले—हे ऋषियो! मैं आप लोगों से पितरों के उस श्रेष्ठ वंश का वृतान्त कहूँगा। जिसको प्राचीन काल में शंयु ने अपने बृहस्पति जी से पूछा था। एक बार शंयु ने पिता बृहस्पति जी से पूछा कि ये पितर कौन हैं! ये कितने और किस नाम वाले हैं! उनकी उत्पत्ति कैसे हुई! किस प्रकार इनको पितृत्व प्राप्त हुआ यज्ञ

में तथा किस कर्म आदि में पितरों की पूजा किस प्रकार और क्यों होती है ? श्रेष्ठ पुरुष सभी कार्यों को पितरों के श्राध्द के बाद समाप्त करते हैं ? ये श्राध्द अदि किसके उदेश्य से करने चाहिये । और इन्हें क्या प्रदान करने पर अधिक धन मिलता है। किन किन तीर्थों तथा नदियों में श्राध्द आदि करने पर अक्षय फल मिलता है। किन पवित्र क्षेत्रों में श्राध्द का विधान पूर्ण करने पर सभी मनोरथों को हम प्राप्त कर सकते हैं। कृपा यह सब क्रमशः बतलाने का कष्ट कीजिये। यह सुनकर बृहस्पति जी इस प्रकार कहने लगे।।

वृहस्पति ने कहा–हे श्रेष्ठ ब्राह्मण ! मैं तुम्हारे इन श्रेष्ठ प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूँ। हे विप्र ! जिस समय सारे संसार में अधंकार था, आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, सूर्य चन्द्रमा, रातदिन कुछ भी नहीं थे, उस समय प्रजापति ब्रह्माजी अकेले ही अपनी तपस्या में लीन थे। शंयु ने अपने पिता वृहस्पति जी की इस प्रकार बातें सुनकर उनसे फिर कहा-हे पिता जी ! इस तरह की स्थिति में प्रजापति ब्रह्माजी किस तरह अपनी तपस्या में लीन रहे। वृहस्पति जी ने अपने पुत्र के इस प्रकार पूछने पर उससे कहा कि हे पुत्र ? योग सभी तरह के कठोर तप में श्रेष्ठ है। प्रजापति ब्रह्माजी ने योग से ही ध्यान में लीन होकर संसार की सृष्टि की थी प्रजापति ब्रह्माजी सभी अतीत और अनागत समय में होने वाली ज्ञान राशि, सारा संसार, समस्त वेदों की रचना, अपने योग के बल से ही की है जिस स्थान पर परम कान्तिमान सांतानिक नाम के लोकों की स्थिति है, उसी स्वर्ग लोक में वे देवताओं के भी राजा देवता वैराज नाम से पुकारे जाते वाले पितर गण रहते हैं। प्रजापति ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि काल में अपने सनातन योग से तपस्या में लीन होकर देवताओं की सृष्टि की थी, वे सभी देवगण आदि देव के नाम से प्रसिध्द हैं। वे आदि देव बहुत प्रभाव वाले बलशाली और तेजस्वी हैं

वे सभी मनुष्यों और दानवों के आदरणीय हैं तथा सभा की इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। त्रिलोकी में रहने वाले देवों के सात गण प्रसिद्ध हैं उन सात गणों में से तीन गण निराकार हैं और चार साकार हैं। निराकार देवगण सबसे ऊपर रहते हैं और जो चार साकार देवगण हैं वे उनके नीचे रहते हैं और फिर उनके नीचे साधारण देवता रहते हैं। इन सबके नीचे पृथ्वी बसी हुई है। इस प्रकार सभी लोक स्थित हैं। वे देव। इसी लोक में रहते हैं, उन्ही देवताओं से बादलों की उत्पत्ति हुई हैं। बादलों से फिर वर्षा होती है और फिर वर्षा से सभी चीजें पैदा होती हैं।

पितर गण अपने योग बल से सोम और अन्न दोनों को सन्तुष्ट रखते हैं। विद्वान लोग उनको पूरे लोकों का पितर मानते हैं। ये पितर गण सम्पूर्ण इच्छाओं को पूरा करने वाले और सब तरह के आराम देने वाले हैं। तथा स्वधा को खाने वाले मन के समान वेग-शाली हैं। ये पितर गण लोभ मोह और भय से रहित हैं ये अपने योगाभ्यास के कारण प्रसिद्ध लोकों को प्राप्त हुए हैं। ये दिव्यगुणों से युक्त हैं श्रेष्ठ तथा पाप से रहित हैं ये पितरगण एक हजार वर्ष के बाद ब्रह्मवादी हो जाते हैं और फिर योग प्राप्त करके शरीर को त्याग कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। वे रोजाना नियम पूर्वक गुरु की पूजा इत्यादि करते हुए अपने योगाभ्यास में लगे रहते हैं वे पितरगण योग मार्ग में इस प्रकार सबको तृप्त करते हैं, वे पितर गण श्राद्धों के समय में अपने योग बल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं। योग के तत्व जानने वालों को हमेशा श्रद्धा पूर्वक श्राद्धादिकों का दान करना चाहिए। श्राद्ध के समय पर आये हुए अतिथी ब्राह्मणों को श्रद्धा पूर्वक भोजन कराना चाहिए। योग बल में निपुण एक ही ब्राह्मण को भोजन कराने का फल हजारों ब्राह्मणों के भोजन कराने के फल के समान होता है।

हजारों ब्राह्मण, सौ स्नातक, एक हजार गृहस्थी सौ वान प्रस्थी तथा एक हजार ब्रह्मचारी इन सबसे बढ़कर एक योगाभ्यासी मनुष्य होता है। चाहे वे योगाभ्यासी संकीर्ण विचारों वाला तथा चोर ही क्यों न हो, चाहे नास्तिक हो वही सबसे बड़ा है। प्रजापति ब्रह्माजी ने कहा है कि योगी को छोड़ कर किसी और को दान नहीं देना चाहिए। जिस मनुष्य का पुत्र तथा पौत्रादि योगाभ्यासी मनुष्य को श्राद्ध के समय पर भोजन कराता है उस पितर गण इस प्रकार सन्तुष्ट होते हैं, जिस प्रकार कि अच्छी वर्षा होने पर किसान सन्तुष्ट हो जाते हैं। यदि श्राद्ध के समय पर योगाभ्यासी मनुष्य नहीं मिलता है तो दो ब्रह्मचारी ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए, यदि किसी कारण वश वो भी न मिले तो किसी उदासीन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए वह मनुष्य संसार के मोह माया जाल से विरक्त होना चाहिये। यदि ऐसा मनुष्य भी न मिले, तो किसी गृहस्थी को भोजन करवाना चाहिए। जो मनुष्य सौ वर्ष तक एक पैर पर खड़े होकर तपस्या करे उससे भी ध्यानीयोगी मनुष्य बढ़कर है। पृथ्वी पर सिद्ध मनुष्य ब्राह्मण का रूप रख कर घूमते रहते हैं। अतः मनुष्य को चाहिए कि किसी भी अतिथि के आजाने पर उससे हाथ जोड़कर आसन देकर उनका स्वागत करना चाहिए उसके रहने के लिए स्थान और भोजन की व्यवस्था करनी चाहिए। इस विशाल भू मण्डल पर ये देवगण अनेक रूपधारण करके रहते हैं और धर्म पूर्वक प्रजा का पालन करते हैं। इसलिए सभी मनुष्य अपने द्वार पर आये हुए अतिथी ब्राह्मण का अवश्य आदर करें। तेजस्वी पितरों के साथ गणों में यह प्रथम गण जिसका मैंने वर्णन किया है, सभी कालों की भावना करते हुये सदा वर्तमान रहता है। इसके बाद में सभी पितरों और उनकी सन्तानों तथा भावनाओं का क्रम से वर्णन करूंगा।

इति श्री वायु महापुराण का इकहत्तरवां अध्याय समाप्त (७१)।

—❀—

बहत्तरवां अध्याय

[श्राद्ध कल्प]

सूतजी बोले—हे ऋषियों ! पितृरीश्वरों के गण सात बताये गये हैं जो परम बुद्धिमान हैं। पितर गणों में चार तो मूर्तिमान हैं और तीन अमूर्त हैं। अब मैं उनके द्वारा लोक सृष्टि की रचना को कहता हूं सो ध्यान पूर्वक सुनो। उन की जो जो पुत्रियां तथा दौहित्रा हैं प्रथम उनका वर्णन सुनिये। विरजस नाम के विख्यात लोकों के मध्य में ब्रह्मा जी के पुत्र पिरज नाम के वितृीगण रहते हैं। जिनका वर्णन मैं कर चुका हूँ। इन्हीं विरजों की मानसी पुत्री मेना नाम वाली थी जो की हिमवान पत्नि थी। उससे मैनाक की उत्पत्ति हुई। यह मैनाक पर्वतों में श्रेष्ठ, रूपी रत्न एवं ओषधियों का आकार और पुष्पवान था। इसका पुत्र क्रौञ्ज नामक पर्वत था। पर्वतराज ने तीन कन्यायें अपर्णा, एकपर्णा और एक पाटला नाम वालियों को जन्म दिया था। इनमें अपर्णा ने कोई आश्रय नहीं बनाया बिना संबल के तपस्या में ही मन को लगा दिया। शेष दो ने आश्रम ग्रहण किया एकपर्ण ने एक न्यग्रोध (वरगद) के वृक्ष का तथा एक पाटला ने पाटल के वृक्ष का आश्रय लेकर तपस्यायें की। एक हजार वर्ष तक कठोर तपस्या की। इस प्रकार की तपस्या किसी देवता और दानव ने भी नहीं की थी इनमें जो एकपर्ण थी, वह सिर्फ एक पत्ते को खाकर तपस्या करती थी और एकपाटला सिर्फ एक पाटल पर ही तपस्या में लीन रहती थी। दो हजार वर्ष के बीत जाने पर इन दोनों बहिनों ने भोजन करना स्वीकार किया। हिमालय की तीसरी पुत्री अपर्णा ने भोजन करना अस्वीकार कर दिया और दो हजार वर्ष से अधिक भी बिना किसी आहार के तपस्या करती रही। उनकी मां ने अपने स्नेह और ममता से अति दुखीः होकर और तपस्या करने के लिए मना करते हुए उन्होंने 'उ' 'मा' नाम रख दिया। इस प्रकार कठोर तपस्या करने वाली भगवती अपनी मां के कहे अनुसार उमा नाम से तीनों लोकों में पुकारी जाने लगीं। वे भगवती उमा अपनी कठिन

तपस्या के कारण अपर्ण नाम से भी प्रसिद्ध हुई। जब तक यह पृथ्वी स्थिर है और संसार सत्ता जब तक स्थिर रहेगी तब तक इन तीनों कन्याओं के नाम उनकी कठिन तप के कारण रहेंगे। ये तीनों कन्याएं अपने योगबल से युक्त सुन्दर शरीर वाली सौभाग्यशालिनी और हर समय एक से यौवन वाली थीं इन तीनों कन्याओं में उमा सबसे श्रेष्ठ सर्वगुण सम्पन्न तथा सबसे अधिक सुन्दर थीं, इन्होने अपने योगबल और कठिन तप के कारण महादेव जी को पति बनाया इनके पुत्रों के ये नाम हैं। एक दन्त, कराय, उशन और भृगुनन्दन हैं। हिमालय की पुत्री एक पर्णा असित को ब्याही थी वह परम साध्वी और पतिव्रता स्त्री थी। हिमालय ने अपनी पुत्री एकपर्णा का विवाह अतिविद्वान योगाचार्य असित के साथ कर दिया। एकपर्णा ने ब्रह्मनिष्ठ देवल को मानस पुत्र के रूप में पैदा किया हिमालय की तीसरी कन्या एक पाटला का विवाह शतशिलाक के पुत्र जैगीषव्य के साथ हुआ और फिर उसके शंख और लिखित नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए, उन पुत्रों की उत्पति योनि से नहीं हुई थी। हिमालय की ये तीनों कन्याएं कल्याण दायक हैं इनमें सबसे अधिक भगवती उमा हैं। एक बार देवराज इन्द्र को उमा और शंकर जी के दाम्पत्य प्रेम को और आपस के सम्बन्ध को देख कर कुछ सन्देह हो गया, और इनके होने वाली सन्तान के भय से दुखी होकर उन्होंने अग्नि को उनके पास भेजा और कहा कि हे अग्नि देव ? तुम जाकर इन दोनों के रति कर्म में बाधा डालो, तुम तो सभी स्थानों पर जा सकते हो, तुम्हारे लिये कोई रोक टोक नहीं है। अतः तुम्हारे वहां जाने पर कोई दोष नहीं होगा। देवराज इन्द्र के ऐसा कहने पर अग्नि ने वैसा ही किया और फिर उसके परिणाम स्वरूप शंकरजी ने अपना वीर्य भगवती उमा के शरीर में न छोड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया। हे शांशपायन ! इस प्रकार की स्थिति होने पर भगवती उमा को क्रोध आगया उन्होंने अग्नि को श्राप देदिया कि हे अग्नि ! तुमने मेरी तृप्ति किये बिना ही मेरी इस रति कर्म में जो बाधा

डालदी है, इस कारण तुम बहुत ही दुष्ट हो और जो रुद्र का महान तेजोमय वीर्य है उसे तुम गर्भ रूप में धारण करोगे, मैं तुमको श्राप दे ी हूँ ! हे ऋषियो । रुद्राणी उमा के क्रोध से श्राप के कारण अग्नि देव को गर्भ धारण करना पड़ा और वर्षों तक उन्होंने उस गर्भ के बोझ को सहन किया । कुछ दिनों के बाद फिर वे गंगा के किनारे आकर अग्नि देव ने गंगा जी से नम्रता पूर्वक कहा कि हे सुरसरि । तुम इस गर्भ को आज से धारण करलो, और मैं आशीर्वाद देता हूं कि तुम इसके बजन को कुछ कम हो दिनों तक धारण करोगी । तेज से जलते हुए उस गर्भ को धारण करने में गंगाजी को भी बहुत कष्ट हुआ । फिर भी वे उस गर्भ को धारण किये रहीं । इसके बाद हिमालय पर्वत की घाटी में शखण नाम का एक बहुत सुन्दर वन था । उस बन में बहुत से वृक्ष लगे हुए थे । उसी वन में जाकर गंगा जी ने अनुपम तेज से जलते हुए वीर्य को छोड़ दिया । रुद्र अग्नि और गंगा वह शिशु अरुण की तरह चमकता हुआ महान तेजस्वी और प्रतापी था । जाह्नवी के गर्भ से उस कुमार के पैदा होने के कारण सारा आकाश देवताओं से इस प्रकार ढ़क गया कि मालूम पड़ता था कि पक्षीगणों के समूह आकाश में उड़ रहे हों । चारों तरफ से गन्धर्व और अप्सरायें नाच गान करने लगे, सिद्ध, किन्नर, विद्याधर चारण फूलों की वर्षा करने लगे और उत्सव मनाने लगे । बड़े बड़े विशाल नाग शंकरात्मज अग्निसम्भव कुमार की पूजा करने लगे । उस परम तेजस्वी कुमार ने अपने अनोखे प्रभाव से ही दैत्यों, दानवों तथा राक्षसों को युद्ध में हरा दिया । जो इस उत्सव में सप्त ऋषियों की पत्नियों की पत्नियां आई थीं, उनमें से अरुन्धती जी को छोड़कर सबसे पहले उस अग्नि सम्भव कुमार का दर्शन किया । रुद्र के महान तेजोमय, परम ऐश्वर्य शाली, बाल सूर्य के समान कान्ति वाले पुत्र को उन ऋषियों की पत्नियों ने चारों तरफ से घेर लिया ।

माता के समान स्नेहमयी आंखों से देखने लगीं, तब अग्नि सम्भव कुमार ने उन सबको खुश करने के लिए जाह्नवी के पुत्र ने छः मुख को बना लिया, उस समय वे बहुत सुन्दर लग रहे थे। उस कुमार के पैदा होते ही दानव भयभीत हो गये। उस समय उसका नाम (स्कन्द) पड़ा। वह स्कन्द कृत्तिकाओं द्वारा पोषण किया गया, इसलिए उसका नाम कार्तिकेय हुआ। भगवान विष्णु ने इनकी सवारी के लिए गरुड़ से भी प्रभावशाली दो प्रभद्रक नाम के मयूर और कुक्कुट पक्षियों को उत्पन्न किया। वायुदेव ने उन्हें पताका दी। सरस्वती ने सुन्दर शब्द करने वाली बहुत बड़ी वीणा दी। ब्रह्माजी ने अज दिया और शंकर भगवान ने एक भैंढ़ा दिया। तारकासुर को समस्त सेना के साथ संहार कर देने के बाद इन्द्रादिक सभी देवताओं ने, शिव के भूतगणों ने, मातृकाओं ने, विनायकों ने इनका नर नायक, देव सेनापति, स्कन्द सर्व लोकेश्वर एवं प्रभु आदि नामों से अभिनन्दन किया।

इति श्री वायु महापुराण का श्राद्ध कल्प नामक बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥७२॥

—❀—

तिहत्तरवां अध्याय

[श्राद्ध कल्प]

बृहस्पति जी कहने लगे—स्वर्ग में जो सोमपद नाम का लोक है, वहीं पितरों का निवास स्थान है, देवता वहां पर उनकी पूजा किया करते हैं। वे पितरगण अग्निष्वात्त नाम से पुकारे जाते हैं। आच्छोदा नाम की जो नदी है वह पितरों की मानसी कन्या कहलाती है। आच्छोदा नाम की नदी से निकला हुआ एक आच्छोद नामका बहुत बड़ा सरोवर भी है। उसी सरोवर के किनारे एक समय सभी देवता अद्रिका नाम की अप्सरा के साथ आकाश में विमानों पर विहार कर रहे थे, तभी उस अप्सरा ने मूर्ति रहित पितरों को देखा और अत्यन्त आश्चर्य करने लगे, फिर पितरों पर मोहित काम से

पीड़ित हुई। उसने आकाश में घूमते हुए वसुओं के पिता दीर्घायु ऐश्वर्यशाली अमावसु नाम के पितर को अपने पति बनाने की इच्छा से उसको मन ही मन में वरण कर लिया और इस मानसिक वरण के कारण तथा अमावसु को पति के रूप में मानने की कामना से वह कामचारिणी योगभ्रष्ट हो गई। जब वह स्वर्ग लोक से पतित हो गई। जब वह स्वर्ग से पतित होकर नीचे गिरी तो गिरते समय उसने देवताओं के विमानों के साथ साथ वहां त्रसरेणु के समान बहुत छोटे रूप में उन पितरों को देखा। वे पितर बहुत छोटे थे तथा अग्नि के समान चमकचे हुए तेजस्वी थे। उसने आकाश से गिरते समय दुःखी शब्दों में कहा कि मेरी रक्षा करो। पितरों ने आरत वाणी सुनकर उससे कहा कि-'डरो मत' उनके ऐसा कहने से वह अप्सरा वहीं पर स्थिर हो गई और स्थिर होकर अति दुखी वाणी से पितरों की आराधना की और उनको प्रसन्न किया। अपने मानसिक भावों से भ्रष्ट होने के कारण इस कन्या को देखकर पितरों ने उससे कहा कि, हे सुन्दर हंसने वाली। तू अपने ही दोषों के कारण अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर गिर रही है। इस लोक में देवता अपने जिस शरीर से कर्मों को करते हैं, उसी से उसका फल प्राप्त करते हैं। देवयोनि में कर्मों का फल शीघ्र ही मिलता है। मनुष्य योनि में अपने किये हुए कर्मों का फल परलोक में मिलता है। तुम इसी कारण दूसरे जन्म में अमावसु को अपने पति रूप में प्राप्त करोगी। इस प्रकार कहने के बाद उसने पितरों की पुनः प्रार्थना करके प्रसन्न किया। पितरों ने उस कन्या पर प्रसन्न होकर उससे कहा कि सोम के पीने वाले पितरों ने राजा रूपमें अमावसु को और उसकी कन्या के बारे में ये बातें की। पृथ्वी पर मनुष्य योनि में तुम अमावसु की कन्या बनोगी, और पुनः अपने लोकों को प्राप्त करोगी। अठाइसवें द्वापर युग में तुम मत्स्य की योनि में राजा अमावसु से अद्रिका में तुम कन्या रूप में जन्म लोगी, और पराशर ऋषि के पुत्र वेदव्यास को पैदा करोगी। तुम्हारा वह पुत्र सभी ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होकर वेदों

को चार भागों में विभक्त करेगा । राजा शान्तुन के ऐश्वर्य शाली धर्मपरायण दो पुत्र विचित्र वीर्य और चित्रांगद भी तुम्हीं से जन्म लेंगे । तुम इन पुत्रों को पैदा करने के बाद पुनः इसे लोक को प्राप्त करोगी । तुमने पितरों के साथ ऐसी कुभावना पैदा करके बहुत भारी अपराध किया है और इसी कारण तुमको ऐसी नीच योनि में जन्म प्राप्त करना पड़ेगा । लेकिन तुम उस योनि में भी अद्रिका के गर्भ से और उसी राजा के वीर्य से जन्म लोगी । उनकी कन्या होने के बाद तुम इस लोक को अवश्य ही प्राप्त करोगी ।

इस प्रकार के कहने पर वह दासों की पुत्री सत्यवती हुई । राजा अमावसु के सम्भोग से अद्रिका नाम की मछली के गर्भ से कन्या रूप में जन्म हुआ । गंगा मनुष्य के संगम पर अद्रिका मछली के पेट से उसका जन्म हुआ । वह अमावसु के वीर्य से पैदा हुई थी । अतः वह उन दोनों की कन्या थी । स्वर्ग लोक में विरज नाम के पितर गण निवास करते हैं वहाँ पर रहने वाले पितर गण सूर्य के तेज के समान कान्तिमान हैं। वे पितर अग्निष्वात्त नाम से प्रसिद्ध हैं । सभी लोग दानव, यक्ष, किन्नर, राक्षस भूत, पिशाच, सर्प, गन्धर्व अपने उत्तम फल को पाने की इच्छा से पितरों की पूजा करते हैं । मैंने आपको पुलह प्रजापति के पुत्रों का वर्णन सुनाया है । इन धर्म मूर्ति पितरों के तीन गण प्रसिद्ध हैं, इनकी एक मानसी कन्या थी, जो पीवरी के नाम से प्रसिद्ध है. वह कन्या पीवरी योगिनी, योग परिन और योग माया के नाम से भी पुकारी जाती है । हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों ! अठाइसवें द्वापर युग में पराशर ऋषि के वंश में शुक नाम के महान तेजस्वी योगी जन्म लेंगे । वे ही पृथ्वी पर योग का विस्तार करेंगे । वे शुक व्यास जी के संयोग से अरणी में धूम रहित अग्नि के समान तेजोमय रूप में पैदा होंगे, और पितरों की जो मानसी कन्या पीवरी है उससे, कृष्ण, गौर, प्रभु शंभु, तथा भूरिश्रुत नाम के पुत्र तथा परम योगिनी योगमाता कीर्तिमती नाम की कन्या पैदा होगी

वह कीर्त्तिमती अणुह की पत्नि होकर एक पुत्र ब्रह्मदत्त को पैदा करेगी। महात्मा शुकजी इन पुत्रों को पैदा करने के बाद अपने तप और योग से उस परम गति को प्राप्त करेंगे। जिसको प्राप्त करके दूसरा जन्म नहीं लेना पडता।

धर्म मूर्त्ति धारण करने वाले पितर गण हैं वे अमूर्त हैं, उनके तीन गण प्रसिध्द हैं। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो? अब मै आपको दूसरे चार पितरों के विषय में बतलाऊंगा, वे परम तेजस्वी रूप धारी हैं। वे पितरगण अग्नि की कन्या स्वधा से पैदा हुए हैं। ज्योतिष्मसि नाम के देव लोकों में निवास करते हैं। इन पितरों की मानसी कन्या गौ है, वह कन्या स्वर्गलोक में प्रसिध्द है। सनत्कुमार ने गौ शुक्र को दे दिया, और तब वह गौ शुक्र की प्यारी स्त्री हुई।

भृगुवंश में पैदा होने वाले इकत्तीस पितरगण प्रसिध्द हैं, वे मरीचि गर्भ नाम के लोकों में निवास करते हैं। वे लोक समस्त स्वर्ग लोक को घेरे हुए अंगिरा के पुत्र कहे जाने वाले पितर गण साध्य नाम से प्रसिध्द हुए। स्वर्ग लोक में परम तेजस्वी उपहूत नाम के पितर गण निवास करते हैं। मनुष्य अपने शुभ फल के प्राप्त की इच्छा मे उन पितर गणों की पूजा करते हैं। इनकी एक मानसी कन्या है जो यशोदा नाम से प्रसिध्द है। यशोदा नामकी मानसी कन्या विश्वमहत् की स्त्री है, और विश्वशर्मा के पुत्र की स्त्री है। और उस महात्मा राजर्षि खटवांग की माता थी। प्राचीन काल में जिससे यज्ञ में दिव्यगुण सम्पन्न महर्षिगों ने वेदों का गान किया है, स्वर्ग को जीतने वाले वे सम्पूर्ण पितर गण प्रसन्न चित्त यज्ञ में अग्नि को देखने के बाद महात्मा शाडिल्य के सत्यव्रत परायण और महात्मा यजमान दिलीप का दर्शन करते हैं। उनके नाम आज्यपा हैं, ये प्रजापति कर्दम के पितरगण माने जाते हैं। ये पुलह से पैदा हुए थे, और उन्हीं के यहां इनकी पुनः उत्पत्ति हुई। ये अकाश में घूमने वाले पितरगण अपनी इच्छानुकूल विहार करते हैं। वैश्यगण श्राध्दों में अपनी इच्छानुसार शुभ फल की प्राप्ति से इनकी पूजा करते हैं। एक मानसी कन्या है, वह विरजा नाम से प्रसिध्द है।

वह विरजा नाम की कन्या महात्मा नहुष की प्यारी पत्नि और ययति की माता हुई ।

प्रजापति वशिष्ठ के सुकाल नाम के पितृगण हैं, वे पितृगण हिरण्यगर्भ के पुत्र हैं, शुद्र जाति के मनुष्य इन पितरों की पूजा करते हैं। ये पितर गण स्वर्ग में मानस नामके लोकों में निवास करते हैं। इनकी भी एक मानसी कन्या हैं जो नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा के नाम से प्रसिद्ध हैं। वह नर्मदा नदी भारत के दक्षिण हिस्से में बहती हुई सभी जीवों को पवित्र करती है वह नर्मदा पुरुकुत्स की स्त्री थी और त्रसदस्यु की माता थी। इन्हीं सब पितरों के कारण मनु मन्वन्तर के स्वामी हैं। और मन्वन्तर के आदि काल में सभी प्रकार के श्राद्धों का आदान प्रदान करते हैं; हे विप्रगणो मैंने आप लोगों को सम्पूर्ण पितरों का वर्णन क्रम से सुनाया है। इन्ही सब कारणों से मनुष्य को इस लोक में अपने धर्म के अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्ध कर्म करने चाहिए। चांदी के या मिले हुए चांदी के बर्तनों में रख कर पितरों के उद्देश्य से पुरोहित को दी गई स्वधा पितरों को प्रसन्न करती है। सोम, अग्नि, सूर्यपुत्र मनु को स्वाधादि से खूब सन्तुष्ट करके तथा सूर्य के उत्तरायण होने पर अग्नि में हवन इत्यादि करके अश्वमेधयज्ञ में फल के समान प्राप्ति होती है। जो श्रद्धा पूर्वक पितरों को श्राद्धइत्यादि से प्रसन्नर खता है वह सदा सुखी और सन्तुष्ट रहते हैं। पुत्र पौत्रों की इच्छा रखने वालों के पितर गण उनको वृद्धि, प्रजा और धन स्वर्ग को प्रदान करते हैं। पितरों के निमित्त श्राद्ध इत्यादि कर्म करने का फल देवताओं के निमित्त यज्ञ इत्यादि कर्म करने के फल से अधिक होता है। पुराणों में ऐसा प्रसिद्ध है कि देवताओं से पहले पितरों को प्रसन्न करना चाहिए। इन पितरों में चार मूर्तिधारी हैं और तीन अमूर्तधारी पितरगण है। देवता लोग प्रत्येक यज्ञ से आदर पूर्वक उन सब का श्राद्ध करते है। इन्द्र इत्यादि सभी देवगण अपने मन लगाकर श्रद्धापूर्वक श्राध्दादि कर्म करते हैं। इनके साथ सभी विश्वेदेवगण, पृश्निज अंगिन

कृष्ण, श्वेत, अज इत्यादि भी इन पितरों की आराधना करते हैं। वातरशन, दिवाकीर्त्य नाम की प्रजायें, लेखा, मरुत, ब्रह्मा इत्यादि देवता भी इन पितरों की पूजा करते हैं। मनुष्यों के समस्त मनोरथों को ये पितरगण पूरा करते हैं। ये सभी पितर गण मनुष्यों को धन, आयुः, बल, ऐश्वर्य, तीनों लोक को देने वाले हैं। संसार के सभी दुख मृत्यु इत्यादि के भय को छोड़कर मोक्ष, योग को देने वाले कहलाते हैं। ये सूक्ष्म धारी पितर गण मोक्ष को प्राप्त करने योग ऐश्वर्य देते हैं, योग ही सबसे अच्छा है सबसे अच्छी सम्पत्ति ऐश्वर्य है, योग और ऐश्वर्य के बिना मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती है जिस प्रकार आकाश में पक्षी बिना पंख के नहीं उड़ सकता है, उसी प्रकार योग और ऐश्वर्य के बिना मोक्ष भी नहीं प्राप्त हो सकता है। सभी धर्मों में मोक्ष ही सर्व श्रेष्ठ धर्म है और ये सदा विद्यमान रहता है। ये पितर गण अप्सराओं से घिरे हुए सैकड़ों विमानों को देने वाले हैं। ये पितरगण सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। ये पितरगण धन, धान्य, दीर्घायु, सुख, राज्य, शांक्त बुद्धि के देने वाले हैं। ये पितरगण वैदूर्य, मोती, मुक्ता, नाना तरह के वस्त्र हाथी, घोड़े, नाग, करोड़ों रत्न, हंस, और बर्हियों से सजे हुए मुक्ता और वैदूर्य से सजे हुए, किंकिणी के जालों से गुंथे हुए फल फूलों से सजे हुए रथ को प्रसन्न पूर्वक देने वाले हैं।

श्री वायु महापुराण का उपोदघात पादे श्राद्ध कल्प नामका
तिहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौहत्तरवाँ अध्याय

[श्राद्ध कल्प]

बृहस्पति बोले—पितरों के लिए चांदी, सोने और तांबे के बने बर्तनों का दान बताया है, चांदी का वर्तन हो अथवा चांदी से मढ़ा हुआ वर्तन भी ठीक है। चांदी का दान हो, यदि चांदी न हो सके तो उसको देखने से अथवा उसका नाम लेने से भी पितरों को अनन्त अक्षय और स्वर्ग देने वाला दान कहलाता है। अपने पिता के सुयोग्य

पुत्र चांदी के इस दान से अपने पितरों का उद्धार करते हैं। हे तात पुराने समय में स्वधा देने वाले पितरों ने चांदी ने बर्तनों में स्वधा का दोहन किया था। अतः इसी कारण से उसका दान अथवा चांदी के बने वर्तन में दान करने पर अक्षय फल की प्राप्ति होती है। काले मृगचर्म का सान्निध्य, दर्शन और दान करना भी राक्षसों का नाश करने वाला तथा ब्राह्मतेज को देने वाला है। पितरों के निमित्त श्राद्धादि कर्म में सौने के बने हुये, चांदी के, तांवे, लोहे के वर्तन, कुतपतिल, वस्त्र तथा और दूसरी पवित्र वस्तुएँ मन वचन कर्म से दान करनी चाहिए। इस प्रकार विधिपूर्वक जो वस्तुओं का दान करता है उस श्राद्ध करने वाले व्यक्ति को आयु, यश, प्रजा बुद्धि, सन्तान इत्यादि प्राप्त होते हैं। दक्षिण और पूर्व की दिशा में श्राद्ध करने का विधान माना जाता है। सब जगह अरत्नि मात्र परिमाण होना चाहि ए तथा चौकोर सुन्दर स्थान होना चाहिए। श्रध्दा पूर्वक पितरों के निमित्त श्राद्ध करने से धन, आयु, आरोग्य साधक, बल, विद्या बुद्धि तथा वर्ण की वृद्धि होती है। पितरों के निमित्त श्राध्द के स्थान में तीन गढ़े बनाने चाहिए, जिनका विस्तार एक मुठी बंधे हुए हाथ के समान होना चाहिए, वह स्थान चांदी से सजा हुआ होना चाहिए इसके बाद खदिर के डंडे भी होते हैं, वे डडे वित्ते भर लम्बे हों, और उनके चारों तरफ चार चार अंगुल के वेष्ठन बने हों, उनको पूर्व और दक्षिण के मुख भाग की तरफ से पृथ्वी पर रखे जाने चाहिए, उन डन्डो को शुध्द जल से धोने चाहिये। इस के बाद फिर उन डडों को बकरी के दूध तथा जल से दुबारा धोने चाहिये। इस प्रकार विधि पूर्वक तर्पण करने से सभी पितरों की तृप्ति होती है। इस तरह विधि पूर्वक श्राध्द इत्यादि कर्म करने वाले व्यक्तियों को इस लोक और पर-लोक में सुख और शान्ति मिलती है। इसी तरह जो तीन बार सशरीर स्नान करके विधि पूर्वक मंत्रादि द्वारा सदा पितरों की पूजा करते हैं, वे व्यक्ति अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं।

अमावस्या के दिन श्राद्ध को उपयोगी सभी वस्तुओं को पृथ्वी पर चार अंगुल गढे बना कर रखनी चाहिये। ये त्रिःसप्तयज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं, और इन्हीं पर त्रैलोक्य स्थित है। जो मनुष्य इस प्रकार इसका अनुष्ठान करता है, उसको धन, यश, ऐश्वर्य, बुद्धि, विद्या सन्तान तथा प्रचुर लक्ष्मी और लक्ष्मी की क्रम से प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों के द्वारा पूजित, समस्तपापों का नाश करने वाला, अश्वमेध यज्ञ का फल देने वाला एक मन्त्र इस प्रकार है—

"देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च।
नमः स्वधायै स्वहायै नित्य मेव भवन्त्युत॥"

श्राद्ध के प्रारम्भ करते समय, समाप्त करते समय, पिण्डदान करते समय इस मन्त्र का एकाग्र चित्त से पाठ करना चाहिये। और इसे तीन बार पढे। इससे पितृश्वर वहां आते हैं और राक्षस गण भाग जाते हैं। तीनों लोकों में इससे पितृगण प्रसन्न होते हैं और उनका उद्धार होता है। एक और मन्त्र निम्न प्रकार है जो बल वीर्य लक्ष्मी आयु को बढ़ाने वाला और सभी शुभ फल दायी है—

अमूर्तानां समूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदातेभ्यो ध्यानिभ्यो योगचक्षुषः॥ आदि ...

सप्त ऋषियों और ब्रह्मर्षियों आदि के द्वारा पूजित, श्रीसम्पन्न राक्षसों के नाश करने वाले इस स्तोत्र को मैंने आपको सुनाया और आपने सुना। विधि समेत श्राद्ध करने पर मनुष्य अन्न दीर्घायु और पुत्र (ये तीन वस्तुऐं) प्राप्त करते हैं। जो श्रद्धा भक्ति पूर्वक जितेन्द्रिय होकर इस 'सप्तर्षिष' स्तोत्र का पाठ करता है, वह सातद्वीपों वाली और समुद्रों वाली समस्त पृथ्वी का एक छत्र सम्राट बनता है। अपने घर में तैयार किये हुये पदार्थों को पितृगणों को निवेदित किये बिना ग्रहण नहीं करना चाहिये। अब मैं बलि कर्म के बारे में बताऊंगा। अब बलिकर्म के द्वारा जो फल मिलते हैं उनको कहता हूं। उसे सुनिये।

इति श्रीवायुपुराण का श्राद्ध कल्प नामक चौहत्तरवां अध्याय समाप्त ।७४।

—❀—

पिचहत्तरवां अध्याय

[श्राद्ध कल्प]

बृहस्पति जी बोले–पीपल के पत्तों से बने हुए बर्तनों है राज्य की भावना बतलाई जाती है, और पलश के पत्तों से बने हुए बर्तनों में बलिदान इत्यादि करने से ब्रह्म तेज प्राप्त होता है। इसी तरह प्लक्ष के पत्तों से बने बर्तनों में सभी जीवों का अधिकार प्राप्त होता है ऐसा कहा जाता है। खम्भारी के पत्तों से बने हुए बर्तनों में बलि कर्म करने से राक्षसों का नाश होता है। बरगद के पत्तों से बने हुए बर्तनों में बलिकर्म करने से सन्तान, बुद्धि, प्रजा और स्मरण शक्ति प्राप्त होती है। महुए के पत्तों से बने हुए बर्तनों में बलिकर्म करने से उत्तम सौभाग्य मिलता है। कद्दूमट के पत्तों से बने बर्तनों में बलिकर्म करने से उस बलिकर्म करने वाले व्यक्ति को सुख, शक्ति और लक्ष्मी प्राप्त होती है तथा उसके सभी मन इच्छित वस्तुएं प्राप्त होती हैं। बिल्व के पत्तों से बने हुए बर्तनों में बलिकर्म करने से धन, ऐश्वर्य, बल और दीर्घायु प्राप्त होती है। वेणु के पत्तों से बने हुए बर्तनों में श्राद्ध करने से मनुष्य के खेत, बगीचे और छोटे छोटे तालाबों में मेघ नित्य वर्षा करता है। जो मनुष्य इन बर्तनों में श्राद्ध करते हैं अथवा श्राद्ध के समय पितरों को एक बार भी बलि देते हैं उस श्राद्ध करने वाले व्यक्ति को सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक पितरों को फल फूल, माला धूप दीप इत्यादि से पूजा करता है उसे पितर सुख, शान्ति, धन, आरोग्य प्रदान करते हैं। धूप और गुगुल को घी और शहद से मिला कर जो पितरों को अर्पित करते हैं। वे अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं। जो मनुष्य सुगन्धित धूप पितरों को दान करता है वह इस लोक में तथा परलोक में अपनी पत्नि में श्रेष्ठ सन्तान को प्राप्त करते हैं। इसलिए आलस्य को त्याग कर पितरों को नित्य धूप दान करना चाहिए। पितरों को नित्य दान करने से अत्यन्त सुन्दर नेत्र, तेज, यश, कान्ति, बल, और पृथ्वीतल में प्रसिद्धी प्राप्त होती है और अन्त में

स्वर्ग लोक को प्राप्त कर अप्सराओं के साथ विमान में विहार करता है। नित्य गन्ध, पुष्प, घी आहुति फल, फूल और नमस्कार से जितेन्द्रिय होकर पितरों को तृप्त करना चाहिये और उसके बाद यथा शक्ति ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये, क्योंकि श्राद्ध के अवसर पर पितरगण वायु का रूप धारण करके उन ब्राह्मणों में प्रवेश करते हैं। इसीलिए मैंने उनके भोजन कराने की बात कही है। ब्राह्मणों सत्कार करने से पितर प्रसन्न होते हैं। इसीलिए वस्त्र, अन्न, दान, भक्ष्य, पेय गाय, घोड़ा और ग्राम इत्यादि का दान देकर ब्राह्मणों का की पूजा करनी चाहिए। श्राद्ध कर्म में ब्राह्मणों को चाहिए कि सभी उपस्थित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके वैश्य देव कर्म करे, उसके बाद तेल मर्दन, कुश, और पिंजल इन तीनों से विधि पूर्वक क्रियायें करे, फिर अपसव्य होकर पितरों को उत्तम अन्न प्रदान करे। उनका नाम लेकर वस्त्र के लिये सूत्र का दान करे। खड़न, पेषण और उल्लेखन पितरों के लिये तीन बार करना चाहिये और देवताओं के लिये इनका एक बार के लिये विमान है। मन्त्र द्वारा सभी पितरों को वस्त्र दान पिण्डों के ऊपर करके दर्शन करने से कल्याण होता है।

पितरों में भक्ति रखने वाला आलस्य छोड़कर बायें घुटने को पृथ्वी में टेक कर और अपसव्य होकर पितरों के जल से पिता पितामह प्रपितामह और अन्य पुराने पितरों का आवाहन कर पिरड़ों को नीचे रखे। कुछ लोग अन्न, जल, पुष्प आदि अनेक भिन्न प्रकार के पदार्थों से मातृ पक्ष के लिये पिण्ड दान का अलग विधान मानते हैं। "नमो वः पितरः शुष्मै" मन्त्र को बोलकर अँगूठे के सहित पुष्टि करने वाले तीन पिण्डों को घुटना पृथ्वी पर टेककर बायें हाथ से प्रदान कर देना चाहिए।

इसके बाद नमो वः पितरः सौम्याः" ऐसा मन्त्रोच्चारण करके दक्षिण दशा में प्रथम पिण्डदान करे। फिर बायें हाथ से शुद्ध किये हुए चावल, जलपान से जल नवीन क्षौम वस्त्र, कपास का सूत, रक्त वस्त्र पितरों के उद्देश्यसे दान करे। किन्तु ऊन और रेशम का सूत पितरों

नये वस्त्र का ही क्यों न हो परन्तु आंचल भाग को यज्ञ में वर्जित माना गया है। पितृ कार्य में त्रिकुद, अंजन तथा काले तिलों का तेल शुभ और प्रशंसनीय है। चंदन, अगरु, तमाल, उशीर, पद्मक धूप, गुग्गुल श्रेष्ठ तुरुष्क (लोबान की धूप) श्वेत फूल, ये सभी वस्तुयें पितृ कार्यों में श्रेष्ठ होती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सुगन्धित वस्तुयें तथा उत्पल, पद्म, आदि भी शुभ हैं। जपा, भण्डीर, अपकाम एवं कुरण्डक के पुष्पों को श्राद्धकार्य में सदा निषेध किया गया है। कल्याण चाहने वाले व्यक्तियों को निर्गन्ध अथवा अत्यन्त क्षीण गन्ध वाले पुष्पों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

श्राद्ध के कार्यों में यजमान को दक्षिणाभिमुख होकर विधि पूर्वक उत्तराभिमुख बैठे ब्राह्मणों का पूजन करे। उनके सामने विधि-पूर्वक पिण्ड तथा कुश रखे। पुष्प तथा सीधी सरल पिंजलियां रखे। पितरों के तीर्थों से रत्नदान करने पर पितृगण परम प्रसन्न होते हैं। सूत के समीप में नील वर्ण की, पत्थर कँकड़ी से रहित सांवां और नीवार ये दोनों भी पितृकार्य में श्रेष्ठ कही हैं। इस सम्बन्ध में प्राचीन कथा इस प्रकार कही गई है। आकाशमार्ग से प्रजापति के केश एक बार गिरे। वे पृथ्वी पर काश रूप में बदल गये। इसीलिये काश को श्राद्ध कार्य में पवित्र माना गया है। काश पर रखकर पिण्डदान करने से वैभव, यश, प्रजा की पुष्टि, शरीर की कान्ति बुद्धि शोभा आदि का वृद्धि होती है। बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि वह कभी भी दीन हीन या अनमनेपन से श्राद्ध न करे। सदा एकाग्र चित्त से श्राद्ध करना चाहिये। वह मन में ऐसा पवित्र विचार रखे कि मैं अपवित्र अनियमित वस्तुओं का निवारण कर रहा हूँ तथा विघ्न कारक असुर एवं दानवों का भी नाश कर चुका हूँ। मन्त्र के द्वारा कुश से वेदी को काढ़कर कल्याणकी इच्छा करता हुआ उत्तर की ओर फैंकदे। ऐसा करने से असुरगण वहां नहीं भटकते। जहां इस प्रकार मन्त्र पढ़ा जाता है वहां से राक्षस गण भाग जाते हैं। पवित्र हाथों से जो अन्नदान करता है। वह हजार गुना फल प्राप्त करता है। अशुचि व्यक्ति को दान तो क्या उस अन्न का दर्शन भी नहीं करना चाहिए।

ऐसा करने से पितृगण सभी मन की दशाओं को समझ कर उन्हें पूर्ण कर देते हैं। अतः नित्य नियम पूर्वक श्राध्द सम्पन्न करना चाहिये। श्राध्द कार्य में रुद्र क्षीरचारु, वल्वज, तरु, वारण, लव, लव-वर्ष तथा अन्यान्य तृण एवं अंजन अभ्यजन गन्धमानुपलपन आदि सभी वर्जित हैं। श्राद्ध कार्य में वर्हण उप वर्हण और स्वयं उत्पन्न होने वाले तृण उपयोगी होते हैं। अथले पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः अर्थात् पितृगण ही देवस्वरूप है और देवगण ही पितर स्वरूप है। यह मन्त्र पितरों को पुष्प सुगन्धि द्रव्य धूप आदि का दान करते समय का है।

हवन के लिए रखी गई सामग्र को दक्षिण दिशा में रखकर लौकिक विधि से कर्म सिध्दि के लिये हवन कर। समिध को भीतर रखकर हवन करना चाहिए। यजमान अग्नि की पूजा करके एकाग्र चित्त से हवन करे।

अग्रये कव्यवाहाय स्वधा अंगरसेनमः। सोमाय वै पितृमते स्वधा अंगिरसे नमः। यमाय चैवांगिरसे स्वधा नमः। ऐसा बोलना चाहिए। ये हवन करने के मन्त्र हैं। इन मन्त्रों में क्रमशः दक्षिण दिशा में अग्नि के अनन्तर सोम के इन दिनों के मध्यभाग में विवस्वान के (यम के) उद्देश्य से हवन करना चाहिए। उपकार स्वधाकार उल्लेखन हवन जप नमस्कार प्रोक्षण अंजन अभ्यंजन पिण्ड निवर्तन आदि ये सभी कार्य मन्त्र बोलकर करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करने वाले बतलाये गये हैं। श्राद्धों को यथा विधि यत्न पूर्वक करना चाहिये अग्नि जब खूब प्रज्वलित हो जाय तब हवन करना चाहिये। जो यजमान धूँआ में ही या बिना अग्नि प्रज्वलित किये हवि छोड़ता है वह अन्धा होता है अथवा पुत्र विहीन होता है। ऐसा कहा गया है। थोड़े ईंधन वाली रूखी चारों ओर ज्वाला तथा चिनगारियों वाली अग्नि अथवा धूँआ वाली अग्नि सिध्दि प्रदान नहीं करती है। नीली काली या दुर्गन्ध अग्नि से पृथ्वी फटजाय तथा उसमें हवन करने पर पराभव जानना चाहिये।

किरणों से सुशोभित एक पिण्डाकार ज्वालाओं से युक्त घी और सुवर्ण के रंग वाली (पीली) स्निग्ध तथा प्रदक्षिणा करने वाली अग्नि सिद्ध कही गई है। यह अग्नि सदा इस लोक में नर नारी द्वारा पूजी जाती है। इनके द्वारा पूजित पितृगण अक्षय और अनन्त सन्तुष्ट होते हैं। श्राद्ध में स्थाली और गू र के पात्र तथा समिधायें और फल विशेष फलदायक माने गए हैं। हे ब्राह्मणो! जो जो फल मैंने श्राद्ध में श्रेष्ठ कहे हैं वे ही जातकर्म में भी श्रेष्ठ हैं समिधा भी इसी प्रकार जाननी चाहिए। श्राद्ध करने वाले को एकाग्र चित्त से सावधान होकर ब्राह्मणों से पितृकार्य करने की आज्ञा तथा अग्निकार्य की भी आज्ञा माननी चाहिए। उत्तम द्विजों से "ऐसा करो" यह आज्ञा प्राप्त हो जाने पर समतीक और पुत्रों सहित हवन करना चाहिए। पीपल पाकर, बरगद, विकंकत, गूलर, बेल, चन्दन ये सभी वृक्ष यज्ञ कार्य में श्रेष्ठ और उपयोगी माने गए हैं। सरल, देवदारु, शाल, खदिर ये वृक्ष भी समिधा के लिए श्रेष्ठ हैं। गाँवों में होने वाली कण्टकी (कटेहरी) के वृक्ष भी समिधा का कार्य दे सकते हैं। ऐसी पितरों की आज्ञा है। कलकल की समिध से हवन करने पर अनन्त फल की प्राप्ति होती है। आपस की समिधा सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाली है। और अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करती है। श्लेषात्मक, नक्तमाल, कपित्थ, शाल्मलि, नीप (कदम्ब) विभीतक (बहेड़ा) बल्लियां तथा वे वृक्ष जिन पर पक्षी निवास करते हों यज्ञ के लिए वर्जित माने गए हैं। इसके अतिरिक्त जो भी वृक्ष यज्ञों में निषेध हैं उन्हें कभी भी श्राद्ध कर्म में प्रयोग नहीं करने चाहिये। पितरों के मन्त्रों में अन्त में स्वधा और देवताओं के यज्ञ में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिए।

वायुमहापुराण का श्राद्धकल्प नामक ७५वां अध्याय समाप्त हुआ ॥७५॥

छिहत्तरवां अध्याय

(श्राद्ध कल्प)

सूतजी बोले—हे ऋषिगणो! यह विधि अथर्व वेद के अनुसार

जो पितर गण देवगण हैं उनके भी अलावा और भी पितृगण हैं। पितरों की सर्व प्रथम और विशेष पूजा करनी चाहिये। और देवताओं की बाद में पूजा करनी चाहिए।

हे धर्मज्ञ ! प्राचीन समय में एक विश्वा नाम की दक्ष की पुत्री थी जो लोक प्रसिद्ध थी दक्ष ने विधि पूर्वक धर्म को समर्पित किया था। उसके पुत्र विश्वेदेवा नाम से कहे जाते हैं। ये विश्वेदेव सभी के द्वारा नमस्कार करने योग्य हैं। इन्होंने हिमालय के मनोहर शिखर पर परम कठोर तप किया। उनके तप से प्रसन्न होकर पितरगण उनसे शुद्ध मन होकर बोले–हे विश्वे देवागण आपसे हम प्रसन्न हैं बरदान माँगिये। पितरों के इस प्रकार कहने पर ब्रह्मा जी ने विश्वे-देवों से यह कहा।

ब्रह्माजी बोले–आपके इस तप से महादेव जी तथा मैं भी परम प्रसन्न हैं। कहो हम आपका कौनसा मनोरथ पूर्ण करें। इस प्रकार ब्रह्मा के कहने पर विश्वेदेवा बोले–हमारी यह अभिलाषा है कि हमें श्राद्ध का अंश मिले। ब्रह्माजी ने कहा–आप जो चाहते हैं वह सफल होगा इस लोक में जो कर्म हमारे लिये किये जाते हैं उनमें आपका भी भाग होगा। तुम हमारे साथ रहोगे हमारे लिये किये गये श्राद्ध में आप लोगों का भी आसन रहेगा। श्राद्ध में कुतपों मालाओं और सुगन्धित द्रव्यों तथा अन्न आदि जो भक्षणीय वस्तुयें हैं उनमें तुम ही प्रथम पूजनीय होगे इस तरह जो भी वस्तुयें दी जावेंगी। वे पहले आपको दी जावेगी और बाद में हमको दी जावेगी विसर्सन में पहले हमको स्थान मिलेगा बाद में आपका विसर्जन होगा। समस्त भूतों तथा पितरों और देवताओं के उद्देश्य से भी श्राद्ध किये जाते हैं उनमें शुद्ध की सब प्रकार से रक्षा और सत्कार ये दो विधान कहे गये हैं। इन दोनों को सुचारु रूप से हो जाने पर ही श्राद्ध को ठीक प्रकार सम्पन्न मानना चाहिए। हमारी ये कही गई सभी बातें सत्य होंगी। इस प्रकार ब्रह्माजी विश्वेदेवों को वरदान देकर चले गये।

वेदों में मनुष्यों के लिये नित्य करने के लिये पांच महायज्ञों का विधान है। इनको करने वालों को जिस पुण्य स्थानों की प्राप्ति होती है उन्हें सुनिये भय रहित, अहंकार से रहित, शोक रहित, परिश्रम को दूर करने वाले सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले ब्रह्म के स्थान को वे मनुष्य जाते हैं जो पांच महायज्ञों का नित्य अनुष्ठान करते हैं। वे पांच महायज्ञ केवल मन्त्रों को छोड़कर शूद्रों के द्वारा भी करने चाहिये। इनके बिना जो मनुष्य भोजन करता है वह नित्य ऋण को ही भक्षण करता है। जो केवल अपने किये भोजन करता है वह पापी है और ऋण का भोजन करता है। इसलिये बुद्धिमान पुरुष को चाहिये कि सदा नित्य पंच महायज्ञों को किया करे। कुछ लोग पितरों के जीवित रहने पर भी नैवेद्य करने की इच्छा रखते हैं। उनको उसके बाद जलदान भी करना चाहिये। जल का कलश देना चाहिये। विहित बलि भी प्रदान करनी चाहिये। सूक्ष्म मात्रा वाली बलि को सींगों वाली गौओं के ऊपर छोड़नी चाहिये। जीवित पितरों के लिये पिण्डदान की विधि नहीं है। उन्हें केवल विधि-पूर्वक, सुन्दर, पसन्द आने वाले अन्नों एवं अन्य भक्ष्य पदार्थों को खिलाना चाहिये। यह वेद समस्त विधान है।

ये पितर देवों के भी देव तथा पुण्यात्मा महात्मा हैं। कुछ आचार्य श्राद्ध में सर्व प्रथम ब्राह्मणों के पूजन का विधान तदन्तर पिण्डदान बतलाते हैं। यह धर्मार्थ में कुशल गुरु बृहस्पति जी का है। पितृगण महात्मा तथा परमयोगी हैं। ये लोग चन्द्रमा को भी सन्तुष्ट करने वाले हैं। अतः सर्व प्रथम इन्हें पिण्डदान करना चाहिये पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इसलिये पितरों में श्रद्धा एवं भक्ति रखने वाले व्यक्ति को पवित्र होकर उन परम पवित्र योगियों को पिण्डदान करना चाहिये। पिण्डदान पितरों के लिये अग्नि में की हुई हवि के समान है। श्राद्ध के अवसर पर यदि हजारों ब्राह्मणों में से एक भी ब्राह्मण योगाभ्यास में परायण में तो वह यजमान आदि के सहित सभी का उद्धार कर लेता है। जहां पर असत्पुरुषों का सम्मान तथा सत्पुरुषों का निरादर होता है वहां अति

भयंकर देवदण्ड गिरता है। जहां धर्माचरण में रत श्रेष्ठ ब्राह्मणों और अतिथियों के रहते हुये किसी धूर्त या मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, वह अपने पूर्वजन्मों के पुण्यों के रहते हुये भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। भोग की इच्छा करने वाले मनुष्य को भक्त सहित अग्नि में पिण्डदान करना चाहिए, और सन्तान की इच्छा रखने वाली स्त्रियों को हमेशा पिण्ड देने चाहिये। अपने तेज और कान्ति की इच्छा रखने वाले मनुष्यों को गायों को पिण्डदान देना चाहिये। दीर्घायु की इच्छा वाले मनुष्यों को चाहिये कि वे कौओं को पिण्डदान दें, सुकुमारता के लिए मुर्गों को पिण्डदान देना चाहिए। पितरों के स्थान आकाश और दक्षिण दिशा हैं, इस कारण दक्षिण दिशा क तरफ मुंह करके खड़े होकर तथा जल में खड़े होकर आकाश को बलिदान देना चाहिए। मैंने आपसे पिण्डदान के फल का वर्णन किया है, अब मैं आपको श्राद्ध में पिण क्रिया बतलाऊँगा।

श्राद्ध में पिण्डों का उद्धार करने की क्रिया को विधि पूर्वक करना चाहिए। अन्न, फल, फूल, भक्ष्य इन सबमें से एक एक टुकड़ा तोड़कर सबसे पहले अग्नि में डाल देना चाहिए। पिण्डदान करने वाले व्यक्ति को दक्षिण दिशा की तरफ मुख करके खाने का सामान तथा उत्तम मीठे फल इन सबमें से अग्नि में हवन करके पिण्डदान करना चाहिए। यम को और चन्द्रमा को पिण्डदान देने के बाद जलानयन करने के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। अपनी सामर्थ्य के अनुसार नाना तरह के भोजन फल, पकवान का भोजन कराना चाहिए। ब्राह्मणों को सभी तरह के पदार्थों से तृप्त करना चाहिए भोजन कराने के बाद प्रसन्न चित्त होकर हाथ जोड़कर उनकी पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करने वाले मनुष्यों को सभी तरह के मन इच्छित वस्तुऐं प्राप्त होती हैं। प्रजापति ब्रह्माजी उनको, सत्कार, यज्ञ चतुरता, दान इत्यादि की शक्ति देते हैं। हे ऋषियो! इसके बाद श्राद्ध कर्म में ब्राह्मणों के भोजन करने के बाद जो क्रिया होती है अब में उसको बताऊँगा।

सबसे पहले पितरों में श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति पृथ्वी को लीप कर उस पर विधि पूर्वक विकिरण करे, फिर ब्राह्मणों से स्वधा शब्द बुलवाकर उनके शक्ति के अनुसार दक्षिणा देकर उनका आदर करके बचे हुए अन्न की आज्ञा प्राप्त करके हाथ जोड़कर अपनी इन्द्रियों और मन को वश में रखकर कुछ दूर तक उनको पहुँचादे, फिर विसर्जन करना चाहिए।

इति श्री वायु महापुराण का श्राद्ध कल्प नाम का ७६वाँ अध्याय समाप्त

सतहत्तरवां अध्याय

(श्राद्ध कल्प)

बृहस्पति जी ने कहा—हे ऋषियो ! पितरगण केवल एक बार की पूजा करने पर ही प्रसन्न हो जाते हैं, ये पितरगण कभी नष्ट नहीं होते हैं ये पितरगण योगी महात्मा हैं, ये पाप से रहित हैं ये महान तेजस्वी हैं अब मैं आपको स्वर्ग प्राप्त करने, ऐश्वर्य को देने वाले तथा मोक्ष प्राप्त करने वाले नदी, तीर्थ देश और पर्वत हैं वह पर्वत, सरोवरों का वर्णन सुनाऊँगा। सभी पर्वतों में श्रेष्ठ अमर कराटक नाम का पर्वत है वह पर्वत तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। उस पर्वत पर सिद्ध और चारण रहते हैं तथा उसी पर्वत पर करोड़ों वर्षों तक भगवान अंगिरा ने कठिन तपस्या की थी। इस पर्वत पर असुर और राक्षसों का भी भय नहीं है वहां मृत्यु भी नहीं पहुँचपाती। जब तक यह पृथ्वी स्थित है तथा लक्ष्मी विराजमान रहेगी तभी तक यह पर्वत अपने उत्तम तेज और यश से शोभायमान रहेगा। उस पर्वत के ऊँचे शिखरों पर खिले फूलों से वृक्ष शोभित हैं वह वृक्ष इस प्रकार चमकते हैं मालूम पड़ता है कि संवर्तक अग्नि जल रही हो। इस श्रेष्ठ पर्वत पर सुवर्ण के समान चमकीले तथा मनोहर सुगन्ध वाले मृदु कुश पैदा होते हैं। पुराने समय में अंगिराजी ने अग्नि होत्र में पृथ्वी पर उत्तम कुशों का आसन बिछाया था, दक्षिण भाग में नर्मदा नदी के जल को पिया था, उसके फल से उन्हें स्वर्ग के सोपान दिखाई

देते थे। जो विद्वान ब्राह्मण अमरकराटक नाम के पर्वत पर उन्हीं कुशों पर एक बार भी पिण्डदान करता है, मैं उसी के फल को बतलाऊँगा उस श्राद्ध के करने से पितरगण प्रसन्न होते हैं और अक्षय फल प्राप्त होता है पितरगण इस पवित्र पर्वत को प्राप्त करके अन्तर्धान हो जाते हैं उस पर्वत पर ज्वाला नामका सरोवर है तथा विशल्य करणी नाम की एक नदी है जो हड्डी वाले जीवों को रोग से मुक्त करते हैं। अमरकराटक नाम के पर्वत पर पूर्व दक्षिण दिशा की तरफ एक पवित्र बावली है। उसके निचले भाग में के पितरों सिद्ध क्षेत्र नामका स्थान है, पृथ्वी पर यह स्थान श्रेष्ठ माना जाता है। देवता और दैत्य दोनों का ही वह स्थान आदरणीय है। जो मनुष्य अमरकराटक नाम के पर्वत पर जाकर श्रद्धापूर्वक श्राध्द करते हैं, वे पुरुष महान भाग्यशाली हैं इस प्रकार शुक्राचार्य जी भी उनकी प्रशंसा करते हैं। अमरकराटक नाम के पर्वत थोड़ी तपस्या से ही सिध्दि प्राप्त होती है। एक बार की पूजा करने पर ही पितरगण परमस्वर्ग को प्राप्त करते हैं।

महेन्द्र नाम के पर्वत पर इन्द्र का बना हुआ एक पुण्यशाली स्थान है, वहां पर निवास करने से पितरगण प्रसन्न होते हैं। विल्वाध नाम के पर्वत पर दिव्य नेत्र प्राप्त होते हैं, जिससे मनुष्य अदृश्य होकर देवताओं की तरह पृथ्वी पर घूमा करता है। सप्त गोदावर तथा गौकर्ण नाम के पवित्र स्थान पर स्नान करने से परम पवित्र होकर अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। धूप ताप नाम के तीर्थ स्थान में स्नान करने से परम पद को प्राप्त होता है। उसी स्थान पर देव महादेव जी ने कठिन तप किया था। ब्राह्मणों का कथन है कि गोकर्ण नामके तीर्थ स्थान पर नास्तिकों के लिये एक प्रधान कारण माना गया है। जो मनुष्य ब्राह्मण नहीं हैं वे वहां पर गायत्री का पाठ करते हैं, उनका गायत्री का पाठ करने का फल नहीं प्राप्त होता है सिध्दों और चारणों से सजे हुए देवर्षि के नवन वाले शिखर पर रहने से मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है।

उस सुन्दर शिखर पर चन्दन इत्यादि के वृक्ष शोभायमान हैं वहां पर चन्दन से सुगन्धित शीतल जल की धारा बहती रहती है उस जल की धाराओं से ताम्रपर्णी नाम की एक नदी निकली है। उस पर्वत-राज से निकली हुई ताम्रपर्णी नाम की नदी मदोन्मत्त और खेद से थकी हुई बाला की तरह धीरे धीरे बहती हुई दक्षिण समद्र में जाकर गिरती है। महा समुद्र में मिलकर इस ताम्रपर्णी नदी का जल शंख मुक्ता और शंख मुक्तिका के रूप में बदल जाते हैं। जो मनुष्य उस समुद्र के जल को शंख मुक्ताओं सहित लाते हैं वे सभी व्याधियों से छुटकारा प्राप्त करके स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। चन्दनों से युक्त शंख और मुक्ताओं के दान करने से वहां पर लोग अपने पाप करने वाले पितरों का उद्धार करते हैं। इन पुण्यतीर्थों में जैसे-चन्द्र, कुमारी, कावेरी, अक्षय प्रभव, श्री पर्वत, वेंकृत, औशिर नाम के पर्वत और तीर्थ स्थानों पर मनुष्य पितरों का उद्धार करने जाते हैं। हे विप्र गणों! ये सभी तीर्थ सिद्धि को प्रदान करने वाले हैं। मनुष्य, अपने शरीर को छोड़ कर स्वर्ग को प्राप्त करता है। इन तीर्थों में शुभ कर्म करने का फल दूसरे जन्म में मिलता है। पितरों के एक नर्मदा नाम की कन्या है जो सभी नदियों में श्रेष्ठ और पुण्यशाली है। इसके तट पर श्राद्ध कर्म करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। सिद्धों और चारणों से पूजित माठर नाम के पवित्र वन में वे अन्तर्धान नहीं होते हैं। उस महान पर्वत पर उनकी आसक्ति रहती है।

एक पवित्र विंध्यागिरि नाम का तीर्थ स्थान है। उस तीर्थ स्थान पर जाकर पाप पुण्य की पहिचान मानी जाती है, जो मनुष्य पापात्मा हैं वे धारा को नहीं देख पाते है और जो पुण्य सन्त हैं वे धारा को देखते हैं। उस धारा में पापियों के पाप दिखाई पड़ते हैं। शुभ कर्म करने वाले श्रेष्ठ मनुष्यों को ही वह धारा साफ दिखाई देती है। कौशला पर्वत पर मतंग के पापों को नष्ट करने वाली निधूदनी नाम की एक नदी है उस नदी में स्नान करने पक्षीगण भी स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। कुमार कौशला नाम के तीर्थ पात पञ्जर नाम के तीर्थ, समुद्रान्त

पाण्डुकुल, पाण्डारक प्रभव, अभय, श्रीवृक्ष, अभ्रकूट, जम्बूमार्ग, असिता नाम के तीर्थ स्थान में नित्य श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है।

पुष्कर तीर्थ में श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। महा-समुद्र में प्रभास नाम का तीर्थ है। उस तीर्थ में श्राद्ध करने से भी ऐसे ही फल की प्राप्ति होती है। देविका तीर्थ में वृष नाम का एक कूप का जल योजना गौओं के शब्द से ऊपर उछलता है जो मनुष्य श्रद्धा पूर्वक इस कूप पर श्राद्ध करता है, अब मैं उसका फल बता-ऊंगा, वह श्राद्ध सभी मनोरथों को पूर्ण करता है तथा पितरों को प्रसन्न करता है। वहां पर साक्षात अग्नि की सनातन काल से स्थित जातवेद नाम की शिला है। उस स्थान पर जो मनुष्य उस अग्नि में प्रवेश करता है वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। जब अग्नि कुछ शान्त हो जाती है तब वह दुबारा जन्म धारण करता है, उस तीर्थ मे श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। दशवाश्वमेध तीर्थ में तथा पंच्चा-श्वमेध तीर्थ में श्राद्धकर्म करने से दश और पांच अश्वमेध यज्ञों के फल के समान प्राप्त होता है। हयगिरा नामके पवित्र तीर्थ में श्राद्ध करने से सभी मन इच्छित वस्तुएं प्राप्त होती हैं। प्रख्यात तीर्थ में स्वर्ग प्राप्त होता है। कुम्भतीर्थ में श्राद्ध करने से सभी पापों का नाश हो जाता है।

अजतुंग नाम के तीर्थ स्थान में हमेशा पितरों का तर्पण करना चाहिए, उस स्थान पर पर्वों के समय देवताओं की परिछाई दिखाई पड़ती है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर यह तीर्थ बहुत ही पवित्र माना जाता है, यहां पर श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है सभी तरह के पाप पूर्ण कर्मों से रहित योगेश्वरों से सेवित उसपरम पवित्र तीर्थ में श्राद्ध करने से पितर गण सदा प्रसन्न रहते हैं इस लोक में जो मनुष्य इन्द्रिय के वश में रखकर श्राद्ध करता है, वह मृत्यु के बाद स्वर्ग को प्राप्त करता है एक पवित्र शिव नाम का ह्रद है, वहां पर सभी गुणों से युक्त व्याससर और ब्रह्मसर नाम के दो सरोवर हैं, एक उज्जन्त नामका पर्व भी वहीं पर है उस पर्वत पर बड़े-बड़े योगीश्वर लोग रहते हैं।

उसी स्थान पर वसिष्ठ ऋषि का आश्रम भी है तथा इन्हीं तीर्थों में ऋक्, यजु, सामवेद का शिर स्वरूप, कापोत तथा पुष्प नाम का तीर्थ प्रजापति ब्रह्माजी ने बनाया था । ये तीर्थ पांचवे वेद के नाम से प्रसिध्द है । इन सभी तीर्थों की यात्रा करके ब्राह्मण सनातन अग्नि की तरह तेजवान कान्तिमयी होकर सभी पाप से छूट जाते हैं । इन तीर्थों में श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है । इस स्थान पर जप, हवन, और तपस्या करने से भी अनन्तफल प्राप्त होता है। पुण्डरीक नाम के तीर्थ में श्राद्ध करने से कमल के समान सुन्दर फल प्राप्त होता है । ब्रह्मतीर्थ नाम के पवित्र तीर्थ में श्राध्द करने से अश्व-मेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । सिन्धु सागर सम्भेद तथा पंचनद तीर्थ में श्राध्द करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है । क्षीरकात्मा तीर्थ और पराड़वा तीर्थ में श्राध्द करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। सप्तरद तीर्थ और मानस तीर्थ में श्राध्द कर्म करने से अक्षय फल प्राप्त होता । महाकूट, वन्द, और त्रिककुद पर्वतों तट पर भी श्राध्द कर्म करने का अधिक माहात्म्य बतलाया है । महावेदी में शाम के समय अनोखे दृश्य दिखाई देते हैं किन्तु नास्तिक मनुष्यों को नहीं दिखाई देते हैं । यह अनोंखे दृश्य सिर्फ श्रध्दावान व्यक्ति को ही दिखाई देते हैं । उस स्थान पर सनातन काल से चली आने वाली जातवेद नाम की अग्नि की एक शिला है । उस शिला पर सदा श्राध्द कर्म तथा अग्नि होत्रादि कार्य करने चाहिये, उस शिला इन पुण्य कर्मों के करने से अक्षय फल प्राप्त होता है । पितरों के निमित्त श्राद्ध करने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को सायंकाल के समय श्राद्ध कर्म करना चाहिए । यहां पापी और पुण्य करने वाले व्यक्तियों की पहचान हो जाती है । वहां स्वर्ग्यमार्ग प्रद नामका शीघ्र ही वर देने वाला एक सरोवर है । इस सरोवर में सप्तऋषि आपस के बैर भाव को छोड़ स्वर्ग को गये थे । आज तक उनके बैर भाव के चिन्ह दिखाई देते हैं । इस पवित्र तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त होते हैं । उसी स्थान के पास ही नन्दिकेश्वर और सिद्ध मनुष्यों

से सेवित एक प्रसिद्ध स्थान है। उस स्थान पर नन्दिकेश्वर की मूर्ति पापी मनुष्यों को नहीं दिखाई देती है। सूर्य निकलने के समय उस जगह सोने से बने हुए यज्ञ के खम्भे दिखाई पड़ते हैं। उनकी परिक्रमा लगाकर मनुष्य अदृश्य होकर स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं।

कुरुक्षेत्र सभी तीर्थों में पवित्र माना जाता है यह स्थान योगी महात्मा सनत्कुमार का पुण्यमयी स्थान कहा जाता है। इस कुरुक्षेत्र तीर्थ में तिल का दान करने से पितरगणों की सदा के लिये तृप्ति हो जाती है। धर्मराज युधिष्ठर के निवास स्थान पर श्राद्ध करने से अक्षय फल मिलता है। अमावस्या के दिन श्राद्ध करने से अक्षय फल तथा कान्ति यश प्राप्त होता है। कुरुक्षेत्र के पास रहने वाले व्यक्तियों के लिये यहां श्राद्ध करना अधिक पुण्य देने वाला माना जाता है।

अपने पिता के सुपात्र पुत्र पितरों की कुरुक्षेत्र में पूजा करके ऋण से मुक्त हो जाते हैं। विनशन, प्लक्षप्रस्रवण, सरस्वती के व्यास तीर्थ, ओंकारपवन, गंगाजी, मैनाक पर्वत पर श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। यमुना प्रभवतीर्थ में श्राद्ध करने से मनुष्य अपने पापों से छूट जाते हैं। इस तीर्थ में गरम और ठंडे दोनों तरह के जल मिलते हैं। यह पवित्र यमुनाजी मार्तण्डजी की कन्या हैं और यमराज की बहिन हैं। यमुनातट पर श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। ब्रह्मतुंग नाम के सरोवर में स्नान करके श्राद्ध करने से तथा जप और हवन इत्यादि करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। महर्षि वसिष्ठजी उस स्थान पर घूमते रहते हैं। उस स्थान पर आज तक मणियों की सजी हुई वृक्षों की पंक्तियां दिखाई देती हैं। वहां पर पाप पुण्य को दिखाने वाली एक तराजू दिखाई देती है। ब्राह्मणों का कहना है कि उस तराजू पर तुलने से स्वर्ग प्राप्त होता है। पितरों की गन्धकाली नाम की प्रसिद्ध कन्या उस स्थान पर निवास करती है। पराशर ऋषि के पुत्र और प्रजापति ब्रह्माजी के चतुर्थ अंशस्वा परम योगीश्वर महात्मा व्यासजी उस कन्या से पैदा होंगे, महात्मा व्यासजी ने वेदों को चार भागों में

बांटा है। उस स्थान पर आच्छोदक नामका एक सरोवर है। उसी सरोवर से आच्छोदा नाम की नदी प्रकट हुई, फिर वे मत्स्य योनि में उत्पन्न हुईं, उसके पवित्र स्थान पर सज्जन मनुष्य सदा निवास करते हैं। उस पवित्र स्थान पर एक बार भी श्राद्ध करने से अक्षय फल मिलता है। अच्छोदा नामकी नदी पर श्राद्ध करने से योग और समाधि का वर प्राप्त होता है। कुबेरतुंग व्यामोच्य और व्यास तीर्थ मे स्नान करने से पुण्य कर्म करने वाले ब्राह्मण मनुष्य को अक्षय फल प्राप्त होता है। उस स्थान से पूर्व और दक्षिण दिशा की तरफ नन्दा नाम की एक वेदी है। उस स्थान पर पितरों का श्राद्ध करने से दुबारा जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता है। पुण्यात्मा मनुष्य उसको नित्य प्रति पूजते हैं लेकिन पापात्मा मनुष्य उसे नहीं देख सकते हैं। जिस स्थान पर भगवान शंकर जी ने चरण न्यास किया है वह सिद्धों का पवित्र स्थान है वहां पर श्राद्धादि कर्म करने से दुबारा जन्म नहीं लेना पड़ता है। देवी पार्वती के उप पवित्र स्थान पर भगवान शंकरजी ने एक पैर पर खड़े होकर कठिन तपस्या की थी। उमातुंग तीर्थ में बरफ और जल दोनों ही देवयुग से स्थित हैं। उमातुंग भृगु तुंग, ब्रह्मतुंग, महालय, काद्रवती, शाड़िली गुफा, वामन गुफा इत्यादि तीर्थों की यात्रा करने से मनुष्य पवित्रात्मा होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है। इन सब तीर्थों में श्राद्ध, जप, हवन करने से अक्षय फल होता है। उस स्थान पर गुरु में श्रध्दा रखने वाले ब्रह्मचारी गुरु शिष्य सैकड़ों वर्षों तक यज्ञादि का अनुष्ठान करने हैं। उस पवित्र तीर्थ में स्नान करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। वहाँ पर कुमार धारा नाम की एक तीर्थ है वह तीर्थ सभी पापों को नष्ट करने वाला है। शैलकीर्ति नाम के पवित्र तीर्थ स्थान में स्नान करने से मनुष्य सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। सभी मनुष्यों से अदृश्य होकर वह पृथ्वी पर घूमा करता है। कश्यप में कालसर्पि नाम का एक महान पवित्र स्थान है। वहां पर नित्य प्रति श्रध्दा पूर्वक श्राध्द करना चाहिए,

ऐसा करने से मनुष्य को अक्षय फल प्राप्त होता है। शालग्राम तीर्थ पर श्राध्द करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। इस पवित्र तीर्थ में पापी मनुष्य नहीं जा सकते, केवल पुण्यात्मा मनुष्यों के लिये यह तीर्थ प्रसिध्द है। शालग्राम के पास एक सरोवर है उस सरोवर में नाग राज रहता है वह पुण्यात्मा मनुष्यों के द्वारा किये श्राध्द के पिण्ड़ों को ही खाता है। देवदारु वन में भी श्राध्द करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। भागीरथी तीर्थ और प्रयाग तीर्थ में श्राध्द करने से बहुत पुण्य होता है और अक्षय फल प्राप्त होता है। कालंजर, दशार्ण, नैमिष, कुरुजांगल और बनारस तीर्थों को श्रध्दा पूर्वक श्राध्द करना चाहिए। बनारस में भगवान शंकर नित्य निवास करते हैं। इस कारण यहां पर श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। इन तीर्थों में श्राद्ध, जय हवन यज्ञ तथा अन्य शुभ कर्म करने से मनुष्य पवित्र होकर अक्षय फल प्राप्त करता है।

लौहित्य वैतरणी और स्वर्ण वेदी में भी श्राध्द करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। गंगाजी, धर्मपृष्ठ, ब्रह्म सरोवर, गया, अभ्रकूट, प्रभृति तीर्थों में श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है भरत जी के पवित्र आश्रम अरण्य में भी श्राद्ध करने का एक महान फल होता है। अरण्य नाम के श्राश्रम के चारों तरफ पांच योजन तक बरफ गिरता है। उस अरण्य बन मांस के नेत्र वालों को भी मंतग ऋषि का आश्रम दिखाई देता है। पंच्चवन नाम के तीर्थ में भी श्राद्ध करने अक्षय फल प्राप्त होता है। पाण्डुविशाल नामके तीर्थ में भी धर्म श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। जो पापी मनुष्य होते हैं, वे वहां पर तुलामान, चाप और अनेक प्रकार के शस्त्रों सहित समय आने पर गोता लगाते हैं। महारुद्र और कौशिकी में भी श्राध्द करने से अनन्त फल प्राप्त होता है। श्री भगवान शंकरजी ने मुण्ड पृष्ठ में पदन्यास किया था बहुत देवयुगों तक कठिन तपस्या की थी। मुण्डपृष्ठ तीर्थ के उत्तर में एक प्रसिध्द कनकनन्दी नामका तीर्थ है।

वह प्रसिध्द तीर्थ देवता और ऋषियों से सेवित है। उस तीर्थ में स्नान करने से स्वर्ग प्राप्त होता है। उस तीर्थ में श्राध्द करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। पुण्यात्मा मनुष्य उस तीर्थ में स्नान करके तीनों ऋणों से छूट जाता है। उस सरोवर के किनारे पर देवताओं का एक बहुत बड़ा मन्दिर है। उस मन्दिर में बैठकर जप करने से स्वर्ग प्राप्त होता है। मानस तीर्थ की यात्रा करने से बड़ी सिध्दि शीघ्र ही प्राप्त होती है। वहां पर श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। मानस सरोवर में एक अनोखा दृश्य दिखाई देता है। वहां पर पवित्र गंगाजी आकाश मार्ग से निकल कर पृथ्वी पर आती हुई दिखाई देती हैं। यह देवी गंगाजी चन्द्र मण्डल से पृथ्वी पर गिरती हैं। आकाश मण्डल में सूर्य के समान चमकीला एक तोरण दिखाई देता है पवित्र नदी चन्द्रभागा उसी स्थान से निकली है। चन्द्रभागा और सिन्धु नदी मानस सरोवर की तरह ही पवित्र पुण्यदायी हैं। सभी नदियों में पवित्र सिन्धु नदी पश्चिम समुद्र में जाकर मिलती है। एक बहुत विशाल हिमवान पर्वत है जहां पर नाना प्रकार की धातुऐं पैदा होती है। वह हिमवान पर्वत अस्सी हजार योजन के विस्तार में फैला हुआ है। इस पर्वत पर सिद्ध और चारण निवास करते हैं। उस पर्वत पर सुषुम्ना नामकी एक पुष्करणी है जिसमें स्नान करने से अक्षय फल मिलता है। हिमवान पर्वत का प्रत्येक भाग पुण्यफल देने वाला है उस पर्वत पर जन्म लेने वाले आदमी दस हजार वर्षों तक जीवित रहते हैं। पुण्यात्मा पुरुषों को इन पवित्र तीर्थों में स्नान, दान और श्राद्ध श्रध्दा पूर्वक करना चाहिए। उच्च गिरिशिखर पर, कन्दरा में, गुफाओं में, गंगातट पर, यमुना तट पर, पर्वतों पर गौशालाओं में, युगारम्भ की तिथियों में, महासमुद्र के किनारे, नदियों के संगम पर, लिये पुते स्वच्छ स्थान पर तथा गोबर से लिपे पुते एकान्त घर में नित्य प्रतिदिन भक्ति सहित श्राद्ध करना चाहिए, इस प्रकार श्राद्ध करने से मनुष्यों के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। इन तीर्थों की यात्रा करने वाला और पापी मनुष्य भी

तिर्यक योनि में जन्म नहीं लेता है। पापी मनुष्य धैर्य श्रद्धा और अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखकर तीर्थ यात्रा करता है तो वह सभी पापों से छूट जाता है और स्वर्ग को प्राप्त होता है। गुरु रूपी तीर्थ से परमसिद्धि प्राप्त होती है। यह तीर्थ सभी तीर्थों से पवित्र माना जाता है और इस तीर्थ से भी ध्यान तीर्थ पवित्र माना गया है। यह ध्यान साक्षात् ब्रह्म का तीर्थ है यह तीर्थ उपवास में भी पवित्र माना गया है इसका कभी नाश नहीं होता।

प्राण और अपानवायु इन दोनों के समान करके इन्द्रियों उनके विषयों और बुद्धि को मन में बांधने से सबकी निवृति हो जाती है। सभी इन्द्रियों में एक मन ही चचल और चलायमान रहता है निराहार रहने से मन की चंचलता और कठोरता समाप्त होजाती है, अतः इसी कारण उपवास करना कठिन तप माना गया है। चंचल बुद्धि और मनको वश में रखने से अच्छी बुध्दि पैदा होती है। सभी पापों के नष्ट हो जाने पर और इन्द्रियों के नष्ट होजाने पर आत्मा शुध्द हो जाती है। सभी व्यक्त और अमल वस्तुओं के कारण और गुणों से योगीजन अपनी आत्मा को शुध्द रखते हैं। उनके मरने के बाद न कोई गति होती है न कोई स्थान ही होता है, वे व्यक्त और अव्यक्त किसी में निवास नहीं करते हैं। उनके सत और असत के विषय में कुछ कह नहीं सकते हैं।

[श्री वायु महापुराण का श्राध्द कल्प नामका सतहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ]

अठहत्तरवाँ अध्याय

(श्राध्द कल्प)

वृहस्पतिजी बोले—मैं अब आपको श्राध्द में देने वाले दान और उनसे मिलने का फल तथा श्राध्द में कौन कौन सी वस्तुये देनी चाहिए और कौन कौनसी वस्तुयें नहीं देनी चाहिए इन सबके विषय में बताऊँगा। बसन्त ऋतु में और ग्रीष्म ऋतु में अग्नि होत्रादि

कर्म करना चाहिये, ये शुभ कर्म करने से अनन्त फल प्राप्त होता है। रात के समय श्राद्ध नहीं करना चाहिये, श्राद्ध कर्म दिन में ही करने चाहिये। ग्रहण के अवसर पर श्राद्ध करना चाहिये जो व्यक्ति ग्रहण के अवसर पर श्राद्ध नहीं करता है वह अत्यन्त भारी दुख सहता हैं। जो मनुष्य ग्रहण के अवसर पर श्राद्ध करता है वह अनन्त फल को प्राप्त करता है। विश्वेदेव, सौम्य, और प्रचुर मांस युक्त इषि, गैंड़ें का सींग पितरों के द्वेष भाव नष्ट करने के लिये नहीं करना चाहिये। महात्मा देवेश के मना करने पर भी विश्वकर्मा ने इन्द्र का सोमपान किया था और उनके पीते समय कुछ बूंद पृथ्वी पर गिर पड़ा, वह गिरा हुआ पदार्थ सांवां के रूप में उत्पन्न होगया और फिर उसी समय पीते समय विश्वकर्मा की नाक के छिद्र से कुछ बूंदें सोम रस की पृथ्वी पर गिर पड़ीं, वे बूंदें ईख के रूप में पैदा होगयीं, अतः सांवां और ईख से पितरों की सभी इच्छाऐं, पूर्ण होती हैं। ईख शीतलता देने वाली मीठी और कफ कारी होता है। जो मनुष्य इन वस्तुओं को श्राद्ध में दान करता है वह शीघ्र ही सिद्धि को प्राप्त करता है। सवां, हस्तिनाम, पटौल, वृहतीफल, अगस्त्य की तीखी शिखायें इत्यादि वस्तुऐं पितरों को मधुर और प्रिय लगती हैं। श्राद्ध में नागर और दीर्घ मूलक भी दान करना चाहिये, श्राद्ध में वंशी, करीट, सुरमा सर्जक, और भूस्तृण का भी दान करना चहिये।

लहसुन, गाजर, प्याज, करम्भ, पिण्डमूलक इत्यादि पदार्थ श्राद्ध में नहीं दान करना चाहिये। अब मैं आपको इसका कारण बतलाऊँगा किये वस्तुऐं श्राद्ध में क्यों नहीं दान करनी चाहिये। प्राचीन काल में देवता और राक्षसों का बहुत भारी युद्ध हुआ था, उस युद्ध में देवताओं से पराजित राजा बलि के सरीर में घाव होगये थे, उस घाव से रक्त की बूंद निकल कर पृथ्वी पर गिर पड़ी! अतः वे ही इन वस्तुओं के रूप में पैदा हुये। अतः श्राद्ध कर्म में इन वस्तुओं को दान नहीं करना चाहिये। श्राद्ध कर्म में गौंद, लवण, द्रव्य और ऊषण वस्तुऐं भी नहीं दान करना

चाहिये । रजस्वला स्त्रियों को भी श्राद्ध कर्म में नहीं जाना चाहिये। दुर्गन्धि पूर्ण, फैनों से व्याप्त, छोटे छोटे गढ्ढों का पानी, भेड़, मृग बकरी, ऊँट, और इस रेखुर वाले जानवरों का झूठा पानी, महीष, चमर और वन के अनेक पशुओं का पिया हुआ गन्दा पानी श्राद्ध कर्म में नहीं लेना चाहिये। इसके बाद अब में आपको उन स्थान और मनुष्यों के विषय में बतलाऊँगा जिसमें कि कौन कौन से मनुष्यों को नहीं देखना चाहिये और किन किन स्थानों पर श्राध्द नहीं करना चाहिए ।

श्राद्ध कर्म वन में पैदा होने वाले फल फूल मूल के आहारों से श्रद्धा पूर्वक श्राद्ध करना चाहिए, इस प्रकार श्राद्ध करने से यश बुद्धि प्राप्त होती है ! त्रिशंकू देश में श्राद्ध नहीं करना चाहिए। कारस्कर कलिङ्ग, सिन्धु के उत्तर वर्ती देश और जिस देश में वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो चुका हो वहां सराद नहीं करने चाहिए। नगे और असभ्य मनुष्यों को सराद्ध नहीं देखना चाहिए, इन लोगों के देखने पर सराद में दी गई वस्तुएं पितरों को प्राप्त नहीं होती हैं।

शंषु बोले--हे प्रभो ! वे मनुष्य कौन से हैं जो नंगे रहते हैं आप हमको उनका विस्तार से वर्णन सुनाइए। इस प्रकार पूँछने पर बृहस्पति बोले–सभी प्राणियों के लिए तीनों वेद शान्ति प्रदान करने वाले कहे गए हैं, जो मनुष्य अज्ञानी होकर उन्हें छोड़ देते हैं वे नंगे हैं। मनुष्य जब वेद से विमुख होजाता है तब वेद रूप वृक्ष वे सहारा होजाता है। अतः वेद को ही मानना चाहिये वेद ही सब कुछ है जो मनुष्य धर्म का पालन न करके सराद इत्यादि नहीं करते और अपनी इच्छा और शक्ति के सहारे गुजर बसर करते हैं। वे लोग नगे कहलाते हैं। जो मनुष्य व्यर्थ में जटा रख लेते हैं या सिर मुड़वा लेते हैं, या व्यर्थ में ही नग्न रहते हैं. व्यर्थ में व्रत करने वाले, व्यर्थ में जप करके, कुटुम्ब को दुख पहुँचाने वाले मनुष्य भी नंगे कहलाते हैं । इस प्रकार के मनुष्यों को सराद कर्म नहीं करना चाहिये ।

ब्रह्महत्या करने वाले, लोभी, नास्तिक, गुरु की पत्नी को हरण करने वाले, दस्यु, नृशंस, आत्मतत्व ज्ञान से रहित, पाप कर्म करने वाला देवता तथा देवर्षियों की बुराई करने वाले मनुष्यों को श्राद्ध कर्म नहीं करना चाहिये। असुरों और यातुधानों को भी श्राद्ध करना मना है। सतयुग ब्राह्मणों का युग माना जाता है, त्रेता युग वैश्यों का तथा कलियुग शूद्रों का युग माना जाता है।

पितरों ने कहा—सतयुग में वेद पूजित होते हैं अतः वेदों की पूजा होती थी, त्रेतायुग में देवताओं की पूजा होती थी, द्वापर युग में शस्त्र पूजित माने जाते थे अतः मनुष्यों को युद्ध अधिक प्रिय लगता था और कलियुग में लोग पाखण्डी होते हैं। श्राद्ध कर्म में अपवित्र, अपमानित, मुर्गे, सुअर, कुत्ता इत्यादि के देखने से श्राद्ध नष्ट होजाता है। जिस घर में बच्चा हुआ हो, अथवा सूतक, मनुष्य बहुत समय से बीमार हो, दुष्ट स्वभाव और विचारों वाला हो, इस प्रकार के मनुष्यों को श्राद्ध कर्म नहीं देखना चाहिए इन मनुष्यों के देखने से श्राद्ध का अन्न नष्ट होजाता है। श्राद्ध के समय पृथ्वी पर मिट्टी और जल से लीपना चाहिये फिर काले तिल पृथ्वी पर छिरट देने चाहिए. प्रयत्न से गुरु, अग्नि और सूर्य को देखने चाहिए श्राद्ध के अन्न को वस्त्र से नहीं छूना चाहिए तथा नमक भी न डालना चाहिए। दही, शाक, भाटे, सफेद रंग का चूसने वाला पदार्थ भी श्राद्ध कर्म में नहीं दान करने चाहिए। इस श्राद्ध कर्म में समुद्र से निकला हुआ नमक पवित्र से पैदा हुआ नमक शुभ पवित्र माना जाता है। ये दोनों प्रकार के नमक पवित्र माने जाते हैं। उनको आग में छोड़कर पुनः दोनों हाथों से निकाल कर अपने माथे से लगा लेना चाहिए। मस्तक ब्रह्मतीर्थ माना जाता है। श्राद्ध के सभी द्रव्यों को पहले जल से धो लेना चाहिए, उनके ऊपर लगी मैल मिट्टी छुड़ा लेनी चाहिए फिर उनको जल में डाल देना चाहिए। अरिष्ट, तुमुल, विल्व, इंगुद श्वदन और विदल इन सभी वस्तुओं को जल से अच्छी प्रकार धोने चाहिये। इसी तरह दांत हड्डी, खाल,

सींग इत्यादि को अच्छी प्रकार से साफ धोना चाहिये। सभी प्रकार के मृत्तिका के बने हुये पदार्थों को अच्छी तरह से धो लेना चाहिये। मिण, हीरे, मोती, प्रवाल, शंख इत्यादि के लिये पीली सरसों का या काले तिल का कल्क बनाकर शुद्धि करना चाहिये। सभी प्रकार के केशों को धोकर साफ करना चाहिए। पृथ्वी को झाड़कर पानी से धोकर सफाई करनी चाहिये। फल, फूल और शलाका को धोकर साफ करना चाहिये, गांव से बाहर निकल कर पृथ्वी वायु द्वारा शुद्ध रहती है। अब मैं आपको शौच के कुछ नियम बतला रहा हूं। सुबह उठकर अपने घर से बहुत दूर आगे जाकर शौच त्याग करना चाहिये। शौच त्यागते समय सिर को कपड़े से ढक लेना चाहिये, सिर को हाथ से नहीं छूना चाहिये सूखे हुये पत्तों से काष्ठ से, बांस के पत्तों से अथवा मिट्टी के बरतन से मल को ढक देना चाहिये। पुनः चुप होकर मिट्टी और ऊपर उठाये हुए जल से शुद्धि करनी चाहिये। दिन में उत्तर की तरफ बैठकर और रात्रि में दक्षिण की तरफ बैठकर मल त्याग करना चाहिये। मल द्वार को बाएं हाथ से साफ करना चाहिये और दायें हाथ में जल लेना चाहिये। मलद्वार को बायें हाथ से तीन बार मिट्टी लगाकर साफ करना चाहिये। बाएं हाथ में दसबार मिटटी लगाकर धोने चाहिये, दोनों हाथों में पांच बार मिटटी लगाकर धोने चाहिए। फिर इसके बाद पैरों में मिटटी लगाकर धोने चाहिए फिर आचमन करके पवित्र होना चाहिए। फिर सूर्य, अग्नि, और वायु के उद्देश्य से तीन बार जल त्याग करना चाहिये। ब्राह्मण पुरुषों को तीर्थ में हर समय अपने पास कमंडलु रखना चाहिये। इस जल के बर्तन से अपने छोटे छोटे कार्य पैर इत्यादि धो लेने भी चाहिए। पैरों के धोने के बाद आचमन करके शुभ कार्य करने चाहिए। अपवित्र हाथों से आचमन करना और देव पूजा करने से तीन बार का उपवास रखना चाहिए। कुत्ता और चाण्डाल को छूने पर भी प्रायश्चित करना चाहिए। मनुष्य की हड्डियों को छूने पर भी उपवास करना चाहिए। भक्ति सहित

इस उपवास को तीन रात में अथवा एक रात में करना चाहिये। जो मनुष्य शौच के आचार विचार का पालन नहीं करते हैं वे मनुष्य म्लेच्छ वंश में पैदा होते हैं। जो मनुष्य यज्ञादि कार्य नहीं करते हैं और पाप कर्म करने में तत्पर रहते हैं वे मनुष्य तिर्यक योनि में उत्पन्न होते हैं वे भी मनुष्य शौच के आचार विचारों का पालन करके सभी पापों से छूटकर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। देवता पवित्रात्मा होते हैं। अतः उन्होंने ही शौच के ही ये आचार बतलाए हैं। पितरगण, ऋषियों, ब्राह्मणों, अतिथि सेवा करने वाले, पितरों में श्रद्धाभक्ति रखने वाले, शान्त कोमल स्वभाव वाले मनुष्यों के शुभ कर्मों से सन्तुष्ट होकर उनके सभी मनोरथों को पूरा करते हैं। सत्कर्मी मनुष्य सदा शुद्धि करते हैं। देवता लोग दुष्ट आचरण करने वाले अपवित्र मनुष्यों के वर्जित रखते हैं।

श्री वायुमहापुराण का श्राद्धकल्प नामका अठहत्तरवां अध्याय समाप्त।

(:——:)

उन्यासीवां अध्याय

(श्राद्ध कल्प)

ऋषि बोले–हे सूतजी! अब आप हमको उन ऋषियों की जो बातें और रहगई हैं श्राद्ध के विषय उनको और सुना दीजिए–

सूतजी बोले–हे ब्राह्मणो! अब मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देरहा हूँ, आप सब ध्यान मग्न होकर सुनिए। मैं आपको ब्राह्मणों के विषय जो नियम हैं उनको बतला रहा हूँ। ब्राह्मण लोग सभी जातियों में श्रेष्ठ और पवित्र माने जाते हैं। किन्तु इतने पूज्य होने पर भी देवों और पितरों के कार्यों में ब्राह्मणों की परीक्षा लीजाती है। विद्वान पुरुष अनजाने ही ब्राह्मण की श्राद्ध कर्म में परीक्षा ले ले। सिद्ध मनुष्य ब्राह्मणों का वेष धारण करके पृथ्वी पर घूमते रहते हैं। इसी कारण अपने द्वार पर आये हुए अतिथि का हाथ जोड़ कर स्वागत करना चाहिए। इसके बाद पैर धोने के लिए जल देना चाहिए तथा पुनः भोजन खिलाकर सन्तुष्ट करना चहिए।

योगी देवगण भी नाना रूप धारण करके पृथ्वी पर घूमा करते हैं। अतिथि ब्राह्मण को केवल दूध देने से ही अग्निष्टोमयज्ञ का फल प्राप्त होता है। घी दान करने से नेत्रों की ज्योति प्राप्त होती है और सोलह दिन में पूर्ण होने वाले यज्ञ के फल के समान फल मिलता है। अतिथि को मधु देने से अतिरात यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य अतिथि ब्राह्मण को श्रद्धायुक्त सभी प्रकार के भोजन से सन्तुष्ट करके उसका स्वागत करता है। यह सभी यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। क्योंकि आये ब्राह्मण का अतिथि सत्कार्य सभी मनोरथो को पूर्ण करने वाला होता है। जो मनुष्य श्राद्ध कार्य में आये हुए अतिथि का निरादर करता हैं। उसे देवता लोग इस प्रकार छोड़ देते हैं जिस प्रकार कि हवन करने पर नीचे गिरी हुई आहुति रह जाती है। देवता, पितरगण और अग्निदेव इन ब्राह्मणों में स्थित होकर श्राद्धों में भोजन करते हैं। ये अतिथि श्राद्धों में अनादर पाकर उस श्राद्ध करने वाले मनुष्य को जला देते हैं। और ये अपना आदर पाकर उसके सभी मनोरथों को पूर्ण कर देते हैं। अतः हमेशा अपने द्वार पर आये हुये अतिथि का आदर प्रेमपूर्वक करना चाहिये। सन्यासी, ग्रहस्थी, बालकगण, लोक से दुखी रहने वाले वैरागीगण और यति इन सभी को अतिथि समझना चाहिये। जो मनुष्य किसी वस्तु की मांग करने के लिये अपने द्वार पर आये उसे भी अतिथि जानना चाहिये। जो मनुष्य बिना किसी मतलब के अपने द्वार पर आये उसे भी अतिथि ही समझना चाहिये। अतिथि का अतिथि श्रेष्ठ अतिथि है वह योगी के समान परम पवित्र पुण्य-दायी माना जाता है। वास्तव में वही सच्चा अतिथि माना जाता है जो कठोर न हो अधिक सन्तान वाला न हो, विद्यावान हो, शुभ आचरण करने वाला हो तथा नीच विचार वाला न हो। जो मनुष्य भूले भटके को, भूखे मनुष्य को, प्यासे थका थके हुये को भोजन खिलाते हैं वे मनुष्य यज्ञके फल के समान फल को प्राप्त करते हैं

भृगुतुंग सरस्वती नदी, गंगाजी, महानदी और अन्य नदियों में स्नान यात्रा करने से मनुष्य के सभी पाप छूट जाते हैं और वे स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। घर में किसी की मृत्यु होने पर ब्राह्मणों को दस रात का सूतक लगता है और क्षत्रियों को बारह रात का सूतक लगता है तथा वैश्यों को पन्द्रह रात का सूतक लगता है शूद्रों को एक महीने का सूतक लगता है अतः शूद्र एक महीने के बाद शुद्ध होते हैं सभी जाति की रजस्वला स्त्री तीन दिन में शुद्ध होती हैं। रजस्वला स्त्री, कुत्ता, चाण्डाल, नंगे और मुर्दों के ले जाने वाले व्यक्तियों के छूने पर स्नान करके शुद्ध होना चाहिए। वस्त्रों सहित मिट्टी से बारह बार स्नान करके शुद्ध होते हैं मैथुन करने के बाद भी इसी प्रकार स्नान करके शुद्ध होना चाहिए। मनुष्य को दोनों हाथों को मिट्टी से धोकर शौच करना चाहिए। विद्वान पुरुष को अपने दोनों हाथों को जल से धोकर पुनः मिट्टी लगाकर सब शरीर में स्नान करना चाहिए, फिर दो बार मल द्वार पर मिट्टी लगा कर फिर एक बार मिट्टी लगानी चाहिए। तीन बार मिट्टी लगाकर हाथ पैर धोने चाहिए। सभी जाति के मनुष्यों के लिए शौच के इसी प्रकार के नियम माने जाते हैं। अब मैं आपको गृहस्थाश्रम के मनुष्यों के लिये जो शौच के आचार हैं उन्हें बतलाऊंगा। गृहस्थाश्रम के व्यक्तियों को तीन बार दोनों पैरों में तथा तीन बार दोनों हाथों में मिट्टी लगाकर धोने चाहिए। अपवित्र हाथों में पन्द्रह बार मिट्टी लगाकर धोने चाहिए। मलद्वार को मिट्टी लगाकर धोना चाहिए। सड़क पर पैदल चलने पर भी घर पर आने पर पैरों को पानी से धोकर साफ करने चाहिए। बिना पैर धोकर आचमन करने से मनुष्य को पाप लगता है। हाथ पैरों को धोकर जल का बर्तन नीचे रख कर आचमन करना चाहिये फिर श्राद्ध के निमित्त सभी वस्तुओं को जल से छींटे मार कर शुद्ध पवित्र करने चाहिये श्राद्ध या यज्ञ की सभी वस्तुऐं फूल, तृण और हवन की सामग्रियों को जल से छींटे मार कर पवित्र करे। श्राद्ध कर्म में तथा देव पूजा के कार्य में सभी वस्तुओं को जल

से धोकर काम में लेनी चाहिये। वेदी में उत्तर दिशा की तरफ से वस्तुऐं लानी चाहिए और दक्षिण दिशा की तरफ से समाप्त करनी चाहिए। देवता और पितरों के शुभ कार्यों में दोनों हाथों से पृथ्वी पर पीली सरसों अथवा काले तिल बिछाने चाहिए। जो मनुष्य भूख से पीड़ित तथा नींद से पीड़ित मल, मूत्र का त्याग करने वाले हैं अथवा थूकने वाले हैं वे अपवित्र माने जाते हैं। इसी प्रकार भोजन करके, कपड़े पहन कर, अनजाने में बिना जनेऊ ही भोजन करना चाण्डालों को छूना, पैर को न धोकर भोजन करना इत्यादि इन सभी बातों से मनुष्य अपवित्र माना जाता है। विद्वान पुरुष को उत्तर पूर्व के पवित्र स्थान में बैठ कर उत्तर पूर्व को तरह मुँह करके दोनों हाथों और पैरों को धोकर घुटनों के बीच में हाथों को रखकर बैठे और यज्ञ अथवा श्राद्ध की वस्तुओं को धोवे। उसी समय इन्द्रियों को वश में रखकर तीन घूंट जल को पीये और दो बार मार्जन करके वस्तुओं का सींचन करना चाहिए, इनके बाद आचमन करे, जो मनुष्य इस प्रकार आचमन करते हैं उनके सभी कार्य सफल और सिद्ध होते हैं जो नास्तिक मनुष्य बिना आचमन करके शुभ कार्यों को करते हैं उनकी सारी क्रिया समाप्त हो जाती हैं। भूखे ब्राह्मण को कभी खोटे वचन नहीं कहना चाहिए, उस समय उसको आदर पूर्वक जो कुछ दिया जाता है। वह बिना यज्ञ के ही एक यज्ञ का माना जाता है। श्राद्ध में विद्वान ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये, और मेहनत से पैसा कमाने वाले को, एकान्त प्रेमी को लज्जा शील व्यक्ति को खूब अच्छी तरह से भोजन पका कर पेट भर कर श्रध्दा सहित खिलाना चाहिए। जो मनुष्य श्राध्द में चाण्डाल तथा अन्य नीची जातियों को भोजन खिलाते हैं, वे ब्रह्महत्यारे अथवा दुरात्मा माने जाते हैं। जो मनुष्य एक ही लाइन में ऊँचे और नीचे ब्राह्मणों को बैठा कर भोजन खिलाते हैं वे भी पाप के भागी होते हैं। जो पवित्र ब्राह्मण चारों वेदों का और महाभारत का पाठ करता है उसको श्राध्द में यथा योग्य स्थान देना चाहिए,

इसके बाद जो ब्राह्मण तीनों वेदों का पाठ करे उसको स्थान देना चाहिए। उसके बाद में दो वेद के पाठ करने वाले ब्राह्मण को स्थान देना चाहिए तथा इसके बाद एक वेद के पाठ करने वाले ब्राह्मण को स्थान पद देना चाहिए। पंक्ति में पवित्र जो पंक्ति पावन ब्राह्मण है वे इस प्रकार हैं। वेद के छओं रूपों के पाठ करने वाले, विनुयी योग परायण सभी शास्त्रों में स्वतन्त्र विचार रखने वाले और सदा घूमने वाले पाँच तरह के ब्राह्मणों को पंक्ति पावन जानना चाहिए। इनके बाद नचिकेता की तीनों विधाओं के जानने वाले तथा धर्मशास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मण को भी पंक्ति पावन मानते हैं बृहस्पतिजी के शास्त्र के ज्ञाता को भी पंक्ति पावन पुकारते हैं। ये सभी ब्राह्मण पंक्ति पावन कहे जाते हैं। जो ब्राह्मण मनुष्य किसी श्राद्ध कर्म में निमन्त्रित हो कर स्त्री के साथ सम्भोग करता हैं उसके पितर गण उसी के मांस का भोजन करते हैं तथा उसके वीर्य पर सोते है। श्राद्ध में न्योता देकर तथा श्राद्ध में भोजन करके जो मनुष्य स्त्री के साथ समागम करता है उसके पितर गण भी उसके मांस को खाते हैं तथा उसके वीर्य पर स्थित रहते हैं। इसी लिए श्राद्ध करने वाले मनुष्य को ब्रह्मचारी ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये, और श्राद्ध का दान अतिथि को दे देना चाहिए। इनके अलावा योग परायण ब्राह्मणों तथा वीतराग सन्यासी ब्राह्मणों को अथवा बाल खिल्य ब्राह्मणों को श्राद्ध में भोजन कराना चाहिए जो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहने वाले ब्राह्मणों को भोजन खिलाता है वह विश्वेदेवों की पूजा के समान फल को प्राप्त करता है। वानप्रस्थ ब्राह्मणों को भी भोजन खिलाकर सन्तुष्ट करना चाहिये वानप्रस्थ ब्राह्मण के सन्तुष्ट होने पर ऋषि सन्तुष्ट रहते हैं, बाल-खिल्य ब्राह्मणों के सन्तुष्ट से इन्द्र प्रसन्न रहते हैं। यतियों के सन्तुष्ट होने पर स्वयं ब्रह्माजी प्रसन्न रहते हैं। अपने अपने महत्व में ये पाँच आश्रम ही पवित्र माने जाते हैं।

पितरों के श्राद्धों में अथवा देव पूजा या देवकार्य में चार आश्रमों की पूजा होती है। इन चारों आश्रमों से जो परे हो उन्हें कुछ भी दान नहीं करना चाहिए। नीच वृत्ति से अपनी गुजर बसर

करने वाले, अनाचारी, गायन बादन द्वारा जीविका चलाने वाले, रामलीला में राम लक्ष्मण का अभिनय करने ब्राह्मणों वाले को भी श्राद्ध को भी श्राद्ध कर्म में निमन्त्रित नहीं करना चाहिए। श्राद्धों के दिनों में जो मनुष्य नित्य प्रति भोजन करता है ऐसे व्यक्ति को भी श्राद्ध कर्म के भोजन से वंचित रखना चाहिए। जो व्यक्ति नित्य प्रति श्राद्ध में भोजन करता है वह काले रंग का हो जाता है। जो मनुष्य शूद्रों के साथ बैठकर भोजन खाता है वह भी नीच प्रकृति का हो जाता है। ब्राह्मणों के लिए यह सभी कार्य वंचित रखे गये हैं जीव हिंसा करना, जीव इत्यादि के मारने में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना, पशुपालना, गुरु के अतिरिक्त किसी दूसरे की सेवा करना इत्यादि कार्य हैं। असली रूप में वे ही ब्राह्मण हैं जो नित्य ध्यान में रह कर अपना जीवन व्यतीत करते हैं जो मनुष्य झूठे षड़यन्त्र रचने वाले ढोंग बाजी करने वाले, दुर्व्यवहार करने वाले लोभ और अज्ञान वश फल की आशा रखने वाले, विद्या को बेचने वाले हैं उनको श्राद्ध में नहीं रखना चाहिए। वेदशास्त्रों में किसी को दखल नहीं देना चाहिए जो मनुष्य उनमें आक्षेप लगाते हैं वे पाप के भागी होते हैं ऐसे मनुष्यों को भी श्राद्ध में दान नहीं देना चाहिए। जो मनष्य रुपया आदि लेकर किसी को पढ़ाता अथवा रुपया लेने वाला अध्यापक से पढता है ऐसे दोनों व्यक्तियों को श्राद्ध कर्म में भोजन नहीं करना चाहिए। व्यापार करने का कार्य तो वैश्यों के लिए लिखा है। अपनी कन्या के पति को भी श्राद्ध कर्म में भोजन नहीं खिलाना चाहिए। जो मनुष्य व्यर्थ में ही स्त्री के साथ सम्भोग करता है अथवा यज्ञ में हवन करता है इन दोनों मनुष्यों को भी श्राद्ध में भोजन नहीं खिलाना चाहिये। नास्तिक ब्राह्मण को भी श्राद्ध में दान नहीं देना चाहिए। जो मनुष्य अपने लिए भोजन बनाते हैं और देवता तथा अतिथियों के लिए कुछ भी नहीं रखते वे मनुष्य पतित होकर ब्रह्मराक्षस के समान माने जाते हैं। जिन ब्राह्मणों की स्त्रियां रात्रि में दूसरों के साथ व्यभिचार करतीं हैं तथा वो स्वयं भी दूसरी स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं इनको श्राद्ध में भोजन नहीं खिलाना चाहिए

वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा का पालन न करने वाले, चोरी करने वाले धर्म और श्राद्ध के विरोधी, बिना विचार के सब कुछ यज्ञ में करने वाले मनुष्य पंक्ति दूषक कहलाते हैं अतः इनको श्राद्ध में दान नहीं देना चाहिए। जो ब्राह्मण हाथ पर रख कर खाते हैं तथा सूअर की तरह भोजन करता है तथा बांऐ हाथ से खाता है वह मनुष्य भी पतित माना जाता है पितर गण ऐसे मनुष्य के हाथ का भोजन ग्रहण नहीं करते हैं। श्राद्ध की बची हुई वस्तुओं को स्त्री तथा शूद्र और अनुचर न हों, उनको नहीं देना चाहिए। जो मनुष्य अज्ञानता में इनको दे देते हैं उनका दिया हुआ श्राद्ध पितरों को प्राप्त नहीं होता। इसीलिए श्राद्ध में झूठे बचे हुए अन्न को किसी को नहीं देना चाहिए। जिस प्रकार पितर फल, फूल, मूलों से प्रसन्न रहते हैं उसी प्रकार पितर गण अन्न से तृप्त रहते हैं। जब तक अन्न गरम रहता है तभी तक वह अन्न पवित्र माना जाता है। ठंठा और बासी अन्न अपवित्र माना जाता है। ब्राह्मण को इन्द्रियों को वश में रखकर चुप चाप शान्ति पूर्वक भोजन करना चाहिए। दान करना, हवन करना, दान लेना, भोजन कराना बलिलेना या देना ये सभी कार्य हाथ के अंगूठे के साथ सम्पन्न करना चाहिए। श्राद्ध में इस प्रकार दान करना चाहिए। साधारण रूप से हाथ को घुटनों के भीतर करके आचमन करना चाहिये। श्राद्ध के समय में सिर मुड़े हुए व्यक्ति को, जलधारी व्यक्ति को, कषायवस्त्र धारण करने वाले मनुष्य को श्राद्ध से अलग रखना चाहिये। शिखाधारण करने वाले और त्रिदंडी मनुष्य को श्राद्ध में भोजन कराना चाहिये। जो मनुष्य नित्य व्रत उपवास रखते हैं और योगभ्यास में लगे रहते हैं देवताओं की पूजा करते हैं, ऐसे ब्राह्मण महान होते हैं प्राणी उनके दर्शन मात्र से ही पवित्र हो जाते हैं। व्यक्त और अव्यक्त सभी तरह के पदार्थ उनके वश में रहते हैं। श्रेष्ठ योगीजन महात्माओं के मोक्ष इत्यादि सभी ज्ञान उनके अधिकार में रहते हैं। इसीलिए उन योगी श्रेष्ठ महात्माओं में श्रद्धाभक्ति रखने वाला व्यक्ति सदा सुखी रहता है

जो योगी श्रेष्ठ जन ऋग्वेद को जानता है वह सभी वेदों को जानता है और जो यजुर्वेद को जानता है वह सभी यज्ञों को जानने वाला होता है। जो मनुष्य सामवेद को जानता है वह सभी तरह से ज्ञान वान होकर सभी कुछ जानता है।

[श्री वायु महापुराण का श्राद्ध कल्प नाम का उन्यासीवां अध्याय समाप्त हुआ]

—❀—

अस्सीवाँ अध्याय

(श्राद्ध में दान के फल)

बृहस्पतिजी बोले—हम आपको अब श्राद्ध में दिये दान और उसके फलों को बतलायेंगे। जो मनुष्य श्राद्ध में अन्न का दान करता है। वह मनुष्य स्वर्ण के बने हुए दिव्य सुन्दरी अप्सराओं से भरे हुए विमान को प्राप्त करता है जो मनुष्य श्राद्ध में औरन के लिए नया वस्त्र दान करे उसको ऐश्वर्य, सुन्दरता, पुत्र और दीर्घायु मिलती है। जो मनुष्य श्राद्ध कर्म में जनेऊ का दान करता है और सभी श्रेष्ठ पवित्र ब्राह्मणों को पानी पिलाते हैं, उसे ब्रह्म विद्या दान का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य श्राद्ध के दिन कमंडुल दान करते हैं उसको गौ दान का फल प्राप्त होता है जो मनुष्य श्राद्ध के समय चक्राकार चिन्ह से बना हुआ कमण्डुल दान करता है, उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं। जो मनुष्य सुन्दर फूलों से सजी हुई शय्या दान करते हैं उसकी वह दान दी हुई उत्तम शय्या परलोक तक उसके साथ २ चलती है। श्राद्ध के दिन हीरे, मोती और रत्नों से सजी हुई शय्या दान करता है उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। एक हजार घोड़ों का दान करने से, एक हजार हाथियों के दान करने से तथा सौ रथों के दान करने से वह मनुष्य योगिनी के साथ निवास करता है। जो मनुष्य श्रध्दा सहित पितरों के निमित्त दीपक जलाते हैं उसे एक हजार निष्कों के दान का फलप्राप्त होता है सभी प्राणियों के एक दूसरे

प्राणों की रक्षा का दान करना चाहिये, क्योंकि प्राणदान के समान कोई दूसरा दान नहीं है। श्राद्धों में सोने के बर्तनों का दान करना चाहिये। श्राद्ध के समय सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों से भरा हुआ चाँदी का बर्तन दान करने से श्राद्ध करने वाले व्यक्ति के सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं। जो व्यक्ति श्राद्ध में व्याही हुई गाय के साथ दूध दुहने के पात्र को दान करने से उसे बहुत सी गायों के पुण्य का फल मिलता है। सरदी के मौसम में जो व्यक्ति अग्नि और सूखे ईंधन को दान करता है वह मनुष्य हर समय विजयी होता है। श्री सम्पन्न होकर सुखी रहता है। श्राद्ध के समय फूल मालाओं को और सुन्दर बर्तनों को दान करना चाहिये। जो मनुष्य आसन, शय्या, प्रचुर भूमि और विविध तरह के वाहन दान करत है उसको परम सुख की प्राप्ति होती है उसको परम सुन्दर सुन्दरियाँ सुख पहुँचाती है। है। जो मनुष्य सभी तरह के श्राद्धों के समय इन सभी वस्तुओं को दान करता है उसको अश्वमेघ यज्ञ के फल के समान फल प्राप्त होता है।

श्राद्ध के समय जो मनुष्य घी से भरे हुये बर्तनों का दान करता है वह सुन्दर रूप, शक्ति और बुद्धि को प्राप्त करता है। श्राद्ध के समय याचक के मनचाही वस्तु का दान करने से पुण्डरीक यज्ञ का और सुन्दर मकान का दान करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। फलों से लदे हुये वन का दान करने से सुगन्धित पदाथ प्राप्त होते हैं। कूओं, बाग, बगीचों, तालाबों, गौशालाओं और गृहों के दान करने से दानी मनुष्य स्वर्ग में बहुत दिन तक निवास करता है। श्राद्ध काल में रत्नों से जड़े हुये बिस्तर और शय्या का दान करता है उससे पितर गण परम प्रसन्न रहते हैं। और दानी मनुष्य बहुत समय तक स्वर्ग में निवास करते हैं। ऊनी वस्त्रों को रेशमी, सूती वस्त्रों को कम्बलों को, चर्म, मृग की खाल को दान करने से सौत्रातृपेय यज्ञों का फल प्राप्त होता है। बहुत सी सुन्दर

स्त्रियां उनके पुत्र उनके वश में रहते हैं। वह मनुष्य सदा निरोग रहकर सुख प्राप्त करता है।

जो मनुष्य रेशमी वस्त्र, सूती वस्त्र, सुन्दर साड़ियों को श्राद्ध में दान करता है। उस मनुष्य के सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं। वस्त्र देवताओं को प्रिय हैं। उस सबसे अच्छे वस्त्रों के अभाव में कोई भी कार्य पूरा नहीं होता है। कपड़ों के बिना न तो यज्ञ पूरा होता है इस लिए श्राद्ध के समय वस्त्रों का दान करना चाहिए। वस्त्रों के दान करने वाले को वेदों, यज्ञों और तपस्या का फल प्राप्त होता है जो मनुष्य श्राद्ध के अवसर पर सभी इन्द्रियों को वश में रख कर वस्त्रों का दान करता है उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं, वह मनुष्य सभी कामनाओं सहित यज्ञ का फल प्राप्त करता है श्राद्ध में सत्तू, पेठा, घी, मधु, खिचड़ी, दूध और दूध से बनी मिठाई तथा सुन्दर पूआ दान करता है वह अग्निष्ट होम यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वर्षा ऋतु में श्राद्ध के समय मघा नक्षत्र में दही, दूध, माखन, घी, मट्ठा तथा तरह तरह के पकवानों का दान करने से पितरगण अधिक प्रसन्न होते हैं। श्राद्ध करते समय घी के साथ ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए। भूमि पर घी छोडना चाहिए, गया तीर्थ में श्राद्ध के अवसर पर हाथी दान करने से उसके पितर तृप्त होते हैं। घृत, दूध, खिचड़ी, मीठा, मधु, मूल, फल, चिउड़ा मसूर, सत्तू धान के लावे, पूआ, कुत्याष के दान करने से सभी पितर गण तृप्त होते हैं। श्राद्ध में घी तथा मीठे मीठे सुन्दर खाने की वस्तुओं को दान करने से तथा दही के सत्तू को दान करने से मनुष्य को क्षय फल प्राप्त होता है जो मनुष्य श्रद्धा से नये अन्न का श्राद्ध में दान करता है वह सभी प्रकार के मनोरथों को प्राप्त करता है। श्राद्ध के अवसर पर विश्व-देव और सोम का भाग निकालना चाहिए और गैंड़े के मांसकी बलि देनी चाहिये गैंडे के सींग को निकाल देना चाहिए। अतिथियों को हाथ जोड़कर पहले आसन चाहिए, तथा फिर भोजन करना चाहिए, ऐसा करने से मनुष्य को यज्ञों का फल मिलता है। अपने द्वार आये हुये।

इस प्रकार अतिथि को भोजन कराने से अक्षय फल प्राप्त होता है। श्राद्ध में अन्न दान करने से तीन करोड़ सुन्दर कन्यायें प्राप्त होती हैं। इस मृत्यु लोक में अन्न दान से बढ़कर कोई दूसरा दान नहीं है। अन्न से ही पूरी पृथ्वी पर सभी जीव उत्पन्न होते हैं और अन्न ही से मनुष्य जीवित रहते हैं अतः अन्न ही मनुष्य को जीवन दान देते हैं। मृत्यु लोक में जीवन दान के समान भी कोई दूसरा दान नहीं है। अन्न से ही सारा संसार जीवित है। अन्न से ही ये सारे लोक प्रतिष्ठित हैं, अन्न दान से ही वे वर्तमान हैं, अन्न ही साक्षात ब्रह्म है, उन्हीं से ही यह सारा संसार व्याप्त है। अतः इसी कारण अन्नदान के समान और कोई दान नहीं है। पितरों में जो मनुष्य श्रद्धा रखते हैं उनको जो कुछ संसार में है सभी पदार्थ शीघ्र ही सुलभ होते हैं। मनुष्य को आये हुये अतिथि को सम्मान पूर्वक आश्रय देना चाहिये, हजारों देवगण आतिथ्य को प्राप्त करने के लिये इस पृथ्वी पर नाना रूपों में घूमा करते हैं। जो मनुष्य ऊपर लिखी सभी वस्तुओं का श्राद्ध में श्रद्धा सहित दान करता है, वह पृथ्वी का राजा होकर एकच्छत्र राज्य करता है, और इसे संसार के सभी सुख प्राप्त होते हैं। ये दान परम धर्म कहलाते हैं। विद्वानों पुरुषों ने इनका बहुत आदर किया है। इस प्रकार के दान करके राजा लोग राज्य प्राप्त करते हैं गरीब मनुष्यों को धन प्राप्त होता है, रोगी मनुष्य निरोग होकर सुख प्राप्त करते हैं पितरगण उनके सभी कार्यों को पूरा करते हैं।

श्री वायु महापुराण का श्राद्ध में दान के फल नाम का अस्सीवाँ अध्याय समाप्त हुआ

इक्यासीवाँ अध्याय

[विशेष तिथियों में श्राद्ध के करने का फल]

बृहस्पति बोले—अब मैं आपको नित्य, नैमित्तिक और काम्य श्राद्धों का वर्णन सुनाऊँगा, और श्राद्ध कर्म में किस प्रकार पूजन करना चाहिये यह भी बताऊँगा। तीनों अष्टिकाओं के करने से पुत्र

और धन सम्पत्ति प्राप्त होते हैं। श्राद्ध कर्म में पूर्व पक्ष और कृष्ण पक्ष शुभ माना जाता है। इन तीनों अष्टिकाओं के इस प्रकार नाम है। पहली चित्री है, दूसरी प्राजापत्य है और तीसरी वैश्वदेवी के नाम से पुकारी जाती है। पहली चित्री को पूओं से दान करना चाहिये दूसरी प्राजापत्य को मांस का दान करना चाहिये, तथा तीसरी वैश्वदेवी को शाकों का भोजन देना चाहिये। इस प्रकार इन तीनों अष्टिकाओं के यह नियम बतलाये हैं।

पितरों के लिये अन्वष्टका श्राद्ध करना चाहिये, इसके अतिरिक्त चौथी अष्टका मिले तो वह भी श्राद्ध मनुष्य को करना चाहिये। विद्वान मनुष्य को इन अष्टिकाओ में बहुत धन खर्च करके श्राद्ध करना चाहिये इस प्रकार करने वाला मनुष्य इस लोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त करता है। इनकी पूजा करने वाले मनुष्य सभी जगह सुखी रहते हैं और नास्तिक मनुष्य सभी जगह दुखी रहते हैं। पितरगण श्राद्धों के अवसर पर मनुष्यों के पास इस प्रकार आते हैं जिस प्रकार कि गायें नदी या सरोवर में पानी पीने जाती हैं विशेष तिथियों पर देवता भी इस प्रकार मनुष्यों के पास आते हैं। वे पितरगण देवताओं से पूजी जाने वाली इन अष्टकाओं के पास नहीं जाते हैं। जो मनुष्य इन अष्टकाओं में पितरों की पूजा नहीं करते हैं उनका संसार में यह जन्म व्यर्थ ही जाता है। उन्हें जो कुछ पहला प्राप्त रहता है वह भी क्षीण होजाता है। जो मनुष्य इन श्राद्धों के दिनों में श्राद्ध कर्म करते है उनको स्वर्ग प्राप्त होता है और जो मनुष्य ऐसा नहीं करते वे अधम योनि में जन्म लेते हैं। जो मनुष्य पूर्णमासी के दिन श्राद्ध करते हैं उनको धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य, सन्तान पुत्र पौत्रादि, बुद्धि पुष्टि, स्मरण शक्ति प्राप्त होते हैं। प्रतिपदा के दिन श्राद्ध करने से धन सम्पत्ति का लाभ होता है, दौज की तिथि को करने से राज्य प्राप्त होता है, तीज को करने से शत्रुओं का नाश होता है और उनके पापों को नष्ट करता है चतुर्थी को करने से शत्रुओं को कूट चालों का ज्ञान प्राप्त होता

छठ के दिन श्राद्ध कर ने से देवता पितर लोग उन पर प्रसन्न रहते हैं। सप्तमी के दिन श्राद्ध करने से मनुष्य को बड़े-बड़े यज्ञों का फल प्राप्त होता है। अष्टमी के दिन श्राद्ध करने से सभी सिद्धियां मनुष्य को प्राप्त होती हैं नवमी के दिन करने से मनुष्य को धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य मन चाही स्त्री प्राप्त होती हैं। दसवीं के दिन श्राद्ध करने से मनुष्य को ब्रह्म लक्ष्मी प्राप्त होती हैं। एका दशी को श्राद्ध करने से सभी वेदों का ज्ञान प्राप्त होता है, एकादशी का दान सभी दानों में श्रेष्ठ माना जाता है। उसके करने से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। द्वादशी के दिन श्राद करने से अपने देश की भलाई होती है और अटूट अन्न प्राप्त होता है त्रयोदशी के दिन श्राद्ध करने से मनुष्य को धन, सन्तान, बुध्दि, पशु, दीर्घायु, ऐश्वर्य तथा निरोग काया प्राप्त होते हैं। चौदस के दिन श्राध्द करने से उनके सभी पितरगण तृप्त होते हैं। जिसके घर से जवान मनुष्य की मृत्यु हो जाती है अथवा हथियारों से जो मरते हैं उनके घर वालों को चतुर्दशी के दिन श्राद्ध करना चाहिए। अमवास्या के दिन श्राद्ध करने से मनुष्य को सभी सुख प्राप्त होते हैं। जिन मनुष्यों के तीन कन्याओं के बाद पुत्र होता है, अथवा जोडले बच्चे पैदा होते हैं उनको अमावस्या के दिन श्राद्ध करना चाहिए। इस प्रकार श्राध्द करने से मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है। अमावस्या के दिन श्राध्द के निमित्त पहले ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए, तथ फिर चन्द्रमा के निमित्त तर्पण करना चाहिए, इस प्रकार तर्पण करने से बहुत पुण्य मिलता है, चन्द्रमा तृप्त होकर तीनों लोकों को धारण करते हैं। पितरों में भक्ति रखने वाले सत्यव्रती व्यक्ति की सिध्द, धारण, गन्धर्व गण नित्य वन्दना किया करते हैं। इनके साथ साथ हजारों सुन्दरी अप्सरायें अपने ना , गान से, फल फूल तथा वस्त्रों से अनेक प्रकार से उसको सन्तुष्ट करते हैं। जो मनुष्य पितरों में रखते है तथा अमावस्या के दिन भक्ति पूर्वक दान करते हैं, उस मनुष्य को

सभी सुख प्राप्त होते हैं अमावस्या के दिन पितरगण प्रत्यक्षः रूप में श्राद्ध का अन्न ग्रहण करते हैं। मघा नक्षत्र में पितरों का श्राद्ध करना चाहिए, इस नक्षत्र में करने से पितरों को अभीष्ट सिद्धि प्राप्त होती है, इस नक्षत्र के श्राध्द को अक्षय कहते हैं। इसी कारण विद्वान ब्राह्मण लोग मघा नक्षत्र में ही पितरों का श्राध्द करते है। मनुष्य के इस प्रकार श्राध्द करने से पितर गण उसको सभी प्रकार से सुख देते हैं। जो मनुष्य देवता और पितरों के श्रध्दादि कार्य तथा पूजा श्रध्दा पूर्वक करते हैं उनको स्वर्ग प्राप्त होता है।

श्री वायु महापुराण का विशेष तिथियों में श्राध्द कर्म का फल नाम का इक्यासीवाँ अध्याय समाप्त।

(:——:)

बियासीवां अध्याय

(विशेष नक्षत्रों में श्राध्द करने का फल)

बृहस्पति ने कहा--इसके बाद अब मैं आपको यह बतलाऊंगा कि विशेष नक्षत्रों में अलग अलग श्राध्द करने का क्या फल प्राप्त होता है, इनके विषय में यमराज ने शिवविन्द से इस प्रकार वर्णन किया है सो मैं आपको सुनाऊँगा। मनुष्य को कृत्तिका नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिए, और अग्नि की स्थापना करनी चाहिए इस प्रकार श्राद्ध दान करने से मनुष्य के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य को रोहिणी नक्षत्र में श्राध्द करने से शुभ सन्तान की प्राप्ति होती है। मनुष्य को मृगशिरा नक्षत्र में कराना चाहिए, इस प्रकार श्राध्द करने से मनुष्य को तेज यश प्राप्त होता है मनुष्य को आर्द्रा नक्षत्र में श्राद्ध नहीं करना चाहिए, इस नक्षत्र में दुष्ट स्वभाव के ही मनुष्य श्राध्द करते हैं, पुनर्वसु नक्षत्र में मनुष्य को श्राद्ध करने से राज्य और पुत्र प्राप्त होते हैं उसको धनधान्य पुत्र पौत्रादि सभी सुख प्राप्त होते हैं। पुष्य नक्षत्र में मनुष्य को सन्तोष प्राप्त होता है। आश्लेषा नक्षत्र में पितरों का श्राद्ध करने से वीर सुयोग्य पुत्र पैदा होते है।

फाल्गुनी नक्षत्र में मनुष्यों को श्राद्ध करने से सौभाग्य प्राप्त होता है उत्तरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से मनुष्य अपने समाज में प्रतिष्ठित होता है और अच्छे पुत्र को प्राप्त करता है। जो मनुष्य हस्त नक्षत्र में पितरों का श्राद्ध करते हैं वह सभी श्रेष्ठ जनों में पूज्य माने जाते हैं जो चित्रा नक्षत्रमें श्राद्ध दान करते हैं उनको वस्त्र सुन्दर मिलते हैं जो मनुष्य स्वांति नक्षत्र में श्राद्ध करता है उसको यश लाभ प्राप्त होते हैं विशाखा नक्षत्र में पितरों का श्राध्द करने से मनुष्य को राज्य होता है जो मनुष्य ज्येष्ठा नक्षत्र में पितरों का श्राध्द करते हैं उनको सबसे उत्तम स्थान प्राप्त होता है मूल नक्षत्र में जो मनुष्य पितरों को श्राद्ध दान करते हैं वह मनुष्य निरोग होकर दीर्घायु प्राप्त करता है, आषाढ़ा नक्षत्र में श्राध्द करने से महान यश प्राप्त होता है, उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में श्राध्द दान करने से मनुष्य शोक रहित सदैव सुख पाते हैं श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध दान करने से परम गति प्राप्त होती है। धनिष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध दान करने से मनुष्य को राज्य तथा अधिक धन प्राप्त होता है, अभिजित नक्षत्र में श्राध्द करने से मनुष्य को सभी वेदों का उनके अंगों सहित ज्ञान प्राप्त होता है, शतभिष नक्षत्र में दान करने से सभी सिध्दियां प्राप्त होती हैं। पूर्व भाद्रपद नक्षत्र में पितरों के हेतु के लिए श्राध्द दान करने से उत्तम फल प्राप्त होता है, उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र में पितरों का श्राध्द करने से मनुष्य को हजारों दूध देने वाली गायें प्राप्त होती हैं। रेवती नक्षत्र में श्राध्द करने से बहुतसा द्रव्य प्राप्त होता है। अश्विनी नक्षत्र में श्राध्द करने से बहुत से घोड़े प्राप्त होते हैं और भरणी नक्षत्र में श्राध्द करने से उत्तम आयु प्राप्त होती है इस प्रकार शशबिन्दु ने श्राध्द का विधि पूर्वक पालन करके सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त किया था। सभी मनुष्यों को श्रध्दा सहित इस प्रकार विधि पूर्वक श्राध्द का पालन करना चाहिए, ऐसा करने से मनुष्य को सभ सुख प्राप्त होते हैं।

विशेष नक्षत्रों में श्राध्द करने का फल नाम का व्यासीवाँ अध्याय समाप्त

तिरासीवाँ अध्याय

[श्राध्द में भिन्न २ समय में तृप्ति के साधन, भूत विशेष द्रव्य, गया में श्राध्द के फल तथा ब्राह्मण की परीक्षा]

वायु बोले—हे श्रेष्ठ देव ! पितरगण किस प्रिय वस्तु से थोड़े दिन तक तृप्त होते हैं और कौनसी वस्तु से बहुत दिन तक तृप्त रहते हैं और किस वस्तु से अनन्त समय तक तृप्त रहते हैं।

वृहस्पति बोले—हे विप्र ! अब मैं आपके पूछे हुये प्रश्नों का उत्तर दे रहा हूं, आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये। श्राद्ध के महात्म्य को जानने वाले श्राद्ध में कौन कौन से हविष द्रव्य पदार्थ फल देने वाले होते हैं। जो मनुष्य श्राद्ध में तिल, जौ, उड़द, जल, मूल और फलों को दान करते हैं, उस के दान से उनके पितर गण एक महीने तक तृप्त रहते हैं । श्राद्ध में मछली के मांस को दान करने से पितर गण दो महीने तक तृप्त रहते हैं, हिरण के मांस को दान करने से पितर तीन महीने तक तृप्त रहते हैं। खरगोश के मांस को दान करने से चार महीने तक सन्तुष्ट रहते हैं। श्राद्ध में पक्षी के मांस दान करने से पितर गण पांच महीने तक तृप्त रहते हैं, शूकर के मांस को दान करने से छः महीने तक पितरगण तृप्त होते हैं, बकरे के मांस को दान करने से सात महीने तक श्राध्द कर्त्ता के पितर गण तृप्त रहते हैं, पृषत के मांस का दान करने से पितर गण आठ महीने तक तृप्त रहते हैं। रुरु के मांस को दान करने से नौ महीने तक पितर तृप्त रहते हैं । गवय के मांस को दान करने से दस महीने तक पितर गण तृप्त रहते हैं और कछुये के मांस को करने से पितरों को ग्यारह महीने तक सन्तुष्टि होती है श्राध्द में गोरस का दान करने से श्राध्द कर्त्ता के पितर गण एक वर्ष तक तृप्त रहते हैं। श्राद्ध में मधु, घी, दूध से बने हुये पदार्थ तथा दूसरे गौरस से भी पितरगण एक वर्ष तक तृप्त रहते हैं। श्राध्द में गैंड़े के मांस को दान करने से पितर गण अनन्त समय तक तृप्त रहते हैं। काले बकरे के मांस को तथा गोह के मांस का दान करने से पितर-

तृप्त होते हैं, अब मैं आपसे पितरों की गाई हुई गाथाओं का वर्णन करूंगा आप सावधान होकर सुनिए। पितरगण कहते हैं कि हमारे कुवंश में कोई सुपात्र पुत्र पैदा हो, जो त्रियोदशी के दिन हाथी की छाया में मधु, घी, दूध के बने पदार्थ और अन्नों का दान करे, और वर्षा ऋतु के मघा नक्षत्र में बकरे के मांस की बलि दे। पितरगण बहुत से पुत्रों की अभिलाषा करके कहते हैं कि उनमें से एक पुत्र यदि गया कर आयेगा, और एक पुत्र कन्यादान कर देगा तथ एक पुत्र हम लोगों के उद्देश्य से नीले बैलों को दान कर देगा तो हम लोगों का उद्धार होजायगा, हमारी सभी इच्छायें पूरी हो जायँगीं।

वायु बोले—हे देव! आप हमको गया तीर्थ के महात्म्य के विषय में बतलाइये पितरों के निमित्त वहां पर जो कार्य करते हैं उसका क्या पुण्य होता है आप उसके विषय में हमको विस्तार सहित बतलाइये।

वृहस्पति बोले—जो मनुष्य एक साल में जाकर गयामें श्राद्ध दान करता है उससे उसके सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं और वह स्वर्ग को प्राप्त करता है। यदि मनुष्य गया में तीर्थ यात्रा करके आता है और श्रद्धा सहित श्राद्ध करता है उसके भी सभी मनोरथ सिद्ध होते हैं और वह मोक्ष प्राप्त करता है। मनुष्य को गया जाने से पूर्व अपने गाँव की गेरुआ वस्त्र पहन कर परिक्रमा करनी चाहिए फिर दूसरे गांव में जाकर श्राद्ध से बचा हुआ भोजन करना चाहिए। परिक्रमा के समय किसी का दान नहीं लेना चाहिए, श्राद्ध करने वाले को गया यात्रा करते समय केश दाढ़ी मूँछ आदि नहीं मुड़वाने चाहिए। श्राद्ध में लोभ नहीं करना चाहिए, क्योंकि लोभ करने से यात्रा का फल नहीं मिलता है। गया में पहुँच कर ब्रह्म कुण्ड, प्रभास, ब्रह्मवेदी और प्रेत पर्वत पर विधि पूर्वक श्राद्ध करना चाहिए। उत्तर दिशा में मैनाक पर्वत की श्रेणियों पर जो मानस तीर्थ है उस पर श्राद्ध करना चाहिए, उत्तर में कनखल और दक्षिण में मानस तीर्थ में स्नान करके श्राद्ध करने से पितरों का शीघ्र ही उद्धार होता है, स्वर्ग, पाताल और मृत्यु लोक में इन तीर्थों के समान दूसरा तीर्थ नहीं है। श्रेष्ठ गति पाने की

इच्छा रखने वाले प्राणियों को इन तीर्थों में जाकर अपनी सद्गति के लिये तथा अपने पितरों के उद्धार के लिये अवश्य जाकर श्राद्ध करना चाहिये। इन तीर्थों का प्रभाव अकथनीय है स्वर्णदान से अभय प्राप्त होता है। वस्त्र दान से मोक्ष मिलता है। अन्नदान से शारीरिक पीड़ा का विनाश होता है। अश्वदान से सम्पूर्ण मनोरथों की सिद्धि होती है।

सबसे पहले गदाधर तीर्थ का दर्शन करके धर्मारण्य की यात्रा करे, फिर मंतग में गदाधर के दर्शन करके नारायण का ध्यान करे। वहां पर श्राद्ध करने से करोड़ों वंशों का उद्धार हो जाता है। श्राद्ध के समय जिन ब्राह्मणों को न्योता दिया जाय उन्हें मनुष्य नहीं समझे, उनको सन्तुष्ट करने पर पितरगण और देवतागण सभी सन्तुष्ट होते हैं? हे राजेन्द्र? उन ब्राह्मणों के कुल, शील, विद्या तपस्या आदि का विचार करके पूजा करनी चाहिए, उनके पूजित होने पर मुक्ति प्राप्त होती है जो ऐसा करता है उसके सभी मनोरथ सफल होते हैं और वह मोक्ष प्राप्त करता है। हे राजा। गयाकूप में अपने जाति के वर्ण के मित्र, परिवार, और सुहृदय जो भी हों सबके लिए नियम पूर्वक पिण्डदान करना चाहिये जिनसे वे स्वर्ग प्राप्त करते हैं जिनके नाम और गोत्र नहीं मालूम हैं उनका मन्त्र निम्न प्रकार है:—

"हमारे पिता और माता के वंश में उत्पन्न हमारे गुरु, श्वसुर, भाई, विरादरी और अन्य जो भी बन्धु बान्धव हों, जिनकी मेरे कुटुम्ब में पिण्ड प्राप्त करने की आशा नष्ट हो गई हों, जो स्त्री पुत्र आदि से हीन हों, हमारे कुल में ज्ञात और अज्ञात रूप से उत्पन्न हुए हों बिना रूप वाले हों, या रोगी हों, जिनकी क्रियाऐं नष्ट होगई हों जो पूर्व में दुराचारी रहे हों या जिनका गर्भ में ही नाश होगया हो उन सबों के उद्देश्य से दिया गया यह पिण्ड उनको अक्षय तृप्ति प्रदान करे।"

हे परम बुद्धिमान राजा गया क्षेत्र में पिण्डदान तिल के बगैर नहीं करना चाहिए, अपने गोत्र के अन्य पितरों के लिये भी यही करना चाहिये

ब्रह्म हत्या करने वाले कृतघ्न एवं महा पापी लोग भी गया में पिण्ड दान करने पर स्वर्ग को प्राप्त होते हैं। ब्रह्महत्यारे, मदिरा पान करने वाले, बालक, बृद्ध एवं गुरु से द्रोह करने वाले, यदि गया की यात्रा करते हैं तो उनके पाप नष्ट हो जाते हैं। जिसको नाम लेकर पिण्डदान दिया जाता है वह शाश्वत ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। त्रिलोकी में गया के समान कोई तीर्थ नहीं है। गया के प्रभाव से मनुष्य जो नरक को जाने वाले हैं वह स्वर्ग को चले जाते हैं पितर लोग यह शुभकामना किया करते हैं कि हमारे कुल में ऐसा कोई सन्मार्गी पुरुष या पुत्र उत्पन्न हो जो गया की यात्रा करे और हमें पिण्ड का दान करे। मकर संक्रान्ति पर चन्द्र और सूर्य ग्रहण के अवसर पर पर, पिटपक्ष में और चैत्रमास में पिण्डुदान का महान फल है। अधिक मास में, जन्मदिन में शुड और गुरु के अस्त होने पर तथा बृहस्पति के सिंह राशि पर आने पर श्राद्ध कदापि न छोड़े। बुद्धिमान लोग सदा ही गया में पिण्डदान करते हैं। हे पुत्र ? गया में पितरों की निधन तिथि के दिन श्राद्ध करने का अक्षय फल होता है। वहाँ उस समय जप, तप, हवन का भी अक्षय फल होता है।

गौरी पन्ति में उत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ी को पवित्र करता है। मामा के परिवार में छः को पवित्र करता है। अब वृष का फल सुनाता हूं। वृष का उत्सर्ग करने वाला दस पहले, दस बाद के पितरों को पवित्र करता है। जल से तैर कर पृथ्वी पर आने वाले वृष की पूँछ से गिरने वाले जलविन्दुओं से वृष के उत्सर्ग कर्म में जो वस्तुयें दान दी जाती हैं उससे पितरों को अक्षय फल प्राप्त है इस तरह वृष के अन्त तक लांगुल आदि से गिरने वाले जल से जो वस्तुऐं स्पर्श करते हैं उन सबसे पितरों को अक्षयफल प्राप्त होताहै। वह वृष अपने सींगों और खुरों से जो पृथ्वी खोदता है, वह पृथ्वी अक्षय मधु की नहर के रूप में पितरों को प्राप्त होती है। एक हजार नल्व में विस्तृत तड़ाग के खजाने से भी अधिक तृप्ति वृषोत्सर्ग से पितरों को

होती है। श्राद्ध में तिल गुड़ को मिलाकर, तिल और मधु को मिलाकर तथा जो मधु से श्राद्ध दान करते हैं इन सबसे अक्षय फल प्राप्त होता है।

बृहस्पति बोले—मनुष्य को सदा श्राद्ध दान में ब्राह्मणों की परीक्षा नहीं लेनी चाहिये, ब्राह्मणों की परीक्षा दैवकर्म और पितर कर्म में ली जाती है। सभी वेदाभ्यासी मनुष्य, वेदों के पारगामी, पंक्ति पावन, भाष्य के जानने वाले, व्याकरण को जानने वाले, पुराण और धर्म शास्त्र के ज्ञाताओं, नचिकेता की तीनों विद्याओं को जानने वाले, पंचाग्नि के उपासक, वेदों के छः अंगों को जानने वाले, त्रिसुपर्ण, ब्रह्मज्ञानियों का पुत्र, छन्दोग ज्येष्ठसाम का जानने वाले सभी पुण्यतीर्थों में मुख्य मुख्य में अवभृथ स्नान करने वाले शीघ्र ही किसी व्रत से निवृत होने वाले, अपने अपने कर्मों में निरत रहने वाले क्रोध रहित शान्तिमय ब्राह्मण को श्राद्ध में निमन्त्रण देना चाहिए। जो हमेशा धर्म के दस लक्षणों का पालन करते हैं, और अपने कर्म में निरत रहते हैं उनको श्राद्ध निमन्त्रण देना चाहिए, ऐसे ब्राह्मण पंक्तिपावन होते हैं इनको दान देने से अक्षय फल प्राप्त होता है योग मार्ग में अनुरक्त श्राद्ध रखने वाले वर्णाश्रमधर्म की मर्यादा रखने वाले सभी जातियों में श्रेष्ठ ब्राह्मण ही हव्य और कव्य सभी कार्यों में उत्तम कहे गये हैं जिन्होंने ऐसे ब्राह्मणों की पूजा करली, उन्होने तीनों देवों की पूजा करली। ऐसे ब्राह्मणों की पूजा करने वाला मनुष्य पितरों के साथ समस्त लोकों की पूजा का फल प्राप्त करते हैं।

योग धर्म सभी धर्मों में श्रेष्ठ कहा गया है अब इसके बाद अपंक्ति पावन ब्राह्मणों के विषय में सुनिये। धूर्त, शराबी, यक्ष्मा रोग से ग्रसित, कुरुप, पशु को पालने वाले, गांव में दूत या सेवक का काम करने वाले, व्यवसायी, किसी के स्थान को जला देने वाला, किसी को विष देने वाला छिनाले से उत्पन्न होने वालों का अन्न खाने वाले, सोम रस का विक्रय करने वाले, समुद्र की यात्रा करने वाला, दुष्ट,

चमड़े वाले, तेल का व्यापार करने वाले, कूटनीतिज्ञ, पिता के साथ विवाद, जिसके घर में दूसरा घरस्वामी हो, शिल्पजीवी हो, लंपट, चोर धन के लोभ से बिना पर्व के ही अमावस्या आदि के दिन होने वाले अनुष्ठानों को करा देने वाले, मित्रों के साथ द्रोह करने वाले, झुण्ड बनाकर चलने वाले, नास्तिक, वेद विहीन, उन्मत्त, हिजड़ा दुष्ट स्वभाव वाले गर्भी गर्भ हत्या करने वाले, गुरू की शय्या पर शयन करने वाले वैद्यक से जीविका चलाने वाले, ब्रह्मविद्या और तपस्या को बेचने वाले, परस्त्री गमन करने वाले, इन सब को दान देने से दान का समस्त फल नष्ट होजाता है इसी प्रकार नास्तिक, निन्दक को भी दान नहीं देना चाहिये। व्यापारी ब्राह्मण को दान देने से न तो इस लोक में फल मिलता है और न पर लोक में ही फल प्राप्त होता है। दूसरे के गिरवी रक्खे हुये माल को पचाने वाले, वेद की निन्दा करने वाले को भी दान देने से भी दान का फल नष्ट हो जाता है। व्यापारी कारीगर, धर्महीन एव ऐसे लोग जो दूसरों की अच्छी वस्तु खरीदते समय निन्दा करते हों तथा अपनी खराब वस्तु बेचते समय तारीफ करें इनको भी दान देने से यही फल होता है। इसी प्रकार झूँठ बोलने वाला वणिक व्यवसायी ब्राह्मण भी श्राद्ध के योग्य नहीं होता है। विधवा स्त्री के द्वारा उत्पन्न पुत्र को भी दिया गया दान राख में दी गई आहुति के समान निष्फल है। काना व्यक्ति साठ, नपुसंक नौ, श्वेत कुष्ट असित जितने भी कर्मों के फल को देखता है, तथा पाप से हुआ रोगी एक हजार दाता के सत्कर्मों के फलों को नष्ट कर देता है। मूर्ख व्यक्ति को दान देने से शुभफलों की प्राप्ति नहीं हो पाती। जो मनुष्य सिर को बांध कर भोजन करता है या दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके भोजन करता है या जो जूता पहन कर भोजन करता है जो तिरस्कार पूर्वक दान करता है उसके समस्त कर्मों के फल को भगवान ब्रह्मा असुरों के लिये दे देते हैं। श्राद्ध समाप्त होने पर उसको श्वान और यातुधान कदापि न देखें इसके लिए चारों ओर से परदा लगा देना चाहिये। और उसके चारों ओर तिल बिखेर देने चाहिए राक्षसों को निवारित

करने के लिए तिल तथा कुत्तों को निवारित करने के लिए परदा आदि की ओट करना कहा गया है। शूकर के देख लेने मात्र से ही श्राद्ध का फल नष्ट हो जाता है। मुरगा अपने पंख फड़ फड़ाने से ही उसे नष्ट कर देता है। रजस्वला स्त्री के स्पर्श से और क्रोध पूर्वक दान देने से श्राद्ध का फल समाप्त हो जाता है। जो व्यक्ति अपने द्वारा किये जाने वाले श्राद्ध या हवन आदि कार्यों को किसी दूसरे के द्वारा पूरा कराता है उसके उस कार्य से पितरगण तथा देवगण तृप्त नहीं होते हैं, तथा उसको स्वर्ग प्राप्त नहीं होता है मनोहर नदियों के तथा सरोवरों और छोटी छोटी नदियों के किनारे श्राद्ध करने से पितरगण तृप्त नहीं होते हैं। श्राद्ध करने के समय रोना नहीं चाहिए तथा किसी दूसरे से बातचीत भी अधिक नहीं करनी चाहिये। मनुष्य को भोजन करते हुये श्राद्ध नहीं करना चाहिये। एक दूसरे के प्रति द्वेषभाव तथा कपट भी प्रकट नहीं करना चाहिये मनुष्य को अपलव्य होकर हाथ में कुशा लेकर अपने जीवन पर्यन्त तक पितरों का श्राद्ध कर्म विधिपूर्वक करना चाहिये। इस प्रकार श्राद्ध कार्य करने वाले मनुष्यों से उनके पितरगण सन्तुष्ट होते हैं। श्राद्ध कर्म में सबसे पहले ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर अग्नि में आहुति करनी चाहिये, तथा पितरों के हेतु दिये जाने वाली वस्तुओं को पृथ्वी सूप तथा, कुश के आसन पर रखनी चाहिये। विद्वान पुरुष को मास के शुक्ल पक्ष में दिन के प्रथमार्ध में श्राद्ध करना चाहिये, और कृष्णपक्ष के उत्तरार्द्ध में करने चाहिये। देश और काल के देखने वाले महान तेजस्वी, महान योगी और महात्मा पितरों की हमेशा पूजा करनी चाहिये। जल से प्रथम आचमन कराकर तथा उनके चरण धोकर बिठलाना चाहिये। उन्हें आदर सत्कार के साथ स्वच्छ आसनों पर। अच्छे २ भोजन पकवान जो पितरों की तृप्ति हेतु बनाये हों, श्रद्धा और आदर के साथ भोजन कराना चाहिये। भोजन में जब तक वह पूर्ण तृप्त न हो जांय परोसते जाना चाहिये।

जो मनुष्य पितरों में श्रद्धा रखते हैं उनको सभी सिद्धियां शीघ्र ही प्राप्त होती हैं। पितरों में श्रद्धा रखने वाले मनुष्य अपने सभी शुभ-कर्मों के बन्धनों से छूटकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

कश्यप ऋषि ने सारे संसार को मोहित करके यज्ञ के लिए जिस परम गोपनीय योग का उद्धार करके गुफा में सुरक्षित रक्खा था, हे योग परायण। उस अमरपद को प्राप्त करने वाला परम गोपनीय चिरन्तन और परम योग धर्म को सनत्कुमार कहा है उस परम गोपनीय फल को पितरों में भक्ति रखने वाला मनुष्य प्राप्त करता है। जो मनुष्य पितरों में भक्ति रखते हैं उन्हें योग प्राप्त होता है। मैंने आपसे श्राद्ध में किन किन वस्तुओं को दान करना चाहिये, तथा किस वस्तु के दान करने से अधिक फल प्राप्त होता है, जिन जिन तीर्थों में श्राद्ध करने का जो फल होता है इन सबका वर्णन किया है।

बृहस्पति बोले—जो मनुष्य श्राद्ध कर्म के विधान को सुनकर पितरों को दोष दृष्टि से देखकर उनमें श्रद्धा नहीं रखते हैं वे मनुष्य नास्तिक होकर घोर नरक को प्राप्त करते हैं। जो मनुष्य मन को रखकर श्राद्ध कर्म करते हैं उनके कठिन रोगों का नाश होता है। जो मनुष्य अपने मनमाने ढग से जीवन निर्वाह करने वाले हैं वे मनुष्य कुम्भीपाक नरक में जाते हैं वे जिव्हा के छेदन और चौर्य कर्म को प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य योग से द्वेष भाव रखते हैं वे मनुष्य समुद्र में ढेला बन कर इस पृथ्वी पर जब तक ये स्थित हैं निवास करते हैं। इसलिये श्राद्ध के जो जो नियम बतलाये हैं उन्हीं के अनुसार श्राद्ध कर्म को सम्पन्न करना चाहिये। विशेष रूप से योगियों की बुराई नहीं करनी चाहिये योगियों की बुराई करने पर मनुष्य को शीघ्र ही कृमि रूप में जन्म धारण करना पड़ता है। जो मनुष्य ध्यान परायण योगियों के अन्यतम लक्ष्य मोक्ष के मुख्य साधन की जो निन्दा करते हैं, वह घोर नरक को प्राप्त होते हैं तथा इसकी बुराई सुनने वाले भी घोर नरक को प्राप्त होते हैं। योग परायण

योगेश्वरों की निन्दा करने से मनुष्य चारों तरफ के घने अन्धकार से घिरकर परम घोर नरक में जाते हैं। जो मनुष्य आत्मा को वश में रख कर योगश्वरों की बुराई सुनते हैं वह चिरकाल तक घोर कुम्भी पाक नरक में निवास करते हैं। मनुष्य को योगियों के प्रति मन वचन और कर्म से द्वेष भावना नहीं रखनी चाहिये, इस शुभ कर्म का फल मनुष्य को उसके दूसरे जन्म में प्राप्त होता है और इस जन्म में भी वह सुख प्राप्त करता है। योग मार्ग ज्ञाता आत्मा के पाट को प्राप्त नही करते हैं, वे मनुष्य अपने कर्म के अनुसार तीनों लोकों में भ्रमण करते रहते हैं। ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद तथा वेदों के समस्त अङ्गों के ज्ञाता सभी प्रकार के विकारों को छोड़कर सुख प्राप्त करते हैं। सभी प्रकार के विकारों से पार पाने वाले प्रकृति के पाटगामी, सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों के पाटगामी वास्तव में तीनों गुणों के पारगामी होते हैं। जो योगी योग मार्ग और चौवीस तत्वों को जानने वाले हैं वे ही असली रूप में इस जन्म मरण रूप संसृति सम्बन्ध के पारगामी हैं। जिस प्रकार योगी निखिल योग तत्व को अपने योग वल से विसर्जित करता है उसी प्रकार सदो अपना विकास भी संघटित करता है, इस प्रकार योग के तत्वों को भली-प्रकार जानने वाला योगी, सबसे परे जिसकी गति है, ऐसे परम पुरुष के गोचर होता है अतः योगी मनुष्य योग को ही सहारा लेकर अपने शरीर का त्याग करते हैं। और आत्म आरुप्य प्राप्त करते हैं। योग के तत्व को जानने वाला पुरुष वेदों का सम्यक अध्ययन करके वेदों को जानने वाले उस परम पुरुष को प्राप्त करता है, उसे ही वास्तव में वेदों का तत्ववेत्ता और वेदों का परगामी कहा जाता है। जो मनुष्य वेदों के चरम प्रतिपाद्य उस परम पुरुष को अच्छी तरह से जानता है, वही वास्तव में वेदों के तत्वों को जानने वाला है, दूसरे सब वेद चिन्तक हैं। जो मनुष्य पितरों को श्रद्धा भाव से देखते हैं उनको सभी प्रकार सुख प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य इस श्राद्ध कल्प का नियम पूर्वक श्रद्धा सहित नित्य पाठ करता अथवा सुनता है

वह पहले कहे हुये सभी तीर्थों में दिये गये दानों का फल प्राप्त करते हैं। वह श्रेष्ठात्मा मनुष्य पंक्ति पावन तथा ब्राह्मणों के समाज में भोजन करता है। जो मनुष्य इस श्राद्ध कर्म के महात्म्य को क्रोध-रहित होकर नित्य श्रद्धा भाव से सुनता है वह स्वर्ग को प्राप्त करता है इस लोक में इसके करने से परम सुखप्राप्त होता है। इसका अनुष्ठान प्रयत्न पूर्वक करना चाहिये। जो व्यक्ति पर्व सन्धियों में आलस्य को त्याग कर इस श्राद्ध विधि का पाठ करता है वह परम तेजस्वी पुत्रवान मनुष्य होता है। उसको देवताओं के समान पवित्र लोक प्राप्त होता है। भगवान प्रजापति ब्रह्माजी की पुनीत श्राद्ध विधि को हम प्रणाम करते हैं। महान योगेश्वरों को हम सदा प्रणाम करते हैं। हे तात! ये पितरगण देवताओं के भी देवता हैं, ये नाशहीन पितरगण इन सात स्थानों में नित्य निवास करते हैं। ये सब परम महात्मा प्रजापति के पुत्र हैं, इनका सबसे प्रथम गण योगियों का है, ये नित्य योगवर्धन के नाम से प्रसिद्ध हैं। दूसरा गण देवताओं का, तीसरा गण देवताओं के शत्रुओं का और अन्य गण वणियों के हैं। इन सब लोकों में स्थित रह कर देवगण इन सबकी पूजा करते हैं। चारों आश्रम में रहने वाले क्रम से इनकी पूजा करते हैं। चारों वर्णों के लोग भी इनकी पूजा क्रम से करते हैं। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक इन पितरों की पूजा करते हैं, उनकी पितरगण स्वयं पूजा करते हैं। पुष्टि और पूजा करने वाले मनुष्य को ये पितरगण सभी प्रकार से पुष्टि, स्वर्ग और प्रजाएँ प्रदान करते हैं। पुत्र की इच्छा करने वाले को देवपूजा से पितरों की पूजा का फल अधिक श्रेष्ठ कहा गया है। देवों से पहले पितरों को सन्तुष्ट करना चाहिये। सभी देवता और पितरों के लिये चांदी का बर्तन बतलाया है यदि चांदी का बर्तन न हो सके तो चांदी से मढ़ा हुआ होना चाहिये, श्राद्ध कर्म में ऐसे बर्तनों का अधिक महान बतलाया है। जिनके परिवार के मनुष्य नाम और गोत्र को उच्चारण करके विधि पूर्वक अपसव्य होकर पृथ्वी पर कुशा बिछाकर तीन पिण्ड दान करते हैं, उनके वे तीनों पिण्ड सभी

स्थानों में वर्तमान रहने वाले पितरों को तृप्त करते हैं। मनुष्य जो भोजन करता है, उसी भोजन से पितरों का श्राद्ध करना चाहिये। जिस प्रकार सैकड़ों गायों के बीच में भी बछड़ा अपनी के पास पहुँच जाता है, उसी प्रकार श्राद्ध कर्म में दियेगये पदार्थों को मन्त्र वहां पर पहुंचा देता है। जिस स्थान पर जीवस्थित रहता है। पितरों के नाम गोत्र और मन्त्र श्राद्ध में दिये गये अन्न को उसके पास ले जाते हैं, श्राद्ध के अन्न से उनकी तृप्ति होती है। प्रजापति ब्रह्माजी ने श्राद्ध की विधि इसी प्रकार स्थित की है। अक्षयफल के प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले मनुष्यों के लिये पितरों की यह आदि सृष्टि हुई है। ये पितरगण ही देवस्वरूप हैं और देवगण ही पितर स्वरूप हैं। ये ऋषिगण उन पितरों के यजमान हैं, सम्पूर्ण लोक उनकी पुत्री नाती और पुत्र के रूप में है। श्राद्ध कर्म में पवित्रता, दान, तीर्थ, फल, अक्षय फल प्राप्त करना, द्विजगण इत्यादि सभी आवश्यक विधि का वर्णन मैंने आपसे किया है।

वृहस्पति बोले—प्राचीनकाल में ऋषियों के पूछने पर ऋषि अंगिरा जी ने पितरों के विषय में बात चीत की थी। पूर्व समय में हजारों वर्ष में पूरा होने वाला एक महायज्ञ सम्पन्न हुआ था, जिसमें प्रजापति ब्रह्माजी को गृह पति बनाया गया और प्रजापति ब्रह्माजी ने पांच सौ वर्षों तक देवताओं पर प्रभुत्व स्थापित किया। ब्रह्मवेत्ता गण इस विषय में एक श्लोक का अर्थ इस प्रकार लिखते हैं—उस महान यज्ञ में परमात्मा भगवान ब्रह्मा के दीक्षित होने पर उन्हीं से सभी लोकों के हित के लिये, अक्षय लाभ के प्रार्थी पितरों का श्रेष्ठ जन्म वहीं पर सम्पन्न हुआ।

सूतजी ने कहा—वृहस्पति ने अपने विद्वान पुत्र के पूछने पर इस प्रकार पितरों के वंश का हाल सुनाया था, वही हाल मैंने आप लोगों को सुनाया, इसके बाद अब मैं आपको वरुणदेव के वंश का वर्णन सुनाऊंगा।

[श्री वायु महापुराण का श्राद्ध कल्प नाम का तिरासीवां अध्याय समाप्त]

चौरासीवाँ अध्याय

[श्राद्ध विधि के विषय में वरुण वंश का वर्णन]

ऋषिगण बोले—सूत के इस प्रकार कहने पर महर्षि ऋषिगणों ने उनसे इस प्रकार कहा कि तेजस्वी राजाओं के वंशों का वर्णन, उनकी स्थिति और उनके प्रभाव को आप हमें सुनाइये। लोम हर्षण सूतजी! समस्त श्रोताओं के उत्तर देने वाले परम प्रवीण कुशल वक्ता सूत जी पुनः इस प्रकार बोले—

सूतजी बोले—हे ऋषिगण! जिस प्रकार इस विषय में जो कुछ ऋषि ने मुझे सुनाया है, उसी को मैं भी सुना रहा हूँ आप सब ध्यान पूर्वक सुनिये। वरुणदेव की पत्नि सामुद्री शुना देवी के नाम से प्रसिद्ध थी, उनके कलि और वैद्य नाम के दो पुत्र हुये। एक सुर सुन्दरी नाम की कन्या भी पैदा हुई। कलि के दो महाबलवान जय और विजय नाम के पुत्र पैदा हुये। वैद्य के घृणि और मुनि नाम के दो महान बलवान पुत्र पैदा हुये। प्रजाओं के भक्षण करने को उद्यत वे दोनों एक दूसरे को खाने के लिये तैयार हो गये और एक दूसरे को भक्षण करके नाश को प्राप्त हुये। शुना के गर्भ से कलि पैदा हुये, उसके पुत्र का नाम मद कहा जाता है। त्वष्टा की कन्या हिंसा कलि की स्त्री थी, जो सबसे बड़ी स्त्री थी, उसका नाम निकृति था। उसने कलि के संयोग से चार मनुष्य भक्षी पुत्रों को पैदा किया, उन पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं–नाक, विघ्न, सद्रम और विधम नाम थे। विघ्न नाम के पुत्र के शिर नहीं था, नाक नाम का पुत्र अशरीरी था, सद्रम नाम के पुत्र के एक हाथ था, विधम नाम के पुत्र के केवल एक पैर था। सद्रम की तमोगुणी पूतना नाम की स्त्री थी, विधम के रेवती नाम की स्त्री थी, इन दोनों के हजार पुत्र पैदा हुये। नाक की स्त्री का नाम शकुनि थी विघ्न की स्त्री का नाम अयोमुखी था; इनके भीषण बड़े बड़े आकृति के शिर वाले राक्षस पैदा हुये, ये राक्षस दोनों सन्ध्याओं में घूमा करते हैं। रेवती और पूतना के पुत्र नैऋत नाम से प्रसिद्ध हुये। ये सभी राक्षस ग्रह रूप में लोगों

को तथा बालकों को दुख पहुँचाते थे। ब्रह्मा जी ने इन सबों के स्वामी स्कन्द स्वामिकार्तिकेय को बनाया। वृहस्पति जी की परम सुन्दरी योगसिद्धा नाम की बहिन थी, वह आठवें बसु प्रभास की स्त्री थी, इनके शिल्पीयों के स्वामी विश्वकर्मा नाम के पुत्र पैदा हुये। उदर बुद्धि वाले बहुत सुन्दर शरीर वाले विश्वकर्मा धर्म के पौत्र थे। देवताओं के हजारों शिल्प कर्मों के करने वाले वास्तु विज्ञान के वेत्ता थे। उन्होने सभी देवताओं के विमानों को बनाया था। उन्हीं विश्वकर्मा द्वारा प्रचालित शिल्प कर्म के आश्रय से मनुष्य आज भी अपनी जीविका चलाते हैं। विश्वकर्मा के बिरोचना नाम की स्त्री थी, जो प्रह्लादी के नाम से भी प्रसिद्ध हुई, वे विरोचन की बहिन थी और त्रिशिरा की माता थीं। शिल्य कर्म में चतुर विश्वकर्मा के मय नाम का पुत्र तथा सुरेणु नाम की कन्या थी। मय नाम का पुत्र भी शिल्यकारीगरी में बहुत चतुर था। इसी कारण मय भी विश्वकर्मा नाम से प्रसिद्ध हुआ। विश्वकर्मा की पुत्री सुरेणु, संज्ञा नाम से सूर्य की पत्नि हुई, उसने अपने तपोबल से सूर्य के सबसे बड़े पुत्र मनु को पैदा किया। इसके बाद उसने दो जुड़वां यम और यमुना नाम के पुत्र पुत्री को जन्म दिया। फिर संज्ञा नामकी स्त्री ने कुरु देश में जाकर घोड़ी का रूप धारण कर लिया, और अश्व रूप धारण करने वाले सूर्य के संयोग से आकाश में अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से वासत्य और दस्त्र नाम के दो पुत्रों को पैदा किया, वे दोनों मार्तण्ड नाम से पुकारे जाते हैं।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! विद्वान लोग सूर्य को मार्तण्ड क्यों कहते हैं, किस कारण से संज्ञा ने घोड़ी का रूप धारण किया, और किस तरह अपने नाक के छिद्र से पुत्रों को उत्पन्न किया, आप हम लोगों को यह बात बिस्तार पूर्वक बतलाइये।

सूतजी बोले—प्राचीनकाल में सूर्यदेव एक अण्डे के रूप में पैदा हुये थे, बहुत दिनों तक जब वह अण्डा नहीं फूटा तब उसे विश्वकर्मा ने फोड़ दिया। उस अण्डे को फोड़ते देखकर गर्भ हत्या के

भय से डर कर कश्यप जी बहुत दुखी हुए, अन्डे को दो भागों में फूटा देखकर विश्वकर्मा से बोले 'यह साधारण अन्डा नहीं है, फिर उस अन्डस्थ जीव से बोले। हे निष्पाप ! इस मरे हुए अन्डे से तुम पुनः उत्पन्न हो। निश्चय ही यह अन्डस्थ प्राणी मरा नहीं है। स्नेह पूर्वक पिता ने इतनी बातें कहीं, पिता ने अन्डे को दो भागों में बांटकर, कहा कि मार्तन्ड हो जाओ, उसी के आधार पर पुराणों में सूर्य को मार्तन्ड कहते हैं। इसके बाद अब मैं आपको मृत अन्डे से उत्पन्न सतानों का वर्णन करूँगा। बहुत दिन पीछे सूर्य के संज्ञा नाम पत्नि से तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। संज्ञा में दोनों अश्विनीकुमार और उनसे छोटे वावर्णि नाम के मनु पुत्र रूप में उत्पन्न हुए इसके बाद शनैश्वर जी पैदा हुए। ये सात मार्तन्ड कहे जाते हैं। महान यशस्वी विवस्वान दाक्षायणी में महर्षि कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए थे। उनकी पत्नि विश्वकर्मा की पुत्री महादेवी सुरेणु थी, जो संज्ञा नाम से प्रसिद्ध थीं। भगवान मार्तन्ड की पत्नि, परम रूपवती और यौवनवती सुरेणुदेवी की सन्तुष्टि पतिरूप में उनसे नहीं होती थी। वे देदीप्यमान सूर्य के तेज को सहन नहं कर पाती थीं, अतः वे बहुत सुन्दर नहीं लगते थे। इसलिएकश्यप ने ठीक कहा था कि 'अन्डे में स्थित ये मरे नही हैं।' अतः उससे उत्पन्न होने के कारण वे मार्तण्ड कहे जाते हैं। कश्यप नन्दन मार्तण्ड ने तीनों लोकों को खूब तपाया। उनके तीन संतानें हुईं। उनमें दो महातेजस्वी पुत्र श्राद्ध देव प्रजापति मनु और छोटे यमराज थे एक कन्या कालिन्दी नाम वाली थी। ये उनकी सज्ञा नामकपुत्रीमें उत्पन्न हुए थे यम यमी दोनों जुड़वां थे उनका तेज इतना अधिक था कि माता सज्ञा अपने में सहन न कर सकी तब उन्होंने अपनी जैसी सुन्दर मिट्टी की प्रतिमा बनाई वह हाथ जोड़ संज्ञा के सामने आकर बोली–बतलाइये मैं क्या करूँ ?' संज्ञा ने उससे कहा–हे कल्याणी ! मैं अपने पिता के यहां जा रही हूँ तू निःशक होकर इस घर में रह और इन मेरे दो बालकों की देखभाल करना। इस भेद हमारे तेजस्वी पतिदेव से नहीं कहना मिट्टी की बनी संज्ञा ने कहा कि मैं शिर के बाल पकड़े जाने तक तो यह भेद किसी से नहीं कहूंगी। इसके बाद संज्ञा अपने पिता विश्वकर्मा के घर लज्जा

पूर्वक पहुँची। संज्ञा को देखकर पिता ने क्रोध पूर्वक कहा--तुम अभी अपने पति के पास चली जाओ, दिवाकर के प्रति किसी प्रकार घृणा की भावना अपने अन्दर मत रखो। बार बार कहने पर भी वह आग्रह करके हजारों वर्ष तक अपने पिता के घर में रही आई। पिता के द्वारा अधिक यह कहने पर कि 'तुम अपने पति के घर जाओ'-उस चरित्र शालिनी ने अपना रूप छिपा कर 'वडवा' का रूप बनाया और पिता के घर से निकल आई। उत्तर कुरु में जाकर वह तृणों को खाकर रहने लगी।

इधर नकली संज्ञा में सूर्य ने दो पुत्रों को और जन्म दिया। इन पुत्रों के नाम श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा थे। श्रुतश्रवा तो बाद में सावर्ण नामक मनु बने और श्रुतकर्मा को शनिश्चर नामक ग्रह जानना चाहिये। वह भी बाद में सावर्ण नामक मनु कहलाएगा। उस नकली मिट्टी की संज्ञा का प्रेम अपने पुत्रों में अधिक रहने लगा। तथा असली की संतानों में कम होगया। यह यमराज को बिलकुल सहन नहीं हुआ। सपत्नी डाह के कारण जब अपमान सहन नहीं हुआ तो क्रोध में आकर यमराज ने एक दिन पैर की ठोकर मारी। उसने इससे लज्जित होकर यमराज को शाप दे दिया कि अपने पिता की पत्नि को इस प्रकार पैर से ठोकर मारने के कारण तेरा यह पैर गिर पड़ेगा। इससे यमराज अधिक दुखी हुए और पिता को जाकर सब बातें बतलाईं। और कहा कि हे तात! माता के साथ यह दुर्व्यवहार हमने अज्ञानवश किया है परन्तु फिर भी आप इस भीषण शाप से हमारी रक्षा करो। यमराज के कहने पर सूर्यदेव बोले-इस घटना में अवश्य कोई रहस्य है नहीं तो तुम्हारे जैसे धर्मात्मा पुत्र के मन में क्रोध का संचार हो ही नहीं सकता था। किन्तु तुम्हारी माता के शाप को निष्फल मैं नहीं कर सकता। तुम्हारे मांस को लेकर जब कृमि (कीड़े) भूतल पर चलेंगे तब तुम्हारा पैर बिना अभ्यास के पुनः प्राप्त होगा। इससे माता का शाप और तुम्हारे पैर की हानि न होना दोनों समाधान हो सकेंगे।' इसके बाद आदित्य ने संज्ञा से कहा कि तुम अपने सभी पुत्रों के समान होने पर भेद की भावना क्यों करती हो? संज्ञा ने अपने गुप्त भेद को छिपाने

के कारण कोई उत्तर नहीं दिया। परन्तु परम तेजस्वी सूर्य ने योग बल से सब रहस्य जानकर संज्ञा को नष्ट करने के लिए शाप दिया, तब संज्ञा ने डरते हुए सूर्य भगवान से अपना सारा रहस्य बता दिया, संज्ञा के इस प्रकार कहने पर सूर्य देव बहुत क्रोधित हुए और उसी अवस्था में विश्वकर्मा के पास गये। इनके पहुँचने पर विश्वकर्मा ने इनका खूब आदर सत्कार करके इनके क्रोध को शान्त किया और सूर्यदेव से कहा कि तुम्हारा यह तेजोमयी शरीर शोभा नहीं देता इस तेजोमय रूप को संज्ञा सहन न कर पाती थी, वह अब कुरु देश के मैदान में घास चर रही है। आप अपनी उस पवित्र, शुभ मार्ग गामिनी, योवनपूर्ण उस परम तेजस्विनी पत्नि संज्ञा को आज देखेंगे, लेकिन शर्त यह है कि आज हमारा आतिथ्य स्वीकार करें, जैसा हम कहें वैसा ही आप करें। आपके इस तेजोमय स्वरूप को हम बदलना चाहते हैं, इस समय आपका तेजोमय रूप तिरछा, ऊँचा, और नीचा था, उनकी किरणें ऊँची, नीची, तिरछे सभी स्थानों में पड़ती थीं। अपने इस रूप को सुनकर सूर्यदेव बहुत शरमिन्दा हुए। अपने प्रसिद्ध चक्र से विश्वकर्मा ने सूर्यदेव के तेजोमय रूप शान पर रख कर खराद किया, तब उस चक्र से खराद देने के बाद सूर्य का शेष तेज बहुत सुन्दर दिखाई देने लगा। सूर्य भगवान जो पहले सुन्दर नहीं लगते थे अब वे बहुत ही अधिक सुन्दर दिखाई देते थे। इसके बाद सूर्य ने अपने योगबल से उस बड़वा रूप रखने वाली अपनी स्त्री संज्ञा को देखा। उस समय वह अपने तेज और नियमों के कारण सबसे अलग थी। उसे देखकर सूर्य देव ने अपना अश्व का रूप धारण करके मुख की तरफ से काम भावना प्रकट करने लगे। काम चेष्टा करने पर संज्ञा ने पराये पुरुष के भय से सूर्य देव के वीर्य को अपनी नासिका के दोनों छिद्रों से बाहर पृथ्वी पर गिरा दिया, उस बाहर गिरे हुए सूर्य के वीर्य से दोनों अश्विनी कुमार जो परम वैद्य कहलाते थे पैदा हुए, वे दोनों सभी गुणों से सम्पन्न थे। ये दोनों अश्विनी कुमार नात्यत्य और दस्त्र के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये

दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र कहलाते हैं। इसके सूर्यदेव ने अपने सुन्दर रूप को संज्ञा को दिखाया, संज्ञा ने अपने पति के इस रूप को देखा और बहुत प्रसन्न हुई ! इसके उस छाया रूपी संज्ञा के शाप से यमराज बहुत दुखी थे, लेकिन उन्होंने अपने शुभ धर्माचरणों से सभी को परम प्रसन्न किया, इसी कारण उनका नाम धर्मराज पड़ा है। यम ने अपने शुभ कर्मों के कारण बहुत सुन्दर रूप तेज और कान्ति प्राप्त की, तथा सभी पितरों राज्य तथा लोकपाल की पदवी भी उन्हीं को मिली। यशस्वी सावर्णि मनु इस प्रकार सावर्णि मन्वन्तर में प्रजापति के रूप में स्थित होंगे। वे भगवान आज भी सुरम्यनु-सुमेरु पर्वत के निचले भाग में तपस्या में निरत हैं। उसी स्थान पर उनके भाई शनैश्चर जी ग्रह रूप में स्थित हुए। विश्वकर्मा ने सूर्यदेव के खराद हुए तेजोमय रूप से भगवान विष्णु के सुदर्शन चक्र को बनाया। इन दोनों की छोटी बहिन यमुना के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये यमुना सभी लोकों को पवित्र करने वाली सभी नदियों में पवित्र यमुनाजी के रूप में बदल गईं। सूर्य के सबसे बड़े पुत्र का नाम मनु था, उन मनु राजा का वंश आज तक इस पृथ्वी पर स्थित है। जो मनुष्य सूर्य के इन सातों पुत्रों के जन्म के विषय में सुनता है उसके सभी दुख दूर होकर उसे महान यश प्राप्त होता है।

[श्री वायु महापुराण का श्राद्ध के विषय में वरुण वंश का वर्णन नाम को चौरासीवां अध्याय समाप्त]

पिच्यासीवाँ अध्याय

(श्राद्ध के विषय में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन)

सूतजी बोले—हे द्विजगण ! चाक्षुष मन्वन्तर के समाप्त होने पर सभी देवगण भी समाप्त हो गए, तब सूर्य के पुत्र महान प्रतिभाशाली मनु समस्त पृथ्वी के राजा हुए, हम आपको उन्हीं मनु के विषय में विस्तार पूर्वक सुना रहे हैं। मैं सबसे पहले वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। सबसे बड़े मनु उन्हीं के समान तेजशाली नव पुत्र हुए। इन नव पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं। इक्ष्वाकु, नहुष, धृष्ट,

शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, करुष और पृषध्र थे । ये सभी पुत्र नव मनु के पुत्रों के नाम से पुकारे जाते हैं। प्राचीनकाल में ब्रह्मा जी की आज्ञा पाकर मनु ने सृष्टि कार्य शुरू किया, पर वह सृष्टि कार्य बेकार रहे। इसके बाद प्रजापति मनु ने पुत्र की इच्छा से पुत्रेष्ठि यज्ञ का अनुष्ठान किया और मित्रावरुण के लिए अग्नि में आहुति डाली, तब उस यज्ञ भूमि से सुन्दर वस्त्रों को धारण किए, दिव्य आभूषणों से सजे हुए अङ्गों वाली इड़ा नाम की स्त्री निकली दण्डधारी राजा मनु ने उसे इला कह कर पुकारा। तब पुत्र की अभिलाषा रखने वाले राजा मनु से इला ने कहा कि हे राजन् ! मैं आपकी आज्ञाकारिणी हूँ आपका कल्याण हो, हे श्रेष्ठ राजा ! मैं मित्रावरुण के अंश से पैदा हुई हूं अतः मैं उन्हीं के पास जाती हूं, जिससे न तो हमारा धर्म ही नष्ट होगा और न ही हमारा नाश ही होगा । इस प्रकार कह कर सुन्दर इड़ा मित्रावरुण के पास चली गई और वहां जाकर दोनों से हाथ जोड़कर बोली, हे युगलदेव ! आप दोनों के अंश से ही मेरा जन्म हुआ है, अतः आप मेरे लिये आज्ञा दीजिए, मैं आपकी क्या भलाई करूँ राजा मनु ने मुझसे कहाथा कि तुम मेरी अनुगामिनी बनो इसमें आप लोगों की क्या इच्छा है? उस सुन्दर पवित्रवती इला के इस प्रकार कहने पर दोनों देवगणों ने उससे कहा कि हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं, तुम हमारी कन्या के रूप में प्रतिष्ठित होंगी फिर तीनों लोकों में पूजित, संसार के प्रिय धर्मशील मनु के वंश के विस्तार करने वाले सुद्युम्न के रूप में पैदा होंगे वे सुद्युम्न फिर स्त्री के रूप में बदल जायेंगे। इला इस प्रकार वरदान प्राप्त करके फिर अपने पिता के पास आयी। चन्द्रमा के पुत्र बुध ने उचित अवसर देखकर उससे काम इच्छा प्रकट की तब बुध के संयोग से इला के पुरुरवा नाम का पुत्र पैदा हुआ। इसके बाद बुध के संयोग से पुरुरवा को जन्म देकर वह फिर सुद्युम्न के रूप में बदल गई। सुद्युम्न के तीन धार्मिक पुत्र पैदा हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं–उत्कल, गय और तीसरे का नाम विनताश्व थे उत्कल के नाम पर उसके राज्यका नाम उत्कल

प्रदेश हुआ, विनताश्व का राज्य पश्चिमी प्रदेश था तथा तीसरे गय ने गया नाम की पुरी को बसाया था। सूर्य के पुत्र मनु ने सृष्टि का विस्तार करके इस पृथ्वी को दस भागों में बांट दिया। इक्ष्वाकु के दस और पुत्र पैदा हुए, जो सभी राज्य के उत्तराधिकारी हुए। सुद्युम्न कन्या होने के कारण से राज्य को प्राप्त न कर सके। तब वशिष्ठ की आज्ञा से सुद्युम्न प्रतिष्ठान के उत्तराधिकारी हुए। लेकिन यशस्वी मनु के पुत्र सुद्युम्न राज्य प्राप्त करके फिर स्त्री रूप में होगये, तब उनके राज्य के स्वामी पुरुरवा हुए। मनुष्य में स्त्री पुरुषों के चिन्ह की सहज ही जानकारी रहती है। ऋषियों ने सूत जी की इस प्रकार बातें सुनकर उनसे पूँछा कि मनु के पुत्र सुद्युम्न पुरुष होकर स्त्री के रूप में किस प्रकार बदल गये।

सूत जी बोले—प्राचीनकाल की बात है कि एक बार पार्वती ने महादेव जी से इस प्रकार कहा कि हे भगवान शङ्कर जी! जो कोई पुरुष मनुष्य मेरे इस आश्रय में आयेगा, वह शीघ्र ही अप्सराओं के समान सुन्दर स्त्री के रूप में बदल जायगा। पार्वती जी के इस प्रकार वचन सुनकर उस आश्रम के रहने वाले भूत, पिशाच, पक्षी, पशु आदि जीव जन्तु सब स्त्री के रूप में बदल कर राजा इन्द्र के साथअप्सराओं के समान क्रीड़ा करने लगे। शिकार खेलते हुये राजा सुद्युम्न उस वन में घुस गए, जहां पिशाचों और भूतों के साथ रुद्र भगवान स्त्री रूप में विराजमान थे। इसी कारण से राजा सुद्युम्न को पुनः स्त्री रूप को प्राप्त हुये, और फिर उन्होंने महादेव जी की कृपा से गणों का राज्य प्राप्त किया।

(इति श्री वायु महापुराण का श्राद्ध के प्रसंग में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन नामका पिच्यासीवां अध्याय समाप्त)

छियासीवाँ अध्याय

(वैवस्वत मनु के वंश के विषय में गंधर्वों की मूर्च्छना का कारण)

सूत जी बोले अब आप मनु के पुत्रों का विस्तार पूर्वक वर्णन सुनिये। मनु के पुत्र पृष्षध्र ने अपने गुरु महात्मा च्यवन ऋषि की गाय को चुराकर

खा लिया, इसके फलस्वरूप उन्होंने शूद्र वर्ण में जन्म प्राप्त किया। करुष के पुत्र कारुष नाम से प्रसिद्ध थे, वे सभी युद्ध में दुर्दमनीय थे। नाभाग अरिष्ट का पुत्र भलनन्दम बहुत विद्वान तथा सभी क्षत्रियों से अधिक बलवान शाली था। भलनन्दन का पुत्र बलशाली प्रांशु था, उस प्रांशु के एक पुत्र प्रजानि नाम से उत्पन्न हुआ। प्रजानि के खनित्र नाम का प्रतापी पुत्र पैदा हुआ, उस खनित्र के क्षुप नाम का महायशस्वी पुत्र पैदा हुआ, विंश के धार्मिक तथा कल्याणकारी विविंश नाम के पुत्र पैदा हुये, विविंश के धर्मात्मा खनिनेत्र नाम के पुत्र पैदा हुए। खनिनेत्र के करन्धम नाम के पुत्र पैदा हुये, ये करन्धम त्रेतायुग के प्रारम्भ में स्थित थे करन्धम के अविक्षित नाम के प्रतापशाली पुत्र पैदा हुए। अविक्षित ने अपने गुणों से अपने पिता का अतिक्रमण किया, उनके पुत्र धर्मात्मा चक्रवती राजा मनुत्त नाम के पैदा हुये जिन्होंने संवर्त्त नाम की ऋषि की प्रेरणा से अपने मित्रों तथा परिवार वालों के साथस्वर्ग प्राप्त किया। इस कार्य में संवर्त्त और बृहस्पति के बीच में एक लड़ाई खड़ी हो गई; उस यज्ञ की समृद्धि को देखकर बृहस्पति जी क्रोधित होगये। संवर्त के निर्विघ्न यज्ञ समाप्त कर देने पर तो बृहस्पति बहुत ही क्रुद्ध हुये, सभी लोकों के नाश होने को स्थिति देखकर देवताओं ने तथा प्रजापति ब्रह्माजी ने बृहस्पति जी को प्रसन्न किया। चक्रवर्ती राजा मनुत्त के नरिष्यन्त नाम के पुत्र पैदा हुये, नरिष्यन्त के दम नाम का पुत्र पैदा हुआ। वह राजा दम कठोर दण्ड देता था। दम के केवल नाम का पुत्र पैदा हुआ, केवल के बन्धुमान नाम का पुत्र पैदा हुआ। बन्धुमान के धर्मात्मा वेगवान नाम का पुत्र पैदा हुआ। वेगवान के बुध नाम का पुत्र पैदा हुआ और पुत्र के तृणविन्दु नाम का पुत्र पैदा हुआ, यह तृणविन्दु राजा त्रेतायुग के आरम्भ-काल में विराजमान थे। तृणविन्दु के इविड़ा नाम की कन्या थी, वह कन्या विश्रवा की माता हुई, इसके विशाल नाम का धार्मिक पुत्र पैदा हुआ। इसी धार्मिक विशाल राजा ने विशाला नाम की पुरी को

बसाया था, राजा विशाल के हेमचन्द्र नाम के महा बलवान पुत्र पैदा हुये। हेमचन्द्र के सुचन्द्र नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा सुचन्द्र के धूमाश्व नाम का पुत्र पैदा हुआ, राजा धूमाश्व के सृंज्जय नाम का परम विद्वान पुत्र पैदा हुआ। राजा सृंज्जय के सहदेव नाम का परम प्रतापी पुत्र हुआ। सहदेव के कृशाश्व नाम का पुत्र पैदा हुआ ये परम धार्मिक राजा थे। कृशाश्व के सोमदत्त नाम का प्रतापी तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ। राजा सोमदत्त के जनमेजय नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा जनमेजय के प्रमति नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा तृणविन्दु की कृपा से यह विशाल नगरी के सभी राजा दीर्घायु वाले धार्मिक प्रकृति के और महात्मा हुए।

राजा शर्यीति के दो सन्तान हुईं उनमें एक पुत्र और एक कन्या थी पुत्र का नाम आनर्त था और कन्या का नाम सुकन्या था, कन्या सुकन्या महर्षि च्यवन को ब्याही थीं। राजा आनर्त के रेव नाम का पुत्र पैदा हुआ। आनर्त सभी राज्य का तथा कुशस्थली का स्वामी था। रेव के रैवत नाम का धार्मिक पुत्र पैदा हुआ। रैवत नाम का पुत्र ककुद्मी नाम से प्रसिद्ध हुआ। ककुद्मी अपने सभी भाइयों से बड़े थे इन्होंने भी कुशस्थली में राज्य किया। एक समय ये अपनी कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा जी के पास संगीत सुनने के लिए गये थे। वहां पर ब्रह्मा जी के पास केवल दो घड़ी विश्राम किया था। किन्तु ब्रह्मा जी की वह दो घड़ी मानव वर्षमान से अनेक युगों की थी। वहां से राजा युवाअवस्था में ही अपनी पुरी को वापस लौट आये तो इन्होंने देखा कि उनकी पुरी में यदुवंशियों के राजा राज्य कर रहे थे। उसके चारों तरफ बड़े बड़े द्वार बने थे और अब उसी कुशस्थली पुरी को द्वारिकापुरी कहते हैं। उस द्वारका पुरी में वसुदेव प्रभृति प्रमुख भोज वृष्णि और अन्धक वंशके लोग रह रहे थे शत्रुओं को जीतने वाले रैवत राजा ने इस रहस्य को जानकर अपनी कन्या रेवती जी का विवाह बलदेवजी के साथ कर दिया और आप स्वयं मेरुपर्वत की चोटी पर जाकर तपस्या करने लगे। बलराम जी ने रेवती के साथ दाम्पत्य सुख प्राप्त किया यह जगत प्रसिद्ध बात है। सूत जी से इस प्रकार कथा सुनकर ऋषियों ने कहा–

ऋषि बोले–हे सूत जी ! अनेक युगों के बीत जाने पर भी रेवती जी पर वृद्धावस्था नहीं आई, यह कैसे सम्भव है। मेरु पर्वत पर तपस्या करने के लिये राजा शर्याति के जाने पर उनके किस प्रकार सन्तान पैदा हुई, जो आज भी पृथ्वी पर उनके नाम से प्रसिद्ध है। आप हमको क्रम पूर्वक इनका वर्णन सुनाइए। ब्रह्माजी की सभा में कितने देव गण निवास करते हैं ? वहां के गन्धर्व कैसे हैं जिनके संगीत को सुनकर राजा रैवत ने इतने लम्बे समय को दो घड़ी माना ?

सूतजी बोले–हे ऋषियो ! ब्रह्मलोक को जाने वाले प्राणी को न वृद्धावस्था आती है, न उसे भूख सताती है और न उसको प्यास लगती है, उसे न मौत का डर है न किसी प्रकार का भय ही सताता है। न उसे कोई प्रकार के रोग ही घेरते हैं। हे व्रतधारी ऋषिगण ? उस गान्धर्व विद्या के विषय में मैं आप लोगों को कुछ बात बता रहा हूँ।

सूतजी बोले–हे ऋषिगण ! उस गान्धर्व संगीत शास्त्र में सात स्वर में होते हैं, तीन ग्राम होते हैं, इक्कीस मूर्छनायें होती हैं, तथा उनचास ताल होते हैं–इसी को स्वर मण्डल कहते हैं। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद ये सात स्वर कहलाते हैं। सौवीरी, हरिणाश्वा, कलोपवला, शुद्ध मध्यमा, शाङ्गी, पावनी और दृष्टाका इत्यादि ये मध्यग्राम के नाम से पुकारे जाते हैं। उत्तरमन्दा-जननी, उत्तरायता, शुद्धषडजा इत्यादि षड़जग्राम के नाम से कहे जाते हैं। इसको सातवीं मानना चाहिए। अग्निष्टोमक, वाजपेयिक, पौण्ड्रक अश्वमेधिक, राजसूय, चक्रसुवर्ण, गोसव, महावृष्टिक, ब्रह्मदान, प्राजापत्य, नागपक्षाश्रय, गोतर,हयक्रान्त, मृगक्रान्त, सुन्दर विष्णु क्रान्त, सूर्यक्रान्त, मत्तकोकिल, वादिन, सावित्रअर्धसावित्र, सर्वतोभद्र, सुवर्ण, सुतन्द्र, विष्णु, वैष्णवर, सागर, विजय, हस, तुम्बुरुप्रिय, अधांत्र इत्यादि ये सभी गान्धार ग्रामों की प्रशंसा गन्धर्वों ने करी है, ये विद्या नारद जी तथा अलम्बुष को अधिक प्रिय है भीमसेन ने भी इनकी प्रशंसा नागरों से की थी। विकल, उपनीत, विनत, अभिरम्य, शुक, पुण्याटक ये सभी गान्धार ग्राम में ही कहे जाते हैं। मध्यमग्रामों

की संख्या बीस है, षड्जग्रामों की संख्या चौदह मानी जाती है। इसके बाद गान्धार ग्राम की संख्या को पन्द्रह मानते हैं। प्रजापति ब्रह्माजी सौवीरी के साथ गान्धारी का गान करते हैं। उत्तरादि स्वरों के देवता ब्रह्माजी ही माने जाते हैं। हरिदेश में उत्पन्न होने के कारण मूर्च्छना हरिणाश्या के नाम से पुकारे जाते हैं। इन्द्र इसके देवता माने जाते हैं। सम्पूर्ण स्वर मण्डल को मरुतों द्वारा प्रसारण पूर्वक ग्रहण करने के कारण कलोपनता के देवता मारुत माने जाते हैं। मरुदेश में उत्पन्न होने के कारण मूर्च्छना को शुद्ध मध्यमा कहते हैं। इस में शुद्ध स्वर मध्यम माना जाता है। इसके गन्धर्व देवता हैं। सिद्धों को मार्ग दिखलाते समय मृगों के साथ घूमने के कारण मूर्च्छना को मार्गी नाम से पुकारते हैं। इसके देवता मृगेन्द्र माने जाते हैं। यह मूर्च्छना अनेक स्वरों का आश्रयभूत होने के कारण बहुत से नगरों में गाए जाने वाले स्वरों में प्रयुक्त होती है। रजनी नाम की मूर्च्छना रजोगुणमयी होती है, उत्तर मन्द्राशताल के देवता षड्ज को मानते हैं। उसका उत्तरवर्ती ताल भी पहले का अनुयायी है। इससे उसका नाम भी उत्तरमन्द्र कहा जाता है। विस्तृत और उत्तरवर्ती होने के कारण शैवत की मूर्च्छना उत्तरायण है। इसके अधिदेवता पितृगण हैं जो श्राद्ध में पूजे जाते हैं।

षड्ज स्वर से महर्षियों ने अग्नि की उपासना की थी। षडजिक नाम से कहा जाता है। पंचम स्वर की मूर्च्छना से सत्पुरुषों का मन मूर्छित हो जाता है यह यक्षों की पत्नियों की मूर्च्छना कही है इससे इसका नाम याक्षिकी मूर्च्छना है दृष्टि मात्र से विष फैलाने वाले नाग जिस मूर्च्छना को सुनकर चल फिर नहीं सकते और ब्रह्मा द्वारा मृतक के समान हो जाते हैं। इसको अहिमूर्च्छना कहते हैं। इसके अधिदेवता वरुण हैं। जिस स्वर का अनुकरण कर जिसका गान करते हैं उस सबसे उत्तम मूर्च्छना के अधिदेवता गरुड़ हैं। अश्व के समान तीव्र गति से चलने या जिसे सुन कर घोड़े विहार

करते हैं उस मूर्च्छना का नाम अश्वक्रान्ता है। उसके अधिदेवता दोनों अश्विनीकुमार हैं। गान्धार राग के शब्द से गौ (पृथ्वी) को धारण करते हैं इसलिये इसको गान्धारी मूर्च्छना कहते हैं। इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। गान्धार के बाद जिस मूर्च्छना की उत्पत्ति हुई है उसे उत्तर गान्धारी कहते हैं इसके अधि देवता वसुगण हैं।

षड्ज नाम की मूर्च्छना सबसे पहले ब्रह्माजी के सामने आई इससे इसका महत्व अधिक है। इसके अधिदेवता अनल हैं। मन्दषष्ठा नामक मूर्च्छना का विस्तार बहुत अधिक है। इसके प्रभावदिव्य हैं। इसके अधिदेवता पंचम हैं। इस प्रकार सप्त स्वरों, समस्त मूर्च्छना और उनके छै साधारण भेदों का वर्णन मैंने आपसे किया।

इति श्री वायु महापुराण का गांधर्व मूर्च्छना कथन नामक छियासीवां अध्याय समाप्त

सतासीवाँ अध्याय

(गीतों के अलंकारों का वर्णन)

अब मैं तीन सौ संगीत के अलंकारों का वर्णन आचार्यों के मतानुसार करता हूँ सो सुनिये। अपने अपने वर्णों एवं पद समूहों के संयोग से संगठित होने को ही अलंकार कहते हैं। पद एवं वाक्य के योगार्थ के द्वारा अलंकार की पूर्ति होती है। गीतों के तीन स्थान होते हैं उरुस्थल, कण्ठ, शिर। इन तीनों स्थानों में प्रारम्भ किया गया स्वर उत्तम होता है। प्रकृतिगत वर्णों की संख्या चार है और विचार भी चार प्रकार के होते हैं। विकल्प से ये आठ प्रकार के होते हैं। देवगण इनकी सोलह संख्या बताते हैं! वर्णों के तत्वज्ञ चार वर्ण निम्न बताते हैं—स्थायी, संचारी, आरोहण, अवरोहण।

स्थायीभाव–जिसमें एक ही प्रकार का भाव वर्ण में जिसका संचरण होता है वह स्थायी भाव कहलाता है।

संचारीभाव–विभिन्न प्रकार के भावों में जिसका संचरण होता है।

अवरोहण–जिसकी निम्नगति होती है वह अवरोहण होता है।

आरोहण–जिसकी गति उन्नतिशील होती है। यह सब वर्णवेत्ता लोग बताते हैं।

इन्हीं चारों प्रकार के वर्णों के अलंकार सुनिए। प्रधानतः अलङ्कारों के निम्न चार भेद हैं, स्थापनी, क्रमरेजित, प्रसाद और प्रस्तार। उष्ट्रकल नामक विकृत स्वर एक स्थान से उत्पन्न होकर दूसरे स्थान में समाप्त होते हैं उस आवर्त (घुमाव) की उत्पत्ति और उसका क्रम दोनों परिणाम के अनुरूप करना चाहिए। अन्य कुमार नामक स्वर को अति अल्प विस्तार करने वाला जानना चाहिए। दूसरा अपांग नामक और मात्राधिक कुलारेक नामक अलङ्कार होता है। श्येन नामक स्वर एक ही स्थान में उत्पन्न होता है और कलामात्र के अन्तर प्रतिष्ठित होता है। इसी स्वर में बुद्धि विलक्षण होती है। इसी श्येनस्वर को उत्तर अवरोह कहते हैं। कला कला के फलस्वरूप सविन्द नामक स्वर उत्पन्न होता है। विन्दु को एक कला की करनी चाहिये, यह एक ही वर्ण के अन्त में स्थित रहने वाली है। जहां अनवधानता नहीं होती है वहां स्वरों की उलट फेर होती है। षड्ज से एक स्वर का अन्तर देकर एकान्तरा वाद्य करने से उत्कृष्ट स्वर होता है। इसमें काक के समान स्वर का आक्षेप करने से पुष्कल स्वर होता है। कारण कार्य रूप से दोनों संचारों का संचारण करना चाहिये। इस तरह शीघ्रता की गति तक अवरोह स्वर संचार करने पर प्राक्षेपद्य अलङ्कार होता है। इसके बाद द्वादशकला हैं। इस प्रकार के स्वरों से मिलकर प्रेखोलित अलङ्कार होता है। फिर अधिक स्वरों के संक्रमण होने के कारण ही वह पुष्कल कहा जाता है। मात्रा के प्रक्षेप और पाद संक्रमण होने से द्विकलात्मक अलङ्कार होता है, वह ग्रासित कहलाता है। स्वरोच्चार और विस्वर के संयोग से अष्टस्वर का अन्तर होजाता है। तार और मन्द्र के क्रम से स्वरावरोह होते हैं वे अन्त में उसी स्वर के एक अन्तरा के बाद उपयुक्त माने जाते हैं।

मणिच्छेदन नामक गण की चार कलायें कही गई हैं। वर्ण,

स्थान और प्रयोग के अनुसार कला मात्र प्रमाण के द्वारा अलंकारों को निश्चित करते हैं। इस प्रकार तीस अलंकारों का वर्णन किया गया। संस्थान, प्रमाण, विकार और लक्षण ये चार अलंकारों के प्रयोजन जानने चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य के ऐसे स्थान पर अलंकार धारण न करने पर जहाँ वे योग्य लगते हैं तो वे शरीर की शोभा की हानि ही करेंगे। उसी प्रकार ये संगीत अलंकार संगीत के योग्य स्थान पर न पड़कर तथा निम्नकोटि के होकर वर्णों की शोभा बढ़ाने में सामर्थवान नहीं होते हैं। इसलिये स्त्रियों के आभूषणों की तरह इन संगीत के अलंकारों को ठीक स्थान पर लगाना चाहिये। अलंकारों से अलंकृत होकर संगीत की भी शोभा बढ़ जाती है जैसे अलंकारों से स्त्रियां शोभा युक्त हो जाती हैं। अलंकारों को यथा स्थान न रखने पर निन्दा होती है। जिस प्रकार पैर में कुण्डल और कण्ठ में कौंधनी नहीं पहनी जा सकती और उनकी निन्दा होती है उसी प्रकार संगीत के अलंकार भी ठीक जगह में प्रयोग न किये जाने पर सर्वथा निन्दित किये जाते हैं। जो गायक ठीक स्थान पर अलंकारों का प्रयोग करते हैं वे संगीत का समुचित पालन करते हैं।

इसके बाद अब मैं पर्यव का लक्षण, वर्णिका के द्वारा उनका मासोद्भव तथा मुखोद्भव कहूँगा। षड्ज स्वर के तेईस प्रकार के अलंकारों का विपर्यय होने पर अस्सी प्रकार के हो जाते हैं। षड्ज भी तत्व आदि के कारण और हीन स्वर हो जाता है। षड्ज और मध्यम दोनों स्वरों का ग्राम का पर्यय, उत्तर मन्द तथा अपिक का मान छैः प्रकार का होता है। स्वर अलंकार और प्रत्यय इन सबके प्रत्यय होते हैं। वहिर्गीतों के कारण ये भी पंच दैवत माने गये हैं। गोलपों के आगे मध्यांश का स्थापन ही पर्यय है। इन दोनों का विभाग गीतों के सौन्दर्य में वृद्धि करता है। यह मैंने स्वसार और स्वरान्तर का गौण रूप में वर्णन किया। सप्त स्वर और पदक्रम के अनुसार पर्यय का प्रयोग होता है। चारों मद्रक गान्धारांश से गाये जाते हैं। पंचम धैवत में निषादज का प्रयोग होता है। मद्रकों

में षड्ज और ऋषभ का ही प्रयोग होता है। अन्यका नहीं होता। हयशुक्लाष्टक के ऊपर और अन्तिम दो भेद होते हैं। गन्धारांश में और प्राकृत में वेणु सम्बन्धी रागों का प्रयोग होता है। केशिक के सात रूप हैं तथा पद के तीन रूप होते हैं। सम्पूर्ण गान्धारांश से पर्यय विधि पूर्ण की जाती है। इस प्रकार मध्यमांश के मध्यम पद के भी लुमिक विधान का निर्देश किया गया है। रूप के साथ वाले गीतों केा सप्त स्वर से युक्त करना चाहिये। और केशिक को सप्तारूप से युक्त करना चाहिये। इस तरह अंगदर्शन, दोमान और समक को कहा गया है। द्वितीय भावाचरण मात्रा उपयुक्त नहीं होती। और स्वभावतः उत्तर (मान्द्र) में मात्रा लीन हो जाती है जहां इन्तार पिण्डक मात्रा से अधिक नहीं होता और जिस मात्रा में एक चरण और पौन चरण रहते हैं और उसमें संध्या के संघर्ष के कारण 'यान' अलंकार उत्पन्न होता है। दूसरा पाद भंग केा ग्रह नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। पहला, आठवां, तीसरा और दूसरा ऊपर और अन्तिम पाद साम्य के अधि भाग के साथ, पांचों में पाद भाग और सपाद पाद भाग प्रकृति में स्थित रहते हैं। उत्तर, मद्रवती, मद्रक में चौथी कला तथा मन्द्रक में दक्षिण की ऊपर कही कला रहती है। पहले ही अनुयेाग केा द्वितीय बुद्धि इष्ट रहती है इसके बाद दो पादों के और कलाओं के अकलन का विधान नहीं बताया गया है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! दोनों के उपयेाग की एकता और अनेकता की कलाओं के एकत्र संगठन केा पताका हरिण कहते हैं। वृत्ति में तीन वृत्तियों की आवृत्ति दक्षिण कही गई है। सौवीरी मूर्च्छना और वे आठसमवाय जेा दुहराये जाते हैं, इन सप्त स्वरों का अच्छी प्रकार अध्ययन करने वाले मनुष्य की कीर्ति चित्रशाखा सूत की कीर्ति के समान सदा फैलती है।

इति श्री वायु महापुराण का गीतालङ्कार नामक सतासीवां अध्याय समाप्त

अठासीवाँ अध्याय

[वैवस्थत मनु के वंश का वर्णन]

सूतजी बोले–हे ऋषियो! रैवत राजा का दूसरा नाम कुकुद्मी था, उनके मेरु

पर जाने के बाद राक्षसों और यक्षों ने सारी कुशस्थली को नष्ट कर दिया था। धार्मिक और महात्मा राजा रैवत के अन्य सौ भाइयों को उन राक्षसों ने मार कर इधर उधर भगा दिया और इस प्रकार राक्षसों से डर कर सभी क्षत्रिय वंश के लोग तितर बितर हो गये जिस स्थान पर राजा स्वयं रहते थे, वहां पर भी उनके वंश के कुछ मनुष्य चले गये। उस धार्मिक राजा के वंश के क्षत्रिय लोग धार्मिक विचार वाले तथा अपनी इन्द्रियों को वश में रखने वाले सभी दिशाओं में प्रसिद्ध थे। इन्हीं के वंश में राजा धृष्ट के धार्ष्टक क्षत्र, रणधृष्ट नाम के पुत्र पैदा हुए, ये तीनों सभी क्षत्रिय जाति में अधिक बलवान तथा प्रसिद्ध माने जाते थे। दूसरे उसी वंश में नभग राजा के नाभाग नाम के प्रसिद्ध बलवान पुत्र पैदा हुये। नाभाग राजा के अम्बरीष नाम के पुत्र पैदा हुये और अम्बरीष राजा के विरुप नाम के पुत्रपैदा हुये, विरुप के पृषदश्व नाम के पुत्र पैदा हुये, पृषदश्व के रथीतर नाम के पुत्र हुये। राजा रथीतर के वंश में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जाति के मनुष्य पैदा हुए। प्राचीन काल में मनु राजा के छींकते समय इक्ष्वाकु नाम के पुत्र पैदा हुए, ये पुत्र बहुत दानशील और धार्मिक प्रकृति के थे, इनके एक सौ पुत्र पैदा हुये इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम विंकुक्षि था, इनके अलावा नेमि, और दण्ड नाम के पुत्र प्रसिद्ध थे। विकुक्षि के शकुनि प्रभृति पांच सौ पुत्र पैदा हुए, इन्होंने उत्तराखण्ड के देशों में राज किया, अड़तालीस राजाओं ने दक्षिण में राज्य किया, इनमें बीस राजा मुख्य माने जाते थे, जो दक्षिण के सभी प्रदेशों की रक्षा करते थे एक बार अष्टका तिथि के दिन इक्ष्वाकु राजा ने विकुक्षि से कहा—

राजा बोले—हे बलशाली पुत्र! श्राद्ध के लिए मृगों को मार कर कहीं से मांस लाओ। आज अष्टका तिथि है, मेरा आज श्राद्ध करने का विचार है। अपने पिता की आज्ञा मान कर विकुक्षि वन में हिरणों का शिकार करने गए, और शिकार करते करते विकुक्षि बहुत थक गए थे, तो उन्होंने अपनी थकावट दूर करने के लिए

वहीं पर एक खरगोश का मांस खा लिया। तब विकुक्षि अपने सैनिकों के साथ राजधानी को वापस आये, और राजा ने महर्षि वशिष्ठ से कहा कि हे गुरु देव ! आप "मांस को मन्त्रोच्चारण से पवित्र कर दीजिये. तब राजा के इस प्रकार कहने पर वशिष्ठ जी ने अच्छा कह कर जब विधि पूर्वक सिंचन करने के लिए आये, तो सभी मांस को अपवित्र देखकर राजा से कहा कि हे राजन् ! तुम्हारे इस दुष्ट स्वभाव वाले पुत्र ने वन में एक खरगोश का मांस खा लिया है अतः इस कारण यह समस्त मांस अपवित्र होगया है। अब यह श्राद्ध करने योग्य नहीं है। वशिष्ठ जी की ऐसी बातें सुनकर राजा इक्ष्वाकु, अपने पुत्र विकुक्षि पर बहुत क्रोधित हुए और विकुक्षि से कहा कि मैंने तुमसे श्राद्ध कर्म के लिए मांस लाने को जंगल भेजा था, और तुमने मेरी आज्ञा का पालन भी किया, लेकिन अच्छे बुरे का कुछ विचार न रखते हुए तुमने यह सारा मांस अपवित्र कर दिया, और अब यह मांस पितृ कर्म करने योग्य नहीं है। अतः इस गुरु अपराध के कारण मैं तुमको त्याग रहा हूँ, तुम यहां से चले जाओ, तुम्हारी जहां इच्छा हो, वहीं रहो और अपने इस नीच कर्म का फल भोगो। वशिष्ठ के कहने पर इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को त्याग दिया। उस राजा इक्ष्वाकु के मरने पर भी राज्य नहीं स्वीकार किया, किन्तु महर्षि वशिष्ठ के बहुत कहने सुनने पर उन्होंने अयोध्या का राज्य स्वीकार किया, और पूरा पृथ्वी पर सभी राज्यों पर राज्य किया। लेकिन राज्य कार्य करने पर भी उस विकुक्षि की महिमा अपने पूर्व पाप के कारण दिनों दिन नष्ट होती गई। अतः मनुष्यों को चाहिए कि बिना विधान के मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिये। इस मांस खाने के विषय में विद्वान मनुष्यों का कहना है कि "इस लोक में मैं जिसके मांस को खाता हूं, परलोक में वह मेरे माँस को खायेगा"—इसी प्रकार मांस खाने का नियम है। खरगोश के मांस को खाने वाले राजा विकुक्षि के ककुत्स्थ नाम का अधिक बलवान पुत्र पैदा हुआ। प्राचीन काल

में जब देवराज इन्द्र ने बैल का रूप धारण किया तो यह राजा उनके डोल पर चढ़ गये। यह आड़ीवक नाम के युद्ध का वर्णन था, इसलिये इसका नाम ककुत्स्थ पड़ा था।

ककुत्स्थ ने अनेना नाम के पुत्र पैदा हुए, अनेना के पृथु नाम के पुत्र पैदा हुए, पृथु के वृषदश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, वृषदश्व के अन्ध्र नाम के परम बलशाली पुत्र पैदा हुये। अन्ध्र के यवनाश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, और यवनाश्व के श्रावस्त नाम के पुत्र पैदा हुए, राजा श्रावस्त ने श्रावस्ती नाम के नगर को बसाया था। श्रावस्त के बृहदश्व नाम के प्रतापी राजा पैदा हुए, बृहदश्व के कुवलाश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, इन्हीं राजा कुवलाश्व को धुन्धु के मारने के कारण धुन्धुमार कहते हैं।

ऋषि बोले—हे श्रेष्ठ सूत जी! आप हमको धुन्धु के वध का वर्णन सुनाइये, किस कारण से राजा कुवलाश्व को धुन्धुमार का पद प्राप्त हुआ।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! राजा वृहदश्व के इक्कीस हजार पुत्र थे, वे सभी पुत्र सभी विद्याओं में चतुर, विद्वान, बलवान, यज्ञकर्ता, धार्मिक विचार वाले थे। राजा वृहदश्व ने अपने सबसे धार्मिक, शूरवीर और साहसी कुवलाश्व को उन्होंने अपने राज्य का स्वामी बनाया, और इस प्रकार अपने बड़े पुत्र को राज्य सौंप कर आप वन में चले गए। उत्तम ऋषि ने राजा वृहदश्व को वन में जाते समय रोका, लेकिन वह नहीं रुके।

उत्तङ्क ने कहा—हे राजा! आप हम लोगों की रक्षा कीजिये उद्विग्न चित्त होने के कारण हम तपस्या करने में असमर्थ हो गये हैं। हे राजन्! हमारे आश्रम के पास ही मरुभूमि में बालू का समुद्र है। उसी पृथ्वी पर धुन्धु नाम का विकराल शरीर वाला महा बलवान मनुष्य रहता है। देवता भी उस धुन्धु का वध नहीं कर सकते, वह बालू में रहता है। वह धुन्धु मनु का

पुत्र कहलाता है। मनु के पुत्र होने पर यह दुष्ट स्वभाव का दारुण प्रकृति का है। वह सभी लोकों का नाश करने की इच्छा से सौ वर्षों से कठोर तप कर रहा है। वह एक वर्ष बीतने पर एक श्वांस छोड़ता है। उसके एक श्वांस छोड़ते समय सारी पृथ्वी हिलने लगती है। सात दिनों तक पृथ्वी कांपती रहती है और अग्नि की चिनगारियां निकलने लगती हैं। हे राजन्! इन सब उत्पातों से हम अपने इस आश्रम में भी नहीं निवास करते हैं। हे राजन् आप इस उत्पात से हमारी रक्षा कीजिये। तुम्हारे इस कार्य में भगवान विष्णु अपने तेजोबल से तुम्हारी सहायता करेंगे। इस असुर के मरने पर सभी लोक सुखी रहेंगे, हे भूपति! तुम इस यज्ञन असुर को मार सकते हो हे। निष्पाप? पूर्वकाल में भगवान विष्णु ने यह वरदान दिया है कि महाबलवान धुन्धु अल्प बल से अधीन नहीं किया जा सकता है, इस असुर को बहुत ही अधिक बलशाली मनुष्य ही अपने वश में कर सकता है। हे भूपति! इस असुर को कोई सौ वर्षों में भी नहीं मार सकता है। देवता भी उसको नहीं मार सकते हैं उत्तंग ऋषि के इस प्रकार कहने पर राजा बृहदश्व ने पुत्र कुवलाश्व को धुन्धु के मारने के लिये भेज दिया, और उत्तंग ऋषि से बोले हे महर्षि! मैं राजा हूँ, सभी को पालन करना हमारा धर्म है। लेकिन हे महर्षि! हम अस्त्र शस्त्र नहीं चलायेंगे। हे द्विज-श्रेष्ठ! हमारा पुत्र निसन्देह ही धुन्धु को मार देगा। इस प्रकार बृहदश्व प्रतिज्ञा करके अपने पुत्र कुवलाश्व को महर्षि को सौंप कर आप वन में तपस्या करने चले गये। इधर पिता की आज्ञा पाकर धर्मात्मा राजा कुवलाश्व अपने इक्कीस हजार पुत्र और महर्षि उत्तंग को साथ लेकर धुन्धु को मारने के लिए चल पड़े। इसके बाद उत्तंग ऋषि ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की और फिर भगवान विष्णु अपने तेज के साथ उस धर्मात्मा कुवलाश्व के शरीर में प्रविष्ट हुए। जिस समय

राजा कुवलाश्व धुन्धु को मारने के लिये चले, तो उस समय चारों तरफ आकाश में घोर शब्द होने लगे, और चारों तरफ से यह ध्वनि होने लगी कि राजा कुवलाश्व अवश्य ही इस धुन्धु राक्षस का वध करेंगे। देवता चारों तरफ से उनके ऊपर फूलों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार अपने पुत्रों के साथ राजा कुवलाश्व उस बालुकामय समुद्र को खनाने लगे, उस समय वह राजा बहुत अधिक बलवान हो गये थे, फिर भी उत्तङ्क ऋषि के वश में स्थित थे। उस समय जब सब मिलकर उस बालुका मय समुद्र को खन रहे थे, धुन्धु पश्चिम दिशा की तरफ दिखाई देने लगा, उस समय वह बहुत क्रोधित हो रहा था, उसके मुख से अग्नि की ज्वालाऐं निकल रही थीं, वह इस प्रकार उगल रहा था मानों सभी लोकों को निगल जायेगा। फिर उसने अपने योगबल से चारों तरफ खूब जल बरसाया, चारों तरफ जल ही जल दिखाई पड़ने लगा। हे सभी ऋषियो, श्रेष्ठ ऋषी! उस समय जल की तरंगें इस प्रकार उठने लगीं, मानो चन्द्रमा निकल आया हो। फिर उस राक्षस ने राजा के तीन पुत्रों को छोड़कर सभी पुत्रों को भस्म कर दिया। तब धुन्धु के नष्ट करने की इच्छा से राजा ने उस सम्पूर्ण जल को पीलिया और अपने योगबल से उस अग्नि को भी शान्त कर दिया, और इस प्रकार अपने अधिक उत्साह और साहस से राजा ने उस धुन्धु असुर को मार दिया, तब उस असुर को मार कर राजा उत्तङ्क ऋषि के पास आये तब महर्षि ने राजा के अदम्य साहस को देख कर उन पर प्रसन्न होकर उत्तम वरदान राजा को दिया। राजा को महर्षि ने कभी नष्ट न होने वाली अक्षय सम्पत्तिप्रदान की वह शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे, धर्म में प्रेम भावना बढ़ और स्वर्गलोक में हमेशा वास करे वहां से कभी उसका पतन न हो, उसे इस प्रकार वरदान दिया। और राक्षसों को मारने के लिये उन सभी मरे हुये पुत्रों को अक्षय स्वर्ग प्रदान किया। इसके बाद राजा कुवलाश्व के बचे हुये तीन पुत्र रह गये थे उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम हटाश्व दूसरे का नाम भद्राश्व और तीसरे पुत्र का

नाम कपिलाश्व था। धुन्धुमार के बड़े पुत्र दृढ़ाश्व के पुत्र का नाम हर्यश्व था। हर्यश्व के निकुम्भ नाम का पुत्र पैदा हुआ। निकुम्भ नाम का पुत्र हमेशा क्षत्रिय धर्म में निरत रहता था। निकुम्भ के संहताश्व नाम का युद्ध में निपुण पुत्र पैदा हुआ। संहताश्व की स्त्री का नाम हेमवती था, उसको मतिदृषद्वती भी कहते थे, वह तीनों लोकों में प्रसिद्ध थी उसके प्रसेनजित नाम का एक पुत्र पैदा हुआ। प्रसेनजित के युवनाश्व नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह धार्मिक विचार वाला परम कान्तिमान था जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध था उसके गौरी नाम की स्त्री थी, उसके पति ने एकबार उसे शाप दे दिया। जिसके फल से वह बाहुदा नाम की नदी के रूप में बदल गई उसके गौरिक नाम का पुत्र चक्रवर्ती सम्राट हुआ था। युवनाश्व के मान्धाता नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह पुत्र तीनों लोकों में प्रसिद्ध था। उन मान्धाता के विषय में विद्वानों ने दो श्लोक बताये हैं उनका अर्थ इस प्रकार है "जिस स्थान पर सूर्य भगवान उदय होते हैं और जिस स्थान पर जाकर अस्त होते हैं वह सब मान्धाता का राज्य कहा जाता है। पुराण को जानने वाले विद्वान पुरुष राजा मान्धाता को भगवान विष्णु का स्वरूप बतलाते हैं। शशबिन्दु की कन्या चैत्ररथी का विवाह राजा मान्धाता के साथ हुआ था, वह पूरी पृथ्वी पर सबसे अधिक सुन्दर थी। उस परम पतिव्रता चैत्ररथी का नाम विन्दुमती भी था। उसके दस हजार भाई थे, वह अपने सभी भाइयों से बड़ी थी। प्रतिभाशाली राजा मान्धाता ने उस अपनी स्त्री के साथ सम्भोग करने से तीन पुत्र पैदा किये, इन पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं–पुरुकुत्स, अम्बरीष तथा तीसरे पुत्र का नाम मुचुकुन्द था। राजा अम्बरीष के दूसरे युवनाश्व पुत्र पैदा हुये। युवनाश्व के हरित नाम के पुत्र पैदा हुये, हरित के शूरि नाम के पुत्र पैदा हुये। ये सभी अंगिरा ऋषि के पुत्र ब्राह्मण कहलाते थे। राजा पुरुकुत्स के त्रसदस्यु नाम के पुत्र पैदा हुये, ये नर्मदा में पैदा हुये थे। त्रसदस्यु के सम्भूत नाम के पुत्र पैदा हुये। सम्भूत के अनरराय नाम के परम प्रतापी पुत्र पैदा हुये।

इन अनरण्य ने प्राचीन काल में त्रिलोकी विजय प्राप्त के विषय में रावण का वध किया था। राजा अनरण्य के त्रसदबूव नाम के पुत्र पैदा हुये। इनके पुत्र का नाम हर्यश्व था। राजा हर्यश्व के हषद्वती में बसुमत नाम के पुत्र पैदा हुये। राजा वसुमत के त्रिधन्वा नाम के परम धार्मिक पुत्र पैदा हुये। राजा त्रिधन्वा के त्रय्यारुण नाम के प्रभावशाली राजा पैदा हुये। इनके पुत्र का नाम सत्यव्रत था, इन्होंने विदर्भ राजा की स्त्री का हरण किया था। इन परम बलवान राजा सत्यव्रत के विष्णु वृद्ध नाम के पुत्र पैदा हुये। इनके वंश में पैदा होने वाले मनुष्य विष्णुवृद्ध कहलाते हैं। अंगिरा के वे सभी पुत्रगण क्षत्रिय और ब्राह्मण वर्ण के हैं। परम बुद्धिमान सत्यव्रत ने अपनी भावी इच्छा के वश होकर बल पूर्वक दुराचरण किया था, उसके इस अधर्मी चरण से असन्तुष्ट होकर उनके पिता त्रय्यारुण ने उनको त्याग दिया था। और क्रोधित होकर उससे कहा कि "तुम हमारे घर से निकल जाओ।' तब उसने अपने पिता से कहा कि 'मैं कहाँ जाऊँ'। तब उसने कहा कि तू जाकर चाण्डालों के साथ निवास कर, हे कुल को कलंकित करने वाले! तुम्हारे जैसे दुष्ट पुत्र से मैं पुत्रवान होने की इच्छा नहीं रखता।' हे प्रतापशाली! पिता के इस प्रकार निरादर पूर्ण शब्दों को सुनकर राजा सत्यव्रत अपने नगर से बाहर निकल गये। उस समय सत्यव्रत को महर्षि वशिष्ठ ने भी नहीं रोका। तब पिता के त्यागे जाने पर बुद्धिमान वीर सत्यव्रत चाण्डालों की बस्ती में जाकर रहने लगे, और उनके पिता भी वन को चले गये। इस पाप से उस देश में बारह वर्ष वर्षा नहीं हुई, उसी देश में विश्वामित्र जी भी अपने घर बच्चों को त्याग कर सागर के किनारे जाकर कठिन तप करने लगे। विश्वामित्र जी की स्त्री ने अपने बीच के लड़के को गले में बांध कर और पुत्रों के पालने के लिये उसको सौ गायों के बदले में बेच दिया। ब्रतपरायण, धार्मिक राजा सत्यव्रत ने विश्वामित्र के बीच के लड़के को इस प्रकार गले में बंधा और दुखी देखकर उसको दुख से छुड़ा कर उसका पालन पोषण किया। उस पुत्र के गले में बँधने के कारण ही विश्वामित्र के बीच के पुत्र का नाम गालव पड़ा

था। इस प्रकार विश्वामित्र के पुत्र को राजा सत्यव्रत ने बचाया था। तब राजा सत्यव्रत ने अपनी भक्ति सत्य प्रतिज्ञा तथा विनय धर्म-परायणता से विश्वामित्र के पुत्रों और स्त्री का पालन पोषण भी किया। विश्वामित्र के आश्रम के पास ही राजा सत्यव्रत मृगों, सुअरों तथा अन्य वन के जीव जन्तुओं को मार कर उनके मांस को पका कर खाते थे, तथा मौन व्रत धारण करके बारह वर्ष तक पिता की आज्ञा से चाण्डालों की बस्ती में जाकर रहे। इधर वशिष्ठ जी पिता पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में अयोध्या, राज्य तथा अन्तपुर की रक्षा करते रहे। सत्यव्रत अपने बाल स्वभाव के कारण तथा भावीवश वशिष्ठ जी पर अधिक क्रोधित थे, क्योंकि अपने पिता द्वारा निकाले जाने पर जब वे रोते हुये देश से बाहर आये तो वशिष्ठ जी ने उनको नहीं रोका। विवाह संस्कार में सातवें चरण में मन्त्रों का उच्चारण समाप्त होता है सप्तसदी के होने के बाद ही विवाह कार्य सम्पन्न होता है, किन्तु उसी सप्तसदी के समाप्त होने के समय पर ही उन्होंने विदर्भ राज की स्त्री को बल पूर्वक हर लिया था। वशिष्ठ ऋषि धर्म की मर्यादा को जानने वाले थे, अतः उनको यह कार्य उचित न लगा, और मन्त्रों की मर्यादा नष्ट होने की वजह से उन्होंने सत्यव्रत के ऊपर क्रोध प्रकट किया। वशिष्ठ जी ने धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के कारण ही कुमार सत्यव्रत पर क्रोध किया था, लेकिन कुमार-सत्यव्रत भी इनके निकाले जाते समय उनके मौन का कारण न समझ सके। वशिष्ट जी ने सोचा कि, पिता की मृत्यु के बाद इन्द्र ने बारह वर्ष तक अधर्म बढ़ने के कारण वर्षा नहीं की। वन में सत्यव्रत भी पिता की आज्ञा मानकर दीक्षा ग्रहण करके चाण्डालों की बस्ती में बारह वर्ष तक निवास कर रहा है। संसार में मनुष्यों को जीविका चलाने का साधन असाध्य हो गया। महर्षि वशिष्ठ ने यह सोच कर सत्यव्रत को वन में जाते समय नहीं रोका कि सत्यव्रत कठिन तप करने के बाद उसके आने पर उसके वंश का निस्तार तो हो ही जायगा, और उससे कहा कि मैं तुमको राज्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूँ।' वन में आकर एक समय बलशाली सत्यव्रत को कहीं से मांस न मिला, तो उसने खाने की

इच्छा से महर्षि वशिष्ट की कामधेनु गाय को देखा। सत्यव्रत क्रोध, मोह, लोभ के तथा थके मांदे होने के कारण सोचने लगे कि 'मैं चाण्डालों के साथ तो रह ही रहा हूँ, क्यों न इन्हीं जैसे आचरण करूँ, और इसी गाय को मार कर अपनी भूख की तड़प को शान्त करूँ।' ऐसा सोचकर उन्होंने महर्षि वशिष्ठ जी की कामधेनु गाय के मांस को स्वयं खाया, और महर्षि वसिष्ठ जी के पुत्रों को भी खिलाया। महर्षि वशिष्ठ जी ने जब यह सुना तो उनको बहुत दुख हुआ और उन्होंने सत्यव्रत को छोड़ दिया और बोले कि हे क्रूर उससे कर्म करने वाले! अब हम तुमको गिरा रहे हैं। हे अधम पुरुष! यदि तुम्हारे ये तीन शंकु न होते तो तुम्हारे ऊपर लोहे का शंकु गिराता। तुमने ये तीन धार्मिक अपराध किए हैं वह इस प्रकार हैं पहला कि तुमने पिता असन्तुष्ट किया, दूसरा गुरु की कामधेनु गाय को मार दिया, तीसरा बिना संस्कार के मांस भक्षण किया। अतः तुमने ये बहुत ही भारी अपराध किये हैं। महा तपस्वी वशिष्ठ जी ने उनके तीन शंकु के समान अपराधों का विचार करके उनका नाम त्रिशंकु रख दिया जब विश्वामित्र जी इधर तपस्या करके उठे, तो उन्होंने देखा कि उनके पुत्रादिकों और स्त्री का पालन पोषण सत्यव्रत कर रहे हैं तो उन्होंने त्रिशंकु पर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया, सत्यव्रत ने विश्वामित्र से अपने शाप का पूर्ण वर्णन कह दिया विश्वामित्र ने त्रिशंकु को बारह वर्ष बिना वर्षा के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्य पर बिठाया, और उससे सभी यज्ञादि शुभ कार्य करवाने लगे। ऐसा करते देख कर सभी देवगण तथा महर्षि वशिष्ठ जी देखते ही देखते रह गये। यज्ञावसान करते समय त्रिशंकु के स्नान करने से पापनाशिनी कर्मनाशा नाम की नदी प्रकट हुई, वह नदी विन्ध्याचल पर्वत के पास जंगलों और पहाड़ियों में होकर बहती है। वह कर्मनाशा नदी पुण्यदायी पवित्र और मंगल कारी है। इस प्रकार विश्वामित्र जी ने सत्यव्रत को स्वर्ग में स्थित किया, इन सब कार्यों को वशिष्ठ जी देखते ही रह गए। विद्वानों के इस विषय में दो श्लोक

वर्णित हैं। वह इस प्रकार हैं—"महामुनि विश्वामित्र जी की कृपा से त्रिशंकु ने स्वर्ग को प्राप्त किया, उस विश्वामित्र की कृपा से वही त्रिशंकु महा तेजस्वी होकर देवों के साथ शोभायमान होते हैं। त्रिशंकु रूप ग्रह के आकर्षण से विभूषित होकर, तीन प्रकार के भावों से अलंकृत हेमन्त में चन्द्रमा के समान सुन्दर एक परम सुन्दरी रमणी उसके पास धीरे धीरे जाती है।' सत्यव्रतराजा की स्त्री का नाम सत्यव्रता था, वह कैकय वंश में पदा हुई थीं। उस सत्यव्रता स्त्री ने राजा हरिश्चन्द्र नाम के धार्मिक पुत्र को पैदा किया, राजा हरिश्चन्द्र त्रिशंकु के पुत्र रूप में प्रसिद्ध हुये थे। उसने अपना राज्य करते समय कितने ही राजसूय यज्ञ सम्पन्न किये थे। वह राजा हरिश्चन्द्र सम्पूर्ण पृथ्वी पर एकच्छत्र राज्य करते थे। हरिश्चन्द्र के रोहित नाम के बहुत बलवान पुत्र पैदा हुये, रोहित के हरित नाम के पुत्र पैदा हुये, हरित के चंचु नाम का पुत्र पैदा हुआ। चं चुके विजय और सुदेव नाम के दो पुत्र हुये। विजय सभी क्षत्रियों को जीतने वाला था इसी कारण उसका नाम भी विजय था। बिजय का पुत्र रुरुक हुआ। जो अपने समय में बहुत ही धर्मात्मा था। रुरुक का पुत्र हृतक हुआ। हृतक के बाहु नामक पुत्र हुआ। हैहय और तालजंघ के वंशों में उत्पन्न होने वालों ने इस बाहु को परास्त कर दिया क्योंकि यह व्यसनी था। उनके साथ शक यवन काम्बोज पारद पल्हवों के वंशज भी थे। सतयुग के समय में भी राजा बाहु धार्मिक राजा नहीं था। उस राजा बाहु का पुत्र विष के साथ उत्पन्न हुआ उसका नाम सगर पड़ा। भृगु के आश्रम में उसकी रक्षा तुर्व ने की थी राजा सगर ने भार्गव ऋषि से आग्नेय अस्त्र प्राप्त किया और हैहय और तालजंघ के वंशजों का संहार किया। शक, पल्हवों पारदों और अन्य क्षत्रियों को भी हराया। और धर्म से वंचित कर दिया।

ऋषि बोले—हे सूत जी! राजा सगर विष से किस प्रकार उत्पन्न हुये। और किस लिये उस अच्युत राजा ने शक आदि को परास्त किया।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! प्राचीनकाल में राजा बाहु के व्यसनी होने पर उसका सारा राज्य हैहय शकों के साथ यवनों, पारद, कम्बोज और पल्हवों ने आक्रमण करके छीन लिया। इन सभी बलवान राजाओं के द्वारा राज छीन लेने पर बाहु अपनी पत्नि के साथ जंगल को चला गया। कुछ समय बाद एक दिन राजा जल लेने के लिए गया और अत्यन्त बुढ़ापे के कारण उसकी रास्ते में ही मृत्यु हो गई। उनकी पत्नि जिसका नाम यादवी था उसके साथ मरने को तैयार हुई, वह उस समय गर्भवती थी। उसकी सपत्नी ने उसके गर्भ को मारने की नीयत से उसे विष दे दिया। पति की चिता बनाकर यादवी को उस पर बैठा दिया। और अग्नि जलादी उसी बीच भार्गव और्व मुनि वहां आ गये। और उन्होंने उसे करुणावश बचा लिया। उन्हीं और्व मुनि के आश्रम पर यादवी ने सपत्नी द्वारा दिए गए विष के साथमहाबाहु सगर को उत्पन्न किया। मुनिनेसगर का जात कर्म आदि संस्कार किए। वेदशास्त्रों के साथ सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन कराया और शस्त्र अस्त्र भी सिखाये। उसी समय उन जमदग्न के पुत्र और्व मुनि से उस महान आग्नेयास्त्र को पालिया जिसके तेज को महापराक्रमी राक्षस भी सहन नहीं कर सकते थे। उसी अस्त्रबल तथा शस्त्र बल से तथा अपने पराक्रम से राजा सगर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयों का वध इस प्रकार करा दिया जैसे प्रलय में रुद्र जीवों का संहार कर देते हैं। हैहयों को मारने के बाद शक, पवन पारद कम्बोज और पल्हवों को भी मारने का निश्चय किया। सगर के पराक्रम से भयभीत होकर वे सब वशिष्ठ महर्षि की शरण में पहुँचे। वशिष्ठ जी ने उन्हें अभय दान दिया। गुरु वशिष्ठ के वचन तथा अपनी प्रतिज्ञा दोनों की रक्षा करते हुये उन सभी की वेषभूषा बदल दी तथा धर्म नष्ट कर दिये। शकों का आधा सिर काट दिया और उन्हें मुण्डित कर दिया। यवनों के पूरे शिर काट कर मुण्डित बनाकर छोड़ दिया कम्बोजों को भी पूरा शिर मुण्डित करके छोड़ा। पारदों के केश छोड़कर दाढ़ी मूछें मुड़ाकर छोड़ दिया। पल्हवों को

केवल दाढ़ी रखवा कर ही छोड़ दिया। उस महा बलवान राजा ने इन सबको वेदाध्ययन, यज्ञ हवन आदि से भी सर्वथा वंचित रखा ये शक यवन, कम्बोज, पह्लव, पारद, कलिस्पर्श नाहिषिक दार्व, चोल एवं खस जाति के सभी लोग पहले क्षत्रिय थे। इनको महाबलवान राजा सगर ने धर्म से नष्ट करके वशिष्ठ जी के कहने के कारण छोड़ दिया था। फिर उस धर्मविजयी राजासगरनेअश्वमेध यज्ञ कियाऔर यज्ञ का घोड़ा छोड़ा। समस्तभूमण्डल पर घुमाते समय वह अश्व का घोड़ा दक्षिण समुद्र प्रान्त में चुरालिया गया। और पृथ्वी के भीतर छिपा लिया गया। इसके बाद सगर ने उस समुद्र के प्रान्त को अपने पुत्रों के द्वारा खुदवा डाला। उसके पुत्र खोदते खोदते उस समुद्र के छोर तक पहुँच गये जहां भगवान नारायण, कृष्ण हंस, प्रजापति, हरि आदि पुरुष आदि अनेक नामों से कहे जाने वाले प्रभु कपिल वेष में रहते हैं। राजा सगर के पुत्रों ने उनको चोर समझा और उनके सामने पहुंचे परन्तु उनका तेज सहन न होने से वे सब वहीं भस्म हो गये। केवल चार पुत्र शेष रहे जिनके नाम वर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और पंचवन थे। राजा सगर के वंश को बढ़ाने वाले ये चार ही पुत्र थे। भगवान नारायण ने राजा को सुन्दर वरदान दिये। जिससे उनके वंश का क्षय न हो, सौ अश्वमेध यज्ञों का सुअवसर, समुद्र का पुत्रत्व तथा अनन्त समय तक स्वर्ग में निवास आदि का वरदान मिला। सभी नदियों के स्वामी समुद्र उस समय उनके पास आकर कहने लगे कि यह अश्व लीजिये और नमस्कार किया। बस इसीसे राजा सगर के पुत्र होने का समुद्र को सुअवसर मिला। इसके पश्चात उस अश्व को प्राप्त कर राजा सगर ने पुनः सौ अश्व मेध यज्ञ निर्विघ्न समाप्त कर दिये। उसके प्रथम यज्ञ में जो साठ हजार पुत्र थे वे सभी भस्म होकर नारायण के तेज में ही लीन हो गये।

ऋषि बोले—हे सूत जी! राजा सगर के ये साठ हजार पुत्र किस प्रकार उत्पन्न हुये थे सो कथा हमें बतलाने की कृपा कीजिये।

सूत जी बोले—राजा सगर के दो पत्नि थीं बड़ी पत्नी विदर्भ राजा की पुत्री केशनी थी और छोटी पत्नि राजा अरिष्टनेमी की पुत्री थी

जो परम धार्मिक तथा रूपमें समस्त भूमण्डल पर अकेली थीं। उसका नाम सुमति था। महर्षि और्व ने राजा को वरदान दिया था कि उनकी एक पत्नि से केवल एक पुत्र होगा तथा एक के द्वारा साठ हजार पुत्र उत्पन्न होंगे। केशिनी ने एक वंश कर्त्ता पुत्र मांगा तथा सुमति ने साठ हजार पुत्रों का वरदान मांगा। तदनुसार समय आने पर बड़ी रानी केशिनी ने समय आने पर ज्येष्ठ पुत्र असमंज 'काकुत्स्थ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। यशस्वनी रानी सुमति ने अपने गर्भ से एक 'तुम्ब' पैदा किया। जिसमें साठ हजार पुत्र निकले। उत्पन्न होने के बाद वह गर्भ सभी घी के पात्रों में रख दिए गये। राजा ने उनको साठ हजार धायों को पालन पोषण के लिए सौंपा। नौ माह बाद वे साठ हजार पुत्र बाहर (घी के पात्रों से) निकले। जिन्हें देखकर सगर ने परम सुख माना। फिर वे सभी राजकुमार युवा हुए। इस प्रकार वे साठ हजार पुत्र हुये।

राजा सगर के बड़े पुत्र असमंज बड़े बलवान थे उनका दूसरा नाम वर्हिकेतु भी था। पहले वे नगर के अहित कर कार्यों में लगे रहे। इससे उनको पिता ने देश निकाला दे दिया था। असमंजस के अंशमान नामक पुत्र हुए। अंशमान के दिलीप हुये। जो बहुत विख्यात हुये। दिलीप के भागीरथ नामक वीर पुत्र हुए। इन्हीं भगीरथ ने अपनी क्रियाओं एवं पूजा के द्वारानदियों मेंश्रेष्ठ गंगाजी को पुत्री रूप में प्राप्त किया। और उनकी पावन धारा से समुद्र तक पृथ्वी को शोभायुक्त किया। पुराण वेता इसका सदा गान करते हैं कि राजा भागीरथ ने गंगा को पृथ्वी पर उतारा तथा ऐतिहासिक पुरुष भी गंगा को भागीरथी कहते हैं। राजा भागीरथ के पुत्र श्रुत हुए। उनका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ। जो बड़ा ही धर्मात्मा था नाभाग का पुत्र अम्बरीष था, उसका पुत्र सिन्धु द्वीप हुआ। सिन्धु द्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ। वह महाबलशाली राजा था। उसका पुत्र ऋतुपर्ण हुआ ऋतुपर्ण राजा नल का सुहृद और वीर था। दिव्य अक्ष विद्या में वह बड़ा चढ़ा था पुराणों, में दो नल हुए हैं,

ऐसा प्रसिद्ध है। एक राजा बीरसेन के पुत्र नल थे। दूसरे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुये थे। राजा ऋतुपर्ण के पुत्र सर्वकाम हुये। सर्वकाम के पुत्र सुदास थे। सुदास का दूसरा नाम हंसमुख भी था। सुदास के पुत्र सौदास कहे गये। जो कल्माषपाद तथा मित्रसह नाम से प्रसिद्ध थे। महातेजस्वी महर्षि वशिष्ठ जी ने इक्ष्वाकु वंश को वृद्धि के लिये कल्पाषपाद की भार्या ने अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। अश्मक का पुत्र उरकाम हुआ। उरकाम का पुत्र मूलक था। मूलक के विषय में यह प्रसिद्ध है कि 'मूलक' राम यानी परशुराम के डर से सदा स्त्रियों में निवास करता था। समर्थ होने पर भी अपने कवच को स्त्रियों को पहनाये रखता था तथा स्वयं वस्त्र विहीन रहता था। और स्त्रियों के वेष में रहता था। राजा मूलक का पुत्र धर्मात्मा शतरथ हुआ। उसका भी पुत्र एडविड परम कन्ति वाला हुआ। उसके पुत्र प्रतापशाली कृतशर्मा हुये उसके तेजस्वी विश्वमहत हुये। उनके पुत्र राजा दिलीप हुये। उनका दूसरा नाम खट्वांगद भी था। वे राजा दिलीप स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर केवल दो घड़ी तक जिन्दा रहे। वे अपने सत्य बुद्धि एवं बल में तीनों लोकों को परास्त कर चुके थे। राजा खट्वांगद के पुत्र रघु दीर्घबाहु वाले हैं। रघु राजा के अज नाम के पुत्र पैदा हुये। और अज राजा के अयोध्या के परम प्रतापी राजा दशरथ इक्ष्वाकु वंश में पैदा हुये। राजा दशरथ के पुत्र भगवान रामचन्द्र जी हुये, भगवान राम परम धार्मिक थे, सभी लोकों में वह प्रसिद्ध थे। राजा दशरथ जी के तीन पुत्र और थे, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न थे। शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार कर और मधुवन में घुसकर वहीं पर मथुरा नाम की पुरी को बसाया। शत्रुघ्न का विवाह राजा जनक की पुत्री के साथ हुआ था, उनके सुबाहु और शूरसेन नाम के दो पुत्र पैदा हुये। उन पुत्रों ने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरा पुरी में राज्य किया। लक्ष्मण के चन्द्रकेतु और अङ्गद नाम के दो पुत्र पैदा हुये, उन दोनों ने हिमवान पर्वत के सीमावती प्रान्त तक राज्य किया उनके बड़े पुत्र अंगद ने कारपथ

देश में अंगदीय नाम की नगर बसाया और उनके छोटे पुत्र चन्द्रकेतु ने चन्द्रवकां नाम की पुरी को बसाया था। भरत जी के तक्ष और पुष्कर नाम के दो पुत्र पैदा हुये। तक्ष ने अपनी तक्षशिला नाम की पुरी को बसाया, और पुष्कर ने पुष्करावती नाम की पुरी को बसाया, इन दोनों की राजधानी गान्धार देश में थी, जो पुराणों के जानने वाले विद्वान पण्डित हैं वे रामचन्द्र जी के विषय में उनके महात्म्य को प्रकट करने वाली पूर्ण यशोगाथाओं का गान करते हैं। वे इस प्रकार कहते हैं कि भगवान श्यामल वर्ण के हैं। लाल नेत्र वाले हैं, तेज से चमकते हुये मुख वाले और मितभाषी युवा थे, वे बहुत सुन्दर छटा वाले थे, उनकी दोनों भुजा घुटनों को छूती थीं, उनका सिंह के समान विशाल कन्धा था, उनके भुजदण्ड भी विशाल थे राम ने दस हजार वर्षों तक राज्य किया, उनके समय राज्य में चारों तरफ ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद की सुन्दर ध्वनि सुनाई पड़ती थी। उनके धनुष की प्रत्यंचा की आवाज बहुत कठोर थी। उनके राज्य में किसी भी मनुष्य को किसी प्रकार का दुख नहीं था, मनुष्यों में खूब खाओ पीओ, और खूब दान धर्म करो इस प्रकार धूम मची रहती थी। उन भगवान राम ने पृथ्वी पर जन्म लेकर मनुष्यों के साथ निवास करके देवताओं का एक बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया। भगवान राम ने पुलस्त्य ऋषि के वंश में पैदा होने पापात्मा रावण का वध किया था। दशरथ के पुत्र भगवान राम परम बलशाली, सर्व गुण सम्पन्न अपने अद्वितीय नेत्र से प्रकाशित थे। उन्होंने सूर्य और अग्नि को भी अपने तेज से क्षीण कर दिया था। परम प्रभाव शाली राजा इक्ष्वाकु वंश में पैदा होने वाले भगवान राम ने रावण को उसके परिवार सहित नष्ट कर दिया, और फिर आप स्वर्ग को चले गये। राम के लव और कुश नाम के दो पुत्र पैदा हुये, उन दोनों का राज्य इस प्रकार था। कुश ने कौशला नाम का एक प्रसिद्ध नगर बसाया, उनकी राजधानी कुशस्थली नाम से प्रसिद्ध थी, कुश ने

विन्ध्याचल पर्वत के सुन्दर शिखर पर यह नगर बसाया था। वीर लव ने श्रावस्ती नाम की पुरी को बसाया था। कुश के वंश का वर्णन अब मैं आपको सुनाऊंगा।

कुश के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, वे सभी अतिथियों का खूब आदर सत्कार करते थे, वे अतिथि नाम से प्रसिद्ध हुये। अतिथि के निषध नाम के पुत्र पैदा हुये। निषध राजा के नल नाम के पुत्र पैदा हुये, पुण्डरीक के क्षेमधन्वा नाम के पुत्र पैदा हुये। क्षेमधन्वा के परम बलवान देवानीक नाम के राजा पैदा हुये। देवानीक के अहीनगु नाम के पुत्र पैदा हुये, अहीनगु के परिपात्र नाम के पुत्र पैदा हुये, परिपात्र के दल नाम के पुत्र पैदा हुये, दल के वल नाम के पुत्र पैदा हुये। वल राजा के ओङ्क नाम के बहुत धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, ओङ्क के वज्रनाभ नाम के पुत्र पैदा हुये, बज्रनाभ के शङ्खन नाम के पुत्र पैदा हुये, शङ्खन के ध्युषिताश्व नाम के पुत्र पैदा हुये। राजा ध्युषिताश्व के विश्वसह नाम के पैदा हुये। राजा विश्वसह के हिरण्यनाभ कौशल नाम के पुत्र हुये, उनके वशिष्ठ नाम के पुत्र पैदा हुये, वे वशिष्ठ जी जैमिने के पौत्र शिष्य रूप में पुकारे जाते हैं। इन्होंने पांच सौ संहिताओं का विधिवत् अध्ययन किया है। विद्वान याज्ञवल्क्य जी ने इन्हीं से सांङ्गोपांग विद्या ग्रहण की। उनके पुष्प नाम के पैदा हुये, पुष्प के ध्रुवसन्धि नाम के पैदा हुये ध्रुवसन्धि के सुदर्शन नाम के पैदा हुये सुदर्शन के अग्निवर्ण पैदा हुये। अग्निवर्ण के शीघ्रक नाम के पैदा हुये, शीघ्रक के मनु पैदा हुये। राजा मनु योग मार्ग के सहारे कलाप नाम के ग्राम में निवास करते थे। ऐश्वर्यशाली ये मनु इक्कीसवें युग में क्षत्रिय धर्म के पुनः प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध हुये। मनु के प्रसुश्रुत पैदा हुये। प्रसुश्रत के सुसन्धि नाम के पुत्र पैदा हुये। सुसन्धि के मर्ष नाम के पुत्र पैदा हुये, इनको सहस्वान नाम से भी पुकारते थे सहस्वान के विश्रुतवान नाम के पुत्र पैदा हुये,

विश्रुतवान के वृहद्बल नाम के पुत्र हुये इक्ष्वाकु वंश में पैदा होने वाले प्रायः यही सब राजा हैं। इस वंश के जो मुख्य मुख्य राजा थे, उनका ही वर्णन किया है। जो मनुष्य अदिति के पुत्र विवस्वान की इस सृष्टि वर्णन का जो भलीप्रकार पाठ करता अथवा सुनता है, वह सन्तानवान होकर विवस्वान के पुत्र मनु के साथ निवास करता है। जो मनुष्य की भुजाओं को पुष्टि देने वाला है, तथा श्राद्धों में पूजने योग्य पितरों और देवगणों का वर्णन है, इसका पाठ करता है अथवा सुनता है वह सभी पापों से छूट कर सुख समृद्धि और दीर्घायु को प्राप्त करता है। बिना सन्तान वाले को पुत्र प्राप्त होता है तथा स्वर्ग मिलता है।

[श्री वायु महापुराण का वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन नाम का अठासीवां अध्याय समाप्त]

नवासीवाँ अध्याय

[वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषिगण ! इसके बाद अब मैं आपको विकुक्षि के भाई राजा निमि के वंश का वर्णन करूंगा। राजा निमि ने गौतम ऋषि के आश्रम के चारों तरफ जयन्त नाम का एक सुन्दर नगर बसाया, वह नगर देवपुर के समान सुन्दर और प्रसिद्ध था, उन्हीं निमि राजा के वंश में सत्तम जनक ने नेमि नाम के धर्मात्मा पुत्र को पैदा किया। वे सभी के आदरणीय माने जाते हैं। तेजस्वी राजा इक्ष्वाकु ने जिस पुत्र को पैदा किया, वह महर्षि वशिष्ठ जी के शाप से विदेह शरीर रहित हो गया। विदेह के अरणी के तीन पर्वों के मंथन करने से मिथि नाम के पुत्र पैदा हुये, इस प्रकार जनन होने के कारण उनका नाम जनक भी पड़ा। वे मिथि नाम के राजा बहुत धर्मात्मा और बलवान थे, उन्होंने अपने मिथि नाम पर ही मिथिलापुरी नाम की पुरी को बसाया था। राजा जनक के उदावसु नाम के पुत्र पैदा हुये, उदावसु से नीन्द वर्धन नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, नीन्द वर्धन

के सुकेत नाम के धार्मिक पुत्र पैदा हुए, सुकेत के देवरात नाम के महावलवान पुत्र पैदा हुए। देवरात के बृहदुत्थ नाम के पुत्र पैदा हुए राजा वृहदुत्थ के महावीर्य नाम के परम प्रतापी राजा पैदा हुए, महावीर्य के धृतिमान नाम के पुत्र पैदा हुए, धृतिमान के सुधृति नाम के पुत्र पैदा हुए। सुधृति के धृष्टकेतु नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुए। धृष्टकेतु के हर्यश्व नाम के पुत्र पैदा हुए, हर्यश्व के मरु और मरु के प्रतित्वक नाम के पुत्र पैदा हुए। प्रतित्वक के कीर्तिरथ नाम के पुत्र पैदा हुये। कीर्तिरथ राजा के देवमीढ नाम के पुत्र पैदा हुए, देवमीढ के विबुध नाम के पुत्र पैदा हुये और विबुध के धृति नाम के पुत्र पैदा हुये। राजा धृति के कीर्तिराज नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये। कीर्तिराज के महारोमा नाम के पुत्र पैदा हुये, महारोमा के स्वर्णरोमा नाम के पुत्र पैदा हुये, स्वर्णरोमा के ह्रस्व रोमा नाम के पुत्र पैदा हुये, ह्रस्वरोमा के सीरध्वज नाम के पुत्र पैदा हुये, सीरध्वज राजा के पृथ्वी खोदते समय सीतादेवी प्रकट हुईं, श्रीसीता जी भगवान राम की परम साध्वी पतिव्रता प्राणप्यारी पत्नि थीं

शांशपायन बोले—हे सूत जी! राजा सीरध्वज के पृथ्वी खोदते समय सीताजी कैसे प्रकट हुईं, और राजा सीरध्वज अपने किस मतलब से उस स्थान की पृथ्वी को जोत रहे थे।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अश्वमेध यज्ञ के समय राजा सीरध्वज ने विधिपूर्वक जिस अग्नि क्षेत्र का कर्षण किया था, उसी से सीता जी का जन्म हुआ था। राजा सीरध्वज के भानुमान नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह पुत्र मैथिल नाम से भी प्रसिद्ध है उसके भाई का नाम कुशध्वज था, वह काशी का राजा हुआ। राजा भानुमान के प्रद्युम्न नाम का प्रतापी पुत्र पैदा हुआ। प्रद्युम्न के मुनि नाम का पुत्र पैदा हुआ। मुनि के उर्जवह नाम के पुत्र पैदा हुये। उर्जवह के सुतद्वाज नाम के पुत्र हुए, सुतद्वाज के शकुनि नाम के पुत्र पैदा हुए, शकुनि के स्वागत नाम का पुत्र पैदा हुआ, स्वागत के सुवर्चा नाम का पुत्र पैदा हुआ। सुवर्चा के श्रुत नाम के तथा श्रुत सुश्रुत नाम

के पुत्र पैदा हुए। सुश्रुत के जय नाम के पुत्र हुये, जय के विजय नाम के पुत्र पैदा हुये। विजय के ऋत नाम का पुत्र पैदा हुआ, ऋत के सुनय नामक पुत्र पैदा हुआ, सुनय के वीतहव्य नाम के पुत्र पैदा हुए, वीतहव्य के धृति नाम के पुत्र पैदा हुये, धृति के बाहुलाश्व नाम के पुत्र पैदा हुये, बहुलाश्व के कृति नाम के पुत्र पैदा हुए। इन्हीं राजा कृति तक महान प्रतापी राजा जनक का वंशज माना जाता है। मैंने आपको मैथिल राजाओं के वंश का वर्णन सुनाया है अब चन्द्रमा के वंश का वर्णन करूँगा।

(इति श्री वायु महापुराण का वैषम्वत मनु के वंश का वर्णन नाम का नवासीवां अध्याय समाप्त हुआ)

नब्बेवाँ अध्याय

(चन्द्रमा के वंश का वर्णन)

सूतजी बोले—हे ऋषियो! चन्द्रमा के पिता अत्रि ऋषि थे, जो बहुत तेजस्वी और ऐश्वर्यशाली थे। वे सभी लोकों की हित की इच्छा से अपनी तपस्या में संलग्न रहते थे। वे सदा शुभ कार्यों में मन वचन और कर्म से तत्पर रहते थे। काष्ठ, भीत पत्थर की चट्टान की तरह अत्रि ऋषि ऊपर की तरफ हाथ उठाकर सदा तपस्या करते रहते थे। देवताओं के हित के लिये महर्षि अत्रि ने तीन हजार वर्षों तक कठिन तपस्या की। ब्रह्मचारी उर्ध्वरेता महर्षि अत्रि ने इतने लम्बे समय तक पलक न मारने की इच्छा की। इस कठिन तपस्या के कारण अत्रि ऋषि का शरीर चन्द्रमा की तरह निर्मल हो गया। आत्मा को वश में रखने वाले भगवान अत्रि के शिरोभाग का तेज बहुत बढ़ गया, ठीक उसी समय दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए उनके दोनों नेत्रों से सोम नीचे गिर पड़ा ब्रह्माजी की आज्ञा से दिशाओं ने उस गर्भ को धारण कर लिया, लेकिन एक साथ मिलकर धारण करने पर भी वे उस गर्भ को धारण न कर सकीं। बहुत तेजवान वह गर्भ थोड़ी देर के लिये दिशाओं पर धारण नहीं हुआ, और वे सब स्त्रियां शक्ति हीन होगईं, तो सभी लोकों का मनोभावन शीतल

किरणों वाला वह गर्भ पृथ्वी पर गिर पड़ा प्रजापति ब्रह्मा जी ने उसको पृथ्वी पर गिरा हुआ देखकर उस सोम को अपने रथ पर बिठा लिया। हे द्विजवर्य! इसी सोम चन्द्रदेव प्रकट हुए। जो सभी दिव्यगुण सम्पन्न धर्मार्थ में लगे रहने वाले सत्य प्रतिज्ञ हैं। चन्द्रमा सफेद घोड़ों के रथ पर विराजमान रहते हैं। अत्रि ऋषि के पुत्र चन्द्रमा के इस पृथ्वी पर गिरते समय ब्रह्माजी के सात मानस पुत्रों ने उनकी स्तुति की। अंगिरा और भृगु के पुत्रों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा आंगिरस के मन्त्रों से उनकी स्तुति की। इस प्रकार इन सबकी स्तुति करने पर चन्द्रमा ने अपने तेज से तीनों लोकों को सन्तुष्ट कर दिया, सबको अपने शान्त स्निग्ध प्रकाश से प्रसन्न कर दिया। चन्द्रमा ने ब्रह्मा जी के रथ पर बैठकर सागर तक फैली हुई पृथ्वी की इक्कीस बार परिक्रमा की। चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा। वह सभी औषधियों के रूप में बदल गया। उन्हीं औषधियों से चन्द्रमा सभी लोकों तथा चार प्रकार की प्रजाओं का पालन करते हैं। हे विप्रगण! इस समस्त संसार को पुष्टि देने वाले भगवान चन्द्रमा ही एकमात्र हैं। अत्रि ऋषि के परम तपोबल से देवों और ऋषियों की स्तुति से और अपने शुभ कर्मों के कारण चन्द्रमा दश पद्म वर्षों तक कठिन तपस्या करते रहे। सुवर्ण के समान शुभ्र वर्ण वाली देवियों के गर्भ से ही परम तेजस्वी चन्द्रमा पैदा हुए और अपने शुभ कर्मों से वे प्रसिद्ध हुये। हे विप्रवृन्द! इसके बाद ब्रह्माजी ने चन्द्रमा को सभी बीजों का, औषधियों का तथा जल और ब्राह्मणों का सारा कार्य इनके ऊपर छोड़ दिया। इन सबका भार ऊपर आने पर चन्द्रमा का प्रताप तेज बहुत अधिक बढ़ गया, सभी तपस्वियों में आगे रहने वाले चन्द्रमा ने इस पद पर आसीन होकर समस्त संसार को सन्तुष्ट कर दिया। प्रचेता के लड़का दक्ष ने दाक्षायणी के गर्भ से परमतपोनिष्ठा सत्ताईस कन्याओं को पैदा किया और बाद में उन सभी कन्याओं का विवाह चन्द्रमा के साथ कर दिया विद्वान लोग उन्हें नक्षत्र के नाम से पुकारते है। ब्राह्मणों के अधिष्ठाता चन्द्रमा ने इतने

बड़े राज्य पद को प्राप्त करके एक विराट राजसूय यज्ञ किया, इस यज्ञ के अनुष्ठान में लाखों की सम्पत्ति दक्षिणा में दान दी थी। उस विशाल राजसूय यज्ञ में भगवान हिरण्यगर्भ उद्गाता के स्थान पर नियुक्त हुए, ब्रह्मा के पद पर ब्रह्मा जी नियुक्त हुए। सदस्य के स्थान पर नारायण विष्णु नियुक्त हुये, सनत्कुमार प्रभृति आदि महर्षियों सहित उस यज्ञ में विराजमान थे। हे विप्रगणो? उस यज्ञ में चन्द्रमा ने अपने मुख्य मुख्य ऋषियों को दक्षिणा रूप में तीनों लोकों को देदिया। चन्द्रमा की कसिनी कुहु, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति और लक्ष्मी ये नौ देवियाँ सेवा करती हैं। उस राजसूय यज्ञ का अवभृथ्य स्नान करने के बाद सभी देव ऋषियों से वरदान प्राप्त करके अपने विशाल राज्य के सिंहासन पर विराजमान होकर दसों दिशाओं को तपाने लगे। हे विप्रवृन्द! जिस चन्द्रमा की ऋषि लोग स्तुति करते थे, इतने कठिन ऐश्वर्य को प्राप्त करने के बाद उन्हें घमण्ड पैदा हो गया वृहस्पति जी की तारा नाम की पत्नि को हर कर ले आये, देवताओं और ऋषियों के कहने पर भी वे तारा को लौटाने को राजी न हुए। हे ब्राह्मणो! उन्होंने किसी प्रकार बृहस्पति जी को तारा वापिस नहीं की। उस समय अंगिरा ऋषि के पुत्र शुक्र उनकी सहायता करने लगे। महान तेजस्वी उशना पहले वृहस्पति जी का शिष्य था। उसी प्रेमभाव के कारण रुद्रदेव वृहस्पति जी की सहायता के लिए तैयार हुए और अपने अजवग नामक कठोर धनुष को लेकर वहाँ आए। परम वलशाली रुद्रदेव ने मुख्य मुख्य महर्षियों के तथा देवताओं के उद्देश्य से उस कठोर अस्त्र का प्रयोग किया, जिससे उसका यश नष्ट होगया। वहाँ प्रत्यक्ष ही तारकामय नाम का युद्ध मच गया, देवों और दानवों के महान युद्ध में सभी लोकों का क्षय हो गया। उस युद्ध में तुषित नाम के तीन देवता बच गए, वे प्रजापति ब्रह्माजी की शरण में आये। पितामह ब्रह्मा जी ने शुक्र तथा भगवान शंकर को युद्ध में से हटा दिया, और तारा वृहस्पति जी को देदी। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली तारा को गर्भवती देख कर वृहस्पति जी

उससे गर्भ त्याग करने के लिये कहा। और बोले कि मेरी भूमि में तुम दूसरे वीर्य को किस प्रकार धारण कर सकती हो? इस प्रकार कहने पर भी तारा ने उस दस्यु हन्तमकुमार को नहीं छोड़ा और फिर शीघ्र ही वह कुमार तृणराशि में जलते हुए अग्नि की तरह पैदा हो गया, और उत्पन्न होते समय ही उस परम ऐश्वर्य शाली ने सभी देवताओं को हत श्री कर दिया। सभी देवता आश्चर्य में पड़ गये, और तारा से कहने लगे कि तुम सब सच बताओ कि यह पुत्र किसका है, चन्द्रमा का है या बृहस्पति का। देवों के इस प्रकार बार बार कहने पर भी तारा ने लज्जा वश कुछ न कहा, तब दस्यु हन्तम कुमार उसको शाप देने लगा, तब प्रजापति ब्रह्माजी फिर पूछने लगे कि हे तारे! तुम सत्य बतलाओ कि यह किसका पुत्र है तब तारा ने प्रभु ब्रह्मा जी से हाथ जोड़कर कहा कि महाराज! यह चन्द्रमा का पुत्र है, तो प्रजापति ब्रह्मा जी ने उसका शिर सूंघ कर परम बुद्धिमान का नाम बुध रखा था। उस समय बुध पूर्व दिशा में घूमने के लिये चल पड़े। राजा की कन्या इला के संयोग से बुध ने एक पुत्र पैदा किया, बुध के परम तेजस्वी पुत्र का नाम पुरुरवा था, वह इला के गर्भ से पैदा होने के कारण ऐल नाम से भी प्रसिद्ध है। बुध ने उर्वशी के संयोग से छः पुत्रों को पैदा किया। चन्द्रमा को तपैदिक रोग हो गया, यक्ष्मा से पीड़ित होकर चन्द्रमा का मुख मण्डल क्षीण होगया, उनकी कान्ति नष्ट होगई तो वे प्रजापति ब्रह्माजी तथा अत्रि के पास आये तो अत्रि ऋषि ने अपने पुत्र के पाप को दूर किया, राज्य यक्ष्मा से ठीक होकर चन्द्रमा का तेज और कान्ति फिर पहले की तरह ही प्रकाशित हो गई। हे विप्र वृन्द! मैंने आप से चन्द्रमा के जन्म का वर्णन किया है अब मैं उनके वंश का वर्णन करूँगा, जो मनुष्य चन्द्रमा के जन्म का वर्णन ध्यान पूर्वक सुनता है उसे धन, आरोग्य, आयु और पुण्य प्राप्त होते है, तथा उनके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

[श्रीवायु महापुराण का चन्द्रमा के जन्म का वर्णन नाम का अध्याय समाप्त]

इक्यानबेवाँ अध्याय

[चन्द्रवंश का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो ! अब मैं आपसे चन्द्रमा के वंश का वर्णन कर रहा हूं। चन्द्रमा के पुत्र बुध पैदा हुये। बुध के पुरुरवा नाम के पुत्र पैदा हुये, वे पुरुरवा बहुत धार्मिक, दानी तथा यज्ञकर्त्ता थे। वह ब्रह्मवेत्ता थे, युद्ध में किसी भी प्रकार शत्रु उनको नहीं हरा सकते थे, वह अग्निहोत्र का उपासक था, उसने यज्ञ करने वालों को सारी पृथ्वी को दान में देदी। वह सदा सत्य बोलता था कर्मशील बुद्धिमान राजा था, वह एकान्त में मैथुन करता था, वह बहुत सुन्दर पुत्र था। उर्वशी अप्सरा ने पुरुरवा को बहुत सुन्दर देखकर अपना मान छोड़कर उसको पति बना लिया। उस उर्वशी के साथ पुरुरवा ने चौंसठ वर्षों तक सुख पूर्वक निवास किया। कभी सुन्दर चैत्ररथ नाम के वन में तथा कभी मन्दाकिनी के सुन्दर तटवर्त्ती प्रान्त में, कभी अलकापुरी में कभी विशालापुरी में, कभी गन्ध मादन पर्वत के शिखरों पर, कभी पर्वतराज सुमेरु की चोटियों पर कभी उत्तर कुरु प्रदेश में, कभी कलाप ग्राम में, कभी सर्वश्रेष्ठ वन में, कभी देवताओं की क्रीड़ा भूमि में उर्वशी के साथ पुरुरवा आनन्द पूर्वक विहार करता रहा।

ऋषियों ने कहा—हे श्रेष्ठ सूत जी ! राजा पुरुरवा को गन्धर्व की सुन्दरी कन्या उर्वशी ने किस प्रकार सभी देवताओं को छोड़कर उसको पति बनाया, आप हमको इसके विषय में बतलाइये। उर्वशी बहुत सुन्दर दिव्यगुण सम्पन्न कन्या थी।

सूतजी बोले—हे ऋषिगण ! शाप के कारण गन्धर्व की कन्या उर्वशी ने मनुष्य पुत्र राजा पुरुरवा को पति बनाया था, उसने प्रतिज्ञा करके इला के पुत्र पुरुरवा के साथ रहने की व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था उसने शाप से छुटकारा पाने के लिये की थी। उसने कहा था कि "हे राजन् ! मैं आपको कामाशक्ति के बिना कभी नंगा नहीं देखूंगी केवल मैथुन के समय यह नियम नहीं रहेगा। शैय्या के

समय दो मेंढ़ा सदा बँधे रहने चाहिये। और मैं एक समय के आहार में केवल घी ही खाऊँगी। जब तक आप इन नियमों का अच्छी तरह पालन करते रहोगे तब तक मैं आपके पास रहूंगी। यही मेरी प्रतिज्ञा है।" जब तक राजा ने इनका दृढ़ता से पालन किया तब तक सुन्दरी उर्वशी उसके साथ रही। इस तरह ब्रह्म शाप के कारण उर्वशी भक्ति पूर्वक ६४ वर्षों तक राजा पुरुरवा के साथ रही। उधर गन्धर्व लोग उसके वियोग में दुखी रहने लगे।

गन्धर्व लोग बोले—हे महा भागे! परम सुन्दरी उर्वशी जिस प्रकार पुनः देवताओं को प्राप्त हो वह उपाय सोचना चाहिये। बातों में प्रवीण विश्वावसु नामक गन्धर्व ने कहा—हे गन्धर्वो! मेरा तो यह विचार है कि उर्वशी ने उस राजा के साथ कोई प्रतिज्ञा कर रखी है जिसके साथ वह रह रही है। उस प्रतिज्ञा के टूट जाने पर वह उसे अवश्य छोड़ देगी। आप लोगों के कार्य को करने के लिये मैं उसके पास जा रहा हूँ। ऐसा कह कर विश्वावसु ने प्रतिष्ठानपुर के लिये कूच कर दिया। रात में चोरी करके उसने शयनागार से एक मेढ़ा को चुरा लिया। उन दोनों मेंढ़ों पर सदा प्रसन्न मुख वाली उर्वशी का माता के समान प्रेम था। उसे गन्धर्वों के आने का आभास हो गया और जिस समय उसका एक मेढ़ा चुराया जा रहा था उस समय ही उसने राजा से कहा कि मेरा एक पुत्र (मेंढ़ा) चुराया जा रहा है। उस समय राजा नग्न था। उसने सोचा कि यदि मैं इसी तरह नग्न उठ कर जाता हूँ तो यह मुझे नग्न देखलेगी और प्रतिज्ञा भंग हो जायेगी। इस तरह यह मुझे छोड़कर चली जायगी। इसी बीच गन्धर्वों ने उसके दूसरे मेढ़े को भी चुरा लिया। इस पर वह राजा से बोली—हे राजन् मेरे पुत्र दोनों ही अनाथ के समान चुरा लिये गये। ऐसा सुनकर राजा नग्न ही उठकर शैय्या से भागा। गन्धर्वों ने एक चालाकी यह और की कि उसी समय पूरे राज महल को एकदम प्रकाश से युक्त कर दिया। इच्छा से रूप बदने वाली उर्वशी ने राजा को नंगा देख लिया तो वह वह उसी क्षण अन्तर्धान हो गई। उर्वशी को अन्तर्धान जानकर गन्धर्वों ने उन दोनों मेंढ़ों को छोड़ दिया।

और स्वयं भी अन्तर्धान होगये। उन दोनों मेढ़ों को लेकर राजा शयनागर में आये। वहां उर्वशी को न देखकर वह विलाप करने लगा। जगत का स्वामी होने पर भी राजा पूरे जगत का चक्कर लगाने लगा परन्तु उर्वशी को न पा सका। वन, पर्वत, भवन, झरनों बाग, बगीचों, गांव, नगर आदि सभी जगह दुखित होकर राजा सभी देहधारियों से पूछता पूछता घूमने लगा। रो रोकर राजा कहता था–कि मुझे तू क्यों नहीं देखती है। हे सुन्दरी! तू मुझे देखकर मेरे साथ विरोध ठानकर तू कहां चली गई है। मेरे ऐसे जीवन को धिक्कार है। इस प्रकार विलाप करते हुये उस राजा ने उसे कुरुक्षेत्र में देखा। उस समय वह सुन्दरी अन्य पांच अप्सराओं के साथ पुष्करिणी के गम्भीर जल में क्रीड़ा कर रही थी। राजा को आता देखकर उसने सखियों से कहा—कि यह श्रेष्ठ पुरुष तो वही राजा है जिसके पास मैं रहती थी। ऐसा कहने पर वे पांचों अप्सरायें जल से बाहर आईं। राजा ने उर्वशी को देखकर खूब विलाप किया। और प्रसन्न होकर पुनः उससे कहने लगा—हे सुन्दरी! आओ! इसमन में निवास करो। अपनीपूर्व की बातोंपर स्थिर रहो। इस प्रकार उन्होंने सूक्ष्म बातें कीं। अन्त में उर्वशी ने पुरुरुवा से कहा–हे प्रभो! मैं आपके संयोग से गर्भवती हूँ। एक वर्ष में तुम्हारा पुत्र उत्पन्न होगा राजा ने एक रात वहां उर्वशी के साथ निवास किया। प्रातः वह राजा अपने पुर को प्रसन्न होकर लौट आया। एक वर्ष बाद वह उर्वशी के पास आया। राजा ने पुनः एक रात उर्वशी के पास व्यतीत की। उस समय कामार्त होकर दीन भाव से बोला–तुम मेरे साथ सदा निवास करो। उर्वशी ने कहा—हे महाराज! गन्धर्वराज आपको ऐसा वरदान देंगे। उन्हीं से आप ऐसी याचना कीजिये कि 'मैं सदा गन्धर्वों के लोक में निवास करना चाहता हूँ।' राजा ने उर्वशी की यह बात मान ली और राजा ने गन्धर्यों से याचना की। कि गन्धर्वों के लोक में मैं सदा निवास चाहता हूं। गन्धर्वों ने राजा से कहा कि "जो आप कहते हैं वैसा ही होगा" उन्होंने स्थाली को

आग से भरकर राजा से कहा हे राजन् ! इसी अग्नि से हवन करने पर तुम्हें उक्त गन्धर्व लोक की प्राप्ति होगी। इसके बाद राजा ने उर्वशी के गर्भ से समुत्पन्न कुमार को लेकर अपने नगर को चलने का उपक्रम किया और उस अग्नि को अराठी में रखकर पुत्र के सहित घर में प्रवेश किया। वहाँ आने पर उन्हों ने उस अग्नि को देखा उसे लेने पर उसे अश्वत्थ के वृक्षों का दर्शन आ। उस समय अश्वत्थ को देखकर राजा को महान अचम्भा हुआ। राजा ने इस बात को गन्धर्वों से जानना चाहा। यह सुनकर गन्धर्वों ने अरणि मन्थन करके अग्नि उत्पन्न करने को कहा। उन्हों ने इस प्रकार कहा—हे नराधिप ! इस अश्वत्थ की अरणी से मन्थन करके जो अग्नि प्रगट हो उसमें हवन करके तुम हमारा लोक पा सकते हो। गन्धर्वों के इस प्रकार कहने पर अरणि मन्थन करके अग्नि निकाल ली और उसके तीन भाग किये। तथा यज्ञ का अनुष्ठान किया। विधि पूर्वक यज्ञ समाप्त करके गन्धर्व लोक प्राप्त कर लिया। वहां उसने सभी प्रकार की गन्धर्वों के तुल्य सुविधायें प्राप्त कीं। त्रेतायुग में यह राजा पुरुरवा महारथी था। अग्नि भी पूर्व काल में एक थे उसने ही उसको तीन भागों में बांटा था।

हे ऋषियो ! इला पुत्र पुरुरवा एक प्रभावशाली और योद्धा राजा था। महर्षियों से सुशोभित प्रयाग तीर्थ में वह राज करता था। उसकी राजधानी प्रतिष्ठानपुर श्री यमुना नदी के उत्तर तट पर बसी थी। उसके इन्द्र के समान तेजस्वी छै पुत्र थे। गन्धर्वों के लोक में भी इनकी बहुत प्रतिष्ठाऔर प्रसिद्धि थी। उनके नामथे आयु श्रीमान, अमावसु, विश्वायु, शतायु, और गतायु ये सब उर्वशी के ही पुत्र थे। अमावसु के पुत्र भीम थे जो विश्व विजयी राजा हुए। भीम का उत्तराधिकारी राजा कांचनप्रभ था। कांचनप्रभ का पुत्र महाबलवान एवं परम विद्वान राजा सुहोत्र हुआ। राजा सुहोत्र के पुत्र जन्हु हुए। ये जन्हु कौशिक के पेट से उत्पन्न हुए थे। उनके यज्ञ करने पर गंगा ने समस्त यज्ञ भूमि को पवित्र किया था। चारों ओर गंगा की धारा

देखकर परमदयालु जन्हु राजा क्रोधित हो गया। उन्हों ने भावावेश में कहा–हे गंगे ! इस घमण्ड का फल तुम शीघ्र पाओगी। तुम्हारे इस जल समूह को पीकर मैं नष्ट किये देता हूँ। ऐसा कह कर राजा ने समस्त गगा को पी लिया। ऋषियों और मुनियों ने ऐसा देखकर गंगा को उनकी पुत्री के रूप में सौंपा। तभी से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ गया। जन्हु की पत्नि राजा यौवनाश्व की पौत्र कावेरी नाम की थीं। युवनाश्व के शाप से उसने गंगा का निर्माण किया जन्हु की पत्नि कावेरी समस्त सरिताओं में पवित्र और श्रेष्ठ गुणों वाली थी। जन्हु के कावेरी में सुहोत्र नामक पुत्र हुआ। जो उसको बहुत प्रिय था। उसके अजक नाम का पुत्र हुआ अजक के बलकाश्व नाम का यशस्वी पुत्र हुआ। उसके गयशील और कुश नाम के तीन पुत्र हुए। कुश के कुशाश्व, कुशनाम, अमूर्तरयश और वसु नाम के चार धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। राजाओं में श्रेष्ठ कुशस्तम्ब ने पुत्र प्राप्ति की इच्छा से एक हजार वर्ष तक तपस्या की। एक हजार वर्ष बाद उसे इन्द्र के दर्शन हुए। हजार नेत्र वाले इन्द्र ने स्वयं ही उनका पुत्र होने का निश्चय किया। पाकशासन इन्द्र कुशस्तम्ब के यहां गाधि नाम से उत्पन्न होकर पुत्र रूप में अवतरित ए। इनको कौशिक भी कहते थे। राजा कुशस्तम्ब की पत्नि का नाम पौरुकुत्सा था। जिसमें गाधि का जन्म हुआ था।

गाधि ने अपनी बड़ी कन्या सत्यवती को ऐश्वर्यशाली भृगु गोत्रीय रुचीक को प्रदान किया था। उस सत्यवती में भृगुवंश शिरोमणि जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुये। भृगुवंश में उत्पन्न ऋचीक ऋषि ने अपने और गाधि के पुत्र के लिए एक चरु बनाया। अपनी पत्नि धृति (सत्यवती) को बुलाकर उन्हों ने कहा—हे कल्याणी ! इस चरु को तुम तथा तुम्हारी माता क्रम से खाना। तुम्हारी माता के क्षत्रिय जाति में श्रेष्ठ परम कान्तिमान पुत्र होगा। वह युद्ध भूमि में किसी क्षत्री से कभी भी पराजित नहीं होगा। और तुम्हारा पुत्र भी परमशान्त धैर्यवान और बुद्धिमान होगा। यह चरु उसे ब्राह्मण जाति में श्रेष्ठ

बनायेगा। ऐसा कहकर रचीक तपस्या के लिए जंगल में चले गये।

संयोगदश राजा गाधि भी अपनी पत्नि के साथ तीर्थयात्रा के प्रसंग से अपनी पुत्री को देखने वहां आगये। सत्यवती ने अपनी माता से उन चरुओं का हाल बताया। भाग्यवश उसकी माता ने अपना चरु सत्यवती को दे दिया तथा उसका चरु बिना प्रभाव जाने स्वयं खा लिया। इसके फलस्वरूप सत्यवती ने क्षत्रिय कर्म करने वाला तेजस्वी गर्भ धारण किया। उस समय उसके शरीर की कान्ति बहुत अधिक बढ़ गई, शरीर से वह भयानक दिखाई देने लगी। ऋचीक ने योगबल से यह सारी बातें जानलीं। और पत्नि से बोले–हे भद्रे! माता ने तुम्हें ठग लिया है उसने तुम्हारे चरु को खा लिया है। जिसके कारण तुम्हारा पुत्र परम कठोर चित्त वाला एवं क्रूर कर्म वाला होगा। तुम्हारी माता के परम तपस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। मैंने तुम्हारे उस चरु में समस्त ब्रह्म ज्ञान भर दिया था। ऐसा सुनकर सत्यवती ने पति की बड़ी प्रार्थना की कि मेरा पुत्र ऐसा न हो कि वह नीच ब्राह्मण कहा जाय। इस प्रकार प्रार्थना किये जाने पर मुनि ने कहा—हे भद्रे! यह मैंने या तुमने विचार पूर्वक नहीं किया है कि हमारा पुत्र क्रूर कर्मवाला बने। यहतो दैवयोग से होगया है। प्रायः माता पिता के कारण से पुत्र अकर्मा होते हैं। ऋचीक के इस प्रकार कहने पर सत्यवती ने पुनः कहा "हे नाथ! आप इच्छा करें तो समस्त सृष्टि की पुनः रचना कर सकते हैं ऐसे पुत्र उत्पन्न करने की तो बात ही क्या है। हे पति देव! मुझे परम शान्त, सरल और सत्पुरुष पुत्र दीजिये। यह हो सकता है कि हमारा पौत्र उग्र और कठोर स्वभाव वाला हो जाय। हे प्रभो! मेरे लिये यह तो करना ही होगा। आशा है आप अन्यथा नहीं करेंगे। ऐसे मेरी बारम्बार प्रार्थना है। मुनि ने यह सुनकर अपने तपोबल से उसकी मनोकामना पूर्ण की। और बोले–हे सुन्दरि! मुझे पुत्र या पौत्र में कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ी। परन्तु तुम्हारा आग्रह यदि ऐसा ही है तो मैं वैसा ही करे देता हूं। हे भद्रे तुम्हारी बात सत्य हो।

ऋचीक के वचनानुसार सत्यवती के जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुये। वे परम शान्त, क्षमाशील, तप परायण थे। इस प्रकार प्राचीनकाल में विष्णु और रुद्र के चरु के बदल जाने से रुद्र और विष्णु के तेज के भक्षण करने से जमदग्नि ऋषि भार्गव वंश में पैदा हुये। इधर कुशिक के पुत्र गाधि के विश्वामित्र ऋषि पैदा हुये, विश्वामित्र ऋषि ने ब्रह्मर्षियों की उपाधि प्राप्त करके ब्राह्मणों सहित स्वर्ग को प्राप्त किया। सत्यव्रत परायण वह सत्यवती परम पुण्य शाली महानदी के कौशिकी के रूप में बही। सभी नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी नाम से प्रसिद्ध हुईं। इक्ष्वाकुवंश में सुवेणु नाम के एक राजा पैदा हुये, उनके कामला नामकी एक कन्या पैदा हुई, ये रेणुका नाम से भी प्रसिद्ध थीं। उस रेणुका का विवाह ऋचीक के पुत्र जमदग्नि के साथ हुआ, और उन्होंने रेणुका से परम कठोर उग्रस्वभाव वाले परशुराम को पैदा किया, वे परशुराम सभी विद्याओं में पारंगत, विशेषतया धनुर्वेद के परम जानकर क्षत्रियों के नाश करने वाले तथा अग्नि के समान तेजस्वी थे। उर्व के पुत्र ऋचीक से सत्यवती के गर्भ से बड़े पुत्र जमदग्नि पैदा हुये, उनके तपोबल से बीच का पुत्र शुनःशेष पैदा हुये, जो बहुत ज्ञानी थे। शुनःपुच्छ ऋचीक के सबसे छोटे पुत्र थे। धार्मिक विश्वामित्र विश्वरथ के नाम से भी पुकारे जाते हैं। वे कौशिक वंश में सबसे अधिक प्रभावशाली थे। उन्हीं विश्वामित्र के शुनःशेष नाम के पुत्र पैदा हुये। शुनिःशेप नाम के मुनि राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ कर्म में बलिदान देने के लिये नियुक्त हुए थे। देवताओं ने शुनःशेष को पुनः विश्वामित्र को वापस कर दिया। देवताओं के देने के बाद इनका नाम देवरात भी पड़ा था, विश्वामित्र के सभी पुत्रों में देवरात सबसे बड़ा था। इनके अतिरिक्त मधुच्छन्द, नय, कृत, देव, ध्रुव, अष्टक, कच्छप और पूरण ये सभी विश्वामित्र के पुत्र माने जाते हैं। इन सबों के गोत्र प्रायः कौशिकी के ही हैं। पार्थिव, देवरात, याज्ञवल्क्य, समर्षण, उदुम्बर, उदुम्लान तारक, यममुज्जत, लोहिराय, रेणाव, काटीषु, बभ्रु, पाणिन, ध्यान

जप्य, शाला वत्य, हिरण्याक्ष, स्यङ्कृत, गालव, देवल, यामदूत, सालङ्कायन, बाष्कल, ददाति और बादर नाम से प्रसिद्ध वंशों में उत्पन्न होने वालों का परम बुद्धिमान विश्वामित्र का गोत्र है। बहुतेरे कौशिक गोत्र में उत्पन्न होने वालों का विवाह अन्य ऋषि के गोत्र में उत्पन्न होने वालों के साथ हो जाता है। कौशिक, सौश्रुत और सैंधवायन नाम से प्रसिद्ध वंश में पदा होने वाले पुरुरवा के वंश में उत्पन्न पुण्यशाली ब्रह्मर्षियों के गोत्र में कहे जाते हैं। विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम अष्टक था, अष्टक के जह्नुगण नाम के पुत्र पैदा हुये।

ऋषियों ने कहा—हे सूत! इस लोक में पैदा होकर विश्वामित्र प्रभृति क्षत्रिय राजाओं ने किस तरह धर्म तपस्या अथवा ज्ञान से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया, जिन जिन शुभ कर्मों या दान तपस्या द्वारा क्षत्रिय लोग ब्राह्मण हुये, आप हमको उनका वर्णन सुनाइये। ऋषियों के इस प्रकार कहने पर सूत जी बोले—हे, ऋषियो! जो मनुष्य धर्म की इच्छा से अच्छे विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर अन्याय से पैदा हुये धन से यज्ञादि कार्य सम्पन्न करते हैं उनको धर्म का फल प्राप्त नहीं होता। जो पापी मनुष्य अपने घमंड के साथ कहते हैं कि मैं यह धर्म कार्य कर रहा हूँ, इस प्रकार कह कर संसार में अपनी प्रसिद्धि करते हैं उन सब मनुष्य के शुभ कर्मों का फल निष्फल जाता है। वे पापी मनुष्य वास्तव में हिंसा की भावना से धर्म कार्य करते हैं। जो मनुष्य अन्याय द्वारा धन प्राप्त करके मोहवश होकर दुरात्मा, कटकर्मा दान करता है या यज्ञ करता है, वह शीघ्र ही नष्ट होजाता है। इस लिये मनुष्य को न्याय से धन कमाना चाहिये। जो बिना किसी कामना से यज्ञ इत्यादि शुभ कर्मों को करता है उसी को दान का फल प्राप्त होता है। उसको सभी प्रकार से शान्ति, सुख प्राप्त होते हैं। मनुष्य विविध प्रकार के दान कर्म करके स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। अपनी इस गुप्त तपस्या से सबके ऊपर स्थित रहकर निवास करता है। इस प्रकार दानी मनुष्य अनन्त अक्षय सुख प्राप्त करता

है। दान की अपेक्षा यज्ञ की महिमा अधिक होती है, यज्ञ से भी बढ़कर तपस्या कल्याणकारी होती है तपस्या से भी बढ़कर सन्यासी की महिमा अधिक बतलाई है। और सन्यासी से भी बढ़कर ज्ञान प्राप्त करना है। क्षत्रिय गुण कर्म स्वभाव वाले अनेक ब्राह्मणों ने तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की है। विश्वामित्र मान्धाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, आनृहवान, ऋथु, आष्टिषेण, मजमीढ़, भागान्य, कक्षीव, शिजय, तथा अन्यमहारथी रथीतर, रुन्द, विष्णुबृद्ध इत्यादि क्षत्रिय वंश में पैदा होकर अपनी तपस्या से ऋषियों को उपाधि प्राप्त की है। इन्हीं सभी राजर्षियों ने अपनी कठोर तपस्या के कारण परम सिद्धि को प्राप्त किया है। इसके बाद अब मैं पराक्रमीराजा अयु के वंश का वर्णन करूंगा।

[श्री वायु महा पुराण का चन्द्रमा के वंश का वर्णन नामका इक्या-
नबेवां अध्याय समाप्त]

बानबेवाँ अध्याय

[चन्द्रमा के वंश का वर्णन]

सूतजी बोले—हे ब्राह्मणो! पांच महान पराक्रमी राजास्वर्भानु ने अपनी प्रभा नाम की पत्नी से बहुत से पुत्र पैदा किये। इन सब में सबसे बड़े राजा नहुष थे। इनके बाद पुत्रधर्मा पैदा हुये, इनके बाद धर्म वृद्ध के सुत होत्र नामके पुत्र पैदा हुये। राजा सुत होत्र के काश, शल, और गृत्समद नाम के तीन धार्मिक पुत्र पैदा हुये। गृत्समद के शुनक नाम के पुत्र पैदा हुये, शुनक के शौविक नामके पुत्र पैदा हुये। हे विप्रगणो! इस वंश में चारों वर्णों की प्रजाऐं अपने कर्म द्वारा चार भागों में विभक्त हुईं। शलराजा के आर्ष्टि-षेण नाम के पुत्र पैदा हुये, आर्ष्टिषेण के चठत नामके पुत्र पैदा हुये। शौवक और आर्ष्टिषेण के वंशों में ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णों

की प्रजाएँ उत्पन्न हुईं। काश राजा के काशय नाम के पुत्र पैदा हुए। इनके राष्ट्र और दार्घतपा नाम के दो पुत्र और पैदा हुये। दीर्घतपा के धर्म नाम के पुत्र पैदा हुए। धर्मराजा के धन्वन्तरि नामके पुत्र पैदा हुए। धर्मराजा की वृद्धावस्था में उनकी तपस्या के कारण धन्वन्तरि का जन्म हुआ। ऋषियों ने सूत जी से कहा—

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! इस मनुष्य लोक में धन्वन्तरि का जन्म किस प्रकार हुआ। आप हम को इस विषय में विस्तार पूर्वक बतलाइये।

सूतजी बोले—हे द्विजवर्य! मैं आपको धन्वन्तरि के जन्म के विषय में बतला रहा हूं। प्राचीन काल में समुद्र मथने के समय धन्वन्तरि का जन्म हुआ, वे सबसे पहले अपनी पूर्ण कान्तिमयी शरीर से पैदा हुये थे उनके सभी दिव्यगुण सम्पन्न शरीर को देख कर सभी देवगण अचम्भित होगये। देवगण कहने लगे कि तुम 'अज' हो। इस कारण उनका नाम अज पड़ा, इसके बाद अज ने भगवान विष्णु से कहा हे प्रभो! मैं आपका पुत्र हूँ, हे देवाधिदेव भगवन्! संसार में हमारे लिये स्थान बतलाइये तथा यज्ञादि शुभ-कार्य में अंश की व्यवस्था बतलाइये। अज के इसप्रकार कहने पर भगवान विष्णु ने हे देव! यज्ञ के विधान को बनाने वाले देवताओं ने यज्ञादि अंशों के विभाग की व्यवस्था पहले ही बनादी, महर्षियों ने वेदों में यज्ञ के हवन युक्त प्रक्रिया भी निर्धारित कर दी है। अतः इस कारण तुमको यज्ञ में भाग नहीं मिलेगा। हे सामर्थ्य! तुम केवल नाम से ही मंत्र रूप हो। तुम दूसरे जन्म में इस लोक में स्थान प्राप्त करोगे। तुमको गर्भ में ही अणिमा इत्यादि सभी सिद्धियां प्राप्त होंगी। हे देव! उसी शरीर में तुमको देवयोनि प्राप्त होगी। उस समय ब्राह्मण लोग तुम्हारी घी गन्धयुक्त पदार्थों और खीर से पूजा करेंगे। उसके बाद तुम आयुर्वेद का उद्धार करोगे। प्रजापति ब्रह्माजी ने इन्ही के लिये तुमको सबसे पहले उत्पन्न किया है।

इस प्रकार वरदान देकर भगवान विष्णु अन्तर्धान होगये। दूसरे द्वापर युग में काशी के राजा दीर्घतपा ने पुत्र इच्छा से तपस्या की। और राजा ने पुत्र के लिये उन्हीं अज देव की पूजा करके सन्तुष्ट किया, तब अज देव ने प्रसन्न होकर उनको पुत्र का वरदान दिया, तभी इन धन्वन्तरि का जन्म हुआ।

राजा बोले—हे देव! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे पुत्र रूप में पैदा हों, धन्वन्तरि ने राज. की बात मान ली, और वहीं पर अन्तर्धान हो गये। इस वरदान के अनुसार दूसरे द्वापर युग में दीर्घतपा के पुत्र रूप में धन्वन्तरि ने जन्म लिया। इसके बाद वे सभी रोगों के नाश करने वाले परम वैद्य हुए। भरद्वाज ऋषि ने सभी औषधियों का प्रक्रिया के साथ प्रणयन किया था फिर उसी को आठ भागों में बांट कर अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दी। धन्वन्तरि के केतुमान के पुत्र पैदा हुये। केतुमान के भीमरथ नाम के परम प्रतापी राजा पैदा हुये। ये ही भीमरथी राजा बाराणसी में दिवोदास नाम से प्रसिद्ध हुये, प्राचीकाल में इसी राजा के राज्यकाल में बाराणसी पूरी सूनी हो गई थी। फिर उसमें क्षेमक नाम का राक्षस घुस आया। उसके महा बलवान निकुम्भ ने एक हजार वर्ष तक सूने रहने का शाप दिया था। उसके इस प्रकार शाप देने पर राजा दिवोदास ने वाराणसी को छोड़कर अपनी राजधानी गोमती नदी के किनारे पर बनाई थी।

ऋषियों ने कहा—हे सूत जी! प्राचीनकाल में निकुम्भ ने वाराणसी को क्यों शाप दिया था। धर्मात्मा होने पर भी उन्होंने इस पवित्र क्षेत्र को किस प्रकार शाप दिया।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! राजा दिवोदास वाराणसी नगरी में रहता था, उस समय वह अपने समय का सबसे प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा था। इसी अवसर पर भगवान शिव ने देवी पार्वती के साथ विवाह कार्य सम्पन्न किया था और पार्वती को प्रसन्न रखने की इच्छा से

वह अपने सुसर हिमवान के घर पर ही रहने लगे। महादेव जी की आज्ञा से उनके पार्षदगण अनेक रूप धारण करके महेश्वरी देवी को प्रसन्न किया करते थे। उन पार्षदों इस व्यवहार से शिवजी प्रसन्न होते थे, किन्तु मैना इससे असन्तुष्ट होती थीं। वह अपने मन में दोनों शिव पार्वती की बुराई करतीं थीं। एक बार मैना ने अपनी कन्या पार्वती जी से कहा कि पुत्री! तेरे पति हमारे यहां नित्य प्रति अनाचार किया करते हैं और मेरी समझ में तो वह एक धूर्त लम्पट मालूम पड़ते हैं। अपनी माता मैना की इस प्रकार बात सुनकर मन्द मन्द हँसती हुई पार्वती जी अपने पति भगवान शंकर जी के पास आकर दुखी होकर उनसे बोलीं-हे भगवन्! अब मैं यहाँ पर निवास नहीं करूँगी, मुझे अपने स्थान पर ले चलिए। देवी पार्वती के इस प्रकार कहने पर महादेव जी अपने रहने योग्य स्थान को सोचने लगे। हे विप्रो! समस्त संसार में भगवान शिव ने बनारस को ही पवित्र समझा। तब भगवान शंकर वाराणसी नगरी को राजा दिवोदास के आधीन देखकर अपने पास रहने वाले एक गण को बुलाकर कहा कि हे गणेश्वर! तुम वाराणसी नगरी में जाकर उसको खाली करवाओ उस नगरी का राजा दिवोदास बहुत धर्मात्मा है अतः उस नगरी को अपने कोमल स्वभाव से ही खाली कराना। इस प्रकार शिवजी की आज्ञा से निकुम्भ! वाराणसी नगरी में गया, और उसने वहाँ जाकर स्वयं को मङ्कन नाम के राजा को स्वप्न दिखाया और उससे कहा कि तू मेरे रहने के लिए एक स्थान बनवा, और इस नगरी के अंतिम छोर पर मेरी एक प्रतिमा बनवा कर स्थापित करवादे। हे ब्राह्मणो! मङ्कन ने स्वप्न में देखी हुई सभी बातों को पूर्ण कर दिया, राजा से आज्ञा प्राप्त करके नगरी में प्रवेश द्वार पर विधि पूर्वक निकुम्भ की मूर्ति बनाकर स्थापित की। उस स्थान पर निकुम्भ की मूर्ति को सभी नित्य प्रति पूजा किया करते थे, गन्ध, धूप, फूलमाला, अन्न की वस्तुओं के देने से एक अनोखा दृश्य दिखाई देने लगा। और इस प्रकार गणेश्वर की उस स्थान पर नित्य प्रति पूजा होने लगी।

गणेश्वर ने भी पूजा से प्रपन्न होकर नगर में रहने वाले मनुष्यों को हजारों वरदान प्रदान किये, उसने सोचा कि मैं रानी को वरदान न दूँगा, तो राजा नाराज हो जायेगा, और हमारा सारा कार्य पूर्ण हो जायेगा। इस प्रकार बहुत समय बीतने के बाद राजा को क्रोध आ गया, उसने कहा कि यह जो भूत है जो नगर के द्वार देश पर स्थित है, नगर वासियों को प्रसन्न होकर वरदान देता है, किन्तु हमको कुछ नहीं देता है और हमारी प्रजा ही इसकी नित्य प्रति पूजा करती है। मेरी ही नगरी में इसका आवास स्थल है, देवी ने मेरे कहने पर इसकी बहुत पूजा की है लेकिन इसने मेरे लिए एक भी पुत्र देने का वरदान नहीं दिया यह बड़ा खब्बू है इसी कारण आज से इसकी पूजा बन्द करनी चाहिये, इस दुरात्मा का स्थान नष्ट करा दूँगा। इस प्रकार दुरात्मा और क्रूट राजा ने भावी वश होकर निकुम्भ गणेश्वर का स्थान नष्ट कर दिया। अपने आवासस्थल को नष्ट देखकर निकुम्भ गणेश्वर राजा के पास आकर बोले कि तुमने मेरे आवासस्थल को बिना अपराध के ही नष्ट कर दिया इस लिए हे राजा! तुम्हारी यह नगरी बिना किसी कारण के शीघ्र ही सूनी हो जायेगी। हे ऋषियो! निकुम्भ के इसी शाप के कारण ही वाराणसी नगरी सूनी हो गई थी। अतः इस प्रकार राजा को शाप देकर निकुम्भ ने भगवान शंकर को वहां रहने के लिए बुलाया भगवान जी ने सूनी वाराणसी नगरी का दैविक विभूतियों से पुनः निर्माण किया, उसमें भगवान शंकर का परम दिव्य गुणमयी पार्वती के साथ नित्य विहार होने लगा। अपने इस भवन को देख उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ लेकिन कुछ दिन के बाद उन्हें इस मकान से सन्तोष नहीं हुआ, तब ईशानदेवी ने देवी पार्वती के क्रीड़ा विहार के लिए उनसे यह बात कही थी 'हेदेवी मैं अपने इस सुन्दर भवन को नहीं छोड़सकता, तुम ना चाहो तो छोड़ कर कहीं दूसरी जगह चली जाओ, मैं तो यहीं पर रहूँगा।

इस प्रकार हँसते हुये महादेव जी ने देवि पार्वती से कहा कि मेरा जो यह भवन है यह अविमुक्त है, मैंने इसे अपने मुख से अविमुक्त किया था अतः इसी कारण इसका नाम अविमुक्त पड़ा था। इस तरह वाराणसी पुरी को शाप दिया था और उसका नाम अविमुक्त पड़ा। उस वाराणसी नगरी में महादेव जी अपनी प्राण-प्यारी देवि पार्वती के साथ तीनों युगों में निवास करते हैं। लेकिन कलियुग में शिवजी अपने इस भवन से अन्तर्धान हो जाते हैं। उनके अन्तर्धान होने पर वाराणसी पुनः वहां पर स्थित होता है। इस प्रकार निकुम्भ के शाप से श्रापित होकर वाराणसी नगरी पुनः वहां पर स्थापित होती है। प्राचीन काल में दिवोदास राजा ने भद्रश्रेण्य राजा के सौ पराक्रमी पुत्रों को मार कर उनके राज्य को छीन लिया, साथ में भद्रश्रेण्य के भी राज्य को छीन लिया। भद्रश्रेण्य के एक दुर्दम नाम के छोटे पुत्र को निपट बालक समझ कर घृणा से उसे छोड़ दिया। राजा दिवोदास ने द्रषद्वती नाम की पत्नी से प्रतर्दन नाम का पुत्र पैदा किया। भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम के पुत्र ने राजा दिवोदास के पुत्र प्रर्तदन से छीन कर अपने पिता का राज्य वापिस ले लिया। इस राज पुत्र ने अपने वैर का बदला इस प्रकार लिया था। प्रतर्दन के वत्स और गर्ग नाम के दो पुत्र पैदा हुये। वत्स के अलर्क नाम के पुत्र पैदा हुये अलर्क के सन्नति नाम के पुत्र पैदा हुये। राजर्षि अलर्क के विषय में दो श्लोक बताये जाते हैं। इन श्लोकों का आशय इस इस प्रकार है। साठ हजार साठसौ वर्षों तक अलर्क राजा युवा बने रहे, उन्हें लोपामुद्रा की कृपा से इतनी बड़ी आयु प्राप्त हुई थी। एक हजार वर्ष के शाप के बाद राजा अलर्क ने क्षेमक नाम के असुर को मार कर पुनः वाराणसी नगरी को बसाया था।

राजा सन्नति के सुनीथ नाम के पुत्र पैदा हुए, सुनीथ सुकेतु नाम के पुत्र पैदा हुये. वह पुत्र बहुत धार्मिक स्वभाव का था। सुकेतु के धर्मकेतु नाम के पुत्र पैदा हुए, धर्मकेतु के महारथी सत्यकेतु नाम के पुत्र पैदा हुए, सत्यकेतु के प्रजेश्वर विभ्र नाम के पुत्र पैदा हुये। विभ्र के सुविभ्रनाम के पुत्र पैदा हुये। सुविभ्र के सुकुमार नाम के पुत्र पैदा हुये। सुकुमार का परम धार्मिक धृष्ठकेतु हुआ। धृष्टकेतु का उत्तराधिकारी प्रजापालक वेणुहोत्र हुआ, वेणु होत्र का पुत्र गार्ग्य नामक हुआ। गार्ग्य का पुत्र गर्भभूमि हुआ। वत्स्य का पुत्र वात्स्य हुआ। इन दोनों वर्णों के राजा बलशाली तथा योद्धा थे। ये सिंह के समान बलशाली थे। मैं काशी के राजाओं का वर्णन तो कर चुका अब रजि के पुत्रों का वर्णन करूँगा। महाराज रजि के सौ पुत्र थे। उनमें से पांच इस भूलोक में अधिक विख्यात थे। वे राजेय कहलाते थे। उनके बल से इन्द्र भय खाते थे। उस समय देवताओं और राक्षसों में महान युद्ध हुआ। देवता और असुर दोनों ने ब्रह्मा जी से पूछा। भगवान हम दोनों वर्गों के इस घमासान युद्ध में कौन जीतेगा हे प्रभो! यह जानना चाहते हैं सो कृपा करके बताइये—ब्रह्माजी बोले—

जिन लोगों के लिये महान पराक्रमी महाराज रजि संग्राम में हथियार लेकर लड़ेंगे वे तीनों को जीत लेंगे। जहां रजि राजा है वहीं पर लक्ष्मी निवास करती हैं। वहीं पर धैर्य और शान्ति रहती है। देवता और दानवों ने रजि के द्वारा जय की बात सुनकर अपने अपने पक्ष की विजय के लिये राजा रजि से प्रार्थना की। दोनों ने अति प्रसन्नता से राजा से कहा—कि आप हमारे लिये धनुष को धारण करके हमें विजयी बनाने की कृपा करें राजा ने कहा—हम तुम सबको और इन्द्र को भी युद्ध में हरा देंगे। इसके बाद हमही इन्द्र होंगे। यह शर्त मानो तो युद्ध में मैं धनुष धारण करूँगा!

दानव कहने लगे—कि हमारे तो इन्द्र प्रहलाद जी हैं उनकी विजय के लिये हमारी इच्छा है। परन्तु देवों के द्वारा प्रेरित इस

प्रतिज्ञा से हम सहमत हैं।' दानवों की यह बात सुनकर राजा उनकी शर्त मन्जूर कर ही रहे थे कि इतने ही में देवता लोग उठे–और कहा कि आप दैत्यों को परास्त करके हमारे इन्द्र बन जाइए। देवताओं की यह बात सुनकर देवराज इन्द्र के देखते देखते ही उन्होंने सभी दानवों का विनाश कर दिया। इस प्रकार जितेन्द्रिय प्रभावशाली राजा रजि ने देवों की नष्ट होती हुई राजलक्ष्मी का उद्धार किया। देवों की विजय होने पर सभी देवता तथा इन्द्र मिलकर राजा से बोले—हम सब आपके पुत्र हैं। इन्द्र ने भी कहा—महाराज आप हमारे इन्द्र हैं इसमें कोई सन्देह नहीं है। हे शत्रुओं को मारने वाले राजन्! मैं आपके पुत्र के नाम से प्रसिद्ध हूंगा। शक्र की इस प्रकार की बातों से वे राजा मोहित हो गए और राज छोड़ दिया।

देवतुल्य राजा रजि को मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रों ने इन्द्र से राज छीन लिया। राजा के सौ पुत्रों ने एक साथ ही राज जमा कर एक साथ स्वर्ग को आक्रान्त कर दिया। बहुत समय बीत जाने पर हतभाग्य इन्द्र बृहस्पति जी के पास पहुँचे और कहा–हे ब्रह्मर्षि! आप एक चरु बनावें जो बेर के फल के बराबर हो वह अंश मेरे लिए हो जिससे मैं टिक सकूँ। उसी से मेंरी सन्तुष्टि होगी। मेरी दशा अधिक शोचनीय है मेरी दशा खराब है इस समय मैं अधिक कमजोर हो गया हूँ। मेरी बुद्धि नष्ट होगई है। रजि के पुत्रों से मेरी रक्षा कीजिये।

बृहस्पति बोले—हे इन्द्र! यदि पहले ही तुम मुझे अपनी दशा बतलाते तो तुम्हारी यह दशा न होती। मैं तुम्हारे कल्याण के लिये सब कुछ कर सकता हूँ। हे देवराज! तुम्हारे लिए मैं वही करूँगा जिससे तुम्हारा राज्य तुम्हें वापिस मिल सके। हे शक्र! मैं शीघ्र ही वसा ही कर रहा हूं तुम अपने मन की आकुलता छोड़ दो। इस प्रकार इन्द्र को सान्त्वना देकर गुरु बृहस्पति जीनेअनेकअनुष्ठान किए। और उनसे रजि के पुत्रों को मोहित कर दिया। इससे उन सबकी बुद्धि मारी गई। वे सभी राजा धर्म से हीन हो गये और रोगग्रस्त तथा

पागल होगये। ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे। उनका बल एवं पराक्रम नष्ट हो गया। वे सभी काम क्रोध आदि से मोहित हो गए तभी इन्द्र ने उनका विनाश कर दिया। और पुनः अपना प्रभुत्व जमा लिया। जो पुरुष इस इन्द्र के पुनः राज्य प्राप्ति के तथा राजा रजि के कथानक को पढ़ता या सुनता है उसकी कभी बुरी गति नहीं होती।

(इति श्री वायुमहापुराण का रजियुद्ध नामक बानवेवाँ अध्याय समाप्त)

तिरानबेवाँ अध्याय

[चन्द्रवंश का वर्णन]

ऋषि बोले—हे सूत ज ! महापराक्रमशाली मरुत ने राजा को कन्या किस प्रकार दी थी और मरुत की कन्या से राजा के कितने पराक्रमी पुत्र हुये। यह कथा प्रसंग भी हमको बताने की कृपा कीजिये।

सूत जी बोले–उस महा तेजस्वी राजाने प्रत्येक महिने मेंअन्न की इच्छा से मरुत और सोम का यज्ञ किया। उससे प्रसन्न होकर मरुतों ने अक्षय अन्न दिया। वे सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले थे। एकबार का वह पकाया अन्न दिन रात में भी समाप्त नहीं होता था। सूर्योदय से करोड़ों बार दिये जाने पर भी वह नहीं चुकता था। मरुत की कन्या में मित्र ज्योति नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उससे महा पराक्रमी मोक्षदर्शी धार्मिक पुत्रों की सृष्टि हुई। जो गृहस्थाश्रम त्यागकर वैराग्य पथ के अनुगामी बने। और अन्त में सन्यासियों के धर्म को अपनाकर मोक्ष को प्राप्त हुये। इसके बाद अनपान की उत्पत्ति हुई। जिससे प्रदत्तवान का जन्म हुआ। उससे क्षत्रधर्म की उत्पत्ति हुई। क्षत्रधर्म से तपस्वी प्रतिपक्ष की उत्पत्ति हुई। प्रतिपक्ष के पुत्र संजय नामक पुत्र पैदा हुए। संजय के पुत्र जय हुये और जय से विजय नामक पुत्र हुआ। विजय का पुत्र भी जय नाम का ही हुआ, जय का पुत्र हर्यद्वत नाम से विख्यात हुआ। उसके पुत्र राजा सहदेव हुये। सहदेव के पुत्र धर्मात्मा अदीन नाम से प्रसिद्ध हुए। अदीन से जयत्सेन जयत्सेन से

संकृति नामक पुत्र पैदा हुये। संकृति के पुत्र प्रतापी राजाकृतधर्मा हुये। ये सब राजा गण क्षत्रिय कर्म व गुण वाले थे।

अब राजा नहुष के वंश का वर्णन सुनिये। नहुष के छै पुत्र इन्द्र के समान तेजस्वी हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं—यति, ययाति, संयाति, आयाति तथा दो पंच नामक पुत्र थे। इन सबमें यति सबसे बड़े तथा ययाति सबसे छोटे थे। यति की पत्नि राजा काकुत्स्थ की कन्या गौ नाम वाली थी। संयाति ने मुनियों के समान मोक्ष का आश्रय लिया। इन पांचों में ययाति ही पृथ्वी का राजा बना। ययाति ने शुक्राचार्य की कन्या देवयानी के साथ विवाह किया। असुरों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के साथ भी शादी करके उसे अपनी पत्नि बनाया। देवयानी से वसु और तुर्वसु नामक दो पुत्र हुए तथा शर्मिष्ठा से द्रह्यु, अनु और पुरु नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। महादेव जी ने राजा ययाति को प्रसन्न होकर परम सुन्दर स्वर्ण निर्मित एक दिव्य रथ प्रदान किया था। तथा दो तरकश भी दिये उस परम मनोहर रथ में मन के वेग वाले घोड़े जुते हुए थे। उस रथ पर चढ़कर शुक्राचार्य की पुत्री देवयनी के साथ राजा ययाति ने समस्त पृथ्वी को जीता। समस्त पुरुवंशी राजाओं ने उस महादेव जी के दिए रथ को व्यवहार किया। कुरुवंशी राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय शासन के लिए सिंहासन पर बठे। उस समय भी वह रथ उनके पास था। परम बुद्धिमान गार्ग्य के शाप के द्वारा वह रथ नष्ट हो गया। जनमेजय ने बुद्धिहीन होकर गार्ग्य के पुत्र को मार डाला था। इस पर उन्होंनें जनमेजय को लोहे की सी गन्ध वाला हो जाने का शाप दे दिया। लोह गन्ध होकर राजा जनमेजय इधर उधर बहुत दौड़े पर शान्ति न मिली। ग्राम में रहने वालों ने भी उनका तिरस्कार कर दिया। अन्त में वे दुखी होकर उन्हीं ऋषि की शरण में गए। तब इन्त्रोत नाम मुनि ने जो शुनक के गोत्र के थे, एक यज्ञ कराया जो अश्वमेध यज्ञ ही था। इस प्रकार उन्हीं ऋषि के

आश्रम में राजा का लोह गन्धत्व दूर हो गया। वह सोने का रथ भी चेदि देश के राजा वसु के आधीन हो गया। वसु से इन्द्र ने ले लिया। इन्द्रने वह दिव्य रथ प्रसन्न होकर राजा बृहद्रथ को दिया था। वृहद्रथ को मारकर जरासंध ने उसे छीन लिया। जरासंध से वह रथ भीम ने प्राप्त किया। कौरव पुत्र भीम ने उस रथ को आदर पूर्वक वासुदेव को भेंट किया।

राजा नहुष के पुत्र ययाति जब अधिक वृद्ध होगये तो अपने योग्य पुत्र यदु से बोले कि शुक्राचार्य के शाप से मैं वृद्ध होगया हूँ तुम मेरी इस वृद्धता को ग्रहण करलो क्योंकि मैं अभी यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हुआ हूं। इस पर यदु ने पिता से कहा कि पिता जी मैंने अनन्त काल तक ब्राह्मणों को दान देने की प्रतिज्ञा की है भिक्षा परिश्रम के द्वारा ही की जा सकती है इससे मैं बुढ़ापा ग्रहण नहीं कर पाऊँगा। दूसरे इस बुढ़ापे में भोजन पान आदि के बहुत से दोष आ जाते हैं इसलिये इसे स्वीकार करने का मुझमें उत्साह नहीं है। श्वेत बाल होजाने पर यह बुढ़ापा एकदम शिथिलता पैदा कर देता है। शरीर में सिकुड़न, चहरे पर भद्दापन दुर्बलता, कार्य करने की शक्ति का अभाव, तथा यौवन के सुखों को प्राप्त करने में असमर्थता प्राप्त हो जाती है। ऐसी महान विपत्तियों वाली वृद्धता को मैं स्वीकार नहीं कर सकता। हे राजन्! आपके अन्य पुत्र भी हैं जो आपको मुझसे अधिक प्रिय हैं। आप उनको इस प्रस्ताव को कहें। इस पर राजा ययाति क्रुद्ध होकर यदु से बोले—तू मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे यौवन नहीं दे सकता इसलिए तू या तेरी सन्तान मेरे इस राज्य की उत्तराधिकारी नहीं हो सकती। यह मैं तुझे शाप देता हूँ।

इसके बाद राजा ने अपने पुत्र तुर्वसु से कहा कि तुम मुझे एक हजार वर्ष के लिये अपनी युवावस्था देदो! उससे मैं यौवन के सुखों को भोगना चाहता हूं एक हजार वर्ष बाद मैं उसे वापिस कर दूँगा।

तुर्वसु ने कहा—हे तात! विषयादि सुखों से रहित इस वृद्धावस्था को मैं पसन्द नहीं करता हूं। इससे तो भोजन आदि में भी परेशानी

रहती है। अतः इसको लेने का मुझमें साहस नहीं है।

ययाति बोले—हे तुर्वसो! मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मेरे लिये अपनी युवावस्था नहीं दे रहे हो अतः तुम्हारी सन्तानें नाश को प्राप्त होंगी। वे वर्ण शंकर हो जायेंगी। धर्म हीन, मांस भक्षी, दुराचारी लोगों के तुम राजा बनोगे। गुरु की पत्नि के साथ गमन करने वाले, नीच योनि में उत्पन्न, पशु तुल्य अज्ञानं तथा म्लेच्छ के देशों में तुम राजा बनोगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है।

सूत जी बोले—हे ऋषियो! तुर्वसु को इस प्रकार शाप देने के बाद राजा ने शर्मिष्ठा के पुत्र द्रुह्य से भी कहा—कि वर्ण एवं रूप का नाश करने वाली इस वृद्धता को तुम स्वीकार करलो। एक हजार वर्ष के लिये मुझे अपनी जवानी दे दो। उसके बाद मैं तुम्हारी जवानी वापिस करके बुढ़ापा ले लूंगा।

द्रुह्य ने कहा—हे पिता जी! वृद्ध पुरुष न तो हाथी की सवारी कर सकता है और न घुड़सवारी का मजा प्राप्त करता है। न स्वादिष्ट अन्न का भोग कर सकता है और न सुन्दरी स्त्रियां आनन्द दायिनि हो सकती हैं। वृद्ध पुरुष के पास तो कोई भी बैठना भी नहीं चाहता। इसलिये मैं इसे पसन्द नहीं करता हूँ।

ययाति बोले—हे द्रुह्य! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी अवस्था नहीं दे रहे हो। अतः तुम्हारा मन चाहा कभी भी पूर्ण नहीं होगा। जिस देश में लोग छोटी छोटी नावों और घन्नइयों से जाते हैं तथा जहां सुन्दरता का बिलकुल अभाव और राजवंशों से अलग स्थान में तुम रहोगे। इसके बाद राजा ने अनु से कहा—कि मेरी वृद्धावस्था तथा पाप कर्मों को तुम ले लो। एक हजार वर्षों तक मैं तुम्हारी यौवनवस्था से विषय भोगों का आनन्द प्राप्त करना चाहता हूँ।

अनु बोला—हे तात! आप तो वृद्ध हो गये हैं। मैं अभी बालक हूं आपकी वृद्धावस्था से मैं सदा अपवित्र बना रहूँगा तथा बूढ़ा हो जाऊँगा। इस लिये मैं उसे नहीं ले सकता हूँ।

ययाति बोले—हे पुत्र ! तुम मेरे हृदय से पैदा होकर भी अपना यौवन नहीं दे रहे हो बृद्धावस्था के वे सभी दोष जो तुमने मुझे बतलाये हैं वह तुमको प्राप्त होंगे। तुम्हारी सन्तानें युवा होते ही मर जाया करेंगी। तुम भी अग्नि में गिर कर भस्म होगे। अनु को यह शाप देकर राजा ययाति छोटे पुत्र पुरु से बोले–तुम मेरे पापों के साथ मेरी बृद्धता को ग्रहण करलो। यद्यपि मेरे केश सफेद हो गये हैं खाल सिकुड़ गई है और बुढ़ापा आ गया है परन्तु शुक्राचार्य के शाप के कारण मैं यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हुआ हूँ। तुम्हारी यौवनावस्था से मैं कुछ काल तक विषयों का आनन्द लेना चाहता हूं। एक हजार वर्ष बाद मैं उसे लौटा दूंगा।

सूत जी बोले—पिता की आज्ञा सुनकर पुरु ने तुरन्त कहा–पिता जी आपकी जो भी आज्ञा है मैं वैसा ही करूँगा। आपके पाप कर्मों सहित बुढ़ापे को लेने को तैयार हूँ। मेरी जवानी से आप मन चाहे विषयों को भोग सकते हैं। मैं आपको यौवन देकर आपकी बृद्धता और स्वरूप को धारण कर आपके समान सब काम करूंगा।

ययाति बोले–हे प्रिय पुत्र पुरु ! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि तुम्हारे राज्य में प्रजा समृद्ध और सुखी रहेगी और तुम्हारे राज्य में सारी प्रजाओं की कामनायें भी पूर्ण होंगी।

सूत जी बोले—इस प्रकार ययाति ने शुक्राचार्य की कृपा से अपना बुढ़ापा पुरु को देकर उसके यौवन को स्वयं ने ले लिया। और प्रसन्नता पूर्वक अनेक विषयों का खूब भोग किया। राजा ने अपनी इच्छा के अनुसार, उत्साह के अनुसार भोगों को खूब भोगा परन्तु ऐसा कोई भी कार्य नहीं किया जिसके कारण धर्म की मर्यादा नष्ट हो जावे यज्ञों से देवता सन्तुष्ट किये, श्राद्धों से पितर सन्तुष्ट किये। अनुग्रह करके गरीबों का हित साधन किया। मन चाहे पदार्थों की पूर्ति करके ब्राह्मणों को प्रसन्न किया व्यापार से वैश्यों को तुष्ट किया। कृपा और दयाभाव से शूद्र प्रसन्न किये। कड़े दण्ड

और अनुशासन से चोरों को शान्त किया। इस प्रकार उस राजा ने इन्द्र के समान प्रजा का पालन किया। युवावस्था प्राप्त राजा ययाति ने सिंह के समान पराक्रम से धर्म पूर्वक विषयों का सेवन किया। और सुख का अनुभव किया। वैभ्राज और नन्दन वनों में उसने विश्वाची के साथ काम क्रीड़ा की। अन्त में कामादि विषयों में दुख देखकर उन्हें विषयों से वैराग्य हुआ। अपनी अवधि का ज्ञान करके वे अपने पुत्र पुरु के पास आये। और उससे अपना बुढ़ापा पुनः वापिस प्राप्त किया। घड़ी पल तक का हिसाब लगाकर उसने एकहजार वर्षों की गणना की और सचमुच पूर्ण अवधि समाप्त हो जाने पर अपने प्रिय पुत्र पुरु से बोले--हे शत्रु दमन पुत्र, पुरु! मैंने एक हजार वर्ष तक अपने उत्साह और मन के अनुसार तुम्हारी यौवनावस्था लेकर विषयों का सेवन किया। हे प्रिय! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ तुम्हारा कल्याण हो अपनी यौवनावस्था ग्रहण करो तथा इस राज्य को भी ग्रहण करो, तू मेरा एकमात्र हित चिंतक पुत्र है। इस प्रकार राजा ययाति ने अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की और पुरु ने अपना यौवन प्राप्त किया।

राज्य के पद पर जब इस छोटे पुत्र को बिठाना चाहा तो ब्राह्मणादि चारों वर्ण के लोग राजा के पास आकर बोले--हे प्रभो! आप शुक्राचार्य के नाती अर्थात् देवयानी के पुत्र यदु को राज क्यों नहीं देते हो। यदु आपके सबसे बड़े पुत्र हैं उनसे छोटे तुर्वसु हैं, शर्मिष्ठा के भी पुत्रों में भी सबसे बड़े द्रुह्य हैं। उनसे छोटे अनु हैं इसके बाद पुरु हैं। यह कैसे हो सकता है कि बड़ों को छोड़कर छोटे को राज्य दे दिया जाय। आपका ध्यान धर्म की ओर आकर्षित करते हुये आपसे धर्म का पालन करने को कहा जा रहा है क्योंकि आप राजा हैं।

ययाति ने कहा—हे ब्राह्मण आदि सभी वर्णों के सज्जनो! मेरी बात सुनिये कि जो पुत्र माता पिता का आज्ञाकारी होता है

वही पुत्र प्रशसा के योग्य है। बड़े पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया था! जो पुत्र पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता वह निन्दनीय होता है। यदु ने मेरी आज्ञा नहीं मानी। इसी तरह से तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु ने भी आज्ञा न मानकर मेरा अपमान किया है। पुरु ने मेरी आज्ञा ही नहीं मानी अपितु मेरा बड़ा सम्मान भी किया है। सबसे छोटा होने पर भी इसीसे यह राज्य का उत्तराधिकारी है। क्योंकि इसने मेरे बुढ़ापे को इतने समय तक अपने लिये रखा। एक योग्य पुत्र की भाँति इसने मेरी सभी अभिलाषाओं और आज्ञाओं का पालन किया है। यही सब कुछ करने धरने वाला है। स्वयं शुक्राचार्य जी ने भी यही आज्ञा दी है कि "जो तुम्हारा पुत्र आज्ञाकारी और अनुगामी होगा वही राजा बनेगा।" मैं अब समझता हूँ आपकी भी आज्ञा इस कार्य में होगी। अतः पुरु का राज्याभिषेक करिये। गुणवान, माता पिता की आज्ञा मानने वाला पुत्र ही सम्पत्ति का उत्तराधिकारी और कल्याण का पात्र होता है। इस राज्य के योग्य पुरु ही ऐसा है जो आपका हितकारी है, प्रिय है तथा हम सबों को भी प्रिय है।

ऐसा कहने पर ब्राह्मण आदि सभी पुरवासियों ने राजा ययाति की बात का मोदन किया। शुक्राचार्य के वरदान के कारण उनको कुछ कहने का भी साहस नहीं हुआ राजा की बात से सन्तुष्ट हुये नगर वासियों ने तथा नहुष के पुत्र ययाति ने अपने छोटे पुत्र पुरु का राज्य के पद पर अभिषेक कर दिया। दक्षिण पूर्व दिशा में उसने तुर्वसु को अधिकारी बनाया। दक्षिण पश्चिम में बड़े पुत्र युदु को राज का अधिकारी नियुक्त किया। उत्तर पश्चिम में द्रुह्यु और अनु को बनाया। इस प्रकार सात सागर युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को पाँचों पुत्रों में बाँट दिया। धार्मिक सभी पुत्रों ने धर्म पूर्वक अपने अपने प्रदेशों का पालन किया। इस प्रकार अपने पुत्रों को राज्य देकर राजा ययाति परम प्रसन्न हुये। राजा ययाति ने अपने धनुष बाण और राज्यधिकार को पुत्रों को सौंप दिया और सभी कार्य के

भार को अपने बन्धुओं को सौंप दिया। इसके विषय में राजा ययाति ने अपने पुत्रों से इस प्रकार कहा—जो मनुष्य सभी प्रकार की इच्छा को वश में रखता है वही सच्चा मनुष्य है। मन की इच्छा के अनुकूल पदार्थ मिलने पर उसकी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती है उसको शान्ति नहीं मिलती है। सम्पूर्ण पृथ्वी पर जितना अन्न, सुवर्ण, पशु, स्त्रियां है, उन सबको मिलाकर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती है। जो मनुष्य इस प्रकार सोचता है, वह ज्ञानवान होता है। मनुष्य जब सभी जीवों में कर्म से, मन से तथा वचन से एक समान बर्ताव करते हैं तब मनुष्य को ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। तृष्णा को छोड़ देने पर ही मनुष्य को सुख मिलता है। वृद्धावस्था आने पर बाल सफेद हो जाते हैं, दांत टूट जाते हैं, लेकिन जीवन और धन की आशा नहीं छूटती है। कामनाओं की पूर्ति होने पर तथा अपने मन के अनुकूल सभी दिव्य पदार्थों के मिलने से जो सन्तोष होता है, उस सन्तोष से सोलह गुना अधिक कहीं तृष्णा के नष्ट हो जाने पर सन्तोष होता है। इस प्रकार राजा ययाति अपने पुत्रों को शिक्षा देकर स्त्री सहित वन में तपस्या करने चले गये। उन्होंने वन में मृगतुङ्ग नाम के स्थान पर तपस्या करके वहीं पर सौ व्रतों का विधि पूर्वक पालन किया, और स्वर्ग पधार गये। देवर्षियों के आदर करने योग्य ये पांच वंश हैं, जो सूर्य की किरणों के समान सम्पूर्ण पृथ्वी को घेरे हुये हैं। जो विद्वान मनुष्य राजा ययाति के इस उत्तम चरित्र का ध्यानमग्न होकर पाठ करता है या उसको सुनता है, उसे धन, धान्य, सन्तानें, पूजा, दीर्घायु और यश कीर्ति प्राप्त होती है।

[श्री वायु महा पुराण का चन्द्र वंश का वर्णन नामक
तिरानबैवां अध्याय समाप्त]

चौरानबैवाँ अध्याय

[कार्तिवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं आपको राजा ययाति के के सबसे बड़े पुत्र यदु के वंश का वर्णन करूंगा। यदु के पांच

पराक्रमशाली पुत्र पैदा हुये, इनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम सहस्राजित था, और दूसरे पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—क्रोष्टु, नील, जित, और लघु । सहस्रजित के परम कान्तिमान राजा शतजित नाम के पुत्र पैदा हुये। शतजित् के तीन धार्मिक पुत्र पैदा हुये, हैहय, हय, सारे राजा रेणुहय इनके नाम थे। हैहय राजा के वेणुतन्त्र नाम के पुत्र पैदा हुये, वेणुतन्त्र के कीर्ति नाम के पुत्र पैदा हुये, [illegible]त के संज्ञेय नाम के पुत्र पैदा हुये। सज्ञेय के महिष्मान नाम के पुत्र पैदा हुये, महिष्मान के भद्रश्रेण्य नाम के पुत्र पैदा हुये। ये राजा भद्रश्रेण्य वाराणसी पुरी के राजा थे। फिर राजा भद्रश्रेण्य के दुर्दम नाम के पुत्र पैदा हुये, दुर्दम के कनक नाम के धर्मात्मा पुत्र पैदा हुये, कनक के चार महान पुत्र पैदा हुये, इन पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं–कृतवीर्य, कार्तिवीर्य, कृतवर्मा और कृत नाम थे। कृतवीर्य से अर्जुन नाम के पुत्र पैदा हुए। राजा अर्जुन के एक हजार भुजाएँ थी और वह सातों द्वीपों का राजा था राजा कार्तिवीर्य ने दस हजार वर्षों तक अत्रि के पुत्र दत्त की पूजा की थी, फिर दत्त ने प्रसन्न होकर महत्वपूर्ण चार वरदान राजा कार्तिवीर्य को दिये, इन में सबसे पहला वरदान एक हजार भुजा वाले पुत्र का था, दूसरा वरदान इस लोक में अधर्म बढ़ता हुआ जानकर सदुपदेशों का प्रचार करना, तीसरा वरदान धर्म पूर्वक पृथ्वी को जीतकर उस पर धर्म पूर्वक ही प्रजा का पालन करना, चौथा वरदान इस प्रकार था कि युद्ध में विजय प्राप्त करके हजारों शत्रुओं का नाश करके युद्ध भूमि में अपने से अधिक बलशाली के हाथ से मरना। इन वरदानों को प्राप्त करके कार्तिवीर्यार्जुन ने सभी नगरों और पृथ्वी को जीत कर सातों द्वीपों तक फैली हुई पृथ्वी पर क्षत्रियधर्म स्थापित किया। उस परम चतुर महाराज के युद्ध करते समय उसकी माया से एक हजार बाहु हो जाते थे, और हजारों रथ, घोड़ा, लड़ने वाले वीर योद्धा तथा अनेक ध्वजाएँ माया से हो जाती थी। उस कार्तिवीर्य ने अपने राज्य में दस हजार यज्ञों का अनुष्ठान किया था, और उनके वे

सभी यज्ञ निर्विघ्न पूर्वक समाप्त भी हो गये थे। उन सब यज्ञों में सुवर्ण की वेदियां बनाई थीं और सुवर्ण के ही लट्ठे गढ़वाये थे। सभी ऐश्वर्यशाली राजा और देवता लोग अपने विमानों में चढ़ कर आते थे अनेक गन्धर्व और अप्सरायें आकर उनके यज्ञ मण्डल की शोभा बढ़ाते थे। नित्य गन्धर्व लोग राजा का यशोगान गाते थे। राजा कार्तिवीय की इस प्रकार महिमा और वैभव को देख नारदजी भी गुणगान किया करते थे। उस समय मनुष्य योनि में जन्म लेने वाला कोई भी राजा उनके, यज्ञ, दान, तपस्या, पराक्रम, बल पांडित्य की बराबरी में न था। सातों द्वीपों का वह राजा अपने धनुषबाण और तलवार लेकर रथ पर सवार होकर भी पीछे पीछे चलता दिखाई देता था। उसके राज्य में मनुष्य को किसी प्रकार दुख नहीं होता था किसी का धन चोरी नहीं होता था। उस राजा के राज्य में सभी प्रजासुखी रहती थी। राजा कार्तिवीर्य इस प्रकार पालन करके प्रजा की रक्षा करते थे तथा स्वयं ही खेती बारी की देखभाल भी करते थे। राजा कार्तिवीर्य ने धर्मपूर्वक इस प्रकार पिच्यासी हजार वर्ष तक राज्य किया। वह राजा स्वयं ही पशुओं का पालन करते थे और खेती करते तथा कभी अनावृष्टि होने के कारण राजा स्वयं ही वर्षा करके मेघों का कार्य भी सम्पन्न करते थे। एकछत्र सम्राट कार्तिवीर्य ने नागों की माहिष्मती नगरी में एक हजार नागों सहित कर्कोटक नाग को पराजित किया था और उस जगह अपना नगर बसाया। कमल के समान सुन्दर नेत्र वाले राजा ने खेल ही खेल में समुद्र के वेग को रोक कर असमय में ही वर्षा काल जैसा समय कर दिया था। जल क्रीड़ा करते हुये उसके गले से सोने की माला नर्वदा नदी में टूट कर गिर गई। राजा ने अपने तप व बाहुबल से नदी का वेग रोक दिया तथा नर्वदा नदी को सुखा डाला और उसके जल को इतना तप्त कर दिया कि समुद्र में जीव जन्तु जो जल में रहते थे, अकुलाने लगे और राजा से प्रार्थना करने लगे। नदी के सूखने पर राजा ने माला प्राप्त करली।

एक बार सहस्रबाहु अर्जुन ने नर्वदा के सहारे सहारे चलकर समुद्र को प्राप्त करके उसे हजार बाहुओं से आलोडित कर दिया और तटवर्ती वन प्रान्त को जल से डुबो दिया। इस प्रकार उस वन में बिना ऋतु के ही वर्षा ऋतु आ गई। सहस्रबाहु से आलोडित होने पर महा समुद्र विक्षुप्त हो गया और पाताल लोक के बहुत से राक्षस बेहोश हो गये और कितने ही डर के कारण छिप गये। उसकी हजार भुजाओं से समुद्र की तरंगें चूर चूर हो गईं। बड़े बड़े नाग व मत्स्य उसमें विलीन हो गये। समुद्र के जल में फैन उभर आये। समुद्र में भीषण तरंगें उठने लगीं। महाराज कार्तवीर्यार्जुन ने समुद्र को विक्षुब्धा कर दिया जैसे क्षीर सागर को देव-दानवों ने मिलकर विक्षुब्ध किया था।

उस भीमकाय राजा को समुद्र में विराजमान देखकर जल जन्तुओं को मदिराचल की आशंका हुई। वे बहुत ही भयभीत हुये। समुद्र में रहने वाले विषधर सर्प उस महावीर अर्जुन को देखकर विनम्र और सीधे स्वभाव वाले बन गये जैसे सायंकाल में हवा रुक जाने पर केले के वृक्ष खड़े रहते हैं। लंका में जाकर अर्जुन ने अपने कठोर धनुष से पांच सौ बाण छोड़कर सेना सहित रावण को मोह लिया था। इस प्रकार रावण को हराकर अपनी राजधानी माहिष्मती में लाकर उसको कैद में डाल दिया। महर्षि पुलस्त्य के बहुत कुछ कहने पर उसने रावण को छोड़ा। महावीर्य कार्तवीर्यार्जुन के धनुष की टंकार बिजली गिरने के समान थी। इतना होने पर भी महाबलशाली राजा कार्तवीर्य को जमदग्नि पुत्र परशुराम ने युद्ध भूमि में हेमताल के वन की भांति काट गिराया। एकबार आदित्य देव ने तृष्णा से व्याकुल होकर अर्जुन से भिक्षा मांगी थी, राजा ने सूर्य को सातद्वीपों सहित समस्त पृथ्वी का दान कर दिया। राजा के बाणों में स्थित होकर सूर्यदेव ने समस्त पृथ्वी, पुरों, ग्रामों पशुशालाओं को भस्म कर दिया। उस नरपति कार्तवीर्य के प्रभाव से सूर्यदेव ने पृथ्वी के सभी पर्वतों व वनों को जला दिया। राजा

कार्तवीर्य की सहायता से सूर्य ने पृथ्वी को जलाते समय वरुण के एक पुत्र का शून्य आश्रम भी जला दिया था। वरुण ने इस परम तेजस्वी गुण वाले पुत्र को प्राचीनकाल में प्राप्त किया था। वही पुत्र मुनिवर वशिष्ठ और 'आपव' के नाम से प्रसिद्ध हुये अपने आश्रम को नष्ट हुआ देखकर मुनिवर वशिष्ठ जी ने क्रोधित होकर राजा अर्जुन को शाप दिया कि "हैहय राजा ! तुमने मेरे आश्रम को नष्ट कर दिया तो तुम्हारे इस दुष्कर्म कर्म को कुन्ती पुत्र अर्जुन नष्ट करेगा। वह राजा भी न होगा। हे अर्जुन ! तुम्हारे इन भुजाओं को परशुराम काट डालेंगे। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तपस्वी परशुराम जी तुम्हारा संहार करेंगे।"

मुनिवर वशिष्ठ के शाप के कारण परशुराम जी उस सहस्रबाहु अर्जुन की मृत्यु के कारण बने। प्राचीनकाल में राजा को इस प्रकार का वरदान भी मिला था कि उसकी मृत्यु उससे अधिक बलशाली के द्वारा ही होगी। राजा कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र थे जिनमें शूर, सूरसेन, वृष्काद्य, वृष, जमध्वज नामक पांच महा योद्धा थे। ये सभी पुत्र बाण चलाने में प्रवीण, बलवान, ऐश्वर्यशाली थे। इनकी राजधानी अवन्ति नगरी थी जयध्वज के तालजघ नाम का प्रतापी पुत्र पदा हुआ। तालजंघ के सौ पुत्र 'तालजंघ गण' के नाम से प्रसिद्ध हुये। पराक्रमशाली उस हैहय वंश में उत्पन्न होने वालों के पांच गण प्रसिद्ध हैं उनके नाम इस प्रकार हैं—वीरहोत्रगण, भोजगण, आवर्तिगण, तुण्डिकेरिगण तथा तालजंघगण थे।

वीरहोत्र के अनन्त नाम का पुत्र हुआ। अनन्त के दुर्जय, दुर्जय के अमित्रदर्शन, नामक पुत्र हुआ। राजा कार्तवीर्यार्जुन के राज में लोगों का धन चोर नहीं हरण करते थे। वे अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से समस्त प्रजा का पालन करता था। जो मनुष्य इस लोक में परम विद्वान राजा कार्तवीर्यार्जुन के जन्म के वर्णन का पाठ करता या सुनता है उसकी सम्पत्ति नष्ट नहीं होती। वह इस लोक में धनधान्य से सुखी होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है।

इति श्रीवायुमहापुराण का कार्तवीर्यार्जुन के जन्म का ९४वां अध्याय समाप्त

पिचानबेवाँ अध्याय

(ज्यामघ का वृत्तान्त)

ऋषि बोले—हे सूत जी ! महाराज कार्तवीर्य ने आपव (वशिष्ठ) के आश्रम को क्यों जला दिया। वह राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन अपनी प्रजाओं का तो पालन करता था। तो उसने रक्षक होने पर भी उस तपोवन को क्योंजलादिया। कृपयाइसविषय मेंहमें विस्तार से बतलावें।

सूत जी बोले—हे ऋषिगणो ! आदित्य ब्राह्मणों का रूप बनाकर राजा कार्तवीर्य के पास आये और कहने लगे—हे राजन् ! मैं भूखा हूं मुझे अन्न आदि दीजिए मैं सन्तोष प्राप्त करने के लिए ही आपके पास आया हूं। मैं आदित्य हूं इसमें कोई सन्देह नहीं करना।

राजा बोला—हे भगवन् दिवाकर ! आपको किस प्रकार का भोजन कराऊँ जिससे आपकी सन्तुष्टि हो सके। आपके द्वारा बताये जाने पर वैसा ही प्रबन्ध कर दूँगा।

सूर्य बोले—हे राजन् ! मुझे यह समस्त स्थावर जगत का दान कर दो। उसी का भोजन करके मैं सन्तुष्ट होऊँगा। अन्य भोजन से मैं तृप्त नहीं हो पाऊँगा।

राजा बोले—हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ ! मैं मानव हूँ अतः अपने मानव तेज से समस्त स्थावर जगत को नहीं जला पाऊँगा। अतः आपको प्रणाम है।

आदित्य ने कहा—'हे राजन् ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ मैं तुम्हें ऐसे बाण दे रहा हूँ जो कभी नष्ट न होकर तुम्हें सदा सुख प्रदान करेंगे। मेरे तेज को मिलाकर ये बाण फेंके जाने पर जलने लगेंगे हे नृपति ! यह मेरे तेज के कारण मेघ और समुद्र को भी जला देंगे। इसके द्वारा सब पदार्थ सूख जायेंगे और मैं उन्हें खालूँगा। तभी मेरी असली तृप्ति होगी।'

ऐसा कहकर आदित्य देव ने राजा कार्तिवीर्य को बाण प्रदान कर दिए। उन बाणों से अर्जुन ने समस्त स्थावर पदार्थों को जो

'समस्त विशाल भूमण्डल में थे, तथा ग्राम, आश्रम, गोष्ठनगर तपोवन, सुन्दरवन उपवन, सबको भस्म कर दिया और तदनन्तर सूर्य की परिक्रमा की। सूर्य के तेज से समस्त पृथ्वी तृणों और वृक्षों से रहित होकर भस्म होगई। इसी समय महर्षि आपव एक व्रत करके दस हजार वर्षों तक जल में निवास कर रहे थे वे महान तेजस्वी तपोधन आपव अपने व्रत को समाप्त करके उठे तो उन्होंने अपना आश्रम राजा अर्जुन के द्वारा भस्म हुआ देखा। उसी समय उन्होंने कार्तिवीर्य को शाप दे दिया।

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! इसी प्रसंग में राजा क्रोष्टु के वश का विवरण किया जाता है सो सुनिए। इस वंश में ही वृष्टि वंश के प्रवर्तक वृष्णि का भी जन्म हुआ था। क्रोष्टु के पुत्र केवल वृजनीवान्थेइस के पुत्र स्वाहा जो स्वाहा (यज्ञ) करने वालो में श्रेष्ठ थे, सभी लोग उन्हें बहुत चाहते हैं। स्वाहा के पुत्र राजा रुशादु दानियों में अग्रगण्य थे। रुशादु के बड़े पुत्र प्रसूत प्रजा के बहुत प्रिय थे। उन्होंने महान यज्ञों को किया था। जिसमें बहुत सी दक्षिणायें दी गई थीं उसका पुत्र चित्ररथ हुआ। जो विचित्र ढंग से पैदा हुआ था। चित्ररथ ने भी बहुत से दक्षिणावाले यज्ञ किये थे। इसके बाद राजा शशबिन्दु राज्य का अधिकारी हुआ। यह महा बलवान, पराक्रमी और अनेक पुत्रों वाला चक्रवर्ती राजा था। उसके विषय में लोग अनेक श्लोकों का गान करते हैं जो पुराने राजाओं की कथा में गाया करते हैं। उन श्लोको के भावनिम्न प्रकार हैं।

राजा शशबिन्दु के सौ महान बलवान पुत्र थे जिनमें छै सब से प्रमुख तथा महा प्रतापशाली थे। इनको प्रथुगण कहते हैं। इनके नाम पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, प्रथुश्रजयऔर प्रथुदाता थे सभी पुराण प्रथुश्रवा के पुत्र अन्तर की बड़ी प्रशंसा करते हैं। यह अन्तर प्राचीन काल में यज्ञ का पुत्र था। इसी धर्मात्मा ने 'उशना' नाम से भी पृथ्वी को प्राप्त किया था। उशना ने सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे। उसका पुत्र राज्यर्षियों से सम्मानित मरुत हुआ। मरुत का पुत्र वीर कम्बलवर्हि हुआ। उसका पुत्र परम

विद्वान रुक्म कवच था। प्राचीनकाल में इस राजा ने धनुष बाण, कवच धारण करने वाले श्रेष्ठ राजाओं को हराकर श्रेष्ठ राज्य लक्ष्मी प्राप्त की और अश्वमेध यज्ञों में ब्राह्मणों को बहुत सा धन दक्षिणा में दिया था। इसके पाँच बलशाली शत्रुदमन पुत्र हुये। जिनके नाम हैं–रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि। राजा ने अपने पुत्र परिघ और हरि को विदेह देश का राजा नियुक्त किया। रुक्मेषु अपने पिता के राज्य के उत्तराधिकारी हुये। पृथुरुक्म उसमें अधीन था। उन सभी भाइयों ने मिलकर ज्यामघ को निर्वासित कर दिया उसने जंगल में अपना आश्रम बना लिया था। वन में मुनिवेषधारी ज्यामघ ने एक ब्राह्मण के कहने पर रथ पर चढ़कर मध्य देश को चल दिया। वह नर्वदा के किनारे ऋक्षवान नामक पर्वत पर पहुँचा। वहां से शुक्तिभक्तो में प्रविष्ट हुआ। ज्यामघ की पत्नि शैव्या परम शक्ति मती थी। उसके कोई पुत्र नहीं था परन्तु फिर भी उसने दूसरी शादी नहीं की थी। एक विजय में राजा को एक कन्या मिली। उसे लाकर उन्हो ने शैव्या को दिया और कहा–कि यह तुम्हारी पुत्र वधू है। तुम्हारे जो पुत्र होगा यह उसी की बधु बनेगी। राजा के ऐसा कहने पर शैव्या ने कठोर तपस्या की। और फल स्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार साध्वी शैव्या ने अपना पुत्र वृद्धावस्था में प्राप्त किया जिसका नाम विदर्भ था। उसकी पुत्रवधू में विदर्भ के द्वारा क्रथ और कौशिक नामक दो पुत्र हुये। इसके बाद विदर्भ के एक तीसरा लोमपाद नामक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। लोमपाद के वस्तु नामक पुत्र हुआ। वस्तु के आहति नाम का पुत्र हुआ। को शक के पुत्र चिदि नाम के पुत्र हुये। चिदि के राजा चैद्य नामक पुत्र हुआ। विदर्भ राजा क्रथ के कुन्ति नामक पुत्र हुआ। कुन्ति के धृष्ट सुत नामक परम प्रतापी पुत्र हुआ। धृष्ट के निर्वृत्ति नामक पुत्र हुआ। निवृत्ति के महा बलवान दशार्ह नामक पुत्र हुआ। दशार्ह के पुत्र व्योमा हुये। व्योमा के जीभूत नामक पुत्र हुये। जीभूत के विकृर्त नामक पुत्र हुये। विकृति के भीमरथ हुये। भीमरथ

के सत्य वचन बोलने वाले शीलवान और दानी राजा 'रथवर' उत्पन्न हुये। राजा 'रथवर' के नवरथ नामक पुत्र हुये। नवरथ के 'दशरथ' हुये राजा दशरथ के एकादशरथ नामक पुत्र हुये। एकादशरथ के शकुनि हुये शकुनि के धनुषधारी राजा करम्भ पुत्र रूप में पैदा हुये। राजा करम्भ के देवरात नाम के पुत्र हुये। देवरात के महान यशस्वी 'देवक्षत्र' हुये। देवक्षत्र के देवन नामक पुत्र हुये। देवन के मधु नाम के पुत्र हुये। मधु के मेधार्थी सम्भव नामक पुत्र हुआ। मधु के चार पुत्र मनु, मनुवंश, नन्दन और महान-पुरुवश नाम के पुत्र पैदा हुये। पुरवश के 'पुरुद्वान' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुरुद्वान के पुरुद्रह उसको भद्रवती नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ। उसकी स्त्री इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुई थी उसमें उसे 'सत्व' नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। सत्व से कीर्तिशाली 'सात्वत नाम का पुत्र पैदा हुआ।

जो मनुष्य महात्मा ज्यामघ के वंश के इस कथा को पढ़ता और सुनता है वह सन्तानवान होकर राजा चन्द्रमा के लोक को प्राप्त करता है। इति श्री वायु महापुराण का ज्यामघ वृत्तान्त नामक पिचानवेवां अध्याय समाप्त ॥ ९५ ॥

छियानवेवाँ अध्याय

[विष्णु वश का वर्णन]

सूत जी बोले—हे ऋषियो! सात्वतराजा की रूपवती स्त्री कौशल्या ने भजिन, भजवान, राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज तथा यदुनन्दु वृष्णि इत्यादि पुत्रों को उत्पन्न किया इन सबों के चार वंशों का वर्णन सुनिये राजा भजमान ने अपनी श्रञ्जयी नाम की स्त्री वाह्यक और उपरिवाह्य नाम के दो पुत्र पैदा किये। तथा श्रञ्जय के दो कन्याऐं थीं, जिनका विवाह वाह्यक के साथ हुआ था उन राजा वाह्यक ने उन दोनों स्त्रियों से बहुत से पुत्र पदा किये, इन बहुत पुत्रों में निमि पणव और

वृष्णि मुख्य माने जाते थे। भजमान के पुत्र वाह्यक ने अपनी बड़ी रानी से इन पुत्रों को पैदा किया था, इसके बाद इसी प्रकार छोटी रानी से अयुतायुत-जित्, सहस्रजित शतजित और वायक नाम के पुत्रों को पैदा किया। इन सबों में राजा देवावृध ने कठिन तपस्या की थी, उन्होंने सर्वगुण सम्पन्न पुत्र की कामना से ही इतनी कठोर तपस्या की। इसप्रकार तपस्या करते समय राजा ने अपने योगबल से पणीशा नदी के जल का स्पर्श किया। नदी के जल का स्पर्श करते ही नदी ने राजा के वरदान की चिन्ता की, और सोचने लगी कि ऐसी कोई भी स्त्री नहीं है जिससे राजा सर्वगुण सम्पन्न पुत्र पैदा कर सके। अतः नदी ने सोचा कि मैं ही राजा को स्त्री रूप में ग्रहण करूँगी जिस प्रकार राजा ने भावना की थी, उसी भावना के अनुसार नदी से स्वयं ही उसके हाथ प्रकट हुये, फिर सावित्री कुमारी होकर राजा स्त्री रूप में हो गई, तब राजा देवावृध ने उसकी इच्छा पूर्ण करते हुये उस कुमारी में एक तेस्वसी पुत्र को गर्भाधान किया। सभी नदियों में श्रेष्ठ पर्णाशा नदी ने राजा की रानी बनकर नवें मास में सर्वगुण सम्पन्न एक पुत्र को पैदा किया। विद्वान मनुष्य राजा के गुणों और वंशों का वर्णन करते हुये कहते हैं। राजा देवावृध सभी प्रकार से गुण शाली था। वभु अपने सभी समाज में श्रेष्ठ थे। इस वंश के पैंसठ हजार सत्तर मनुष्यों को अमृत प्राप्त हुआ था। वभु का ऐश्वर्य देवावृध से भी बढ़ा हुआ था। उसके वंश में भोज वंशीय और आर्तिकावलों की उत्पत्ति हुई थी। गान्धारी और माद्री ये दोनों वृष्णिवंश की स्त्रियां थीं। इनमें से गान्धारी ने सुमित्र, मित्रनन्दन और माद्री ने युधाजित्, देवभीढुष और अनमित्र नाम केपुत्र पैदा किये। अनमित्र का निघ्न नाम का पुत्र हुआ था। निघ्न के प्रसेनजित् और शक्रजित् नाम के पुत्र पैदा हुये। शक्रजित् के सूर्यदेव परम मित्र थे।

एक बार प्रातःकाल के समय शक्रजित् अपने रथ पर सवार होकर सूर्य की उपासना करने के लिए एक जलाशय के जल का स्पर्श

करने गया । जिस समय वह उपासना कर रहा था। उस समय अस्पष्ट रूप रख कर अपने तेजोमण्डल से समन्वित होकर भगवान सूर्यदेव उनके आगे खड़े हो गये। सूर्यदेव को सामने खड़े हुआ देख कर राजा ने कहा—हे आदित्य ! मैं आपको तेजस्वी आकाश में देखता हूँ वैसे ही अब भी देख रहा हूं। हे भगवन् ! फिर आप बतलाइये आपके मित्र होने की विशेष बात क्या रह । शक्रजित् की यह बात सुनकर सूर्यनारायण ने अपने गले से स्यमन्तक नाम की मणि को उतार कर शक्रजित् को पहना दिया, तब राजा ने सूर्य को शरीर धारण किये हुये देखा, और एक मुहूर्त तक एकटक देखता रहा। फिर उन्हें जाने को तैयार देखकर शक्रजित् ने कहा कि हे भगवन् ! आप अग्नि के समान तेजस्वी हो जिस प्रकाशमान मणि को धारण करके आप समस्त लोकों में घूमते हो उसी मणि को मुझे देने की कृपा करो। राजा की इस याचना पर स्यमन्तक मणि को उसे दे दिया, उस मणिको बाँधकर राजा अपने नगर में आया। लोग उसको सूर्य जानकर उसके पीछे भागने लगे। पुर- और अन्तःपुर के लोगों को विस्मय में डाल कर वह राजा शक्रजित् अपने भाई प्रसेनजित के पास पहुँचा, और बड़े प्रेमपूर्वक उस दिव्य मणि को प्रदान किया। इस स्यमन्तक मणि के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि वह जिस राष्ट्र में रहेगी वहाँ मेघ समय पर वर्षा करेंगे, और व्याधियों का डर नहीं रहेगा गोविन्द के मन में उस मणि को लेने की इच्छा थी किन्तु सामर्थ्यवान होने पर भी उन्होंने प्रसेनजित् से नहीं छीना।

एक बार राजा प्रसेनजित् स्यमन्तक मणि को धारण करके शिकार खेलने के लिये जंगल में गये। उसी स्यमन्तक मणि के कारण एक सिंह ने उनको मारडाला। रीछराज जाम्बवान् ने उससिंह को मार डाला और मणि को लेकर अपनी गुफा में चलेगये। वृष्णि और अन्धक वंशके लोगों ने इस हत्या की शंका भगवान कृष्ण पर की कि स्यमन्तक मणि के लोभ से कृष्ण ने ऐसा किया है। ऐसी शंका सब को होने लगी। यह सुन कर कृष्ण भगवान को लोगों की ऐसी शंका करना सहन नहीं हुआ,

और उस रहस्य का पता लगाने को जगंल को चले गये और जहां प्रसेनजित शिकार खेलने के लिए गये थे, उसी ओर उनके पद चिन्हों को देखते २ आगे बढ़े। वहां विंध्याचल और ऋक्षवान पर्वत पर घूमते २ श्रीकृष्ण ने घोड़े सहित प्रसेनजित को मरा हुआ देखा, परन्तु मणि को नहीं देखा, थोड़ी दूर पर एक सिंह को भी मरा हुआ देखा। वहां पर रीछ के पैरों के निशान से यह साफ मालूम हो रहा था कि सिंह को किसी रीछ ने मारा है। उसी रीछ के पद चिन्हों के द्वारा रीछ की गुफा का पता लगाया। श्रीकृष्ण ने उस विशाल गुफा में स्त्री की आवाज सुनी। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! उस गुफा में जम्बवान के लड़के को धाय पड़े प्रेम से उस स्यमंतक मणि को दिखलाकर बेटा रोओं मत इस प्रकार कह कर खिला रही थी।

धाय बोली

प्रसेनजित् को सिंह ने मारा, सिंह को जाम्बवान ने मारा हे मेरे सुकुमार बेटे! "तुम रोओ मत क्योंकि यह मणि तुम्हारी है"। धाय की यह बात सुनकर श्रीकृष्ण ने उस गुफा में शीघ्रता से प्रवेश किया क्योंकि वे गुफा के पास ही प्रसेनजित को मरा हुआ देख चुके थे। गुफा में पहुँच कर भगवान कृष्ण ने रीछ के राजा जाम्बवान को देखा फिर उसी गुफा में ही जाम्बवान और वासदेव का युद्ध आरम्भ हो गया। गोविन्द ने इक्कीस दिनों तक बाहुओं से युद्ध किया। इधर श्रीकृष्ण के साथियों ने श्री कृष्ण के गुफा में पहुँच जाने के बाद बहुत समय होता देखा तो द्वारकापुरी को लौट आये, और श्रीकृष्ण तो मारे गये ऐसी प्रसिद्धी होगई। इसके बाद भगवान वासदेव ने महाबलशाली रीछ राज को परास्त कर दिया, भगवान के तेज से प्रभावित होकर जाम्बवान ने अपनी कन्या जाम्बवती को और स्यमंतक मणि को भगवान कृष्ण को सौंप दिया। इस प्रकार स्यमंतक मणि को प्राप्त कर श्रीकृष्ण ने अपने पुरुषार्थ द्वारा अपना अपयश दूर किया, और स्यमन्तक मणि

को लेजाकर समस्त सात्वत वंशियों के सामने शक्रजित को प्रदान किया। और इसके बाद मधुसूदन भगवान ने अपने घर लाकर जाम्बवती के साथ विवाह किया। भगवान श्रीकृष्ण के ऊपर फैलाई गई इस झूठी अपकीर्ति को दूर करने का वर्णन जो पढ़ता है उसको कभी भी इस प्रकार की अपकीर्ति का पात्र नहीं होना पड़ता है।

शक्रजित् की दस स्त्रियों ने जो सब आपस में सगी बहिन थीं, उन्होंने सौ पुत्र उत्पन्न किये। उनमें तीन ही अधिक प्रसिद्ध हुए। सबसे बड़े पुत्र का नाम भृंगकार था अन्य दो पुत्रों का नाम ब्रतपति तथा सुप्रिय अपम्बान्त था। भृंगकार की पत्नि द्वारवती के तीन सर्वगुण सम्पन्न कन्याएँ हुईं। इनमें परम सुन्दरी सत्यभामा परम तपस्विनी थी, पिता ने उनका विवाह कृष्ण के साथ करने की सोची। कृष्ण ने स्यमन्तक मणि जब शक्रजित् को दी थी, तब उस मणि को बभ्रु ने पहन लिया। भोजवंशीय शतधन्वा ने उससे उस मणि को छीन कर अक्रूर को दे दिया। शतधन्वा ने उसके बदले अक्रूर से सत्यभामा की प्राप्ति के लिये सहायता की। अक्रूर ने मणि लेते समय उससे प्रतिज्ञा करालो कि इस षड़यत्र का किसी को पता न लगे। कृष्ण जब तुमको पीड़ित करेंगे, तो हम सब तुम्हारी सहायता करेंगे, क्योंकि द्वारकापुरी के सभी लोग हमारे वंश में हैं। रात्रि के समय सोते हुये भृंगकार को शतधन्वा ने मार डाला। पिता के मारे जाने पर सत्यभामा बहुत दुखी हुई और रथ पर चढ़ कर वारणावत गई। वारणावत में पाण्डवों के जलजाने पर श्रीकृष्ण द्वारका आये और अपने भाई हलधर जी से सभी बातें कीं, और बोले हे सर्वशक्तिमान! जिस मणि के लिये सिह ने प्रसेनजित् को मारा था उसी के कारण शतधन्वा ने शत्रजित् को मार दिया। मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप शतधन्वा का वध करदें। महा बलवान भोज का संहार करने के बाद ही हमको स्यमन्तक मणि मिल सकेगी।

इस प्रकार विचार करने के बाद श्रीकृष्ण और शतधन्वा में महान युद्ध छिड़ गया। पूर्व में हुई प्रतिज्ञा के अनुसार शतधन्वा ने लड़ाई के मैदान में अक्रूर को देखना चाहा, परन्तु दसों दिशाओं में देखने पर भी अक्रूर का कहीं पता न लगा। हृदय से मित्र और सहायता में समर्थ होते हुए भी अक्रूर शतधन्वा की सहायता के लिये नहीं आये, इससे शतधन्वा बहुत घबड़ाया, और अपनी विज्ञा हृदया नाम की घोड़ी पर सवार होकर युद्ध भूमि से भाग निकला। उस घोड़ी के वेग को सौ योजन देखकर श्री कृष्ण ने शतधन्वा का पीछा किया। हे ब्राह्मणो! अत्यन्त परिश्रम के कारण पसीना से तर होकर उस घोड़ी के प्राण निकल गये इसके बाद श्रीकृष्ण ने बलराम से कहा कि आप यहीं ठहरिये। देखो वह घोड़ी तो मर गई। मणि को मैं पैदल ही शतधन्वा से छीन कर लेआता हूँ ऐसा कह कर भगवान अच्युत ने पैदल दौड़कर मिथिला के राजा शतधन्वा को मार डाला। किन्तु उसके मार देने के बाद भी मणि उसके पास न मिली। शतधन्वा को मार कर जब भगवान कृष्ण लौटे तो बलरामजी ने उनसे स्यमंतकमणि माँगी, तो श्री कृष्ण ने कहा कि उस पर मणि नहीं मिली, इस प्रकार बलरामजी भगवान कृष्ण पर बहुत क्रोधित हुऐ और उन्होंने कृष्ण को बहुत धिक्कारा और कृष्ण से कहा कि भाई के नाते में तुमको छोड़े देता हूँ, जाओ तुम्हारा कल्याण हो, मै भी जा रहा हूं, और मेरा द्वारकापुरी से और तुम से कोई सम्बन्ध नहीं है और न वृष्णिवंशियों से ही कोई सम्बन्ध है। इसप्रकार कह कर बलरामजी मिथिलापुरी को चल दिये मिथिलापुरी में जाकर उनका बहुत स्वागत हुआ, वहां पुरुवासियों ने उन्हें अनेक उपहार प्रदान किये। गाधि के पुत्र ने उस स्यमंतक मणि के लिए और अपनी रक्षा के लिए एक दीक्षामय कवच पहन रखा था। साठ वर्ष के समय में उसने अनेक यज्ञ किये, उस विद्वान के ये यज्ञ अक्रूर यज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हुए। उसमें बहुत सा अन्न और दक्षिणा के रूप में

बहुत सा धन खर्च हुआ। इसी बीच में दुर्योधन ने मिथिपुरी में पहुँच कर बलरामजी से गदा चलाने की शिक्षा ग्रहण की। इसके बहुत समय बाद भगवान कृष्ण और वृष्णि तथा अन्धक वंशों के लोगों ने बड़ी प्रार्थाना करके बलरामजी को प्रसन्न किया, और उन्हें द्वारकापुरी चलने के लिये वाध्य किया। अक्रूर भी युद्ध में वन्धुमान के साथ शत्रुघ्न को संहार करके अन्धकों के साथ द्वारका से बाहर चले गये थे। ये दोनों महा बलवान पुत्र भंगकार के ही थे। स्वफल्क की पुत्री नय इन दोनों की माता थी। अन्धकों के स्वामी भृंगकार के ये दोनों पुत्र (शत्रुघ्न और वन्धुमान) बहुत बलवान थे। भृंगकार की मृत्यु के बाद श्रीकृष्ण अक्रूर से प्रसन्न नहीं थे। इस प्रकार जाति के हट से और समाज से अपमानित होकर अक्रूर द्वारकापुरी से बाहर चले गये। उनके चले जाने पर राज्य में अनावृष्टि के कारण संकट आगया लोग एक दूसरे को मारने काटने लगे। इस दुर्घटना से दुखी होकर कुकुट और अन्धकों ने अक्रूर को परम प्रसन्न किया अक्रूर के द्वारका लौटने पर इन्द्र ने बहुत जोर की वर्षा की। अक्रूर ने श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिये सर्वगुण सम्पन्न शीलवती नाम की अपपी बहिन को प्रदान किया। भगवान वासदेव ने योगवल से यह जान लिया कि स्यमन्तक मणि इन के ही पास है, और भरी सभा में यह घोषणा की कि हे अक्रूर जी! आप के पास जो सर्व श्रेष्ठ स्यमन्तक मणि है उसे हमें प्रदान कर दीजिये। साठ वर्ष से उसी के कारण आपके ऊपर हमारा क्रोध है। कृष्ण के इस प्रकार बचन सुनकर विद्वान अक्रूरजी ने उस भरी सभा में भगवान वासदेव को वह मणि लाकर देदी। भगवान वासदेव ने उस मणि को लेकर परम प्रसन्न होकर पुनः वहमणि अक्रूर को वापिस करदी। अक्रूर ने मणि को कृष्ण के हाथ से प्राप्तकरके यथा स्थान धारण कर लिया। वे सूर्य के समान उस समय शोभा पाने लगे। भगवान के ऊपर लगाये गये ऐसेइस झूठे अपवाद को जो मनुष्य जानता है वह कभी भी ऐसे अपमान का भाजन नहीं बनता।

छोटे बृष्णिनन्दन अनमित्र से शिनि का जन्म हुआ। उनके पुत्र सत्य परायण सत्यक हुये। सत्यक के पुत्र सात्यिकि हुए। उनका दूसरा नाम ययुधान भी था सात्यिकि के पुत्र भूति हुये। भूति के युगन्धर हुये। इन सभी भौत्य कहलाने वाले बृष्णियों का वर्णन मैं कर चुका।

माद्री के पुत्र युधाजित के प्रश्नि नामक पुत्र हुये। प्रश्नि के स्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र हुये। महाराज स्वफल्क परम धर्मात्माराजा थे। वे जहाँ रहते थे वहां पर व्याधियों तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था। हे ब्राह्मणो! एक बार काशीराज के धार्मिकराज में इन्द्र ने वर्षा नहीं की। काशिराज ने अपने यहां महाराज स्वफल्क को बुलाया। स्वफल्क के वहाँ वास करने पर इन्द्र ने वहां वर्षा की। स्वफल्क ने काशीराज की परम सुन्दरी कन्या गान्दिनी के साथ अपनी शादी की। गान्दिनी प्रतिदिन सौ गायें ब्राह्मणों को दान करती थी। कहा जाता है कि यह गान्दिनी अपनी माता के उदर में बहुत से वर्षों तक रही। गर्भ में ही उसने पिता से कहा था हे गर्भस्थ सन्तान! तुम शीघ्र उत्पन्न हो तुम्हारा कल्याण हो। तुम गर्भ में ही क्यों निवास कर रही हो। राजा की बातें सुनकर गर्भ कन्या ने उत्तर दिया–पिता जी! आप प्रतिदिन गौओं का दान करें तब मैं उत्पन्न हूँगी। "बहुत अच्छा' ऐसा पिता ने कहा इसके बाद कन्या की मनोकामना पूर्ण की गई। उसी गान्दिनी के स्वफल्क के सयोग से परमदानी, यज्ञकर्त्ता, शूरवीर, वेदज्ञ, अथिति सेवक अक्रूर का जन्म हुआ'। राजा स्वफल्क भी परम दानी थे। स्वफल्क के अक्रूर के अतिरिक्त भी अन्यपुत्र थे इनके नाम हैं–उपमंगु मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिरज्ञ, यज्ञ, शत्रुघ्न अथवा अरिमर्दन, धर्मभृत, शृष्टचय, वर्गमोच, आवाह तथा प्रतिवाह। इसके अतिरिक्त परमसुन्दरी वसुदेवा नाम की एक कन्या भी थी अक्रूर की पत्नि का नाम उग्रसेनी था उससे दो पुत्र देव एवं अनुपमदेव उत्पन्न हुये जो परिवार को अति आनन्द प्रदान करने वाले थे। तथा देवताओं

के समान गुण वाले थे। चित्रक के पुत्र थे पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्वबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुवर्मा, चर्मभृत, बर्मभृत, अभूमि और बहुभूमि। श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो स्त्रियाँ भी थीं। काशिराज की कन्या ने सत्यक के संयोग से कुकुद, भगमान शभी, कम्बलवहिष् नामक चार पुत्रों को पैदा किया। कुकुद के पुत्र वृष्टि थे वृष्टि के पुत्र का नाम 'कपोतरोमा' था। कपोतरोमा का पुत्र रेवत था। रेवत का पुत्र तुम्बरुसखा था जो परम विद्वान था। इसके दूसरे नाम चन्दनोदक दुँदभि भी थे। उनका पुत्र 'अभिजित' नाम वाला हुआ। अभिजित के पुनर्वसु हुए। यह अश्वमेधयज्ञ की वेदी से प्रकट हुआ था। पुनर्वसु विद्वान, हवन कर्त्ता थे। उनके जुड़वां सन्तानें हुईं। इनके नाम आहुक आहुकी थे जो शस्त्रबल तथा बाहुबल आदि से कभी भी पराजित नहीं हो सकते थे। ये दोनों महाबुद्धिमान थे। उनके बारे में कुछ श्लोक इस प्रकार हैं— ये महाराज आहुक मेघ के समान घोर आवाज करने वाले थे। ये राजा समस्त रण सामग्री से सजधज कर ध्वजा और कवचों से सुरक्षित, दस हजार रथों से तथा सुन्दर किशोर अवस्था वाले दस हजार अस्त्री अश्वों के साथ युद्ध में आक्रमण करते थे। उसके वंशों में इनसकार का कोई भी राजा नहीं हुआ। वहां के राजा सत्य बोलने वाले, यज्ञादि का अनुष्ठान करने वाले थे तथा सभी राजा एक हजार से अधिक धन का दान करने वाले थे। उसके राज्य में सभी प्रकार के सुख थे। राजा आहुक के धतृ नाम के पुत्र हुए। राजा भोजराज के समान राजा आहुक ने भी पूर्व दिशा में सुवर्ण और चांदी के आभूषणों से सुसज्जित इक्कीस हजार हाथियों की बलवान सेना को लेकर राजा भोज के ऊपर हमला किया था और उसी प्रकार उत्तर दिश में भी इतनी सेना लेकर राजा भोज पर चढ़ाई की थी। यह बात प्रसिद्ध है कि युद्ध में उसके पैरु पैरों के घुघुरू बज उठे थे। राजा आहुक ने अपनी बहिन आहुकि का विवाह राजा आहुकान्ध के साथ किया था। आहुकान्ध के सयोग से

उसके दो पुत्र पदा हुये । उनके देवक और उग्रसेन नाम थे। ये दोनों पुत्र देवताओं के समान सुन्दर प्रभाव शाली थे। राजा देवक के तीन बहुत सुन्दर शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए इनके नाम देवदेव, सुदेव, और देवरक्षिता थे। राजा देवक के सात कन्याऐं भी थीं, उनके नाम भी इसप्रकार हैं। बृकदेवा, उपदेवा, देव रसिता, श्रीदेवा, शान्ति देवा, महादेवी तथा देवकी थीं। इन सब में देवकी जी बहुत सुन्दर थीं। इन सातों बहिनों का विवाह राजा वसुदेवजी के साथ हुआ था। राजा उग्रसेन के नौ पुत्र थे, उनके नाम इस प्रकार हैं। न्यगोध, सुनामा, कङ्कशंकु, भूमय, सुतनु राष्ट्रपाल, युद्धातुष्ट पुष्टिमान और कंस थे। इन सब में कंस सबसे बड़ा था। इन नवों भाइयों की पांच बहिनें थीं जिनके नाम कर्म्मवती, धर्मवती, शंतांकु राष्ट्रपाला और सुन्दरी कन्या थीं। राजा उग्रसेन कुक्कुर वंश के प्रसिद्ध राजा थे। जो मनुष्य इन कुक्कुर वशों के वर्णन को सुनता है वह अपने विपुल वंश का पालक होकर उत्तम सन्तान वाला होता है।

राजा भजमान् के श्रेष्ठ रथारोही राजा विदूरथ पैदा हुये, उन राजा विदूरथ के शूर और विदुर नाम के पुत्र पैदा हुये। इन में शूर के आठ महा बलशाली पुत्र पैदा हुये; इनके नाम ये हैं—वात, निवात, शोणित, शतिवाहन, शमी, गदवर्मा, निदात, और शत्रुजित् थे। शमि के प्रतिक्षित्र नाम के पुत्र पैदा हुये। स्वयम्भोज के हृदिक नाम के पुत्र पैदा हुये। हृदिक के दस बहुत भयानक पुत्र पैदा हुये, उनमें सबसे बड़े पुत्र का नामकृतवर्मा था-दूसरे का नाम शतधन्वा था, देवाई, भिषक्, द्वैतरथ, सुदान्त, धियान्त नकवान् और कनकोद्भव था। देवाई के कम्बल, वर्हिष नाम के पुत्र पैदा हुये। और कम्बल वर्हिष राजा के असमौजा सुसमौजा नाम के दो पुत्र हुये। सुसमौजा के कोई पुत्र नहीं हुआ भगवान कृष्णने उसे सुदंष्ट्र और सुरूप नाम के दो पुत्र दिये। जो मनुष्य अन्धक वंश के वर्णन को नित्य प्रति ध्यान सुनता है वह इस लोक में सुख पाकर परलोकमें सुख पाता है।

राजा शूर ने अस्मकी से देवमीदुष नाम के पुत्र को पैदा किया माषी में देवमाहुष नाम के पुत्र पैदा हुये। भोज की कन्या भाषी ने राजा शूर के संयोग से दस श्रेष्ठ पुरुषों को पैदा किया। इनमें वसुदेवजी सबसे अधिक बलशाली थे। ये पूर्व काल में आनकदुन्दुभि नाम से प्रसिद्ध थे। राजा वसुदेव जिस समय पैदा हुये थे, उस समय आकाश में अति सुन्दर गम्भीर ध्वनि तथा फूलों की वर्षा होने लगी। सम्पूर्ण मृत्यलोक में राजा वसुदेव के समान कोई सुन्दर रूप वाला न था। उस परम तेजस्वी राजा वसुदेव की कीर्ति चन्द्रमा के समान लोक मनोरञ्जनी तथा विशद थी। बसुदेव के बाद शूर के देवभाग नाम के पुत्र पैदा हुये। उनके बाद देवश्रवाः नाम के पुत्र पैदा हुये। इनके अलावा अनाद्दष्टि, कड़ नन्दन, भृञ्जिन, श्याम शविक और गण्डूष नाम के पुत्र थे। इनके चार सुन्दर कन्याऐं भी थीं, इन कन्याओं के नाम पृथा, श्रुतवेदा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा नाम थे। इनके राजाधि देवीं नाम पाँचवीं कन्या और थी। कुन्ति ने पृथा को अपनी कन्या रूप में देखा, और उसका विवाह राजा पाण्डु ने किया था। निःसन्तान राजा कुन्ति भोज को पिता ने पृथा को देदिया था। कुन्ति भोज की पोषित पुत्री होने के कारण वह कुन्ति नाम से प्रसिद्ध हुई। कुरु वश के राजा पाण्डु ने कुन्ति के साथ विवाह किया। पृथा ने पाण्डु के संयोग से अग्नि के समान परम तेजस्वी तीन पुत्रों को पैदा किया उन तीनों पुत्रों की समानता में पृथ्वी पर दूसरा कोई राजा न था। वे इन्द्र के समान पराक्रम शाली और वीर थे। पृथा ने धर्म के अंश से युधिष्ठिर को पैदा किया और मारुत के अंश के भीम नाम का पुत्र पैदा किया। तीसरा इन्द्र के अंश से अर्जुन नाम का पुत्र पैदा किया। अश्विनी कुमार के अंश से माद्री ने नकुल और सहदेव को पैदा किया पैदा होते ही यह दोनों पुत्र महा तेजस्वी और पराक्रमी प्रतीत होते थे तथा इनके नेत्रों से ऐश्वर्य की परम आभा की ज्योति प्रज्वलित दर्शती थी जिस समय यह पैदा हुये थे उस समय बड़े बड़े देवज्ञों व ऋषियों ने शुभाशीर्वाद दिया था।

ये दोनों परम बलवान और सुन्दर थे। बृद्ध शर्मा ने श्रुतिदेवी स्त्री के संयोग से दन्तवक्र नाम के महाबलशाली पुत्र को पैदा किया यह दन्तवक्र करुषदेश का स्वामी था। कैकयदेश की राजपुत्री श्रुत-कीर्ति ने सन्तर्दन नाम के पुत्र को पैदा किया। उसने भीचेकितान और बृहत्क्षत्र नाम के दो पुत्रों को पैदा किया। अवन्ति नगरी के राजा विन्दु और अनुबिन्दु ये दोनों भाई भी उन्हीं के पुत्र थे। श्रुतश्रवा ने राजा शिशुपाल को पैदा किया। यह चेदि देश का राजा था। दमघोष को पत्र था राजा शिशुपाल। वह पूर्व जन्म में दशग्रीव रावण के रूप में पैदा हुआ था। इनके भाई पटुश्रवा और बहिन रुजकन्या थी। राजा वसुदेव के तेरह सुन्दर रानी थीं। उन रानियों के इस प्रकार नाम थे। पौरवी, रोहिणी, अपरा, मदिरा, भद्रा, वैशाखी और देवकी ये सात पटरानी थीं। सुगन्धि और वनराजी ये दो परिचारिकायें थीं। रोहिणी और पौरवी ये दोनों बाल्हीक की कन्या थीं। सबसे बड़ी रानी रोहिणी वसुदेव जी की परम प्रिया थीं। उनके संयोग से सबसे बड़े पुत्र बलराम जी तथा अन्य पुत्र सारण, निशठ, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक, कुशीतक नाम के आठ पुत्र और चित्रा नाम की एक कन्या को पैदा किया। बलराम जी के निशित और उत्सुक नाम के दो पुत्र पैदा हुए। जो वसुदेव जी के पौत्र थे बलराम जी के अन्य पुत्र भी थे। पार्श्वी, पार्श्वनन्दी, शिशु सत्यधृति, मन्दवाह्य, रामाण, गिरिक, गिरि, शुल्कगुल्म, गुल्म दरिद्रान्तक नाम के थे। इनके पांच बहिनें थीं। अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा और शतवला थीं। ये पांचों पुत्रियां सारण की थीं। भद्रारक, भद्रगुप्ति, भद्रविद्य, भद्रबाहु, भद्रत्थ, भद्रकल्प, सुपार्श्वक, कीर्तिमान, रोहिताश्व, भद्रज, दुर्मद और अभिभूत ये रोहिणी के पुत्र पौत्रादिकों के नाम हैं। मदिरा के नन्द, उपनन्द, मित्र, कुक्षिमित्र चल, पुष्टि और सुदेव नाम के पुत्र तथा चित्रा और उपचित्रा नाम की दो कन्याएं थीं। भद्रा के चार पुत्र उपबिम्ब, बिम्ब, सत्वदन्त और महोजा थे। वसुदेवजी नेकौशिकी नाम के पुत्र को पौशखि स्त्री

से पैदा किया। वसुदेव जी ने देवकी के गर्भ से छः पुत्र सुषेण, कीर्तिमान, तदय, भद्रसेन, यजुदाय और भद्रविद नाम के पैदा किए। इन छः पुत्रों को राजा कंस ने मार डाला। ऐसी हालत में लोकनायक भगवान कृष्ण देवकी के सातवीं बार गर्भ से उत्पन्न हुए। इनके बाद सुभद्रा नाम की बहिन उत्पन्न हुई। इन्हीं सुभद्रा को कृष्ण नाम से भी पुकारते थे। कृष्ण के गर्भ से राजा अर्जुन ने महानवीर अभिमन्यु को पैदा किया। अब वसुदेव जी की दूसरी सन्तान का वर्णन सुनिये। राजा वसुदेव ने सहदेवा के संयोग से परमवीर भयासव नाम के पुत्र को पैदा किया। शाङ्गदेवा के गर्भ से तम्बु नाम के पुत्र पैदा हुए। शौरी ने कुलोद्वह नाम के पुत्र को पैदा किया उपदेवा ने उपदंग, वसु, देव, रक्षित, विजय, रोचन, और वर्धमान नाम के पुत्रों को पैदा किया। वसुदेव के इन दस पुत्रों को भी कंस ने मार दिया। बृकदेवी ने महात्मा स्वगाइव को पैदा किया। इन्हीं वृकदेवी को आगाही, स्वसा, सुरूपा, और शिशिरायणी भी कहते थे। सुन्दरी देवकी ने महाभाग्यशाली गवेषण नाम के पुत्र को पैदा किया। हे ब्राह्मणो! इन्हीं गवेषण ने श्राद्धदेव की रचना की थी। वसुदेव ने अपनी सैव्या नाम की पत्नि से कौशिकी नाम के पुत्र को पैदा किया। सुगन्धि और वनराजी स्त्रियों से वसुदेव ने पुण्ड्र और कपिल नाम के पुत्रों को पैदा किया। राजा वसुदेव के निषाद नाम का परम बलवान् धनुर्धारी पुत्र और था। देवरात के देवश्रवा नाम के महाभाग्यशाली पुत्र पैदा हुये। निवर्त ने अस्मकी से अनादृष्टि नाम के परम यशस्वी पुत्र को पैदा किया। इनके श्राद्धदेव और शत्रुशत्रुघ्न नाम के पुत्र और हुए, जो एकलव्य के नाम से प्रसिद्ध थे। भगवान कृष्ण ने प्रसन्न होकर सन्तानहीन राजा गण्डूष को चारुदेष्ण और साम्ब नाम के दो पुत्र प्रदान किये। कनक के तन्तिज और तीन्तमाल नाम के पुत्र पैदा हुए। इन दोनों पुत्रों को राजा वसुदेव ने सन्तान विहीन वास्तावलि को दे दिये। सौत्ति ने शौरि और कौशिक को उसे देदिये। उसी वंश मे तपो, क्रोधनु, विरजा, श्याम, और सृञ्जिय नाम के पुत्र पैदा हुये। सन्तति हीन श्याम वन को चले

गए। उसको राजर्षि की उपाधि मिली थी, वह भोजत्व की बुराई करता था। जो मनुष्य श्रद्धा सहित भगवान कृष्ण के जन्म चरित्र को पढ़ता और सुनता तथा दूसरों को सुनाता है उसको सभी प्रकार के सुख प्राप्त होते हैं। प्रजापति महातेजस्वी भगवान विष्णु विहार करने के लिए मनुष्य योनि में कृष्णरूप में अवतरित हुये थे। भगवान कृष्ण अपनी समस्त कान्ति से समन्वित होकर वसुदेव की कठिन तपस्या के फल स्वरूप देवी देवकी के गर्भ से पैदा हुये थे। जो सृष्टि के प्रारम्भ काल में प्रजापति ब्रह्मा जी की सृष्टि करते हैं वे ही आदि पुरुष भगवान कृष्ण अदिति के पुत्र रूप में पैदा होते हैं। वे यादव नन्दन भगवान कृष्ण अदिति के पुत्र होकर देवदेव विष्णु और इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध होते हैं। राषिंज ययाति के वंश में विद्वान वासुदेव जी का कुल परम पवित्र हुआ। जिसमें प्रभु नारायण स्वयं ही मनुष्य रूप में अवतरित हुए।

जिस समय भगवान कृष्ण पैदा हुये। उस समय पर्वत हिलने लगे, सागर काँपने लगे, अग्नि होत्र स्वयं ही प्रज्वलित हो गये। ठंडी २ हवा चलने लगी और सूर्य चन्द्रमा नक्षत्र ग्रह इत्यादि चमक उठे। भगवान कृष्ण अभिजित् नक्षत्र में उत्पन्न हुए थे उस समय जयन्ती नाम की रात्रि थी और निजय नाम का मुहुर्त्त था। जिस समय कमल नेत्र भगवान कृष्ण ने जन्म लिया उस समय इन्द्र ने मेघों से पुष्ट की वर्षा की और हजारों गन्धर्वों ने और महर्षियों ने भगवान कृष्ण की स्तुति की तथा नाचगान करने लगे। वसुदेवजी ने श्री वत्स चिन्ह से सुशोभित भगवान को पुत्र रूप में देखा और कहा कि हे प्रभो! आप अपने इस रूप को छोड़कर बालक रूप में आइये हे भगवन! मैं कंस से बहुत दुखी हूँ उसने मेरे सभी बड़े सुन्दर पुत्रों को मार डाला है। मैं आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूँ वसुदेव जी की इस प्रकार दुखभरी वाणी सुन कर कमलनेत्र भगवान कृष्ण ने अपने उस दिव्यस्वरूप को समेट लिया। वसुदेव जी अपने पुत्र कृष्ण को उनकी आज्ञा नन्दगोप के घर जाकर यशोदा की गोद में

दे दिया उस समय संयोगवश नन्द जी की स्त्री यशोदा जी भी देवकी जी के साथ हीं गर्भवती थी जिस रात को भगवान कृष्ण ने जन्म लिया उसी रात्रि को यशोदा के गर्भ से एक सुन्दर कन्या का जन्म हुआ। वसुदेव जी ने भगवान कृष्ण को अच्छी प्रकार माता यशोदा की गोद में छिपा दिया और उस यशोदा की कन्या को लेकर आगये। वसुदेव जी ने नन्द गोप को कृष्ण भगवान को देदिया और कहा कि आप मेरे इस बालक की रक्षा करिए। तुम्हारा यह पुत्र सबकी भलाई करने वाला है और यदुकुल का उद्धार करने वाला है। देवकी का यह चिर अभिलाषित गर्भ है, यह हमारे सब दुखों को दूर करेगा। इस प्रकार कहकर बसुदेव जी अपने घर लौट आये, और उग्रसेन के पुत्र कंस को राजा वसुदेव जी ने उस कन्या को दे दिया और कहा कि हे राजन्! इस कन्या ने जन्म लिया है। अपनी बहिन देवकी की कन्या पैदा हुई सुनकर पापी कंस ने अच्छे बुरे का कुछ ध्यान न करके उसको भी प्रसन्न होकर छोड़ दिया, वह मूर्ख कहने लगा कि यदि कन्या ही उत्पन्न हुई है तो उसे मरी ही समझना चाहिए। इसप्रकार राजा कंससे छूट कर वह कन्या वृष्णिगृह में सुखपूर्वक दिन दूने बढ़ने लगी। वसुदेव देवकी भी उस कन्या को पुत्र की भांति पालने लगे। देवगण अपने में उसकी उत्पत्ति की बात करने लगे, प्रजा पति ब्रह्मा जी ने कहा कि यह देवी एकादशा भगवान की रक्षा के हेतु स्वयं ही अवतीर्ण हुई है। यादव वंश के मनुष्य उसकी श्रद्धा से पूजा करेंगे। भगवान कृष्ण की रक्षा इन्हीं एकादशा देवी ने की है।

ऋषि बोले—हे सूत जी! भोजवंश के राजा कंस ने वसुदेव के छोटे छोटे सभी पुत्रों को किस कारण से मार दिया। इसका वर्णन आप विस्तार सहित बतलाइये।

सूत जी बोले—

हे ऋषियो! दुष्ट राजा कंस वसुदेव जी के पहिले वचनानुसार तथा आकशावाणी के कारण कि वसुदेव के ८ वें पुत्र से मेरा काल है इस कारण वसुदेव जी के सभी पुत्रों को मार डाला था।

इसी कारण से वसुदेवजी नेभगवानकृष्ण को पैदा होतेहीगोकुल को पहुँचा दिया और गायों के बीच में भगवानपुरुषोत्तम कालालनपालन हुआ था। इस के विषय में यह कथा प्रचलित है। युवराज कंस वासदेव और देवकी के रथ को हांकता था। वह अपनी छोटी बहिन देवकी से बहुत प्यार करता था। एक बार जब वह रथ हांक रहा था, तो आकाशमण्डल से आकाशवाणी हुई कि हे 'कंस' जिसे तुम प्रेमवश अथवा वासदेवजी को प्रसन्न करने के लिये रथ पर घुमाते हो उसी के सातवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी। इस दिव्य कठोर वाणी को सुन कर कंस सदा भयभीत होता था। जब उसने यह वाणी सुनी तो शीघ्र ही तलवार लेकर देवकी को मारने की इच्छा प्रकट की। प्रताप शाली राजा वसुदेव ने ऐसी स्थिति देखकर उग्रसेन के पुत्र कंस से परम सौहार्द तथा प्रेम पूर्वक इस प्रकार कहा कि यादव नन्दन! क्षत्रिय जाति के मनुष्य कभी भी किसी भी स्त्री का बध नहीं करते हैं इस कार्य के लिये एक उपाय बतलाता हूं। हे पृथ्वी पति कंस! इस तुम्हारी बहिन देवकी के सातवें गर्भ से जो सन्तान उत्पन होगी, उस को मैं तुम्हें देदूँगा, उस समय तुम उस बच्चे का कुछ भी करना। हे विपुल दान करने वाले नर श्रेष्ठ! तुम उस का जो चाहो कर सकते हो, इसके सातवें गर्भ की तो क्या मैं इसके समस्त गर्भ के बच्चा को तुम्हें देदूँगा। वसुदेवजी के इस प्रकार कहने पर कंस ने वसुदेवजी की बात मान कर देवकी जी को जीती देखकर बहुत खुश हुए और उनके सभी पुत्रों का संहार राजा कंस कर देता था।

ऋषि बोले—हे सूत जी! ये नन्दगोप और वसुदेवजी कौन थे! जिनसे भगवान नारायण पैदा हुए! ये यशोदनी देवकी कौन थीं ये नन्दगोप की पत्नि यशोदाजी कौन थी, जिन्होंने भगवान का पालन पोषण किया, इन सबके बारे में आप बतलाइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! नन्दादि पुरुष कश्यप के अन्सभूत थे, और यशोदा जी तथा और स्त्रियां अदिति अन्शभूत थीं।

महाबाहु भगवान कृष्ण ने देवकी जी के सभी मनोरथों को पूर्ण किया था। ये देवाधिदेव भगवान योगेश्वर कृष्ण अपनी योगमाया से समस्त संसार को मोहित करके तथा धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वयं ही अवतीर्ण हुए। भगवान कृष्ण रुक्म की कन्या रुक्मणी को हर कर ले आये थे। उन्होंने नग्नजित की कन्या सत्या, सत्राजित की कन्या सत्राजिती, सत्य भामा, जाम्बवती, रोहिणी, सैव्या, सुदेवी माद्री, सुशीला, कालिंद्री, मित्रविन्दा, लक्ष्मण, जालवासिनी इत्यादि सोलह हजार कन्याओं के साथ विवाह किया था। इन्द्र ने देवताओं से सलाह करके स्वर्ग की परम सुन्दरी अप्सराओं के चौदह गणों को मृत्यु लोक में भेज दिया था। वे सभी वासुदेव की पत्नि होने के कारण राजाओं के घरों में पैदा हुईं। रुक्मणी ने प्रद्युम्न, चारु-देष्ण, सुदेष्ण, शरभ, चारु,चारु चन्द्र, भद्रचारु, चारुविन्द्या नाम के पुत्र तथा चारुमही नाम की कन्या को पैदा किया। सत्य भामा ने सानु, भानु, अक्ष, रोहित, मन्त्रय, जरान्धका ताम्रवक्षा, भौमरि जरन्धम नाम के पुत्र तथा मानु, भौमारिक' ताम्रपर्णी और जर—न्धमा नाम की चार कन्याऐं पैदा कीं। जाम्बवती ने भद्र, भद्रगुप्त भद्रविन्दु, भद्र बाहु नाम के पुत्र तथा भद्रावत नाम की एक कन्या पैदा की सुदेवी ने भगवान कृष्ण के संयोग से संग्रामजित, शत-जित, और सहस्रजित पुत्रों को पैदा किया। सत्या ने बृक, बृक-श्व, वृषजित, वृजिनी, सुराङ्गना, मित्रबाहु, सुनीच नाम के पुत्रो को पैदा किया। इस भगवान कृष्ण ने अपनी स्त्रियों के संयोग से हजारों पुत्रों और पुत्रियों को पैदा किया। इनमें से दसहजार आठ महान शूरवीर तथा रण में कौशल थे। मैंने भगवान कृष्ण के वंश का वर्णन सुना दिया है। शिनिवंश में राजा बृहदुकूथ की कन्या वृहती ने सुनथ के साथ विवाह किया, उनके अंगद कुमुद और श्वेत नाम के तीन पुत्र पैदा हुये और श्वेता नाम की एक कन्या पैदा हुई। अवगाह, चित्र और शूरचित्रवीर नाम के वृष्णि वंश में थे उनमें चित्रवर के पुत्र चित्र सेन हुये। और उनके चित्रवती

उपाङ्ग के वज्रार और क्षिप्र नाम के दो पुत्र पैदा हुये। गवेष के भूरीन्दसेन और भूरि नाम के दो पुत्र पैदा हुये। युधिष्ठिर की सुतनु नाम की कन्या ने अश्वसुत वज्र को पैदा किया। वज्र ने प्रति वाहु नाम के पुत्र को पैदा किया। प्रतिवाहु के सुवाक नाम के पुत्र पैदा हुये। काश्मा के सुपार्श्व नाम के पुत्रहुये, साम्बा के तरस्वी नाम के पुत्र पैदा हुये। इस प्रकार महा बलशाली यदुवंश के कुल तीन करोड़ सन्तानें उत्पन्न हुईं। इनमें साठ लाख पुत्र परम बलशाली और पराक्रमी थे। वे सब यदुवंश के देवताओं के अंगभूत होकर मृत्य लोक में उत्पन्न हुए। इन परम बलवान यदुवंशियों के ग्यारह कुल कहे जाते हैं। किन्तु जिस कुल में भगवान विष्णु ने अवतार लिया है उसी एक वंश का अनुवर्तन शेष सभी वंशों वाले करते रहे। मैं आप लोगों को वृष्णि वंश का वर्णन सुना चुका हूं। जो मनुष्य इस वर्णन को सुनता है उसको अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। भगवान कृष्ण के जन्म चरित्र के वर्णन को जो सुनता अथवा दूसरों को सुनाता है उसके सभी प्रकारके दुख समाप्त होकर स्वर्ग प्राप्त करता है जिस मनुष्य के सन्तान नहीं है उसके इस चरित्र के सुनने से उत्तम पुत्र प्राप्त होता है। तथा सभी प्रकार के धन, धान्य सन्तान से सुखी होकर परलोक में सुख प्राप्त करता है॥ ९६

[इति श्री वायु महा पुराण का विष्णु वंश वर्णन नाम का छियानवेवां अध्याय समाप्त]

सतानवेवाँ अध्याय

[विष्णुमाहात्म्य वर्णन]

सूतजी बोले हे ऋषियो! अब मैं आपसे मनुष्य योनि में जन्म लेने वाले देवताओं के बारे में बतलाऊँगा। आप सब सुनिये। सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, साम्ब, और अनिरुद्ध ये पांच यदुवंश के मुख्य वीर माने जाते हैं। सातों ऋषि, कुबेर, यक्ष, मणिवर, शालकी, वदर, श्रेष्ठ धन्वन्तरि, नन्दिन प्रभृति के अनुचर शालङ्कायन आदि देवताओं के साथ आदि देव विष्णु ये सभी देवता हैं।

ऋषि बोले— हे सूतजी ! भगवान विष्णु ने पृथ्वी पर किस लिए अवतार लिया, उनके कितने अवतार माने जाते हैं। और भविष्य में वे कितने अवतार लेंगे ! वे युगान्त के समय ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति में किस लिए उत्पन्न होते हैं वे इसप्रकार मानव योनि में बार २ किस लिये जन्म धारण करते हैं। भगवान विष्णु ने वसुदेव जी के पुत्र की उपाधि कैसे प्राप्त की। हम को इन सबके बारे में बतलाइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! मैं आपको तपोनिष्ठ भगवान विष्णु के मानव योनि में जन्म लेने का वृन्तान्त सुना रहा हूं। भृगु ऋषि के शाप के कारण भगवान के सतैहत्तर अवतार माने जाते हैं युगान्त के अवसर पर देवों के कार्य को सफल करने के लिए वे अवतीर्ण होते हैं जब युग धर्म का ह्रास हो जाता है और उसके प्रभाव शिथिबल हो जाते है। उस समय महामहिमा वाले भगवान भृगु के शाप के कारण देवासुर्गों के युद्ध की शन्ति के लिए और धर्म की व्यवस्था के लिये इस मृत्य लोक में पैदा होते हैं। ये ही भगवान के अवतार लेते हैं।

ऋषि बोले—हे सूत जी ! उस देवासुर संग्राम में भगवान विष्णु ने किस प्रकार अवतार लिया था और देवासुर संग्राम किस प्रकार संगठित हुआ था, इन सब का वर्णन आप हमको बतलाइये।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! प्राचीन काल में दैत्यों का राजा हिरण्यकशिपु त्रलोकी का शासक था, उसके बाद दैत्यराज वलि त्रिलोकी का स्वामी हुआ। उस समय दैत्य और देवों में परम मित्रता थी। इस प्रकार दस हजार वर्षों तक संसार में कोई उपद्रव नहीं हुआ। उसकी दोनों ही आज्ञा मानते थे। इसके बाद दैत्य और देवों में भयानक युद्ध छिड़गया। बाराह कल्प में बारह युद्ध हुए। जिनमें षण्ड और अमर्क सभीयुद्धों में शामिल थे। सबसे पहले, युद्ध नरसिंह का हुआ था दूसरा बामन का, तीसरा वाराह का चौथा अमृत-मन्थनका, पांचवा तारकामय का छठवां आड़ीवक और सातवां त्रिपुर दहनका था आठवां अन्धकार युद्ध,नववां ध्वज युद्ध, दसवां युद्ध वार्त था

ग्यारहवां हलोहल और बारहवां घोर कोलाहल युद्ध था । पहले युद्ध में दैत्यराज हिरण्यकशिपु को नरसिंह रूप धारी भगवान विष्णु ने मारा था। दूसरे युद्ध में तीनों लोकों पर आक्रमण करने वाले दैत्यराज वलि को वामन रूप धारी भगवान विष्णु ने बांधा, और देवताओं के साथ युद्ध होने पर भगवान ने हिरण्याक्ष को मार दिया। तीसरे अवतार में बाराह भगवान ने अपनी दाढ़ों से समुद्र में से पृथ्वी को निकाला था। चौथा अमृत मन्थन के समय देवराज इन्द्र ने दैत्यों के राजा प्रहलाद को हराया था, इससे प्रहलाद का पुत्र विरोचन नित्य ही इन्द्र से युद्ध करने की सोचता था, अतः अन्त में इन्द्र ने महान वल के साथ तारकामय युद्ध में उसका वध किया था। उस दैत्य ने शंकरजी की आराधना करके उनसे अमरत्व प्राप्त किया था और शस्त्रादिकों से न मरने का वरदान प्राप्त किया, तब इन्द्र ने शरीर में आविष्ट होकर युद्ध भूमि में भगवान विष्णु ने उसका वध किया था। छठवां देवासुर संग्राम था उसमें असुरों के पास एक सुरक्षितदुर्ग था, उसकी रक्षा करने वाले दैत्यराज देवताओं की प्रतिष्ठा को सहन न कर सके। अम्बक भगवान शिवजीने उस त्रिपुरको भस्म करके सभी दानवों का संहार कर दिया। आठवां देवासुर संग्राम में अन्धकार स्वरूप असुर और राक्षसों के साथ देवताओं का युद्ध हुआ था, उसमें देवताओं और मनुष्यों को परास्त करने वाले पितरगण उनकी सहायता कर रहे थे। भगवान विष्णु की सहायता से भगवान शंकर जी ने सभी दैत्य, राक्षस, असुरों को नष्ट कर दिया । नवां युद्ध विप्रचिति के साथ हुआ था, वह युद्ध में माया रूप धारण करके युद्ध करता था महेन्द्र ने उसके रथ के ध्वज का लक्ष्य कर उसे काट दिया और उसके साथ युद्ध करने वाले सभी असुर राक्षसों को भी मार दिया। दसवां महान कोलाहल युद्ध था।देवताओं सहित रजि ने महान कोलाहल नामक युद्ध में सभी राक्षसों को मार दिया, उसमें देवताओं ने यज्ञीय अमृत द्वारा असुरों के पुरोहित षण्ड और अमर्क को परास्त किया था। देवता और असुरों के

ये ही बारह युद्ध हुए थे। जिनमें लाखों दैत्यों और देवताओं का संहार हुआ था। उसमें प्रजा का भी बहुत अमंगल हुआ था। दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने एक अरब बहत्तर लाख अस्सी हजार वर्षों तक सम्पूर्ण त्रिलोकी पर राज्य किया था। उसके बाद दैत्यराज वलि ने एक अरब साठ हजार बीस नियुत वर्ष तक राज्य किया, जितने वर्ष तक वलि ने राज्य किया उतने ही वर्षों तक प्रहलाद ने भी राज्य किया था। सभी असुरों में ये तीन हिरण्याक्ष, प्रहलाद और वलि ही परम तेजस्वी और इन्द्र के समान वलशाली थे। यह समस्त संहार दैत्यों से दस युगों तक भयभीत रहा था, उसके बाद दस युगों तक निष्कण्टक राष्ट्र रहा, इस समय इन्द्र त्रिलोकी की रक्षा करते थे। प्रहलाद के बाद यह शासन पाक शासन (इन्द्र) के हाथों में आया। प्रहलाद के शासन के बाद यक्षगण असुरों को छोड़कर देवताओं के पास आ गये। तब असुरों ने शुक्राचार्य से जाकर कहा– हे आचार्य ! हमारे सामने यह हमारा राष्ट्र नष्ट हो गया। यज्ञादि शुभ कर्म हमें छोड़कर पुनः देवताओं के पास चले गये हैं। अतः अब हम यहां नहीं ठहर सकते। हम सब रसातल को जा रहे हैं। इस शुक्राचार्य को महान दुख हुआ। और असुरों को सान्त्वना देते हुए उन्होंने कहा– आप डरें नहीं मैं अपने तेज से आप लोगों की रक्षा करूँगा। वृष्टि अन्न, पृथ्वी औषधियां रत्न आदि सब मेरे आधीन हैं उनका चौथा अंश ही देवताओं के पास है। उसे आपके कल्याण के लिये उन्हें मैं आपको सौंपता हूं। शुक्राचार्य के द्वारा असुरों की रक्षा होते देख कर देवता लोग घबराये और आपस में मन्त्रणा करने लगे। जब तक शुक्राचार्य उनकी रक्षा करने की तैयारी करें तब तक आप लोग असुर पर एकदम आक्रमण कर दो। बचेखुचे असुर पातालको खदेड़ दिये जांयगे। ऐसा विचार कर देवता लोग एक दम आग खड़े हुये। और असुरों का खूब संहार किया। दानवगण त्रस्त होकर शुक्राचार्य की शरण में आये। दैत्यों ने शुक्राचार्य से दीन होकर कहा--वामन ने तीनडगों में

पृथ्वी को बाँध लिया बलि भी बांधा गया। महाबलशाली जम्भ और विरोचन मारे गये। देवताओं ने प्रमुख प्रमुख दैत्यों का संहार करके अपना पूर्व का बदला लिया है। अब आप लोग थोड़ी संख्या में शेष बचे हैं इसपर शुक्राचार्य ने कहा कि आप कुछ समय की प्रतीक्षा करें मैं आपको एक बात बतारहा हूँ मैं मन्त्र प्राप्त करने अभी महादेवजी के पास जाता हूँ उधर देवता लोग गुरुबृहस्पति जी की मन्त्रणा से अग्नि को प्रसन्न कर रहे हैं। महादेवजी की कृपा से मैं आप पर कृपा करूँगा। आप लोग वन में वल्कल धारण कर तब तक तपस्या कीजिये। इस प्रकार देवता आपका संहार भी नहीं करेंगे। मन्त्र प्राप्ति के बाद हम देवताओं से युद्ध छेड़ देंगे। और सभी की विजय होगी। ऐसा शुक्राचार्य के कहने पर असुर उनके आदेश को मानकर शान्त रहे। देवताओं के युद्ध के लिये आह्वान करने पर उन्हों ने कहा, 'हम सब लोग संसार के झगड़ों से दूर होगये हैं, आप लोग जाकर अब सभी लोकों पर अधिकार प्राप्त कीजिये। हम लोग वन में जाकर तपस्या करेंगे। इस प्रकार प्रहलाद के कहने पर देवताओं ने युद्ध करना बन्द कर दिया। वे बहुत प्रसन्न हुये। दैत्यों के युद्ध बन्द करने पर देवता जहां जहां से आये थे वहीं लौट गये इसके बाद शुक्राचार्य जी ने दैत्यों से कहा कि तुम भी इसी प्रकार कुछ दिन शान्ति से रहो उस समय तक तुम्हारा कार्य सिद्ध न हो जाय, तुम तपस्या करते रहो क्योंकि सभी इन्द्र सहित देवता हमारे पिताजी के आश्रम में स्थित हैं। इस प्रकार दैत्यों से कह कर शुक्राचार्यजी महादेवजी के पास जाकर कहा मुझको इस प्रकार के मन्त्र दीजिये, जो मन्त्र बृहस्पति जी को नहीं मालूम हैं, जिससे दैत्यों का दुख दूर होजाय। शुक्राचार्य जी के इस प्रकार कहने पर महादेवजी ने कहा हे द्विज ! जिन मन्त्रों को तुम प्राप्त करनाचाहते हो, उनकेलिये तुम एक हजार वर्ष तक ब्रह्मचर्य बृत का पालन करो, और सिर को नीच करके कुण्ड के धूम्र का पान करो, यदि तुम इस प्रकार नियम पूर्वक पालन करोगे, तो मुझसे वैसे ही मन्त्रों को प्राप्त करोगे। देवाधिदेव भगवान शंकर के इस प्रकार कहने पर शुक्राचार्य ने

उनके चरणों में प्रणाम करके कहा कि हे प्रभो! आपकी आज्ञा शिरोधार्य है जिस प्रकार आप कहेंगे हम उसी प्रकार करेंगे। इस प्रकार महादेवजी की आज्ञा से शुक्राचार्य जी दैत्यों के लिये कुण्ड के धूम्र का पान करने लगे। इधर शुक्र के दैत्यों के पास से जाकर मन्त्र के लिये शिवजी के कहने के अनुसार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने का भेद देवताओं को मालूम होगया। दैत्यों की तपस्या और राज्यत्याग को एक चाल समझ कर उनको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने (देवताओं) अपने तीक्ष्ण शस्त्र लेकर बृहस्पतिजी को आगे करके दैत्यों पर आक्रमण कर दिया। दैत्यलोग बिना हथियार के शस्त्र से लड़ते हुये देखकर बहुत भयभीत होगये तथा भाग खड़े हुए। उन सबों ने सलाह की कि ऐसी अवस्था में जब कि हमारे गुरु तपस्या करने में निरत हैं और हम लोगों ने युद्ध में हथियार डाल दिये हैं अपने मुख से ही हमने उनको विजय देदी है, तब देवता लोग युद्ध की रीति तोड़ कर हम सबसे युद्ध करने के लिये तैयार हैं। हम लोग तो विश्वास पूर्वक तपस्या करने में निरत हैं और इस समय हमारे गुरु भी नहीं हैं। इसीलिए हमने चीर और वल्कल पहने हैं हमारे साथ में स्त्री और भृत्य भी नहीं है, हम कुछ कार्य भी नहीं करते हैं। युद्ध में हम किसी प्रकार भी देवताओं से नहीं जीत सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमको शुक्राचार्य जी की माता की शरण में जाना चाहिये। जब गुरु के आने पर उनको सारा हाल बतायेंगे। अपने गुरु शुक्राचार्य के व्रत इत्यादि से निवृत होकर लौटने पर हम इनसे युद्ध करेंगे। असुरों ने इस प्रकार कह कर सबके सब मिल कर शुक्राचार्य की माता के पास गये। उस समय वे बहुत भयभीत हो रहे थे, वहां जाने पर उनके सभी दुख दूर होगये। डरते हुए असुरों को देखकर शुक्राचार्य की माता ने उनको आश्वासन देकर कहा हे असुर गण! तुम डरो मत। मेरे पास ही रहो, यहां तुम्हें कोई बात का डर नहीं है। वहां पर भय से रहित असुरों को देखकर देवताओं ने उनका खूब संहार किया।

देवताओं के इस प्रकार दैत्यों के मारने पर देवी शुक्राचार्य की माता बहुत क्रोधित हुई और देवताओं से कहने लगी कि मैं तुम सबको इन्द्र से अलग कर रही हूँ, इस प्रकार क्रोध से कह कर देवी शुक्राचार्य की माता ने देवराज इन्द्र को स्तम्भित कर दिया,और इधर उधर घूमने लगी। इन्द्र को यज्ञ के खम्भे की तरह स्तम्भित देखकर उन्हें परवश जान कर सभी देवता बहुत भयभीत हुए,और भागने लगे। देवों के इस प्रकार भागने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा कि तुम मेरे शरीर में घुस जाओ। विष्णु के इस प्रकार कहने पर इन्द्र उनके शरीर में घुसगये। इन्द्र को विष्णु द्वारा इस प्रकार सुरक्षित देखकर देवी क्रोधित होकर बोली "मधुवन ! मैं अब तुमको यहीं पर सबके सामने अपने तपोबल से विष्णु के साथ ही जलाती हूँ।, इस प्रकार शुक्राचार्य माता से परास्त होकर दोनों देवताओं ने आपस में सलाह की विष्णु ने इन्द्र से कहा कि इनसे हम दोनों किस प्रकार बचें। इन्द्र ने कहा कि हे प्रभो ! मैं तो असमर्थ हूँ और आप इन का वध करदो।, विष्णु ने इस प्रकार उस देवी को जलाने के लिये तैयार देख कर उन्हो ने सुदर्शन चक्र का ध्यान किया और शीघ्र ही स्त्री के बध करने को तैयार होगये।

असुरों के संहार करने वाला वह सुदर्शन चक्र, शीघ्र ही वहां आगया और भगवान उस देवी को परम नृशंस कार्य करते देख कर क्रोधित होगये और बैकुंठ निवासी लक्ष्मीपति होकर भी उन्होंने देवी शुक्राचार्य की माता के सिर को अपने चक्र से काट दिया। इस कठोर स्त्रीवध को देखकर महर्षि भृगु बहुत क्रुद्ध होगये,और उन्होंने भगवान को शाप दे दिया कि हे विष्णु ! तुमने मेरी स्त्री का वध किया है,इस कारण मैं तुमको शाप देता हूँ कि धर्म के महत्व को जान कर भी तुमने स्त्री का वध किया है अतः तुमको पृथ्वी पर मानवयोनि में सात बार जन्म लेना पड़ेगा।, भृगु महर्षि के शाप के कारण ही भगवान विष्णु धर्म के नष्ट होजाने पर बारबार जन्म लेते हैं। इसके बाद भृगु ने भगवान विष्णु को शाप देकर स्वयं ही अपनी पत्नि के सिर को उठाकर शरीर धड़ से जोड़कर और हाथ में जल

लेकर इस प्रकार बोले कि 'हे सत्यवादिन ! विष्णु के द्वारा मारे जाने पर मैं तुमको पुनः जीवित कर रहा हूं। यदि मैंने धर्म के साथ सभी तत्वों का ज्ञान किया है और सर्वदा सत्य वचन का पालन किया है तो तुम पुनः जीवित होकर उठ बैठो। भृगु महर्षि के इस प्रकार कहने पर उनकी पत्नि इस प्रकार उठ बैठी मानो सोकर उठी हों। देवी को जीती देखकर दशों दिशाओं में साधु, साधु की अदृश्य ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। परम सावधान चित्त महर्षि भृगु द्वारा उनकी पत्नि जीवित देखकर इन्द्र शुक्राचार्य जी से बहुत भयभीत हुये, और इसी सोच विचार में उनको रात भर नींद नहीं आयी, उनके चित्त में शान्ति न मिली इस प्रकार अत्यन्त दुखी होकर राजा इन्द्र ने अपनी जयन्ती नाम की पुत्री से कहा कि बेटी ! तू जाकर शुक्राचार्य जी को अपने मंगल कार्यों और उनकी मनोनुकुल सेवाओं से प्रसन्न कर। दैत्यों के स्वामी शुक्राचार्य मेरे विनाश के लिए तत्पर हैं। इन्द्र की इस प्रकार बात को सुनकर उनकी पुत्री जयन्ती शुक्राचार्य के पास गई, और वहां जाकर उसने देखा कि शुक्राचार्य ध्यान में मग्न थे, वे बहुत दुर्बल हो गये थे। इन्द्र की पुत्री जयन्ती स्वभाव से ही शुभ कर्म करने वाली मृदुभाषिणी थी। उसने मीठी वाणी से शुक्राचार्य की स्तुति की समय समय पर सुख पहुँचाने के लिए चरण का संवाहन किया। बहुत अनुकुल आचरण करती हुई, सेवा में दिन रात दत्तचित्त रहकर उसने वर्ष तक उपवास किया। इस प्रकार उस कठिन धूम्रव्रत के समाप्त हो जाने पर महादेव शुक्राचार्य जी के ऊपर बहुत प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा हे भृगु पुत्र ! इस कठिन तप को तुम्हारे सिवाय और किसी ने नहीं किया, इसी लिये तुम अपनी बुद्धि, शास्त्र ज्ञान, पराक्रम से देवों को परास्त करोगे हे ब्राह्मण ! यज्ञों और उपनिषदों की जो कुछ भी मन्त्र शक्ति मुझमें विद्यमान है। उनके भी जो विविध अंग उपांग और गूढ़ रहस्य मुझे ज्ञात हैं, वे सब तुम को प्रदान करता हूं। महादेवजी शुक्राचार्य को इस प्रकार वरदान

देकर बार बार अजेय, धनेश और अवध्य होने का वरदान दिया। इन सब वरदानों के मिलने के बाद शुक्राचार्य जी बहुत खुशी हुये। इस खुशी के कारण उन्होंने सिर नीचा करके नील लोहित भगवान शंकरजी की इस प्रकार स्तुति की—

शीतकंठ भगवान को हम प्रणाम करते हैं। सुरुप, सुवर्चा, रिरिहाण, लोप, वत्सर, जगत्पति, कपर्दी, हय, करण, संस्कृत, सुतीर्थ देवदेव, रह, उष्णीषी, सुवक्त्र, सहस्रास, मीढुष, वसुरेता, रुद्र, तप, चीटवासा, हस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृद्ध, तक्षकीड़न गिरिश, अर्कनेत्र, यति, जाम्बव, सुवृत्त, सुहस्त, धन्वी, भार्गव, सहस्रबाहु, सहस्रअमलचक्षु, सहस्रकुक्षि, सहस्रचरण, सहस्रगिरि, बहुरुप, वेधा, भव, विश्वरूप, श्वेतपुरुष, निषंकी, कवची, पिनाक, सर्प, एकवीर, ईश्वर, मृत्यु, मेध्य धर्मी भग्घन नामों वाले भगवन को हम प्रणाम करते हैं। हे भगवन्! आपके अनेक नाम हैं हम आपको उन्हीं सब नामों सहित प्रणाम करते हैं। हे भगवन्! आप प्रणव, ऋगु, यजु, साम तीनों वेद स्वधा; सुधा, स्रष्टा, धाता, होता, हर्ता, क्षपण, भूतभव्य, भव नामों वाले काल स्वरूप, वसु, साध्य रुद्र, आदित्य, अग्नि, सोम, सत्य, त्याग, शम, अहिंसक, अलोभ सुवेश, सर्वात्मा सर्वभूतात्मभूत, योगात्मन प्रभो! हम आपको नमस्कार करते हैं। पृथ्वी आकाश, दिव, मह, जप, तप, सत्य, अव्यक्त महान भूत, इन्द्रिय, तन्मात्र, महान्त, नित्यलिंग, सूक्ष्म, चेतन, सुद्ध, विभु नित्यात्मन महान लोकों में व्याप्त रहने वाले प्रभो! हम आपको प्रणाम करते हैं। हे प्रभो! इस स्तुति के नाम के उच्चारण करने वाले को आप अपना भक्त जानकर क्षमा करदें भगवन् आप प्राणियों पर कृपा करने वाले हैं।

[इति श्री वायु महापुराण का विष्णु माहात्म्य वर्णन नाम का सत्तानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ]

अट्ठानवेवाँ अध्याय

[विष्णु महात्म्य वर्णन]

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! नीललोहित भगवान शंकर जी की इस प्रकार स्तुति करके शुक्राचार्य ने उनको पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़कर ब्रह्म का उच्चारण किया, उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर भगवान महादेवजी ने शुक्राचार्य के शरीर पर हाथ फेरा और उन्हें पर्याप्त दर्शन देकर वहीं पर अन्तधीन होगये। इसके बाद शुक्राचार्य जी ने अपने सामने सुन्दरी को हाथ जोड़े खड़े हुये देखा तो वे बोले हे सुन्दरि ! तुम किस की कन्या हो, मेरे साथ दुख के समय दुख उठाने वाली सुन्दरि तुम कौन हो ? हे सुन्दर अंगों वाली सुश्रोणि ! तुम्हारी इस सर्वदा एक रूप रहने वाली भक्ति, प्रणाय, कष्टसंहिष्णुता और स्नेह से मैं बहुत प्रसन्न हूं हे सुन्दरि ! तुम क्या चाहती हो मैं तुम्हारी कौन सी इच्छा पूर्ण करूँ तुम्हारी जो भी इच्छा होगी उसे मैं आज अवश्य पूर्ण करूँगा। वह चाहे कितना भी कठिन कार्य क्यों न हो। शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा कि हे ब्रह्मर्षे ! तुम मेरी सभी अभिलाषाओं को अपने तपोबल से जान सकते हो। मेरी सारी अभिलाषओं को आप जानते हैं। जयन्ती के इस प्रकार कहने पर शुकाचार्य ने अपने दिव्य दृष्टि से उसके सभी मनोरथों को जान लिया और उससे बोले हे इन्द्र पुत्री ! सुन्दरि ! तुम यहाँ मेरी रक्षा करने के लिये आईं थीं, हे भामिनी ! सुश्रोणि ! तुम मेरे साथ दस वर्षों तक सभी प्राणियों से अदृश्य होकर निवास करना चाहती हो। हे देवेन्द्र पुत्रि ! अग्नि के समान गौर वर्ण वाली ! सुन्दरि ! सुलोचने ! मैं तुम्हारे इस मनोरथ को पूर्ण करूँगा। हे मत्त चाल चलने वाली ! तुम मेरे साथ मेरे निवास स्थान पर चलो। इस प्रकार जयन्ती से बातें करके और जयन्ती को साथ लेकर शुक्राचार्य अपने निवास स्थान पर आये और सभी प्राणधारियों से अदृश्य होकर उसके साथ दसवर्षों तक रहने का विचार किया। इधर अपने मनोरथ को सफल होकर लौट आने का हाल शुकाचार्य का दैत्यों को मिला, तो वे सभी उनके दर्शन के लिये उनके आश्रम पर आये।

वहां जाने पर जयन्ती के साथ अज्ञात वास करने पर अपने गुरू को नहीं देख पाये, और उनके इस नीति शास्त्र को देखकर बहुत खुश हुये । उधर देवगुरु बृहस्पति को यह मालूम हुआ कि देवों की हित कामनाकारी जयन्ती अपने पिता की भलाई के लिये दस वर्षों से शुक्राचार्य के पास गई थी, और शुक्राचार्य को एकान्तवास करते सुना, तो उनको एक अच्छा अवसर मिला, और उन्होंने शुक्राचार्य का रूप रख कर उन दर्शन हेतु आये हुये असुरों से कहा कि मेरे यजमानों का आदर है, तुम लोगों की भलाई के कारण ही मैं अपनी तपस्या से निवृत्त हो कर लौट आया हूँ। मैंने वह विद्या पढ़ी है जिसको प्राप्त करने को इतना कठोर तप करना पड़ा है, वह विद्या मैं तुम सबको पढ़ाऊँगा । बृहस्पति की ऐसी बात सुन कर सभी असुर बहुत प्रसन्न हुये और वहां विद्या पढ़ने के लिये इकट्ठे हो गये । जयन्ती के अनुरोध पर दस वर्ष समाप्त होने के बाद शुक्राचार्य जी का मोह नष्ट हुआ, और उनको ज्ञान प्राप्त हुआ, समय के समाप्त होने के अन्त में उनके संयोग से जयन्ती के देवयानी नाम की कन्या पैदा हुई । इसके बाद उन्होंने अपने यजमानोंको देखने का विचार किया।

शुक्राचार्य बोले— हे शुचिस्मिते ! हे देवी ! साध्वी ! दीर्घ नेत्र वाली ! सुन्दर प्रेक्षणो ! मैं अब तुम्हारे यजमानों को देखना चाहता हूँ । शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा हे महाव्रत ! अपने यजमानों का कल्याण कीजिये, सत्पुरुषों का यही धर्म है, मैं आपके धर्म को नष्ट नहीं करूंगी ।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! जयन्ती से इस प्रकार शुक्राचार्य जी ने बातें करके अपने यजामन असुरों को जाकर देखा कि देवों के गुरु बृहस्पति ने उनका रूप धारण करके असुरों को मोहित कर लिया है । ऐसा देखकर वे असुरों से कहने लगे कि हे असुरो ! ये तो अंगिरा ऋषि के पुत्र बृहस्पति हैं, शुक्राचार्य तो मैं हूँ मेरे रहते हुये भी तुम लोग ठग गये । शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर असुर लोग आश्चर्य चकित हो गये, और वहीं पर परम खिन्न होकर दोनों गुरू

की ओर देखने लगे बहुत देर के बाद भी वे यह निश्चय नहीं कर सके कि इनमें कौन से गुरू हैं । बहुत देर हो जाने के बाद शुक्राचार्य जी बोले अरे दानवो ! शुक्राचार्य तो मैं ही हूँ यह तो वृहस्पति हैं । मेरी आज्ञा मान कर इनको छोड़ दो । सब असुर इस प्रकार सुन कर दोनों की तरफ देखने लगे, उन्हें दोनों में कोई विशेषता नहीं जानपायी तब निर्भय होकर वृहस्पति ने उन दानवों से कहा हे दानवो ! मैं ही शुक्राचार्य हूँ, यह तो वृहस्पति मेरा रूप रख कर तुम लोगों को ठगने आया है वृहस्पति की ऐसी बात सुन कर दानवों ने निश्यच किया कि ये ही हमारे गुरू शुक्राचार्य हैं परम ऐश्वर्य शाली यही हमको दस वर्ष से पढ़ा रहे हैं यही हमारे वास्तविक गुरू हैं । यह ब्राह्मण हम लोगों के भेद को जानने की इच्छा से वेश बनाकर यहां आया है । इस प्रकार दैत्यों ने मोह वश वृहस्पति को ही अपने शुक्राचार्य समझ कर प्रणाम किया और उन्हीं की आज्ञा का पालन किया । वे शुक्राचार्य के ऊपर बहुत क्रोधित हुऐ और नेत्र लाल करके बोले तुम हमारे गुरू नहीं हो, हमारे गुरू तो यहां हैं । तुम यहां से चले जाओ । यह चाहे भृगु पुत्र शुक्राचार्य हों, चाहे अंगिरापुत्र वृहस्पति हों, अब तो यही हमारे गुरू हैं । तुम यहां से शीघ्र ही चले जाओ, इस प्रकार कह कर दैत्यगण वृहस्पति के पास चले आये। इस प्रकार शुक्राचार्य की बातों की अवज्ञा करने से शुक्राचार्य ने क्रोधित होकर दानवों को शाप दे दिया कि मेरे कहने पर भी तुम नहीं समझ रहे हो अतः तुम्हारी सब की चेतना मारी जायगी, और निश्चय ही दैत्यों की पराजय होगी । दैत्यों को इस प्रकार शाप देकर शुक्राचार्य जहां से आये थे वही चले गये इधर शुक्राचार्य के शाप देने पर असुरों को दूषित दुखी देखकर वृहस्पति अपने कार्य में सफल होते जान वहीं पर अन्तर्धान हो गये ।

इस प्रकार वृहस्पति के अन्तर्धान होने पर दानवगण बहुत दुखी हुये, और आपस में इस प्रकार कहने लगे कि 'हाय' उसने हम को ठग लिया, हमको धिक्कार है । हम अपने कर्तव्य से विमुख हो गये ।

इसी कारण विधाता ने हमको दण्ड दिया है। अपने कार्य को सफल करने के लिए देवगुरु बृहस्पति ने हमको ठग लिया, इस तरह हम लोगों का नाश हो गया। इस प्रकार बातें करते हुये दैत्यगण देवताओं से बहुत भयभीत हुए, और भाग कर प्रहलादजी को आगे करके पुनः शुक्राचार्य जी के पास आये और शुक्राचार्य के पास जाकर नीचे मुँह करके खड़े हो गये। शुक्राचार्य ने पुनः अपनी शरण में आये अपने यजमान दैत्यों को देखकर कहा– हे दैत्यो ! मैंने तुम्हें ठीक समय पर समझाया बुझाया था। परन्तु तुम लोगों ने मेरी बात नहीं मानी। अतः उसी अभिमान से तुम्हारी यह हार हुई है। यह सुनकर प्रहलाद ने कहा– आप यह सब बातें छोड़ कर अपने भक्त असुरों को बचाने का प्रयत्न कीजिये। हमें देवों के गुरू ने ठग लिया था। हमारी रक्षा कीजिये। यदि आप हमारी रक्षा नहीं करते तो हम रसातल का जा रहे हैं।

सूतजी बोले— दैत्यों के इस प्रकार निवेदन करने पर शुक्राचार्य का क्रोध शान्त हो गया और दैत्यों से बड़े करुणापूर्वक बोले– तुम डरो मत, रसातल को मत जाओ। अदृष्ट महाबलवान होता है। मेरे बचाने पर भी यह घटना अवश्य होती। ब्रह्मा ने कहा था कि तुम्हारा अवनति का समय अवश्य प्राप्त हो। अतः हुआ। मेरी कृपा से आप लोगों ने यह त्रिलोकी कीसभी समृद्धि भोगी हैं। देवों से आक्रमण द्वारा छीन कर राज्य करते हुये तुम्हें दस युग बीत गये हैं। उतने ही समय का राज्य ब्रह्मा ने तुम्हारे लिये कहा था। सावर्णिक न्भवन्तर के प्राप्त होने पर पुनः तुम्हें राज्य की प्रप्ति होगी। उस समय तुम्हारा पौत्र वलि समस्त लोकों का ईश्वर बनेगा। ये सब ब्रह्मा जी ने स्वय कहा है। यह अवश्य होगा तपस्या के द्वारा वलि को ब्रह्मा जी के वरदान से समस्त देवों का वैभव प्राप्त होगा। इस समय तुम इस काल चक्र को सहन करो। इस समय तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकता। बृहस्पति के शिष्य देवता और हमारे शिष्य तुम दोनों मेरे लिये समान हो तथापि युद्धमें तुम्हारी औरवृहस्पति देवों की रक्षातो अवश्य करेंगे।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! इस प्रकार कह कर शुक्राचार्य के साथ प्रहलाद आदि दैत्य लोग चले गये। अवश्य घटित होने वाली घटना अवश्य होगी। ऐसा शुक्राचार्य से सुनकर दानवों ने यह अर्थ लगाया कि दैत्यों का राज्य एक बार अवश्य होगा ही अतः क्यों न युद्ध छेड़ दिया जाय। ऐसा निश्चय कर दानवों ने पुनः अस्त्र शस्त्रों को लेकर देवताओं को आह्वान किया। देवता भी संग्राम में कूद पड़े। वह घोर देवासुर संग्राम सौ वर्षों तक बराबर चलता रहा। अन्त में असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त कर ली। तब पराजित देवों ने आपस में मिल कर सम्मति की।

देवतागण बोले— हम लोग दैत्यों के सहायक के प्रभाव को नहीं जान पाते। अतः उसके कल्याण के लिये यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। उसमें इनको बुलाना चाहिये। उस यज्ञ में इनको बहका कर हम असुरों को जीत लेंगे। ऐसी मन्त्रणा एकान्त में करके यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। यह मन्त्रणा करके उन्होंने यज्ञ प्रारम्भ कर दिया। और उसमें षण्ड और अमर्क का आवाहन किया।

यज्ञ में उनके आने पर उनसे निवेदन किया। हे श्रेष्ठ द्विजो ! हम आपको इस प्रकार के यज्ञों में बराबर बुलाते रहेंगे। आप असुरों का साथ छोड़ दीजिये। दानवों को पराजित कर लेने के बाद हम उन्हें पुनः ग्रहण कर लेंगे। देवों की इस प्रार्थना पर षण्ड और अमर्क ने दानवों का संग छोड़ दिया। इस प्रकार देवता लोग उनसे विजयी हो गये। और देवों ने दैत्यों को पराजित कर दिया। शुक्राचार्य के शाप कारण दानव देवों से पीड़ित होकर रसातल को चले गये। तभी महर्षि भृगु के उसी नैमित्तिक शाप के कारण यज्ञादि का ह्रास होने लगा। धर्म का ह्रास होता देख कर भगवान विष्णु ने धर्म की स्थापना और अधर्म के नाश के कारण जन्म धारण किया। चाक्षुष मन्वन्तर में जब दानव प्रहलाद के वंश में नहीं रहे तब उन्हें मारा जा सकता था तभी भगवान नारायण का जन्म हुआ था ऐसा ब्रह्मा जी ने कहा है।

वैवस्वत मन्वन्तर में पुनः यज्ञों का प्रचलन हुआ। स्वयं ब्रह्मा जी यज्ञ के पुरोहित बने। सभी हिरण्यकशिपु को मारने के लिये नर-सिंह रूप में भगवान ने दूसरी बार अवतार लिया।

सातवें त्रेता युग में जब राजा बलि समस्तलोकों का एक मात्र अधीश्वर का सभी लोक असुरों के भय से त्रस्त थे। ऐसे समय में भगवान विष्नु ने वामन भगवान का अवतार धारण किया यह उनका तीसरा अवतार था। उस समय भगवान ने अपने अंगों को समेट कर छोटा बना लिया था। बलि की यज्ञ शाला में भगवान नरायण ब्राह्माण का भेष धारण करके पहुँचे। उस समय शुभ अवसर प्रदान कर उन्होंने निवेदन किया कि हे राजन! आप समस्त नौलोक के राजा हैं आप सर्व समर्थ और प्रजा को आनन्द देने वाले हैं। आप मुझे तीन पग भूमि दान करदें। भगवान की बात सुनकर बिरोचिन के पुत्र बलि ने कहा अच्छा मैं आपको तीन पग भूमि दूँगा। उसने उन्हें ब्राह्मण वेष में अति छोटा समझ कर यह कह दिया था। उसको इस दान से अति प्रसन्नता हो रही थी। परन्तु हे ऋषियो! भगवान ने तीन पगों में स्वर्ग आकाश एवं पृथ्वी सभी को नाप लिया। उस समय भगवान अपने तेज से सूर्य को भी फीका कर रखा था। अपने तेज से सभी दिशायें प्रभाशित करदी थीं। उस समय उनकी अपार शोभा थी। इस प्रकार भगवान ने समस्त आसुरी सम्पत्ति को छीन कर नमुचि प्रहलाद आदि असुरों को उनके पुत्र पौत्रादिकों के सहित पाताल लोक में भेज दिया। कर दैत्यों को भगवान ने मार डाला। और कितने असुर तो उनके भय से अनेकों दिशाओं में भाग गये। इस प्रकार लक्ष्मी पति नरायण ने समस्त जीवों को सुखी कर दिया। उस समय उन्होंने अपने अद्भूत स्वरूप को ब्राह्मणों को दिखलाया। ब्राह्मणों ने उस जगतात्मा के उस शरीर में समस्त चराचर जगत का दर्शन किया था, और उन्होंने अपने को भी उसी में स्थित देखा। उस समय भगवान विष्णु के उस महान से मोहित देवताओं, दानवों और मनुष्यों

भगवान् विष्णु के इस रूप को देखा और वे सब मोहित हो गये। राजा बलि को उनके मित्र और परिवार के साथ पाश में बांध कर पाताल लोक में स्थित कर दिया। इसके बाद सारे संसार के ऐश्वर्य को इन्द्र राजा को सौंप दिया। भगवान जनार्दन ने मनुष्य योनि में भी जन्म लिया था। उनकी ये तीनों सम्भूतियां देवयोनि की थीं। मनुष्य योनि की सात सम्भूतियां भृगु ऋषि के शाप के कारण हुई थी, अब मैं उनका वर्णन करूँगा।

दसवें त्रेतायुग में धर्म के नष्ट होने पर मार्कण्य ऋषि के साथ दत्तात्रेय रूप में पैदा हुये, यह भगवान का चौथा अवतार कहलाता है। पन्द्रहवें त्रेतायुग में राजा मान्धाता के राज्य में तथ्य सहित अवतार हुआ था, यह पांचवां अवतार था। उन्नीसवें त्रेतायुग में विश्वामित्र के साथ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में जन्म लिया, यह छठवां अवतार था। इसके बाद चौबीसवें त्रेतायुग में वशिष्ठ गुरू के साथ रावण के विनाश करने के कारण दशरथ पुत्र राम के रूप में प्रकट हुये। इसी प्रकार अट्ठाइसवें द्वापर युग में भगवान विष्णु ने जातूकर्ण के साथ परासर ऋषि के संयोग वेदव्यास से रूप में पैदा हुये, यह उनका आठवां अवतार था। नवें अवतार में अदिति स्वरूप देवकी के गर्भ से और वसुदेव के पुत्र होकर ब्रह्मगार्ग्य के साथ अवतार ग्रहण किया। भगवान विष्णु का वर्णन हम शब्दों से नहीं कर सकते हैं वे भगवान विष्णु अजेय अनादि हैं उनका वर्णन करना असम्भव है वे दीनों पर दया करते हैं अपनी इच्छानुकुल भ्रमण करने वाले हैं। लोक में बालक रूप होकर वे खिलौनों की तरह क्रीड़ा करते हैं। यह सारा संसार उन्हीं से व्याप्त है, वे इससे भी परे हैं। अट्ठाइसवें द्वापर युग के कुछ समय बीत जाने पर और धर्म के नाश हो जाने पर भगवान विष्णु बृष्णिवंश में जन्म धारण करते हैं। योगात्मा अपनी योगमाया सभी जीवधारियों को मोहित करके मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं, इस अवतार में सान्दिपन के साथ मानव समाज में लीला दिखाने के लिये भगवान ने इस पृथ्वी पर जन्म लिया।

उस अवतार में कंस, साल्व, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, पूतना, नाग केशी कुवलयापीड़, मल्लराज, गृहाधिप चाणर इत्यादि असुरों का भगवान ने संहार किया था। उसी अवतार में उन्होंने महान बलशाली वाणासुर की हजार भुजाओं को काटा था। युद्ध में बहुत बलवान नरकासुर और कालयवन का वध किया था। उन्होंने अपने अनुपम तेज से बड़े बड़े राजाओं के बहुमूल्य आभूषणों को छीन लिया था। परम प्रतिभाशाली भगवान विष्णु ने लोक की रक्षा के लिये अवतार लिये हुये थे। इसी कलियुगके सन्ध्यांशा इसमें की समाप्ति हो जायगी, पराशर के पुत्र प्रतापशाली विष्णुयशा, याज्ञवल्क्य के साथ कल्कि नाम के अवतार ग्रहण करेंगे। यह अवतार उनका दसवाँ होगा। इस प्रकार ये बहुत से रथ, हाथी, घोड़े और सेना को साथ लेकर एक भंयकर युद्ध करेंगे। उससमय घोर अधर्म करने वाले पापियोंको गान्धार,पारद,अल्हव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द, दरद, खस, लम्पक, अन्ध्रक, रुद्र, किरात, परम ऐश्वर्यशाली बलशाली मलेच्छों को भगवान समाप्त कर देंगे। भगवान विष्णु पूर्व जन्म में परम बलशाली प्रमिति के रूप में वर्तमान रहते हैं वे ही देवांशभूत होकर मनुष्ययोनि में जन्म लेते हैं। कलियुग के पूर्ण होने पर वे चन्द्रमा के समान शरीर ग्रहण करके उत्पन्न होते हैं उन भगवान विष्णु के ये अवतार दस प्रसिद्ध हैं। जो समय, शरीर और कारण भगवान के लिये बताये हैं।

पच्चीसवें कल्प के आने पर पच्चीसवर्ष समाप्त हो जाते हैं, उस समय भगवान सभी जीवों का नाश करके तथा सभी मनुष्यों को नष्ट करके अपने क्रूर कर्म से पृथ्वी को शून्य कर देते हैं। उस समय की प्रजा अपने क्रूर कर्म के कारण ही नाश को प्राप्त होती है, लेकिन फिर भी उनको स्वयं ही सिद्धि प्राप्त होती है। इस प्रकार के रोज के गृह कलेश में निरत रहकर उन सारी प्रजाओं का नाश करके अपने अनुचरों के सहित वे भगवान गंगा यमुना के संगम पर इस घोर युद्ध को समाप्त कर देंगे। इसके बाद कल्कि रूप धारी भगवान के अवसान हो जाने पर और सैनिकों के साथ राजा के नष्ट हो जाने

पर सारी प्रजाऐं आश्रय रहित हो जांयगी,वे आपस में युद्ध करके एक दूसरे को मार डालेंगे वे आपस में एक दूसरे का विश्वास नहीं करेंगे, इस प्रकार बहुत दुखी होकर वे अपने नगर, ग्राम को छोड़ कर भाग जायेंगे। वैदिक धर्म का नाश हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायगा। वे अल्प आयु हो जायेंगे, वन में रहने लगेंगे। वन में पत्र फल फूल मूल खाकर जीवन चलायेंगे। पहनने के लिये चीर, पत्र, और मृगचर्म को धारण करेंगे। उन अल्प आयु वाली प्रजा जिविका के साधन सभी नष्ट हो जायेंगे। कलियुग के उस सन्ध्यांश में प्रजाको नाना तरह के कष्ट उठाने पड़ेंगे कलियुग के साथ उसकी सारी प्रजा नष्ट हो जायगी, इस प्रकार कलियुग के समाप्त होने पर जब पुनः सत्य युग का प्रारम्भ होगा, तब उस समय सारी वस्तुऐं फिर अपनी उसी पहली स्थिति को प्राप्त हो जांयगीं। जो मनुष्य यदु के वंश के वर्णन को सुनता अथवा दूसरों सुनाता है, वह परम सुख को प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त होता है॥ ६८

[इति श्री वायु महा पुराण का विष्णुमहात्म्य वर्णन नाम का अट्ठान-वेवां अध्याय समाप्त]

निन्यानवेवां अध्याय

[तुर्वसु आदि ययाति के पुत्रों का वंश वर्णन]

सुतजी बोले— हे ऋषियो! अब मैं! आपको 'तुर्वसु' पुरु और दुह्यु के वश का वर्णन सुनाऊँगा! ययाति के पुत्र तुर्वसु के वहि नाम का पुत्र पैदा हुआ, वह्नि के गोभानु नाम का पुत्र पैदा हुआ जो कभी किसी से परास्त नहीं हुआ। त्रिसानु राजा के करन्धम नाम के पुत्र पैदा हुये। करन्धम के मरुत्त नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा अविक्षित के मरुत नाम के और एक पुत्र बतलाये जाते हैं। राजा मरुत्त के कोई सन्तान न थी। इस कारण पुरुवंश के राजा दुष्कृत को उसका पुत्र बनाया। राजा ययाति ने वृद्धावस्था को अंगीकार न करके अपने पुत्र तुर्वसु को शाप दे दिया, और इसी शाप के कारण तुर्वसु का वंश नष्ट हो गया।

और वह अन्त में पुरु वंश में मिल गया। उस दुष्कृत राजा के शरुथ नाम के पुत्र पैदा हुये, शरुथ के जनापीड़ नाम के पुत्र पैदा हुये जनापीड़ के चार पाण्डय, केरल, चोल और कुलय नाम के पुत्र पैदा हुये। ये चारों अपने २ देश के स्वामी थे दुह्य के वभ्रु और सेतु नाम के दो पुत्र पैदा हुये। सेतु के अरुद्ध नाम के पुत्र पैदा हुये। और वभु के रिपु नाम के पुत्र पैदा हुये। युद्ध भूमि में रिपु को यावनाश्व राजा ने मार डाला। यह महायुद्ध चौदह वर्ष तक लगातार चलता रहा। अरुद्ध के गान्धार नाम का पुत्र पैदा हुआ। गान्धार राजा के नाम पर ही गान्धार देश बसा है। उसी गान्धार देश में अश्व बहुत उत्तम श्रेणी में पैदा होते हैं।

राजा गान्धार के धर्म नाम का पुत्र पैदा हुआ, धर्म के घृत नाम का पुत्र पैदा हुआ। घृत राजा के दुर्दम नाम का एक पुत्र पैदा हुआ। दुर्दम के प्रचेता नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा प्रचेता के सौ पुत्र पैदा हुये, वे सभी पुत्र अपने २ देश के राजा थे। अनु के तीन समानर, पक्ष और परपक्ष नाम के पुत्र पैदा हुये। समानर के कालानल नाम का परम विद्वान पुत्र पैदा हुआ। कालानल के सृञ्जय नामका परम धर्मात्मा पुत्र पैदा हुआ। सृञ्जय के पुरञ्जय नाम का पुत्र हुआ। पुरञ्जय के जनमेजय और जन्मेजय राजा के महाशाल नाम का पुत्र पैदा हुआ। महाशाल राजा का वैभव इन्द्र के समान बढ़ा हुआ था। महाशाल राजा के महामना नाम का धार्मिक राजा पैदा हुआ महामना राजा सातों द्वीपों का स्वामी यशस्वी चक्रवर्ती सम्राट था। महामना के दो यशस्वी पुत्र पैदा हुये। जिनमें एक का नाम उशीनर और दूसरे का नाम तितिक्षु था। राजा उशीनर की राजवंश में उत्पन्न होने वाली पांच रानी थीं, उन के नाम इस प्रकार हैं। मृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती। राजा उशीनर ने अपनी पांचों स्त्रियों के संयोग से पांच कुल का उद्धार करने वाले पुत्र पैदा किये। ये सभी पुत्र परम तपस्वी और धार्मिक विचार वाले थे। मृगा के मृग नाम का पुत्र था, नवा के नव नाम का पुत्र था, कृमि के कृमि नाम का पुत्र था, दर्वा ने सुव्रत नाम का परम

धार्मिक पुत्र था। और पांचवी रानी दृषद्वती के एक शिवं नाम के एक महान तपस्वी दानी पुत्र पैदा हुये थे। वे राजा शिविऔशीनर शिवि के नाम से प्रसिद्ध हुये। उन्हीं राजा शिवि का पुर शिवपुर नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी प्रकार राजा मृग का योधेयपुर था, नव राजा का नवराष्ट्र था, कृमि राजा की कृमिपुरी और सुव्रत की अम्बष्ठा नाम की पुरी थी। इसके बाद अब मैं आप को शिवि के पुत्रों का वर्णन सुनाऊँगा।

राजा शिवि के वृषदर्भ, सुवीर, केकय और माडक नाम के चार पुत्र पैदा हुये। ये सभी धर्मात्मा पुत्र शिविगण के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन चारों पुत्रों के कैकय, माडक, वृषदर्भा और सूचीदर्भा प्रसिद्ध नगर थे। अब तितिक्षु की प्रजा का वर्णन करूँगा। राजा तितिक्षु के उशद्रथ नाम का महाबाहु विशाल पुत्र पैदा हुआ वह पूर्व दिशा का यशस्वी राजा था। उशद्रथ के हेम नाम का पुत्र पैदा हुआ। हेम के बलि नाम का परम तपस्वी पुत्र पैदा हुआ। यह बलि राजा वही महान योगि दैत्यराज बलि थे, जिनको बामन भगवान ने बांधा था। राजा के सन्तान न होने पर हेम के वंश का नाश होते देख भगवान ने मानव योनि में हेम के पुत्र रूप में जन्म लिया था। राजा बलि ने पृथ्वी पर चारों वर्णों की सन्तानों को उत्पन्न किया था, उन्होंने अंग, वंग, सुह्म, पुण्ड्र, कलिंग नाम के पुत्रों को पैदा किया। उस राजा बलि के ब्राह्मण और क्षत्रिय वंश दोनों ही कहे जाते हैं। बलि के शुभ कर्मों से प्रसन्न होकर प्रजापति ब्रह्मा जी ने उसको महा योगी, एक कल्प की उम्र वाला युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला, धर्म में परम निष्ठावान् होने का वरदान दिया था। इसके बाद ब्रह्मा जी ने उनसे कहा कि तुमको समस्त त्रिलोकी का दर्शन प्राप्त होगा तुम ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य, शूद्र चारों वर्णों की स्थापना करोगे। प्रजापति ब्रह्मा के इस प्रकार शुभ वचनों को सुनकर राजा बलि बहुत प्रसन्न हुये। वरदान के अनुसार दीर्घकाल के बाद परम विद्वान राजा बलि पुनः अपने निवास स्थान को प्राप्त हुये।

राजा बलि ने अपने पुत्रों के नाम के ही ऊपर उनके देश का नाम रखा है। अब मैं उनके वंशजों का वर्णन करूंगा। राजा बलि के ये पुत्र मुनि के अंश से बलि के क्षेत्रज पुत्र थे। महान प्रतापी दीर्घतमा मुनि के संयोग से बलि की स्त्री सुदेष्णा ने पैदा किये थे।

ऋषि बोले—हे सूतजी! महाराज बलि के पांचों पुत्र किस प्रकार दीर्घतमा ऋषि के संयोग से बलि की स्त्री ने पैदा किये, आप हमको इस विषय में बतलाइये।

ऋषि बोले—हे ऋषिगण! प्राचीन समय में एक अशिज नाम के प्रसिद्ध ऋषि थे. उन ऋषि की स्त्री का नाम ममता था, अशिज के छोटे भाई बृहस्पति जी थे, एक बार वे काम वश होकर ममता के पास गये। ममता ने बृहस्पति जी से अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे बड़े भाई के संयोग से गर्भवती हूं। बृहस्पति! यह हमारा महान गर्भ अपने तेज से बहुत प्रकाशित हो रहा है, यह गर्भावस्था में ही अशिज के अंश से होने के कारण षडंग वेदों का उच्चारण करता है। तुम भी अमोघवीर्य वाले हो, इस कारण ऐसी स्थिति में मैं तुमसे समागम नहीं कर सकूंगी। हे बृहस्पति! इस समय के समाप्त हो जाने के बाद तुम्हारी जभी इच्छा हो वही करना। ममता के इस प्रकार कहने पर भी बृहस्पति महात्मा होकर भी अपनी कामवशी भूत आत्मा को वश में न रख सके। परम धर्मात्मा होकर भी उन्होंने ममता के साथ समागम किया, समागम करते समय गर्भस्थ शिशु ने कहा कि हे तात! आप अपने वीर्य को यहाँ न रखें, क्योंकि यहां मैं पहले से ही बैठा हुआ हूँ, इस जगह दो प्राणियों का निवास करना सम्भव नहीं है, अतः तुम भी अमोघवीर्य वाले हो। उस गर्भस्थ शिशु के इस प्रकार वाक्य सुनकर बृहस्पति ने क्रोधित होकर अपने बड़े भाई अशिज के संयोग से उत्पन्न उस गर्भस्थ बालक को शाप दे दिया, उससे कहा कि तुमने ऐसे सुखमय अवसर पर बाधा पहुँचाई है, तुमने अज्ञानवश मुझसे ऐसा कहा, अतः तुम महान अन्धकार को प्राप्त करोगे। बृह-

स्पति के इस प्रकार शाप देने के कारण ही उस गर्भस्थ शिशु का नाम दीर्घतमा पड़ा था। अशिज ऋषि भी वृहस्पति के समान परम तेजस्वी और यशस्वी थे। उनके पुत्र दीर्घतमा परम ब्रह्मचारी थे, और उनके भाई के आश्रम में रहते थे। सुरभी के वृषभ पुत्र से उन्होंने गौधर्म श्रवण सुना था अशिज के भाई दीर्घतमा के पितृतुल्य वृहस्पति ने उनके निवास स्थान पर एक सुन्दर भवन बनवाया, उसी में वे निवास कर रहे थे, कही से घूमता हुआ एक बृषभ वहां आगया, और गायों के साथ घूमते हुये उस बृषभ ने श्राद्ध के लिए लाये गये कुशों को खालिया। ऋषिवर दीर्घतमा ने उस बृषभ के दोनों सींग पकड़ लिये, उनके सींगों को पकड़ने पर असक्त होकर दीर्घतमा से कहने लगा हे सभी बलशालियों में श्रेष्ठ! आप मुझको छोड़ दीजिये, मैंने आपके समान कोई बलवान पुरुष नहीं देखा। मैंने समस्त पृथ्वी भर का महादेवजी को बहन करते हुए भ्रमण किया है। हे श्रेष्ठ ऋषि! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं, आप मुझको छोड़ दीजिये। आप मुझसे वरदान मांगिये। बृषभ के इस प्रकार कहने पर भी दीर्घतमा ने उसको नहीं छोड़ा, और कहा कि तुम चार पैर वाले हो तब भी दूसरे की वस्तु को खारहे थे अतः मैं तुमको जीवित नही छोड़ूँगा। दीर्घतमा के इस प्रकार कहने पर बृषभ पुनः कहने लगा कि हे तात! मेरे लिये कोई पाप नहीं है, कोई चोरी नहीं हैं। मुझको यह नहीं पता कि मुझको क्या खाना चाहिये, क्या पीना चाहिये। इसी प्रकार यह भी नहीं मालूम कि मुझको क्या करना चाहिये। मुझको कहां जाना चाहिये कहां न जाना चाहिए हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हम पशुओं को पाप नहीं लगता, गायों का तो यही धर्म कहा गया है। बृषभ के इस प्रकार गायों के नाम को सुनकर दीर्घतमा बहुत चकित हुये, उन्होंने परम भक्ति और श्रद्धा से वृषभ को प्रसन्न किया और प्रषव ने इस प्रकार प्रसन्न होकर प्रस्थान किया वृषभ के चले जाने के बाद दीर्घतमा ऋषि ने गौधर्म के ऊपर विचार किया, और मन से उसे ग्रहण करके सदा उसी में भक्ति रखकर गायों के पालनमें निरत रहने लगे।

भावीवश एकबार दीर्घतमा ने कामवश होकर अपने छोटे भाई की पत्नि को छेड़ने का उपक्रम किया उसके मना करने पर रोने चिल्लाने पर उन्होंने यह निन्द्य कर्म नहीं छोड़ा उसका यह अपराध ऋषि शरद्वान से सहन नहीं हुआ। उन्होंने देखा कि दीर्घतमा अपने छोटे भाई की स्त्री जो पुत्रवधु के समान है उसके साथ समागम कर रहे हैं इस महान अधर्म को देख कर महात्मा शरद्वान को चिन्ता होने लगी, लेकिन उन्होंने दीर्घतमा ऋषि को फिर भी शाप नहीं दिया। उनके क्रोध से नेत्र लाल हो गये, और क्रोधित होकर दीर्घतमा से कहने लगे, अरे दुष्ट ! तू गम्य, अगम्य को कुछ भी नहीं जानता, पशु धर्म की तरह अपने छोटे भाई की स्त्री के साथ समागम करना चाहता है। अब मैं तुझको छोड़ता हूं तू अपने इस नीच कर्म का फल भोग। तुम अन्धे, वृद्ध और जीविका चलाने में असमर्थ होकर इतना नीच दुष्कर्म कर रहे हो जिसको कोई नहीं करता, तुम एक दुराचारी मनुष्य हो, अतः मैं तुमको इसी कारण घर से निकाल रहा हूँ। तुमने धर्म अधर्म का कुछ भी विचार नहीं किया है।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! इस कारण घर से निकलने के बाद दीर्घतमा क्रूर प्रकृति के हो गये, तब ऋषि शरद्वान ने उनकी बहुत बुराई की और अपने दोनों हाथों से पकड़ कर उसको सन्दूक में बन्द करके बह जाने के लिये समुद्र में डाल दिया एक सप्ताह तक समुद्र में तैरने के बाद, राजा बलि ने अपनी स्त्री सहित इस बहते हुये सन्दूक को देखा, उस समय वे डूबने जा रहे थे, लेकिन जल की ऊँची लहर ने उनको राजा बलि के पास पहुँचा दिया। विरोचन के पुत्र राजा बलि ने दीर्घतमा को समुद्र में से निकाल कर बचा लिया और अपने महलों में लेजाकर खाने पीने सभी प्रकार से सन्तुष्ट किया। बलि के इस व्यवहार से दीर्घतमा बहुत प्रसन्न हुये। और राजा बलि को वरदान देकर प्रसन्न करना चाहा। दैत्यराज बलि ने पुत्र की कामना से दीर्घतमा को प्रसन्न किया।

बलि ने कहा—हे श्रेष्ठ ऋषि ! मैं आपसे सन्तान प्राप्त करने

की इच्छा करता हूं आप मेरे लिये धर्म, अर्थ, और काम से युक्त पुत्रों की उत्पत्ति करें। बलि के इस प्रकार कहने पर दीर्घतमा ने कहा कि बहुत अच्छा, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा इसके बाद तब बलि राजा ने दीर्घतमा को अपनी रानी सुदेष्णा के पास भेज दिया। दीर्घतमा को अन्धा और वृद्ध देखकर रानी सुदेष्ण स्वयं दीर्घतमा के पास नहीं गई, और उन्होंने अपनी धाय को नाना तरह के वस्त्राभूषणों से सुसज्जित करके दीर्घतमा के पास भेज दिया। उस शूद्र योनि में वश्यात्मा दीर्घतमा ने कक्षीवान् और चक्षुष नाम के दो धर्मात्मा पुत्रों को पैदा किया। वे दोनों महान तेजस्वी थे. उन दोनो को अच्छी प्रकार पढ़ा लिखा कर ब्रह्मवेत्ता, योग परायण बना दिया, इन पुत्रों को देख कर विरोचन के पुत्र राजा बलि ने कहा कि ये दोनों क्या हमारे पुत्र हैं ? दीर्घतमा ने कहा कि ये युत्र तुम्हारे नहीं हैं, ये पुत्र हमारे हैं, क्यों कि तुम्हारे छदम से थे शूद्र योनि में पैदा हुए हैं। ये असुरों में श्रेष्ठ होंगे। तुम्हारी रानी सुदेष्णा ने मुझको अन्धा और वृद्ध समझ कर अपनी शूद्र वर्ण की धाय को भेज दिया था। दीर्घतमा की इस प्रकार बात सुनकर उनकी पुनः प्रार्थना आदि करके प्रसन्न किया। प्रताप शाली राजा बलि ने अपनी स्त्री सुदेष्णा की बड़ी भर्त्सना की, और फिर उन्हें वस्त्र आभूषण से सुसज्जित करके ऋषि दीर्घतमा के भेजा। दीर्घतमा ने सुदेष्णा से कहा कि हे सुन्दरि ! यदि तुम नग्न और खुले हुए शरीर में दही में नमक मिलाकर लगाओगी, और सिर से पैर तक बिना किसी घृणा के उस दही को चाटोगी, तो तुम्हारे मन के अनुसार तुम्हें पुत्र प्राप्त होंगे। बलि की स्त्री सुदेष्णा ने ऋषि की बात के अनुसार ही कार्य किया, लेकिन उनके शरीर के मलमार्ग के चाटने से उसे घृणा हुई, जिथ कारण उसने मलद्वार को छोड़ दिया। इस प्रकार देखकर ऋषि ने सुदेष्णा से कहा कि हे देवि ! तुम्हारे सबसे बड़ा पुत्र बिना अपान के पैदा होगा। ऋषि की ऐसी बात सुनकर रानी सुदेष्णा ने ऋषि से प्रार्थना की कि हे प्रभु ! आप मुझे इस प्रकार बिना अपान के पुत्र न देने की कृपा करें।

ऋषि ने कहा—हे सुन्दरि ! इसमें तो तम्हारा ही अपराध है.

अब यह झूठ नहीं हो सकता हे सद्व्रतपरायणे ! यदि तुम ऐसा अपना पुत्र नहीं चाहती हो, तो तुम्हारा पौत्र बिना अपान के होगा, तुम्हारा पौत्र बिना अपानमार्ग के भी सब कार्य करता रहेगा। इस प्रकार कहने के बाद ऋषि दीर्घतमा ने सुदेष्णा की कमर को हाथ से छूते हुए कहा कि हे सुन्दर हँसने वाली देवि ! तुमने मेरे समस्त शरीर के दही को जोभ से चाटा है, इस कारण तुम्हारा गर्भ पूर्णिमा के चांद की तरह पूर्णता को प्राप्त होगा; तुम्हारे इस गर्भ से देवताओं के समान पांच प्रतापशाली पुत्र पैदा होंगे। वे पांचों पुत्र धार्मिक, यज्ञपरायण और बहुत तेजस्वी होंगे। ऋषि दीर्घतमा के इस प्रकार वरदान देने पर बलि की स्त्री सुदेष्णा ने अङ्ग नाम के कुमार को उत्पन्न किया। उसके बाद उसने बंग को उत्पन्न किया, फिर कलिंग को फिर पुण्ड्र को तथा सबसे बाद में ब्रह्म नाम के पुत्र को पैदा किया। वंश को बढ़ाने वाले ये पांचों पुत्र बलि के क्षेत्रज पुत्र कह लाते थे। प्राचीन काल में दीर्घतमा ऋषि ने राजा बलि को ये ही पांचों पुत्र प्रदान किए थे। प्रजापति ब्रह्माजी ने दीर्घतमा ऋषि को शाप दिया था कि 'तुम अपनी स्त्रियों से सन्तान पैदा न करोगे। इन्हीं कारण उन्होंने मनुष्य योनि में सन्तान पैदा की और इसी कारण उनकी पत्नि से कोई सन्तान पैदा न हुई। ऋषि के इस गौधर्म से सन्तुष्ट होकर बृषभ ने इस प्रकार कहा, कि तुमने गौधर्म की मर्यादा का भली प्रकार पालन किया है, हे मुनि ! तुम्हारे शरीर में जो बृहस्पति के शाप के कारण पाप लगा है, मैं आज महान अन्धकार से तुमको मुक्त करता हूँ, मैं अपने नथुनों से सूँघ कर तुम्हारी वृद्धावस्था को और मृत्यु को भी दूर करता हूँ। इस प्रकार कहकर बृषभ ने अपने नथुनों से उनको सूँघ कर उनके सभी अन्धकार को दूर कर दिया, और उनको दिखाई देने लगा। इसके बाद उनके वरदान से वे दीर्घतमा दीर्घायु सम्पन्न युवा और नेत्रवान होगये। इसी कारण गौ के वरदान से दीर्घतमा गौतम कहलाये। इसके बाद शूद्र योनि से उत्पन्न कीक्षवान् ने अपने पिता के साथ पर्वतीय प्रदेश को प्रस्थान किया, पिता के हित के लिये उसने कठिन तपस्या की

पिता ने उन्हें जिस तपस्या करने के लिए कहा था। परम कठोर तपस्या करने के बाद कीत्सवान् ने परम सिद्धि प्राप्त की, और स्वयं और अपने भाई चक्षुष के पापों को नष्ट करके ब्राह्मणात्व को प्राप्त किया। कीत्सवान् के इस शुभ कर्म से उसके पिता बहुत सन्तुष्ट हुये। उसके पिता ने अपने पुत्र से कहा कि हे समर्थवान्! तुम्हारे जैसे योग्य पुत्र से मैं बहुत संतुष्ट हूँ। परम यशस्वी सत्पुत्र को प्राप्त करके मैं कृतार्थ होगया। इस प्रकार कहने के बाद महात्मा गौतम ने योग की साधना की। और ब्रह्म पद को प्राप्त किया। इधर कक्षीवान ने ब्राह्मणत्व प्राप्त करने के लिये हजारों पुत्रों की सृष्टि की। ये सभी पुत्र गौतम गोत्रीय कहे जाते हैं। अब बलि और दीर्घतमा की सन्तानों का वर्णन करूँगा सो आप लोग सुनिए—

राजा बलि अपने पांचों पुत्रों का राज्याभिषेक करके कृतार्थ हो गये। योगात्मा बलिराजा योग का आश्रय लेकर अपने समय को बिताने लगे। बलि के पांचों में राजर्षि अंगद का पुत्र दधिवाहन नाम का हुआ। उसका दूसरा नाम अनपाल था। अनपाल का पुत्र दिवि रथ हुआ। दिविरथ का पुत्र परमविद्वान राजा धर्मरथ हुआ। इसी धार्मिक राजा ने विष्णु पद नाम के पर्वत पर राजा इन्द्र के साथ सोमरस का पान किया था। धर्मरथ का पुत्र चित्ररथ हुआ। चित्ररथ के राजा दशरथ हुआ। इन्हीं राजा दशरथ का दूसरा नाम लोमपाद था इनकी पुत्री शान्ता थी! दशरथ का पुत्र चतुरंग था। वह राजा ऋष्यशृंग की कृपा से पैदा हुआ था। चतुरंग का पुत्र पृथुलाश्व हुआ। पृथुलाश्व का चम्प नामक पुत्र हुआ। चम्प की मालिनी नामक नगरी थी। उसका दूसरा नाम चम्पावती भी कहा जाता था। जिसमें चारों वर्ण के लोग रहते थे। उसमें उसने साठ हजार वर्षों तक राज्य किया। सभी प्रजा के लोग विष्णु भगवान के परम भक्त थे। पूर्णभद्र की कृपा से राजा चम्प का पुत्र हर्यंग हुआ। राजा हर्यंग के पास एक महाबलशाली हाथी था जिसका नाम 'तणिक' था। जो पूर्व जन्म में इन्द्र का ऐरावत था। उस राजा ने इस हाथी को अपने मन्त्र के बल से पृथ्वी पर बुलाया था राजा हर्यंग का उत्तराधिकारी राजा भद्ररथ हुआ।

भद्ररथ का पुत्र राजा वृहत्कर्मा हुआ। वृहत्कर्मा का पुत्र वृहद्रथ हुआ। उसका पुत्र वृहन्मना हुआ। वृहन्मना ने जयद्रथ को उत्पन्न किया। इससे राजा दृढ़रथ की उत्पत्ति हुई। उसका पुत्र जनमेजय हुआ जो विश्वविजयी था। उसके अंगों के द्वारा कर्ण पैदा हुआ जो उसका उत्तराधिकारी बना। उसका पुत्र सुरसेन हुआ और उसका पुत्र द्विज माध्वज कहा गया।

ऋषि बोले—हे सूतजी। जिस प्रकार राजा कर्ण को सूत पुत्र कहा जाता है वह प्रसंग भी हमें कहने की कृपा कीजिये। आप इन कथाओं के ज्ञाता है। अतः यह कथा भी हमें सुनाइये।

सूतजी बोले—राजा वृहद्भानु का पुत्र वृहन्मना हुआ था। उसकी दो पत्नियां थीं। जो दोनों ही चेदि देश के राजा की पुत्री थीं। उनके नाम थे यशोदेवि और सत्या। इन्हीं दोनों से राजा का वंश भी अलग-अलग बट गया। यशोदेवि से राजा जयद्रथ हुआ और सत्या से ब्राह्मण एवं क्षत्रियों के उद्धार करने वाले राजा विजय हुये। विजय के पुत्र धृति हुये। उसका पुत्र धृतव्रत हुआ। धृतव्रत का पुत्र सत्यकर्मा था। इसी सत्यकर्मा का पुत्र सूत अधिरथ हुआ। इसी ने कर्ण का पालन पोषण किया। इसीलिये कर्ण को लोग सूत पुत्र कहते हैं। कर्ण के बारे में मैं आपको पहलेकह चुका हूँ। इस प्रकार अंग के वंश में होने वाले राजाओं का विस्तार मैंने आपको कहा। अब इसके बाद पुरू वंश का वर्णन सुनिये।

सूतजी बोले—पुरू का पुत्र राजा जनमेजय हुए। उसका पुत्र अविद्ध हुआ, जिसने पूर्व दिशा को जीता था। अविद्ध का पुत्र प्रवीर हुआ। उसका पुत्र मनस्यु नामका हुआ। उसका पुत्र जयद हुआ। जयद का पुत्र धंधु था। धन्धु का पुत्र बहुगवी था। उसका पुत्र संजायी था। संजाति का पुत्र रौद्रश्व था। रौद्रश्व के घृताची अप्सरा से दस पुत्र हुए जिनके नाम हैं—रजेयु, कृतेयु, कक्षयु, स्थण्डिलयेयु, घृतेयु, जलेयु, स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु, और वनेयु। इन पुत्रों के अतिरिक्त उसके दस पुत्रियां थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं—रुद्रा, शुद्रा, मद्रा, शुभा जामलजा, तला, खला, गोपजला, ताम्ररसा, और रत्नकूटी। इन कन्याओं के स्वाम

अत्रिगोत्री प्रभाकर थे। राजा अनाद्दष्टका पुत्र रिवेयु था। रिवेयुकी पत्नि तक्षक की पुत्री थी। उससे रन्ति नामक पुत्र हुआ। रन्ति ने सरस्वती नामक पत्नि से त्रसु, अप्रतिरथ और ध्रुव नामक धार्मिक पुत्रों को उत्पन्न किया। उसकी एक मंगलमयी कन्या 'गौरी नाम की भी थी। जो राजा मान्धाता की माता हुई। राजा अप्रतिरथ का पुत्र धुर्य था। उसका पुत्र कण्ठ हुआ। उसका पुत्र मधातिथि था। मेधातिथि से कण्ठायन नाम का द्विजाति वर्ग का सृष्टि हुई। इसकी एक कन्या भी थी जिसके अनेक पुत्र हुये। राजा रन्ति के पुत्र त्रसु के पुत्र का नाम मलिन हुआ। उसने उग्रदानती से चार पुत्र उत्पन्न किये। जिनका नाम था दुष्यन्त, सुष्मन्त, प्रवीर, अनघ। इनमें दुष्यना का पुत्र राजाओं में श्रेष्ट भरत चक्रवर्ती सम्राट हुआ। यह राजा भरत दुष्यन्त की शकुन्तला नामक पुत्री से उत्पन्न हुआ। उससे ही भारत वर्ष की प्रसिद्धि है। राजा को इस सम्बन्ध में आकाशवाणी भी हुई थी। कि भरत तुम्हारा ही पुत्र है। शकुन्तला का अपमान मत करो शकुन्तला के गर्भ का तुम आधान करने वाले हो अतः इसकी रक्षा करो क्यों कि पिता का यही कर्त्तव्य है।

सम्राट भरत के तीन पत्नियां थी, उनमें नौ पुत्र पैदा हुये। भरत ने उन पुत्रों के विषय में यह कह कर तिरस्कार किया कि ये हमारी प्रतिष्ठा के योग्य नहीं हैं। इससे माताओं को बड़ा क्रोध आया और अपने इन सब पुत्रों को मारडाला। इस प्रकार राजा भरत के पुत्रों की उत्पत्ति व्यर्थ हो गई। मरुतों ने भरत को वृहस्पति के पुत्र भरद्वाज को को सौंपा जो भरत वंश में संक्रामित हुये। यह बात प्रसिद्ध है कि अशिज ऋषिकी पत्नि ममता जब गर्भवती हुई तब वे तपस्या में लीन रहने लगीं। एकान्त में अपने भाई की इस पत्नि को देखकर बृहस्पति बोले हे मंगले! मुझे मैथुन का दान दो। वृहस्पति के ऐसा कहने पर ममता बोली–मैं गर्भवती हूँ। गर्भ इस समय पूर्ण है। वह वेद का उच्चारण करता है। इधर तुम्हारा वीर्य भी व्यर्थ नहीं जाने का है। इस प्रकार व्यभचार से धर्म की क्षति होती है। इस पर बृहस्पति हँस

कर बोले हे सुन्दरि तुम मुझे किसी अपार की शिक्षा मत दो। मैं सब कुछ जानता हूं। ऐसा कहकर साहस पूर्वक उन्होंने ममता से मैथुन करने की चेष्टा की। रति कर्म में आनन्दित वृहस्पति से गर्भस्थ शिशु ने कहा– हे वृहस्पति जी ! इसगर्भ के प्रथम मौजूद हूँ आपका वीर्य भी व्यर्थ नहीं जा सकता। इस संमीर्ण गर्भस्थल में दो व्यक्तियों की सम्भावना नहीं की जा सकती। गर्भस्थ शिशु की बात सुनकर वृहस्पति जी बड़े भारी क्रोधित हुये। और बोले कि सभी प्राणियों को सुखमय इस अवसर पर तुम मुझे निषेध कर रहे हो। इसलिये तुम घोर अंधकार में पड़ोगे। इस प्रकार वृहस्पति के कहने पर गर्भस्थ शिशु ने माता के योनिद्वार को खोल दिया। परन्तु उस शिशु के पैरों के बीच में होकर वृहस्पति का वीर्य का ममता के उदर में पहुँच गया। वह तुरन्त ही एक शिशु का रूप धारण कर बाहर निकल आया। ममता ने उस सद्योजात पुत्र को देख कर कहा कि सुने ! मैं तो अपने स्थान को जा रही हूँ आप को इस द्वाज अर्थात् जोरज पुत्र की पालना करनी पड़ेगी। ऐसा कह कर वह ममता उसी क्षण वहां से चली गई। " भरद्वाजम्' ऐसा कहने पर अर्थात् इस जारजपुत्र की रक्षा करो के वाक्य से उसका नाम भी भरद्वाज पड़ गया ! माता पिता के द्वारा छोड़े जाने पर इस पुत्र को मरुद्गणों द्वारा दया से उठा लिया गया। और उस समय सम्राट भरत जो पुत्र की कामना से यज्ञ कर रहे थे उन्हें सौंप दिया। इससे राजा भरत बहुत ही कृतार्थ हुये। भरत की पहली सन्तानों का जन्म वितथ (निष्फल) हो गया था। इसलिये भरद्वाज को वितथ नाम से भी कहा जाता है। भरत सम्राट के द्वारा लालन पालन किये जाने पर भरद्वाज ब्राह्मणत्व से ब्रह्मत्व को प्राप्त हुये। वे द्विमुख्यापन एवं द्विपितर नाम से भी विख्यात हैं। इस प्रकार अपने उत्तराधिकारी 'वितथ' को प्राप्त करके भरत राजा स्वर्ग को पधारे।

वितथ के पुत्र राजा भुवमन्यु हुये। भुवमन्यु के चार पराक्रमशाली पुत्र हुये। जिनके नाम थे, वृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और नाग्र (गार्ग)। इनमें नर के 'सांकृति' नामक पुत्र हुये इनके दो पुत्र गुरुवीर्य और त्रिदेव

नाम के महातेजस्वी थे जो सांकृत्य कहलाते थे। गाग्र के उत्तराधिकारी गाग्रय नाम से प्रसिद्ध हुये। ये सभी क्षत्रिय धर्म समन्वित ब्राह्मण कहे जाते हैं। महावीर्य के पुत्र भीम थे। उनसे उपक्षय नामक पुत्र हुआ इनकी पुत्री नाम विशाला था। उसने त्रय्यारुणि, पुष्करी और कपि नामक तीन बेटा उत्पन्न किये। कपि के वंशज उत्तम क्षत्री हुये। अन्य दोनों के महर्षि हुये।

गाग्रय और सांकृत्य के वंशधर केवल तेजस्वी क्षत्री हुये। वे सब अंगिरस बृहस्पति के वंश में मिलगये। अब बृहत्क्षत्र का वर्णन सुनाता हूं, सुनो– राजा बृहत्क्षत्र का पुत्र परमधार्मिक सुहोत्र का उत्तराधिकारी हस्ती था। उसने प्राचीन काल में हस्तिना पुत्र को बनाया। राजा हस्ती के तीन धार्मिक पुत्र हुये उनके नाम थे अजमीढ़ द्विजामीढ़ और और पुरुमीढ़। अजमीढ़ की कुरुवंश की उद्धारक तीन पत्नियां थीं। जिनके नाम थे नीलिनी, केशिनी, और धूमिनी उन सबने वंशोद्धारक कई पुत्रों को उत्पन्न किया अजमीढ़ को वृद्धावस्था में भरद्वाज की कृपा से ये पुत्र मिले थे ऐसा कहा जाता है कि केशिनी में राजा अजमीढ़ के एक 'कण्ठ' नामक बेटा उत्पन्न हुआ कण्ठ का बेटा मेधातिथि था। उसके वंशधर काण्ठ्यापन द्विज कहे जाते थे। दूसरी पत्नि धूमिनी में बृहत्वसु का जन्म हुआ। वृहत्वसु का बेटा वृहन्तिवरणु हुआ उसका बेटा महावल था। महावल का वृहत्कर्मा, का वृहद्रथ था। उसका बेटा विश्वजित था इनका बेटा सेनजितथा। सेनजितके चार लोक विख्यात बेटा थे। उनके नाम थे रुधिराश्व, काव्य दृढ़ धनुर्धारी राम और अपन्ति देश का राजा वत्स। इसी राजा के नाम से प्रसिद्ध वत्सरों का प्रारम्भ हुआ। रुचिराश्व का बेटा यशस्वी पृथुवेण हुआ। पृथुवेण का बेटा पार था। पार से नीप का जन्म हुआ। राजा नीप के सौ बेटा थे। जो नीपगण के नाम से प्रसिद्ध थे। उननीप गणों में ही समर नामक बेटा परम यशस्वी और वंश का उद्धार करने वाला था। उसने काम्पिल्य के युद्ध में विजय प्राप्त की। इस समर के पर वार और सत्वदश्व ये तीन बेटा थे। तीनों सर्वगुण सम्पन्न थे।

इनमें पार के वृषु नामक पुत्र हुआ। वृषु के सुकृति हुआ। उसके सर्वगुण वाला विभ्राज नामक पुत्र हुआ। विभ्राज का उत्तराधिकारी अणुह नामक राजा हुआ। यह यशस्वी अणुह शुक्र जमाई और ऋची का पति था। इसका उत्तराधिकारी ब्रह्मदत्त हुआ। इसका पुत्र योगसून् हुआ तथा योगसूनू का पुत्र विष्वसेन हुआ। ये सभी राजा बड़े ही यशस्वी हुये। राजा विष्कसेनका पुत्र उदक्सेन हुआ। जिसका उत्तराधिकारी भल्लार हुआ। भल्लार का उत्तराधिकारी जनमेजय हुआ। इसी के वैर के कारण उग्रायुध ने नीप वंशियों का नाश कर दिया था।

ऋषियों ने कहा— हे सूतजी! यह उग्रायुध किसका पुत्र था! यह किस वंश में उत्पन्न हुआ था! इसने किस कारण से नीप वंशियों का नाश कर दिया!

सूतजी बोले—हे ऋषियो! द्विभीढ़का उत्तराधिकारी राजा यवीनर हुआ। जिसका पुत्र धृतिमान हुआ। धृतिमान का सत्यधृति हुआ उसका पुत्र दृढ़नेमि हुआ। दृढ़नेमि का पुत्र सुवर्मा था। यह प्रतापी राजा था वह एकछत्र सम्राट था। वह सार्वभौम नाम से प्रसिद्ध था इस सार्वभौम नामक वंश से महत्पौरवनन्दन नामक राजा हुआ। इसका पुत्र 'रूक्मरथ' नामक था। रूक्मरथ का पुत्र सुपार्श्व था। इसका धार्मिक पुत्र सुमति था। सुमति का पुत्र धर्मात्मा सन्नतिमान हुआ। उसका पुत्र सनति हुआ। सनति का पुत्र कृत हुआ। यह राजा कृत कौथुमी-शाखा के महात्मा हिरण्यनाभि का शिष्य था। यह चौबीस सामसंहिता का वक्ता था। उसकी संहिताओं की प्रसिद्ध प्राच्य नाम से कही है। इसका पुत्र उग्रायुध हुआ। यह उग्रायुध परम वीर तथा पुरुवंशियों को आनन्द करने वाला था। इसने अपने पराक्रम को प्रसिद्ध करने के लिये पांचाल देश के राजा पृषत् के पितामह नील को मार डाला। इस राजा उग्रायुध का उत्तराधिकारी राजा क्षेम हुआ। क्षेम का पुत्र सुवीर हुआ। सुवीर का पुत्र नृपंजय हुआ। नृपंजय से वीररथ उत्पन्न हुआ ये पुरुवंशी राजा कहे गये।

अजमीढ़ की नलिनी नामकी पत्नि से नील का जन्म हुआ।

नील की बड़ी भारी तपस्या के द्वारा उसका पुत्र 'सुशान्ति' पैदा हुआ। उसका पुत्र पुरुजानु हुआ। पुरुजानु का पुत्र ऋक्ष हुआ। ऋक्ष के बहुत से उत्तराधिकारी हुये। उनके नाम इस प्रकार हैं—मुद्गल, ऋजय, वृहदिषु, यवीयान और काम्पिल्य। इन पांचों पुत्रों के लिए पिता ने पांच उपजाऊ और सुन्दर जनपदों को बतलाया। ये पांच जनपद बाद में पांचाल नाम से प्रसिद्ध हुये। मुद्गल का सबसे बड़ा पुत्र ब्रह्मिष्ठ था जिसने इन्द्रसेन के संयोग से 'बध्यश्व' नामक पुत्र को पैदा किया। इसी राजा के संयोग से मेनका ने एक जुड़वां सन्तानोंको उत्पन्न किया ऐसा भी सुना जाता है। इनमें एक राजर्षि दिवोदास हुये और दूसरी यशस्विनी अहिल्या थीं। अहिल्या के शारद्वत ऋषि के संयोगसे ऋषि श्रेष्ठ शतानन्द हुये। शतानन्द के पुत्र सत्यधृति हुये। जो धनुर्वेद में पारंगत थे। एक बार एक अप्सरा को देखकर राजर्षि सत्यधृति का शुक्र सरकण्डों पर गिर गया। जिससे एक जुड़वां सन्तानें प्रकट हुईं। राजा शन्तनु वहां संयोग से मृगया को गये थे। उन्होंने उन बच्चों को दया से उठा लिया। इनका पोषण किया। इनका नाम कृपा और कृपी रखा गया। उसी कृपी का दूसरा नाम गौतमी था। शारद्वत के गौतम वंशियों का वर्णन किया गया। अब दिवोदास का की सन्तानों का वर्णन सुनिये–

दिवोदास का उत्तराधिकारी राजा मित्रयु था। उससे राजा मैत्रेय हुये। ये सभी क्षत्रिय धर्मपरायण और भार्गव गोत्रीय थे। इसी वंश में विद्वान राजा च्यवन का जन्म हुआ जिसके रथ की समानता करने वाला कोई नहीं था। च्यवन के सुदास सुदासके सहदेव सहदेव के सोमक हुए। वंश के विनाश होने के समय राजा अजमीढ़ ही सोमक के पुत्र हुये। सोमक का पुत्र जन्तु नाम वाला था। इसके अलावा उसके सौ पुत्र और हुये। जिनमें सबसे छोटा पृषत् था। यह पृषत् द्रुपद का पिता था। द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न धृष्टद्युम्न का पुत्र धृतकेतु हुआ। अजमीढ़ की तीसरी रानी के कोई सन्तान पहले तो थी नहीं, उसने कठोर तमस्या इस पुनर्जन्म में भी की सौ वर्षों तक कठोर तप, हवन और जागरण तथा पवित्र कार्य और स्वल्पाहार में निरत रही। कुशासन पर बैठकर ही सोना आदि

कार्य कर लेती थी। कठोर तप के कारण वह काली पड़ गई। उसमें राजा ने गर्भाधान किया। जिससे उसमें उसे 'ऋक्ष' नामक पुत्र की प्राप्ती हुई। यह ऋक्ष देखने में धुँये के समान काला था। इसका एक छोटा भाई 'सित' भी हुआ था। ऋक्ष से सम्बरण की पत्पत्ति हुई। सम्बरण से कुरु की उत्पत्ति हुई। इसकुरु ने नवीन तीर्थ कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था। बहुत समय तक उसने कुरुक्षेत्र को जोता था। उस समय इन्द्र ने इसे वरदान दिया कि तुम्हारा यह क्षेत्र परमरमणी और पुण्यवान और धर्मात्माओं के निवास करने योग्य होगा। इसके वंशज कुरुगण कहलाये। ये सभी यशस्वी राजा थे। कुरु के पुत्र सुधन्वा, जह्नु, परीक्षित, पुत्रक और अरिमर्दन थे। इसमें सुधन्वा के उत्तराधिकारी बुद्धिमान सुहोत्र हुये। सुहोत्र का पुत्र धर्मात्मा च्यवन हुआ इसने अनेक यज्ञ करके इन्द्र के परम मित्र विद्योपचरि नामक पुत्र को पैदा किया। विद्योपचरि से गिरिका द्वारा सात पुत्र उत्पन्न हुये। उन में एक महारथी मगध सम्राट वृहद्रथ था। इसके अलावा प्रत्यग्रह, कुश, मीणवाहन, माथैल्य, ललित्थ, और मत्स्यकाल, नाम के छः पुत्र और भी थे वृहद्रथ के कुशाग्र नाम का पुत्र पैदा हुआ। राजा कुशाग्र के ऋषभ नाम का परम बलशाली पुत्र पैदा हुआ, ऋषभ के पुण्यवान नाम का परम धार्मिक पुत्र पैदा हुआ। उस पुण्यवान राजा सत्यहित नाम का बहुत वैभवशाली पुत्र पैदा हुआ। राजा सत्यहित के सुधन्वा नाम का पुत्र पैदा हुआ, राजा सुधन्वा के ऊर्ज नाम का परम प्रतापी पुत्र पैदा हुआ, ऊर्ज के नभस नाम का पुत्र पैदा हुआ। उस राजा नभभ के दो कटे हुये शरीर के टुकड़े पैदा हुये उन टुकड़ों को जरा नामकी राक्षसी ने एक में जोड़ दिया, तब उस राजा का नाम जरासन्ध पड़ा था। जरा से जोड़ जाने के कारण उसका नाम जरासन्ध पड़ा। वह राजा जरासन्ध अपने राज्य काल के समय सबसे अधिक बलवान था। फिर राजा जरासन्ध के सहदेव नाम का परम प्रतापी पुत्र पैदा हुआ। सहदेव के सोमाधि नाम का पुत्र हुआ, सोमाधिराजा के श्रुतश्रवा नामका पुत्र पैदा हुआ अब तक मैंने आपको मगधवंश के राजाओं का वर्णन सुनाया।

सूतजी बोले—हे ऋषिगणों ! परिक्षित राजा के जनमेजय नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ । उस राजा जनमेजय के पृथ्वीपति सुरथ नाम का पुत्र पैदा हुआ । सुरथ राजा के भीमसेन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ राजा जह्नु के भी सुरथ नाम को एक पुत्र उत्पन्न हुआ । वह अपने राज्य काल में सबसे बढ़ा था । राजा सुरथ के बिदूरथ नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, विदूरथ के सार्वभौम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ । सार्वभौम राजा के जयत्सेन नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जयत्सेन के आराधि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, आराधि के महासत्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, महासत्व के अयुतायु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । अयुतायु राजा के अक्रोधन नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ, अक्रोधन से देवातिथि नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ । इसके बाद देवातिथि राजा के ऋक्ष, ऋक्ष के भीमसेन, भीमसेन के दिलीप नामका बेटा पैदा हुआ, दिलीप राजा के प्रतिप नामका पुत्र पैदा हुआ, और प्रतिप के देवापि, शन्तनु, और वाह्लीक नाम के पुत्र हुये । वाह्लीक के सप्तवाह्लीश्वर नाम के बेटा पैदा हुये । वाह्लीक के बेटा सोमदत्त नाम से प्रसिद्ध हुये । सोमदत्त के भूरिश्रवा, शल नाम के बेटा पैदा हुये । धर्मात्मा देवापि तपस्या हेतु वन को चले गये । वन में वे मुनि वेष धारण करके देवताओं के उपाध्याय हुए महात्मा देवापि के च्यवन और इष्टक नाम के बेटा पैदा हुए । शन्तनु बहुत विद्वान और बहुत बड़े वैद्य थे, आगे चलकर वही राजा हुए । राजा शन्तनु के विषय में एक श्लोक की व्याख्या है—जिस २ मनुष्य को राजा शन्तनु स्पर्श कर देते हैं वह मनुष्य पुनः युवा होजाता है । वह इसी कारण शन्तनु नाम से प्रसिद्ध हुए । उस धर्मात्मा राजा शन्तनु का विवाह जान्हवी के साथ हुआ । ऐश्वर्य शाली राजा शन्तनु के जान्हवी नाम की स्त्री से देवव्रत नाम के बेटा पैदा हुए । वही देवव्रत राजा भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए वे सभी पाण्डवों के पितामह थे । राजा शन्तनु ने अपनी दूसरी पत्नि दासेयी से विचित्रवीर्य नामके पुत्र को पैदा किया, वह परम हितैषी राजा शन्तनु को प्रिय थे । राजा विचित्रवीर्य की स्त्री के साथ कृष्णद्वैपायन ने सम्भोग करके धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को पैदा किया ।

इनमें धृतराष्ट्र ने गान्धारी के संयोग से सौपुत्रों को पैदा किया, इन सौ पुत्रों में सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन था, वह अपने समय का बहुत क्षत्रिय प्रतापी राजा था पाण्डु ने प्रथा और माद्री नाम की दो स्त्रियों से देवताओंके दिये हुये पुत्रों को पैदा किया। राजा धर्म से युधिष्ठिर हुये, वायुसे वृकोदर का जन्म हुआ, इन्द्रके अंशसे अर्जुनका जन्महुआ दोनों अश्विनी कुमारों के संयोग से नकुल और सहदेव को माद्री ने पैदा किया। इन पांचों पाण्डु के पुत्रों के संयोग से द्रोपदी ने भी पांच पुत्रों को पैदा किया। द्रोपदी ने युधिष्ठिर के संयोग से सबसे बड़े पुत्र प्रतिविन्ध्य को पैदा किया। भीमसेन ने हिड़म्बा के संयोग से घटोत्कच नाम के पुत्र को पैदा किया। भीमसेन ने अपनी दूसरी स्त्र काश्या के गर्भ से सर्वबृक नाम के पुत्र का पैदा किया था। मद्रदेश के राजा की कन्या विजया ने सुहोत्र नाम के पुत्र को पैदा किया। चेदि देश की राजपुत्री कर्मरवी ने नकुल के संयोग से नरमित्र नाम के पुत्र को जन्म दिया पार्थ के संयोग से सुभद्रा ने अभिमन्यु को पैदा किया, विराट राजा की कन्या उत्तरा ने अभिमन्यु के संयोग से राजा परीक्षित को जन्मके दया। जनमेजय नाम का पुत्र पैदा हुआ।

राजा जनमेजय ने वाजसनेय यज्ञ की स्थापना करने वाले बहुत से ब्राह्मणोंकी मर्यादा कायम की, वैशम्पायन पर यह कार्य सहन नहींहुआ, और क्रोध में भर कर बोले हे दुर्बुद्धे राजा! तुम्हारी यह मर्यादा पृथ्वी पर स्थिर न रहेगी, जब तक मैं जीवित हूं यह कार्य नहीं हो सकता। चारों तरफ से दुखी होकर राजा जनमेजय ने पौर्णमास नाम के यज्ञ का अनुष्ठान किया और उसमें ब्रह्माजी को हविदेकर प्रसन्न किया। मख में प्रजापति के निमित्तयज्ञ करने पर भी उनकी वैसी ही स्थिति रही। इस प्रकार देख कर राजा जनमेजय ने फिर दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया, और उसमें अपने व्दारा प्रतिष्ठित वाजसनेय का प्रवर्तन किया, इसमें वे तीन स्थानों पर परास्त हुये। इससे उन्हें बड़ा दुख हुआ और अन्न में ब्राह्मणों के साथ वह मृत्यु को प्राप्त हुआ। राजा जनमेजय के शतानीक नाम के पुत्र पैदा हुये।

ब्राह्मणों ने राजा जनमेजय की मृत्यु के बाद शतानीक को राज्य-पद पर नियुक्त किया। राजा शतानीक के अश्वमेधदत्त नाम का पुत्र पैदा हुआ। अश्वमेधदत्त के शत्रुओं को जीतने वाले राजा अधिसाम कृष्ण पदा हुए। हे ऋषियो! यही परमधर्मात्मा राजा समप्रति राज्य कर रहा है।

ऋषि बोले—हे सूतजी! आपने हमको भूतकालीन राजाओं के विषय में तो बतला दिया, अब आप हमको भविष्य में होने वाले राजाओं के विषय में बतलाइये। भविष्य में उत्पन्न होकर वे किस नवीन विधानों का प्रवर्तन करेंगे। उनके नाम तथा उनके शासनकाल के विषय में हमको बतलाइये। हम उस समय की प्रजाओं के सुख, दुख, दोष, युग प्रमाण, उनके धर्म अर्थ काम सम्बन्धी विचारों को सुनने के इच्छुक हैं। ऋषियों के इस प्रकार कहने पर श्रेष्ठ सूतजी ने जैसा कुछ सुना था वैसा ही बतलाया।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! इस कर्म शील व्यासजी ने इसके विषय में जो कुछ मुझे बतलाया है, उसे मैं आपको बतलारहा हूँ। आगे भविष्य में जिस प्रकार कलियुग आयेगा, जितने मन्वन्तर होंगे, तथा जितने राजा पैदा होंगे, मैं उन सबके विषय में बतलारहा हूँ। राजा अधिसामकृष्ण के पुत्र निवक्त्र होंगे। गंगा द्वारा हस्तिनापुर के डूब जाने पर वह उसे छोड़ कर कौशम्बी नाम के नगर को बसायेगा और वहीं पर निवास करेगा। राजा निर्वक्त्र के उष्ण नाम का पुत्र पैदा होगा। उष्ण के चित्ररथ नाम का पुत्र पैदा होगा. चित्ररथ राजा के शुचिद्रथ नाम का पुत्र पैदा होगा। शुचिद्रथ से सुषेण नाम के महा-बलशाली पुत्र पैदा होंगे। सुषेण के सुतीर्थ नाम के पुत्र पैदा होंगे, सुतीर्थ के रुच नाम का पुत्र प्राप्त होगा, रुच के त्रिचक्ष नाम का पुत्र पैदा होगा, त्रिचक्ष के सुखीबल नाम का पुत्र पैदा होगा, सुखीबल के परिप्लुत नाम का राजा होगा, परिप्लुत के सुनय नामका राजा पैदा होगा। सुनय के मेधावी नामक पुत्र प्राप्त होगा, मेधावी के दण्डपाणि नाम के पुत्र पैदा होंगे। दण्डपाणि के निरामित्र नामका पुत्र प्राप्त

होगा, निरामित्र राजा के क्षेमक नाम का पुत्र पैदा होगा, क्षेमक के इत्यादि पच्चीस राजा इस पौरववंश में पैदा होंगे। प्राचीन कथाओं के जानने वाले विद्वान इस वंश के विषय में एक श्लोक लिखते हैं जिसकी व्याख्या इस प्रकार है–जिस वंश में ब्रह्मण और क्षत्रिय वंश के मनुष्य पैदा होते हैं तथा जिस वंश के देवता और ऋषि आदर करते थे, वह पौरववंश कलियुग में क्षेमक राजा के बाद समाप्त होजायगा। मैंने आप लोगों को पौरववंश का वर्णन सुनाया है। अबमैं इक्ष्वाकु वंशके राजाओं का वर्णन करूँगा। इस वंश के राजा बृहद्रथ के बृहत्क्षय नाम का पुत्र पैदा होगा, बृहत्क्षय के क्षय नामका पुत्र उत्पन्न होगा, क्षय के वत्सव्यूह नाम का पुत्र होगा, वत्सव्यूह के प्रतिव्यूह नामका पुत्र उत्पन्न होगा, प्रतिव्यूह के दिवाकर नामका पुत्र होगा, यह राजा दिवाकर अयोध्यानगरी का राजा होगा। दिवाकर के सहदेव नाम का राजा होगा, सहदेव के बृहदश्व नाम का पुत्र होगा, बृहदश्व के भानुरथ नाम का पुत्र होगा, भानुरथ के प्रतीताश्व नाम का पुत्र होगा, प्रतीताश्व के सुप्रतीत नामका पुत्र होगा, सुप्रतीत के सहदेव नामक पुत्र होगा, सहदेव के सुनक्षत्र नामक पुत्र होगा, सुनक्षत्र के परम तपस्वी किन्नर नाम का पुत्र पैदा होगा, किन्नर के अन्तरिक्ष नामक परम प्रतापीराजा होगा, वह अपने समय का महान राजा होगा। अन्तरिक्ष के सुपर्ण नाम का पुत्र होगा, सुपर्ण के अमित्रजित नाम का पुत्र होगा। अमित्रजित् के भरद्वाज के धर्मी नामका बेटा होगा, धर्मी के कृतञ्जय नामका बेटा होगा। कृतञ्जय के व्रात नामका बेटा होगा, व्रात के रणञ्जय नामक बेटा होगा, रणञ्जय के सञ्जय नामका परम वीर राजा होगा। सञ्जय के शाक्य और शाक्य के शुद्धोदन नामका बेटा होगा, शाक्यवंश में शुद्धोदन के राहुल नामका बेटा होगा, राहुल के प्रसेनजित नामका राजा होगा, प्रसेनजित के क्षुद्र नामका राजा होगा, क्षुद्रक के क्षुलिक नामका राजा होगा, और क्षुलिक के सुरथ नामका बेटा होगा सुरथ के सुमित्र नामका बेटा होगा, वही इस वंश का अन्तिम राजा होगा। कलियुग में इक्ष्वाकुवंश के ये इतने ही राजा होंगे। बृहद्बल के वंश में कलियुग में इतने ही

राजा होंगे ये सभी शूरवीर, धर्मात्मा और जितेन्द्रिय होंगे। इस इक्ष्वाकु वंश के विषय में विद्वानों ने एक श्लोक लिखा है–इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की परम्परा राजा सुमित्र तक ही चलेगी, कलियुग में सुमित्र राजा के बाद यह वंश समाप्त होजायगा। मैंने आपको मनु बेटा राजा इलाके वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं का वर्णन सुना दिया है अब मैं मगधदेश के वृहद्रथ राजा के वंश में उत्पन्न होने वाले राजाओं के विषय में बताऊँगा। उस विख्यात महाभारत में राजा सहदेव मृत्यु को प्राप्त हुए, उनके बाद उनका लड़का सोमाधि गिरिब्रज का राजा था, उसने अट्ठावन वर्ष तक राज्य किया। उसके बेटा श्रुतिश्रवा ने चौंसठ वर्ष तक राज्य किया, इसके बेटा अयुतायु ने छब्बीस वर्ष तक राज्य किया, इस के बाद अयुतायु के बेटा निरामित्र ने सौ वर्ष तक राज्य किया। इस समय उस वंश में सेनाजित राजा राज्य कर रहा है। सुकृत ने छप्पन वर्ष तक राज्य किया, वृहत्कर्मा ने तेइस वर्ष तक पृथ्वी पर राज्य किया। सेनाजित के बेटा श्रुतञ्जय ने चालीस वर्ष तक राज्य किया महाबल नामके महान प्रतापी राजा ने अट्ठावन वर्ष तक राज्य किया। शुचि नाम के राजा ने पैंतीस वर्ष तक राज्य किया, क्षेम नाम के राजा ने अट्ठावन वर्ष तक राज्य किया, भुवत नाम के महान बलशाली राजा ने चौंसठ वर्ष तक राज्य किया। धर्म क्षेत्र राजा ने पाँच वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद नृपति राजा अट्ठावन वर्ष तक राज्य करेगा, राजा सुव्रत अड़तीस वर्ष तक राज्य करेगा। इसके बेटा राजा दृढ़सेन ने अट्ठावन वर्ष तक राज्य किया इसके बाद राजा सुमति ने तेतीस वर्ष तक राज्य किया, सिचुल नाम के राजा ने बाइस वर्ष तक राज्य किया, इसके बाद राजा सुनेत्र ने चालीस वर्ष तक राज्य किया, सत्यजित् राजा ने तिरासी वर्ष तक राज्य किया। इसके बाद वीरजित राजा ने तेतीस वर्ष तक राज्य किया। इनके बाद अरिंजय नाम के राजा ने पचास वर्षों तक राज्य किया वृहद्रथ के बाद ये बाईस राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे। इन सबका शासनकाल एक हजार वर्ष तक रहेगा। बृहद्रथ वंश के राजाओं के राज्यकाल के बाद वितिहोत्र वंश के राजाओं का राज्य

इस के विसाखयूप नाम का राजा पचास वर्ष तक राज्य करेगा, अजक नाम का राजा इकतीस वर्ष तक राज्य करेगा, इसका पुत्र वीर्तवर्धन बीस वर्ष तक राज्य करेगा, प्रद्योत के ऊपरी पाच वंश के राजा इस तरह एक सौ अड़तीस वर्षों तक राज्य करेंगे। इसके बाद उन सब को नष्ट करके शिशुनाक राजा गिरिव्रज का राजा होगा, इसका पुत्र वाराणसी में राज्य करेगा, शिशुनाक राजा चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र शकवर्ण छत्तीस वर्ष तक राज्य करेगा, उसके बाद क्षेमवर्मा बीसवर्ष तक राज्य करेगा, फिर अजातशत्रु पच्चीस वर्षों तक राज्य करेगा। इसके बाद क्षत्रोजा राजा चालीस वर्ष तक राज्य करेगा राजा विविसार अट्ठाईस वर्ष तक राज्य करेगा। दर्शक नामका राजा पच्चीस वर्ष तक राज्य करेगा। इसके बाद उदायी नामका राजा तेतीस वर्ष तक राज्य करेगा, राजा उदायी पृथ्वी पर कुसुम नाम से प्रसिद्ध होगा। इसके बाद निदिवर्धन नाम का राजा बयालीस वर्ष तक राज्य करेगा, फिर महानन्दी राजा तैंतालीस वर्ष तक राज्य करेगा, ये ऊपरी दस राजा शिशुनाक के वंश में उत्पन्न होंगे। ये सब तीन सौ बासठ वर्ष तक राज्य करेंगे। इन शिशुनाक के वंशमें राजाओं के राज्यकाल में अन्यय क्षत्रिय जाति के राजा भी होंगे। जिनमें रक्षाकुवंश के चौबीस, पंचालवंश के पच्चीस, कालकवंश के चौबीस, हैहय वंश के चौबीस, कीलंगदेशीय बत्तीस, शकवंश के पच्चीस, कुरुदेशीय छत्तीस, मिथिला देश के अठ्ठाईस शूरसेन के तेंइस, वीतिहोत्र के, बीस बताये जाते हैं। इन सब का शासन काल एक ही समयमें होगा। सभी क्षत्रियवंश के राजाओं के बाद महापद्म से शूद्रयोनि में उत्पन्न कन्था से महापद्म नामका एक पुत्र पैदा होगा। उसी के राज्य काल में सभी लोग शूद्रयोनि में उत्पन्न होंगे, वह महापद्म अपने समय का एकच्छत्र राजा होगा, वह राजा अठ्ठाईस वर्ष तक राज्य। करेगा वह महापदम समस्त क्षत्रिय राजाओं के गर्व को दूर करेगा, उसके एक हजार पुत्र पैदा होंगे, इन एक हजार पुत्रों में बारह पुत्र राजा होंगे, वे सब आठवों तक राज्य करेंगे। महापद्म के बाद वे क्रम से सब राज्य करेंगे।

उन सब राजाओं को कौटिल्य नष्ट कर देंगे। इस वंश का अन्तिम राजा सौ वर्षों तक राज्य करेगा। कौटिल्य उसको हटा कर चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठायेंगे। चन्द्रगुप्त चौबीस वर्षों तक राज्य करेंगे। उसके बाद भद्रसार पच्चीस वर्ष तक राज्य करेगा। फिर इसके बाद अशोक नाम का राजा छत्तीस वर्षों तक राज्य करेंगे। उसका पुत्र कुशाल आठ वर्ष तक राज्य करेगा। कुशाल का पुत्र वन्धुपालित आठ वर्ष तक राज्य करेगा। बन्धुपालित के पुत्र दस वर्ष तक राज्य करेगा, देववर्मा सात वर्ष तक राज्य करेगा, उसका पुत्र शतधर आठ वर्ष तक राज्य करेगा, वृहदश्व राजा सात वर्ष तक राज्य करेगा, ये नंद वंश के नौ राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे। सब एक सो सैंतीस वर्ष तक राज्य करेंगे इन नन्दवंश के शुंग वंश राज्य करेगा, नन्द वंश का अन्तिम राजा वृहदश्व का सेनापति पुष्पमित्र उसको मार कर स्वयं आठ वर्षों तक राज्य करेगा। पुष्पमित्र के आठ पुत्र होंगे वे सब राजा होंगे, इनमें इन सबसे बड़ा पुत्र सात वर्ष तक राज्य करेगा। फिर वसुमित्र नाम का पुत्र दस वर्ष तक राज्य करेगा, फिर अन्ध्रक नाम के पुत्र दो वर्ष के लिये राज्य करेंगे। पुलिन्दक राजा तीन वर्ष तक राज्य करेगा, घोष-सुत नाम का राजा तीन वर्ष तक राज्य करेगा। राजा विक्रमित्र तीन वर्ष तक राज्य करेंगे। भगवत नाम के राजा बत्तीसवर्ष तक राज्य करेंगे इसके बाद उनके क्षेमभूमि नाम के पुत्र दस वर्ष तक राज्य करेंगे। ये शुंग वंश के दस राजा पृथ्वी पर एक सौ बारह वर्ष तक राज्य करेंगे। इसके बाद फिर बचपन से ही व्यसन में निरत रहने वाले राजा सुदेव राज्य करेंगे। इस वंश में देवभूमि नाम का एक राजा और भी होगा, वह कण्ठायन नाम से नौ वर्षों तक राज्य करेगा, इसके बाद उनके पुत्र भूतिमित्र चौबीस वर्षों तक राज्य करेंगे। इनके बाद राजा नारायण बारह वर्ष तक राज्य करेंगे। फिर इनके बाद इनका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राज्य करेगा। हे ब्राह्मणो! इस प्रकार कठोर कर्म करने वाले ये ऊपरी राजा कण्डायन नाम से प्रसिद्ध हुये। इनका शासन काल पैंतालीस वर्षों का होगा। अब मैं इनके बाद आंन्ध्रवंश के राजाओं का

करूँगा वर्णन अन्ध्रजातिमें सिन्धुक नामका एक राजाऔर राज्य करेगा। यहराजा सिन्धुकतेईस वर्षोंतक राज्यकरेगा। इसके बादभात नामका राजा अठारह वर्षों तक राज्य करेगा, उसके बाद उसका पुत्र शातकर्णि नाम का राजा अपादवद्ध होगा, वह, दस, चौबीस और छः वर्षों तक राज्य करेगा। इसके नेमिकृष्ण राजा पच्चीस वर्ष तक राज्य करेगा, इसके बाद हाल नाम का राजा सिर्फ एक साल राज्य करेगा, इस वंश में पांच,सात राजा महाबलवान होंगे। हाल के बाद पुत्रिकषेण नाम का राजा इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा। इसके बाद सातकर्णि नाम का राजा एक वर्ष छः महीने तक राज्य करेगा। इसके बाद शिवस्वामी नाम का एक राजा अट्ठाईस वर्ष तक राज्य करेगा। इसके बाद गौतमी पुत्र इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा, साकपर्णिराजा के वंश में यज्ञश्री नामका राजा उत्पन्न होकर उन्नीस वर्ष तक राज्य करेगा। इसके बाद विजय नाम का राजा छः वर्ष तक राज्य करेगा, इसके बाद सातकर्णिदण्डश्री तीन वर्ष तक राज्य करेगा। फिर पुलोवा नाम का राजा सात वर्ष तक राज्य करेगा। इन राजाओं के अलावा और भी राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे। अन्ध्रवंश के तेईस राजा पृथ्वी पर राज्य करेंगे। ये सब मिला कर चार सौ ग्यारह वर्ष तक राज्य करेंगे। ये अन्ध्रवंश के राजा पांच भागों में बँट जायेंगे। इसके बाद सत्रह आभीर वंश के राजा राज्य करेंगे। फिर सात गर्दभिन वंश के और दस शंख वंश के राजा राज्य करेंगे। इनके बाद आठ यवन, चौदह तुषार वंश के तेरह मनष्ट वंश के और अट्ठारह मौन वंश में उत्पन्न होने वाले राजा राज्य करेंगे। आन्ध्रवंश के राजा तीन सौ वर्ष तक राज्य करेंगे। शंकवंश के राजा तीन सौ अस्सी वर्ष तक राज्य करेंगे। यवन वंश के राजा अस्सी वर्ष तक राज्य करेंगे। तुषार वंश के राजा पांच सौ वर्षों तक राज्य करेंगेम। मरुण्डवंश के तेरह राजा अन्य शूद्रजाति राजाओं के साथ चार सौ पचास वर्ष तक राज्य करेंगे। अनेक म्लेच्छ जातियां भी उस समय होंगी। उनमें से ग्यारह म्लेच्छ वंश के राजा तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। इन राजाओं के बाद कोलिकिलों नाम की शूद्र

जाति के राजा राज्य करेंगे। इन राजाओं में विन्ध्य शक्ति नाम का राजा छियानवें वर्ष तक राज्ज करेगा। इनके बाद शूद्रजातिके राजाओं का हाल सुनिये। शेषनाग का पुत्र राजा भोगी नामकुल में सर्वश्रेष्ठ राजा होगा, यही सबसे पहला विदेशी राजा राज्य करेगा। इसके बाद सदाचन्द्र नाम के राजा चन्द्रवंशभूत नखवान् धनधर्मा विंशज् और भूतिनन्द नाम के राजा विदेश में राज्य करेंगे। अंग वंश के राजा नन्द के बाद मधुनन्दि ने राज्य किया, मधुनन्दि के छोटे भाई नन्दियशा ने राज्य किया उसके वंश में तीन राजाओं ने राज्य किया, दौहित्र, शिशुक, और परम बलशाली प्रवीर ने राज्य किया था। इन में प्रवीर राजा विन्ध्यशक्ति का पुत्र होगा, राजा शिशुक पुरी में अन्य दोनों राजा काञ्चनपुरी में राज्य करेंगे। ये तीनों राजा प्रचुर दक्षिणा देकर वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे। इसके बाद प्रवीर के चार पुत्र राज्य करेंगे। विन्ध्यक वश के राजाओं के नष्ट हो जाने पर सुप्रतीक नभीर, इत्यादि तीन बाह्लीक राजा तीस वर्ष तक राज्य करेंगे। महिषीवंश में शक्यमा नाम का राजा राज्य करेगा। इसके बाद पुष्पमित्र और मित्र नाम के राजा तेरह वर्ष तक राज्य करेंगे। मेकला में सात प्रसिद्ध राजा राज्य करेंगे। कुध बलशाली राजा कोमला में राज्य करेंगे। इसके बाद मेघ नाम के परम बुद्धिमान राजा मन्वन्तर के क्षय होने तक राज्य करेंगे। ये नल वंश में उत्पन्न होंगे। इसके बाद मगधदेश का विश्वस्फानि नाम का राजा राज्य करेगा। उस समय के राजाओं को नष्ट करके अन्याय जाति वालों को राज्य प्रदान करेगा। इनमें कवर्त पञ्चक, पुलिन्द और ब्राह्मणों के नाम से प्रसिद्ध हैं। महान बलशाली विश्वस्फानि विभिन्न देशों में इन जाति वालों का राज्य स्थापति करेगा। राजा विश्वस्फानि नपुसंक की समान आकृति वाला होगा। विश्वस्फानि राजा अपने जीवन में एक बार देवता ब्राह्मणो पितरों को सन्तुष्ट करके गंगा के किनारे प्राण त्याग देगा। वह मरने के बाद इन्द्र लोक को प्राप्त होगा। उसके बाद चम्पापुरी में नव नाग वंश के राजा राज्य करेंगे। मथुरापुरी में सात नाग वंश के राजा

निषध, यदुक, शैशीत, कोलतोपद, इत्यादि स्थानों में मणिधान्यवंश के राजा राज्य करेंगे। कनक नाम का राजा सौराष्ट्र भद्रयक स्थानों का राजा होगा। ये सब राजा भी उसी एक समय में इन सब स्थानों में राज्य करेंगे। इनके बाद झूठ बोलने वाले, क्रोधी, अधर्म कर्म करने वाले यवनों का राज्य होगा। वे राजा यवन युगदोष के कारण परम दुराचारी होंगे। कलि के अन्त में स्त्री और बच्चों का वध करने वाले ये राजागण आपस में मारकाट करके पृथ्वी पर राज्य करेंगे। ये दुराचारी राजा कहीं पर तो अधिक संख्या में होंगे, और कहीं पर बहुत बढ़कर मृत्यु को प्राप्त होंगे। पृथ्वी पर कालक्रम से ऐसे दुराचारी राजाओं का राज्य होगा। वे धर्म अर्थ और काम से सर्वदा विहीन रहेंगे। ऐसे राजा उलट फेर करके मृत्यु को प्राप्त होंगे। कालक्रम से नाश होजाने पर उनके स्त्रियों की संख्या अधिक बढ़ जायगी। मनुष्य आयु, सौन्दय बल और शास्त्रज्ञान में धीरे धीरे न्यून होते जायेंगे। इस तरह नष्ट होते होते प्रजा जब अन्तिम नष्ट की सीमा पर आजायगी, तो वे दुराचारी राजा काल कर्म से मृत्यु को प्राप्त होंगे।

इस प्रकार जब कलियुग सन्ध्यामात्र शेष रह जायगा, तो राजा शब्द ही नष्ट होजायगा। धर्म के नष्ट होजाने पर साधनहीन आपत्ति की मारी, शोक और व्याध के कारण चिन्ता से पूर्ण अनावृष्टि तथा आपसी लड़ाई झगड़े सर्व दुखी प्रजा असहाय होजायगी। वे सब तरफ से दुखी होकर जीविका विहीन होजायगी। वे नगर और पुर ग्रामों को छोड़ कर वन में रहने लगेंगी। इस तरह राजाओं के नष्ट होजाने के बाद प्रजा अपने घर ग्राम छोड़कर भाग जायगी। आपसी प्रेमभाव दूर होजायगा। वे संकटवर्ण होजायगी, वर्णाश्रम धर्म का भी लोप हो जायगा। वे पर्वतों की गुफा और गंगा के एकान्त किनारे पर निवास करेंगीं। सभी प्रजा घर छोड़कर सर्दियों के तट तथा पर्वत की गुफाओं एवं जल वाले प्रान्तों में भाग जायेंगी। मानव जाति अपने प्रिय देशों को छोड़कर अङ्ग, कलिंग, वंग काशमीर, काशी, कोशल ऋषिक गिरि द्रोणी आदि प्रान्तो में आश्रय बनायेंगे। आर्य लोग मलेच्छों के साथ

हिमालय की भूमि, क्षार समुद्र के तटवर्ती भागों, भीषण जंगलों में मृगों, मछलियों, पक्षियों और हिंसक जन्तुओं के साथ साथ मधु, शाप, मूल फल आदि खा खाकर जीवन यापन करेंगे। वे मुनियों की तरह वल्कलों मृगचर्मों एवं पत्तों के चीर अपने हाथों से बना बनाकर धारण करेंगे। निम्न प्रान्तों में अन्न ढूंढ़ते ढूंढ़ते काष्ट और शंकुओं को खाकर जीवन बितायेंगे। बकरी भेड़ गधे ऊँट पालेंगे। जल के लिये नदियों के किनारे रहेंगे। राजाओं में विषमता के बीज बोयेंगे। किन्हीं किन्हीं को सन्तानें अधिक और किन्हीं को एकदम कम होंगी। पवित्रता और आचार एकदम नष्ट हो जायगे। लोग अधर्म मय कार्यों को अधिक करेंगे। तेईस वर्ष से अधिक किसी की भी आयु न होगी। दुर्बलता, विषयलोलुपता, वृद्धता से दबे लोग जीविका के लिये घूम रहे थे। कलियुग के अन्त में लोग अनेक आपत्तियों में घिरे रहेंगे। एक हजार वर्ष वाले उस कलियुग के बीतने पर सारी प्रजा अधिकांश में नष्ट हो जायगी। इस प्रकार संध्या सहित कलियुग के बीतने पर कृतयुग प्रारम्भ होने लगेगा।

जिस समय चन्द्रमा, सूर्य, पुष्य और गुरु एक ही राशी पर आ जायेंगे तब कृतयुग का प्रारम्भ होगा। राजा परीक्षित के जन्म से लेकर महापद्म के अभिषेक तक का समय एक हजार वर्ष का मानना चाहिये। पुराणों के जानकार वेदज्ञ ऋषियों ने महापद्म के शासनकाल से आंध्रों के अन्त तक का काल आठसौ उन्तीस वर्ष का बतलाया है। सप्तर्षि एक नक्षत्र में सौ वर्षों तक रहते हैं। इस प्रकार वे २७ नक्षत्रों में सत्ताईस सौ वर्ष तक रहते हैं। दिव्य साठ वर्षों तथा सात दिनों का सप्तर्षियों का एक सौ वर्ष माना गया है। हमारे मत से सप्तर्षिगण राजा परीक्षित के राजत्वकाल में मघा नक्षत्र में स्थित होंगे तथा आन्ध्र वंशीय राजा की समाप्ति पर वे चौबीसवें नक्षत्र यानी शतभिषा में स्थित होंगे। उस समय प्रजा भारी आपत्ति में फँसी होगी। भूख से दुखी लोग जीविका के लिये घूमेंगे। ब्राह्मण लोग शूद्रों की उपासना करेंगे। जिस दिन से भगवान कृष्ण स्वर्गवासी

होंगे उसी दिन से कलियुग का प्रारम्भ मानना चाहिये कलियुग की अवधि सुनिये। मानव मान से कलियुग तीन लाख साठ हजार वर्षों का कहा है। उसका संध्याश देवमान से एक हजार वर्ष का कहा है।

हमने सूर्य के कीर्तिशाली वंशों का वर्णन किया। प्रत्येक युग में सहस्रों पराक्रमशाली राजा होगये हैं। उनकी संख्या परिमाण प्रत्येक के कुल के अनुसार मैंने कही है। इस वैवस्वत मन्वन्तर में निमि वंश की समाप्ति हो जाती है। इस युग में जिस प्रकार इन क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी उसका वर्णन किया जाता है। सो सुनो—

पौरव वंश में देवादि नाम का राजा महान योगाभ्यासी होगा जो कलाप नामक ग्राम में निवास करेगा। इसी प्रकार इक्ष्वाकु वंश के सोम पुत्र सवर्चा नाम के राजा होंगे। चौबीसवें युग में दो परमवीर राजा धर्म का प्रवर्तन करने वाले होंगे। बीसवें युग में आदिम राजा चन्द्र वंश का कोई नहीं होगा। राजा देवापि बिना किसी बैर भावना के ऐल वंश का प्रथम राजा होगा। चारों युगों के लिये दो राजा क्षत्रिय धर्म के प्रवर्तक होंगे। इसी प्रकार त्रेता युग के प्रारम्भ में ये पुनः जन्म धारण करेंगे द्वापरांश में न तो क्षत्री रहेंगे और न ऋषिगण रहेंगे। सतयुग और त्रेता युग के क्षीण होने पर वे ऋषि तथा राजर्षि क्षत्रिय राजाओं के साथ स्थित रहेंगे। क्षत्रिय वंश का मूलतः विध्वंस ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध स्थापन सातों मन्वन्तरों में उत्पन्न होने वाली प्रजायें, युगों की परम्परा, ब्राह्मण एवं क्षत्रियों की उत्पत्ति, उनके कुलों का विस्तार फिर विनाश तथा दीर्घायु प्रगति, प्रजाओं की प्रवृत्ति आदि जो होती है उसे सप्तर्षिगण जानते हैं। इस क्रम के अनुसार ऐल तथा इक्ष्वांकु वंशीय द्विजातियां त्रेता में उत्पन्न होकर कलियुग के विनाश तक के युग का अनुवर्तन तब तक करती हैं जब तक मन्वन्तर का अन्त नहीं होता।

परशुराम के द्वारा क्षत्रियों के संहार करने के बाद चन्द्र एवं सूर्य वंश पुनः उत्पन्न हुये। उनका वर्णन इस प्रकार है—ऐल एवं इक्ष्वांकु वंश ऐसे थे जिनमें प्रसिद्ध सौ राजा हुये। भोज वंशीय राजाओं

के कुलों की संख्या द्विगुणी कही जाती है। इनमें ऐसे क्षत्रिय राजा हुये जिनकी संख्या तीनसौ के लगभग है। प्रतिबन्धियों की संख्या एक सौ, नागों की संख्या एक सौ, हयों की संख्या एक सौ. धृतराष्ट्रों की संख्या एक सौ, जनमेजय की संख्या अस्सी, ब्रह्म दत्तों की एक सौ, शीरी व कीरी की सख्या एक सौ, पैलों की संख्या एक सौ, श्वेतकुश, काशों की संख्या एक सौ की है। शत विन्दु नामक एक सौ राजा हो चुके हैं। ये सभी राजा करोड़ों की संख्या में दक्षिणा दान करने वाले अनेक अश्वमेध यज्ञों को कर चुके हैं। वैवस्वमनु की सन्तान बहुत बड़ी संख्या में हुई इनका विवरण सौ वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता। इस अट्ठाईसवें युग (वैवस्वत) की शेष सन्तानों को सुनिये–भविष्यमें इसी युगमें चालीस राजा और राज्य करेंगे। इसके बाद इस युग का अवसान हो जायगा। सम्राट ययाति के पुत्रों से होने वाले पच्चीस राज वंशों का तथा उनके देशों का वर्णन मैं कर ही चुका हूं। वे सभी बड़े प्रेम से समस्त लोकों के पालक थे। इस वृतान्त को पढ़ने सुनने से दीर्घायु, यश, कीर्ति, धन पुत्रों की प्राप्ति स्वर्ग में अनन्त काल तक निवास इन पांच वरदानों की प्राप्त होती है।

[इति श्री वायु महा पुराण का तुर्वसु वंश वर्णन नामक निन्यानवे वां अध्याय समाप्त तथा तृतीय पाद समाप्त]

अथ उपसंहार पाद प्रारम्भ

सौवां अध्याय

[मन्वन्तरों का वर्णन]

मुनियों ने सूतजी के द्वारा तृतीय पाद सुनकर चौथे पाद को सुनने की अपनी इच्छा प्रकट की।

ऋषि बोले—हे सूतजी ! आपने हमको अनुषंग नामक तृतीय पाद का वर्णन सुनाया है, अब आप हमको चतुर्थ उपसंहार नामक पाद के विषय में सुनाइये, बीते हुये मन्वन्तर के अलावा जो और मन्वन्तर हैं तथा इस वर्तमान मन्वन्तर में जो सप्तऋषि हैं उन सबके विषय में बतलाइये। महात्मा मनु की इस सृष्टि का विस्तार किस प्रकार होता है। इन सब बातों का वर्णन कीजिये।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! मैं आप को इन सब बातों के विषय में बतलाऊँगा । हे विप्रो ! सम्प्रति वर्तमान वैवस्वत मनु तथा भविष्य कालीन सावर्ण मनु का वर्णन कर रहा हूं । भावी मन्वन्तर में जो मुनि होंगे, वे हैं कुशिकनन्दन, गालव, जमदग्नि पुत्र भार्गव, वसिष्ठ गोत्रीय द्वैपायन, शारद्वत वंश में उत्पन्न कृप, अत्रिवंश के दीप्तिमान कश्यप गोत्रीय ऋष्यशृंग, भरद्वाज के गोत्र के द्रोणपुत्र अश्वत्थामा । ये सभी मुनि भावी मन्वन्तर में परम ऋषि के नाम से प्रसिद्ध होंगे । सुतपा, अमिताप, और सुख ये तीन भावी मन्वन्तर देवताओं के मुख्य-गण होंगे । इनमें एक मन्वन्तर में बीस देवता प्रतिष्ठत होंगे, उन सब देवों के इस प्रकार नाम हैं–रित, तप, शुक्रद्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, भासकृत, धर्म, तेज, रश्मि, ऋतु, विराट, अर्विपमान, द्योतन, भानु, यश, कीर्ति, बुध, धृति इत्यादि वीस देवगण सुतपा नामक गण में सम्मलित हैं । प्रभु, विभु, विभास, जेन्ता, हन्ता, अरिहा, रितु, सुमति, प्रमृति, दीप्ति नाम के गण में मिले हुये हैं । मह, महान, देह मुनि, नय, ज्येष्ठ, सम, सत्य, और विश्रुत ये बीस देवगण अभिताप नाम से हैं । दम, दाता, विद, सोम, वित्त, वैद्य, यम, निधि, होम हव्य हुत दान देय दाता तप शम ध्रुव स्थान विधान और नियम ये बीस सावर्णि मन्वन्तर की पहली स्थिति में मुख्य देवगण प्रसिद्ध हैं । ये सभी देवता कश्यप जी के पुत्र माने जाते हैं । इस मन्वन्तर के बाद सावर्णि मन्वन्तर में इन सब देवताओं के स्थान प्रतिष्ठित होंगे । सावर्णि मन्वन्तर में विरोचन के पुत्र वलि इन देवताओं का स्वामी इन्द्र होगा । सावर्णि मनु के नौ पुत्र होंगे । उनके नाम इस प्रकार हैं । वीरवान् अवनीयान निर्मोहसत्यवाक् कृती चरिष्णु अज्य विष्णुवाच सुमति नाम के प्रसिद्ध हैं इनके अलावा दूसरे सावर्णि मन्वन्तर के नौ मनुपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध होंगे । भविष्य में ब्रह्माजी के और भी पुत्र सावर्णि मनु में उत्पन्न होंगे । विद्वान मनुष्य उन सब को मेह सावर्णि नाम से देखते हैं । ये सभी मनुगण दक्ष प्रजापति के नाती और उन की प्यारी पुत्री के पुत्र हैं ।

वे परम तेजस्वी देवगण सुमेरु पर्वत पर निवास करेंगे। वे महर्लोक के रहने वाले हैं, वहाँ से आकर सुमेउ पर्वत के निचले भाग में रहने आते हैं। ये महात्मा चाक्षुष मन्वन्तर में पैदा हुए थे।

ऋषियों ने कहा—हे सूतजी! राजा दक्ष की कन्या से पुत्रों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई और ये सब शङ्कर, ब्रह्मा, और धर्म आदि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई।

सूतजी बोले—हे ऋषिगणों! मैं प्रचेता को नमस्कार करता हूँ और आप को इन सबकी उत्पत्ति के विषय में बताऊँगा। चाक्षुष मन्वन्तर के कुछ शेष रह जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर शुरू होता है, उसी समय भविष्यकाल के मनुगणों की उत्पत्ति होती है। उनमें पांच सावर्णि मनुगण दक्ष के नाती हैं, चार मनुगण परम ऋषियों से पैदा हुये और एक सार्वण मनु विवस्वान् के संयोग से छाया संज्ञा के पुत्र हैं संज्ञा के सबसे पड़े पुत्र वैवस्वत मनु इन सावर्णि मनु से बड़े हैं। वैवस्वत् के आने पर इन दोनों मनुओं की देवी उत्पत्ति होगी। इन परम यशस्वी मनुगण चौदह माने जाते हैं। वेद, श्रुति पुराण इत्यादि में सभी जगह ये मनुगण परम प्रभावशाली सभी जीवों के अधीश्वर के रूप में माने जाते हैं। इन्हीं राजा मनुगणों में सातों द्वीपों और पर्वत, समस्त पृथ्वी हजारों युग तक स्थिति रहती है। मैं उन मन्वन्तरों में होने वाली प्रजा, तपस्या और सृष्टि विस्तार का वर्णन करूँगा। चौदह स्वायम्भू मनु की सृष्टि को जानना चाहिये।

दक्ष प्रजापति की सुव्रता नाम की कन्या थी, वह परम धार्मिक और यशस्विनी थी वह और कन्याओं से छोटी होने के कारण भी सभी गुणों में श्रेष्ठ और धर्म परायण थी। दक्ष प्रजापति अपनी कन्याओं को साथ लेकर एक बार ब्रह्माजी के पास गये। उस समय प्रजापति ब्रह्माजी धर्म और भव के साथ वराज नाम के लोक में विद्यमान थे। ब्रह्माजी ने दक्ष को भव और धर्म के साथ खड़े देखकर बोले हे सदव्रत धारण करने वाले दक्ष! तुम्हारी इस कन्या से चार पुत्र उत्पन्न होंगे।

वे चारों भावी काल में चारों वर्षों के संस्थापक मनु के रूप में प्रसिद्ध होंगे। ब्रह्माजी को इस प्रकार की बात को सुनकर धर्म और भव ने उस कन्या के साथ समागम किया। सत्य का ध्यान करने वाले इन धर्मात्मा तपस्वियों के मानसिक संकल्प के कारण उस कन्या ने चार सुन्दर पुत्रों को पैदा किया। वे सद्योजात कुमार सभी कार्यों को पूर्ण करने वाले विविध भोगों के उपभोगों में सामर्थ्यवान हैं। इन चारों कुमार पुत्रों को देखकर समस्त ब्रह्मवेत्ता देवताओं ने कहा कि यह हमारे पुत्र हैं इस प्रकार बातें कह कर आपस में देवताओं में छीना झपटी होने लगी। वे चारों पुत्र उन चारों महान प्रभावशाली देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए थे, उन सबने आपस में यह सलाह की कि जो इन सबमें जिसके शरीर के समान हो वह उसी का पुत्र समझा जायेगा। स्वरूप, पराक्रम, नाम और वर्ण में जो पुत्र जिसके समान हो, वह उसी का पुत्र है। पुत्र सदा माता पिता के स्वरूप के अनुसार ही होते हैं तथा पराक्रम में भी माता पिता के समान ही होते हैं। ब्रह्माजी इत्यादि देवताओं में आपस में इस प्रकार की सम्मति करके अपने समान आकृति, वर्ण और पराक्रम वाले पुत्रों को ग्रहण किया। वे चारों कुमार ब्रह्मा, धर्म, दक्ष और भव के समान वर्ण वाले थे अतः उनका नाम सावर्ण पड़ा। समागम की भावना के कारण उनकी उत्पत्ति हुई थी, वे मनु नाम से प्रसिद्ध हुये। चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर शुरू होता है, तब प्रजापति रुचि के रौच्य नाम का एक पुत्र पैदा हुआ। भूति नाम की स्त्री से जो पुत्र पैदा हुआ उसका नाम भौत्य पड़ा वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान् के मनु नाम के दो पुत्र पैदा हुए। जिनमें एक वैवस्वत मनु और दूसरे सावर्ण मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनमें एक परम ऐश्वयशाली विद्वान वैवस्वतमनु संज्ञाके बड़े पुत्र और दूसरे वैवस्वत मनु सावर्णा छाया रूपधारी संज्ञा के पुत्र माने जाते हैं। सावर्णा जो चार मनुगण उत्पन्न हुये वे महर्षियों से उत्पन्न हुये थे। वे सभी मुनि परम तपानिष्ठ थे। ये भविष्य में अपने अपने मन्वन्तरों में अपने अपने

स्थानमें विराजमान होंगे। प्रथम मनु दक्ष पुत्र मेरु सावर्णि थे. उनका नाम प्रजापति रोहित था। ये भविष्य मन्वन्तर के भावी मनु होंगे। इन के रौवस्वत मन्वंतर में अनेक महात्मा पुत्र पैदा हुये, जिनके गणों के नाम हैं मरिचिगर्भा, सुशर्मा, और पार हुये। इनमें से एक एक गण बारह भागों में विभक्त हैं। ऐश्वर्यसंग्रह. राह, बाहुवश आदि को पारगण जानना चाहिये। अन्यगणों के नाम इस प्रकार हैं। वाजिय, वाजिजित्, अभूति, ककुघया, दधिक्राव, अयपक्क, प्रणति, विजय, मधु तेजस्वान् और अथर्वद्वय ये बारह मरिचिगण के अधीन थे। सुशर्म्मा-गण का वर्णन सुनिये। वर्णा अङ्ग, विश्व, मुरण्य, ब्रजन, अमित द्रव-केतु जम्भोस्थ, अजल्व, शक्रक सुनेमि द्युतपा ये बारह गण सुशर्मा नाम से पुकारे जाते हैं। भविष्यकाल में अद्भुत नाम के देव इन सब का राजा होगा। अग्निपुत्र चन्द्रमा के समान सुन्दर आकृति वाले स्वामी कीर्तिकेय का दूसरा नाम स्कन्द भी है। पुलस्त्य गोत्रीय मेधा-तिथि, कश्यप गोत्रीय वसु भृगुवंश में उत्पन्न ज्योतिष्मान् अंगिरा के पुत्र द्युतिमान वसिष्ठ गोत्र में उत्पन्न वसित, अत्रिकुल में उत्पन्न हव्य वाहन, पौल व वंशीय सुतपा—ये सात रोहित मन्वंतर के ऋषि माने जाते हैं। उन प्रथम सावर्णिमनु के धृतिकेतु दीप्तिकेतु, शाप, हस्त निरा-मय, पृथुश्रव अनीक भूरिम्नद्यु और वृहद्वथ नाम के नौ पुत्र माने जाते हैं। दशम मन्वंतर में धर्म के पुत्र द्वितीय मनु का नाम भव्य पड़ेगा। इन भाव्यमनु के राज्य काल में सुरूमना और विरुद्ध नाम के दो देव-ताओं के गण कहे जाते हैं। ये सभी देवता एक समान कान्तिमान हैं और एक समान धर्म वालों की संख्या सौ है। ऋषियों ने इन देवताओं के लिए पुरुषों का प्रणाम करना बतलाया है। धर्म पुत्र द्वितीय मनु के राज्यकाल में ये देवो के पद पर आसीन होंगे। इन सब देवों के स्वामी राजा इंद्र होंगे। प्रलयगोत्र के हविष्यमान् भृगु के गोत्र में उत्पन्न परम भाग्यशाली सुकीर्ति, अत्रिवंश में उत्पन्न आपोमूर्ति वशिष्ठ वंश

में उत्पन्न आपोमूर्ति, पुलस्त्य कुल में उत्पन्न राजा प्रतिप, कश्यप वंश में उत्पन्न राजा नाभाग और अंगिरावंश में उत्पन्न अभिमन्यु ये सात उस मन्वन्तर के ऋषि प्रसिद्ध होंगे।

सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण, वीर्यवान, शतानीक, निरमित्र, वृषसेन जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा–ये दस भाव्य मनु के पुत्र होंगे। ग्यारहवें सावर्ण मनु के राज्यकाल में उन परम भाग्यशाली देवगणों के तीन विशेषगण प्रसिद्ध होंगे। उन तीनों के ये नाम हैं— निर्माणरति कामज और मनोजव। उन स्वर्गवासी देवताओं के एक एक गण में तीस तीस देवता होंगे। विद्वान लोग महीने में जिन तीस दिनोंकी गिनतीकरते हैं वेही निर्माणरति देवगण हैं। रात्रिऔर विहंगामात्मक देवगण कामज और मनोजव देवगण के नाम से प्रसिद्ध हैं। भविष्य काल में देवताओं के ये तीन गण मुख्य माने जाते हैं। उन देवताओं के अधीश्वर वृष नाम के देवता होंगे। उस मन्वन्तर के सप्तऋषियों के इस प्रकार नाम हैं— हविष्मान् वपुष्मान, वारुणि भग, पुष्टि, पुलस्त्य कुलभूषण निश्चर और अग्नितेजा ये सात ग्यारहवें देवगण मुख्य माने जाते हैं। सर्ववेग, सुधर्मा, देवानीक, पुरोवह, क्षेमधर्मा, गृहेषु, आर्दव और पौड्रक ये ग्यारहवें मन्वन्तर के सावर्ण मनु के पुत्र माने जाते हैं। बारहवें मन्दन्तर में रुद्रपुत्र ऋत सावर्ण मनु का राज्य काल होगा। उस समय वर्तमान देवगणों के पांच मुख्य गण माने जाते हैं। उनके नाम हरित, रोहित, सुमना सुकर्मा और सुपार ये पांच मुख्य गण माने जाते हैं। ये सभी देवगण ब्रह्माजी के मानस पुत्र माने जाते हैं। इनके एक एक गणों में दस दस देवता रहते हैं। उनमें अरुन्तिज् हीव, विद्वान, पर्वतानुचर, अप, अंशु, मनोजव, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा और तारा ये दस हरित गण के मुख्य गण माने जाते हैं। तप, जानि, भृति, वाचा, वन्धु, रज, राज, स्वर्णपाद, व्युष्टि और विधि येदस रोहित गण माने हैं। अब सुकर्मा के गणों का वर्णन करूँगा। सुपर्वा वृषभ, पृष्ठ, कपि द्युम्न, विपश्चित, विक्रम, क्रम निभृत, और क्रान्त ये दस सुकर्मा गण के नाम से माने जाते हैं। वर्षोदित, जिष्ठ वर्चरवी

द्युतिमान, हवि शुभ हविष्कृत, प्राप्ति, व्यापृथ और दशम–ये सुपारा नाम के देवगणों के नाम से पुकारते हैं। इन देवों के स्वामी यशस्वी ऋतुधामा होंगे। कृति, सुतपा तपोभूर्ति तपस्वी, तपोऽशयान्, तपोरति और तपोमति ये सात ऋषि ऊपरी मन्वन्तर के माने जाते हैं। सावर्णिक मन्वन्तर में देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ विदूरथ मित्रवान् मित्र विन्दु मित्रसेन अमित्रहा और सुवर्चा ये बारह मनु के पुत्र माने जायेंगे तेरहवें रोच्य नामक मन्वन्तर में तीन ही देवगण होंगे। येसब तपस्वी ब्रह्माजीके मानसपुत्र कहलायेंगे। येही भावी मन्वन्तरमें सोमरस पीनेवाले देवोंके पदपरआसीन होंगे। यज्ञ कर्त्ताओंके साथइस मन्वन्तरमें कुलतैंतीस देवगण होंगे। आज्य, पृषदाज्य ग्रहश्रेष्ठ और दूसरे देवगणों को मिला कर उन देवताओं की गिनती तीस ही होती है। मैं इन सब का अलग अलग वर्णन कर रहा हूं। सम्प्रति प्रयाज और आज्यप नाम के देवगण सभी लुत्रामा गण के नाम से पुकारे जाते हैं। अनुयाज्य और पृषदाज्याशी देवता सुकर्मा नाम से प्रसिद्ध हैं। उपयाज्य नाम के देव गण सधर्मा नाम के गण के अधीन कहे जाते हैं। इन सब देवगणों के स्वामी इन्द्र महा बलशाली दिवस्पति होंगे। ये रुचि के पुत्र और पुलह के नाती माने जाते हैं। अंगिरा पुत्र धृतिमान पथ्यवान् तत्व-दर्शी, निरुत्सक, निष्प्रकम्प, निर्मोह, वसिष्ठ वंशमें उत्पन्नस्वरूप येसात मन्वन्तर के ऋषि कहे जाते हैं। चित्रसेन, विचित्र तपोधर्म धृत, भव अनेकवद्ध, चित्रवद्ध सुरस निर्भय और पृथ–ये रोच्य मन्वन्तर के मनु के पुत्र माने जाते हैं। भविष्य काल के चौदहवें मन्वन्तर में भौत्य नाम के मन्वन्तर में देवों के पाँच गण कहे जाते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं। चाक्षुष कनिष्ठ पवित्र भाजर और वाचावृद्ध। परवर्ती मनु के सातों पुत्रों को चाक्षुव पुकारते हैं। बृहदादि सात समूह को सात कनिष्ठ देवगण कहे जाते हैं। अग्नीध्र, काश्यप, पौलस्त्य, मागध, भार्गव अग्निवा अंगिरसहु, शुचि परम तेजस्वी सुवल ये भौत्य मनु के राज्य काल में बल उत्पन्न होने वाले उनके पुत्र हैं ऊपरी बताये ये चार गण सावर्ण मनु के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे ब्रह्मादि चारों देव-

ताओं के पुत्र माने जाते हैं। विवस्वान् के पुत्र मनु भी सावर्ण मनु माने जाते हैं रौच्य और भौत्य येदो मनु पुत्रह और भार्गव गोत्रमें उत्पन्न हुए हैं। इन्हीं भौत्य मनु के राज्यकाल में ही कल्प समाप्त होजाता है।

सूतजी बोले— हे ऋषियो! जब सब मन्वन्तर समाप्त हो जाते हैं, और उनके बहुत से युग बीत जाते हैं तो सृष्टि का संहार होता है। इस प्रकार बतलाया जाता है। अन्तिम मन्वन्तर में ये सात भृगुवंश में उत्पन्न देवगण इकहत्तर युगों तक समस्त त्रिलोकी में राज्य करेंगे। इसके बाद अन्त में पितरों, मुनियों, सप्तऋषियों, यज्ञ कर्म, यजमान और मन्त्रों के साथ तीनों लोकों को छोड़कर सर्वशक्तिमान देवता महर्लोक को चले जायेंगे। इस प्रकार इन सबको छोड़कर चले जाने पर तो मन्वन्तर समाप्त होकर यह त्रैलोक निराधार होजायगा। हे ब्राह्मणो! उस समय सभी स्थान शून्यमय हो जायगा। स्थानी देवगण भी अपने अपने स्थान छोड़ देंगे। तारा, ग्रहन क्षत्र निराधार होकर नष्ट हो जायेंगे। त्रैलोक्य की सभी सम्पत्तियों के नष्ट हो जाने पर इन्द्र इत्यदि मुख्य देवता चाक्षुष इत्यदि सभी देवगण महर्लोक में जाकर कल्पपर्यन्त तक रहेंगे। इस तरह महर्लोक में कल्पवासी दूसरे देवों के साथ मिलने पर वे चौदहों मनुगणों के साथ शरीर जनलोक को चले जाते हैं। देवताओं के महर्लोक से जन लोक में जाने के बाद केवल स्थावर जीव शेष रह जाते हैं। मह भू इत्यादि सभी स्थान शून्य हो जाते हैं। देवगण कल्पपर्यन्त तक रहने के बाद अन्यान्य देवताओं की तरह स्थानों को प्राप्त कर ऊपर चलेजाते हैं। उस समय ब्रह्मा देवताओं, ऋषियो, पितरों, दानवों का संहार करके युगक्षय पर महती वृष्टि के द्वारा सृष्टि की पुनः स्थापनी करते हैं। एक हजार चतुर्युग का ब्रह्माजी का एक दिन होता है और इसी तरह एक हजार चतुर्युग की ब्रह्माजी की एक रात होती है। जीवों के ये तीन नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यन्तिक प्रलय बतलाये जाते हैं। ब्रह्माजी द्वारा किया हुआ कल्पदाह प्रसंयम और नैमित्तिक है।

जिस प्रलय में भूतों के कारण असाधारण कारणों का क्षय होता है। उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। उस महान प्रलय के बाद करणीभूत उपादानों का असितत्व एक साथ नष्ट होजाता है। उनको आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। ब्रह्माजी उन देवताओं का संहार करने के बाद अपने एक दिन के बाद पुनः सृष्टि का प्रलय करते हैं। उस समय शयन, करने की इच्छा से प्रजापति ब्रह्माजी प्रजाओं का संहार करते हैं। इस प्रकार एक हजार युग के बीत जाने के बाद युगक्षय के प्राप्त होने के बाद प्रजापति आत्मस्थ सभी प्रजाओं की सृष्टि का विस्तार करते हैं। उस समय घोर अकाल पड़ता है और सौ वर्ष से वर्षा नहीं होती, जिसके कारण पृथ्वी पर बचे हुये प्राणी भी मृत्यु को प्राप्त होते हैं। विभावसु सात रश्मियों से युक्त होकर उदित होते हैं, और वे अपनी तीखी किरणों से समस्त जल राशि को सोख लेते हैं, उस समय उनकी किरणों का तेज असह्य होजाता है। वे किरणें हरे रंग की और बहुत तेजमय होजाती हैं। वे सात भागों में बट जाती हैं। वे धीरे-धीरे समस्त पृथ्वी जलराशि में व्याप्त होकर बदल जाती है। भौम, काष्ठ वन, तेज, प्रभृति, में पुनः परिव्याप्त होकर वे किरणें बहुत तेज जल उठती हैं। ये सातों भास्कर बहुत तृप्त हो जाते हैं।

ऋषि बोले—ऋषियों की इस प्रकार बात सुनकर भगवान वायु देव बोले—हे ऋषियो! मनुष्य के चार सौ बत्तीस करोड़ उन्यासी लाख अस्सी हजार वर्षों में प्रलय होता है। मानव मान से इतने ही वर्षों बाद प्रलय की अवधि बतलाई है। ब्रह्माजी का एक दिन एक करोड़ बीस लाख नौ हजार से अधिक दिव्य वर्षों का होता है। प्रलय के समय पर सात सूर्य देव उदित होते हैं। सभी लोकों में चारों प्रकार की प्रजायें महाभूतों में विलीन होजाती हैं। सारा संसार जल मय होजाता है। स्थावर, जंगम, जीवनिकाय सब नष्ट होजाते हैं। प्रजापति सबका संहार करके शान्त होजाते हैं। दग्ध लोक समूहों में प्रकाश का अभाव होकर अन्धकार ही अन्धकार होजाता है। ईश्वर रूप में स्थित यह पूरा संसार समुद्र रूप में बदल जाता है। जब तक

भगवान का दिन रहता है, तब तक एकार्णवरूप संसार होजाता है। इसके बाद उनकी रात्रि जल की स्थिति तक रहती है इसके बाद दिन माना जाता है। ये दिन रात क्रमपूर्वक बदलते रहते हैं। इस समस्त संसार में जितने भी चराचर जीव हैं वे सभी विनिष्ट होजाते हैं। इस कारण प्रलय को आभूतसंप्लव कहते हैं। प्रजाओं में सबसे पहले भूत पैदा होता है, अतः प्रजापति ब्रह्माजी भूत ही माने जाते हैं। उन्हीं भगवान से सारे संसार का नाश होता है, इसीलिये भी प्रलय को आभूत-संप्लव कहते हैं, अतीत, वर्तमान, भविष्य की प्रजाओं को त्रैकोलिक आयु परिमाण दिव्य संख्या से अवर्द्धाद्ध माना जाता है। प्रजापति ब्रह्माजी की आयु दो पदद्धि काल की मानी जाती है। इतने ही समय तक उनकी स्थिति रहतीहै। इसको प्रजापति ब्रह्माजी का प्रतिसर्ग होता है। जिस प्रकार तेज हवा के झोंके से दीपक बुझकर शान्त होजाता है उसी प्रकार प्रतिसर्ग द्वारा ब्रह्माजी भी शान्त होजाते हैं। उस समय जब अव्यक्त में महत् विलीन होजाता है और महदादि सब महेश्वर में समा जाते हैं। तब गुण साम्य होजाता है। मैंने आप लोगों को प्रलय का वर्णन सुना दिया, यही ब्रह्माजी का नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है। जो मनुष्य इस वर्णन को नित्य सुनता अथवा सुनाता है उसको परम सिद्धि प्राप्त होती है इसके सुनने से विद्याओं का ज्ञान होता है क्षत्रिय मनुष्य को युद्ध में विजय प्राप्त होती है वैश्य को धन प्राप्त होता हैं, शूद्र को सुख प्राप्त होता है। ब्राह्मणों को इसके महात्म्य से विद्या प्राप्त होती है। १००

(श्री वायु महापुराण का मन्वन्तरादिवर्णन नाम का सौ वां अध्याय समाप्त हुआ)

एक सौ एक अध्याय

[भूर्लोकादि की व्याख्या]

हे ऋषियो ! असामान्य चरित्र वाले द्विजाती लोग जो यज्ञादि का शास्त्र सम्मत अनुष्ठान करते हैं। वे सब देवों के साथ महर्लोक में निवास करते हैं। मैंने पूर्व प्रसङ्ग में जिन जिन चौदह मनुष्यों का

वर्णन किया है वे भूत अविधत और वर्तमान समय के मनु हैं। ये मनु ऋषियों गन्धर्वों और राक्षसों के साथ प्रत्येक मन्वन्तर में पुनः जन्म लेते हैं। देवर्षि,सप्तर्षि देवगण, पितृगण तथा धार्मिक विचार वाले द्विजाति मात्र क्रमशः महर्लोक में आश्रय ग्रहण करते हैं। अभिमान रहित, सत्य-वादी योग में तत्पर, श्रोतस्मार्त कर्मों में श्रद्धालु, वर्णाश्रम धर्म में निष्ठावान लोग मन्वन्तर के समाप्त होने पर अपने अपने अधिकारों से निवृत होकर महर्लोक में आसित होते हैं।

ऋषि बोले—परम सामर्थ मातरिश्वन्! आप जिस महर्लोक की चर्चा कर रहे हैं वह कैसा है। हमारे विचार से ऐसे प्रत्येक लोग में बहु संख्यक लोग निवास करते होंगे। अतः उन महात्माओं के जितने लोक हैं, उनको आप बतलाने को कृपा करें। क्योंकि आप हमारे ऊपर प्रसन्न हैं और इन बातों को सत्य सत्य जानते हैं। मुनियों की इस प्रकार विनम्र वाणी सुनकर वायुदेव मधुर वाणी में बोले।

वायु बोले—हे ऋषियो! ये जो चौदह लोक ऋषियों ने कहे हैं उनमें सात कृत और सात अकृत लोक हैं। भूआदि सात लोक कृत हैं। सात प्राकृत लोक हैं। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्य और मह ये लोक आर्णविक नाम से कहे हैं। ये लोक क्षय और वृद्धि वाले कहे हैं। नैमित्तिक लोक प्रलय पर्यन्त स्थिर रहते हैं। जन, तप, सत्य, ये तीन लोक एकान्तिक और सत्वगुण वाले हैं। ये कल्प तक रहते हैं। सात व्यक्त कहे जाने वाले लोक हैं वे हैं–भू भुव, स्वर, मह, जन, तप और सत्य इसके बाद निरालोक है। ब्रह्मा ने भूः ऐसा कहा तब भूलोक की, भुवः कहने पर भुवर्लोक की स्वः कहने पर स्वर लोक की रचना हुई। भू की पार्थिव लोक नाम से भुव की अन्तरिक्ष नाम से स्वर की स्वर्ग लोक नाम से प्रसिद्धि हुई है। अग्नि भूतों का यानी पार्थिव वस्तुओं का अधिपति है। उसे भूतपति नाम से कहा गया है। वायु अन्तरिक्ष के अधिपति हैं। अतः वायु भुवस्पति नाम से कहे गये हैं। भव्य और स्वर लोक का अधिपति सूर्य हैं। इससे वे दिवस्पति नाम से कहे गये हैं। ब्रह्मा ने ऐसा कहा कि–महः तो महर्लोक की सृष्टि हुई। देवगण

अपने अधिकार काल के समाप्त होने पर महर्लोक में जाकर ही रहते हैं। पांचवां जनलोक है। इस लोक से स्वायम्भुव मनु आदि की प्रजाओं (सन्तानों) का जनम अर्थात् उत्पत्ति होती है। इसीलिये इसे जनलोक कहते हैं। हमने पूर्व प्रसंग में स्वायम्भुव मनु के वंश का विस्तार से वर्णन तो किया ही है वे सब कल्प के समाप्त होने पर तपोलोक में आश्रय प्राप्त करते हैं। क्योंकि तपोलोक कल्पांत में भी स्थिर रहता है, ऋभु एवं सनत्कुमार आदि देवगण जो अर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं। वे तपोलोक में ही स्थिर रहते हैं। सत्य–यह शब्द भी ब्रह्माजी द्वारा कहा हुआ है। इसका प्रयोग सत्ता मात्र में होता है। इसी से ब्रह्मलोक को सत्य लोक भी कहते हैं। यह अत्यन्त प्रकाशमान सातवां लोक है।

सभी देवगण गन्धर्व अप्सरायें यक्ष औरगुह्यकों के साथ स्वर्लोक में निवास करते हैं, सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्य गण पृथ्वी लोक पर निवास करते हैं मरुद्गण, वायुगण, रुद्रगण कुछ देवता दोनों अश्विनीकुमार ये सभी यद्यपि किसी एक स्थान या लोक में निवास नहीं करते फिर भी उनका प्रमुख स्थान भुवर्लोक ही है। स्वर्ग में निवास करने वाले आदित्यगण, ऋभुगण विश्वेदेवगण साधारण पितरगण एवं अंगिरा गोत्रीय ऋषिगण, भुवर्लोक में आकर स्थान प्राप्त करते हैं। ये सभी देगवण विमानों में चढ़कर ताराओं एवं ग्रह पिण्डों का आश्रम भुवर्लोक ही है यह भुवर्लोकादि का वर्णन ब्रह्मा के द्वारा उच्चारण किये शब्दों के द्वारा किया गया। यह महर्लोक से भूलोक तक की चर्चा ऊपर की गई है। ये सब ताराओं से शुरू हुये हुये हैं। ये परस्पर शुद्ध हैं तथा एक दूसरे से सर्वथा अलग हैं। शुक्र से लेकर चाक्षुष मनु तक वे सभी कल्पान्त में इसी महर्लोक में निवास करते हैं। ऋभु एवं सनत्कुमार आदि ऋषि गण, तपोलोक में निवास करते हैं। प्रलयकाल में भूलोक से लेकर महर्लोक तक जब सभी सात सूर्य की रश्मियों के द्वारा दग्ध हो जाते हैं तब मरीचि, कश्यप, दक्ष, स्वायंभुव अंगिरा, पुलह, क्रतु आदि प्रजापतिगण एक साथ जनलोकमें निवास करते हैं। सातवां सत्य लोक है। जहां पर पहुंचकर फिर जन्म नहीं लेना पड़ता।

इस सत्यलोक को कभी विनाश नहीं होता है ध्रुव से लेकर जनलोक तक महर्लोक है इसी प्रकार अन्यलोक भी हैं। भूलोक में अन्तभक्षी रसास्वादी लोग रहते हैं। भुवलोक में सोमरस पीने वाले लोग बसते हैं। स्वर्ग लोक में आज्य का पान किया जाता है। महर्लोक में रहने वाले मनोवांछित सिद्धियां प्राप्त होते हैं। देवगण यज्ञों द्वारा सन्तोष प्राप्त करते हैं हे विप्रो! आप जनलोक तथा नीचे के चारों लोकों की चर्चा संक्षेप से सुन चुके अब उसका वर्णन विस्तार से सुनिये।

वायु बोले— हे ऋषियो! सर्वप्रथम मरीचि, कश्यप, दक्ष, वसिष्ठ अंगिरा, भृगु, पुलस्त्य, प्रलह और कृतु आदि ऋषिगण ब्रह्माजी के मानस पुत्र हुये। अपनी अपनी प्रजाओं का विस्तार करके वे पुनः जनलोक में ठहरगये। कल्प के अवसान में जब भू भुव स्वर लोक प्रचण्ड अग्नि की ज्वालाओं से दग्ध हो जाते हैं तो महर्लोक के रहने वाले यमादि देवगण सूक्ष्म शरीर से जनलोक में निवास करते हैं। वहां पहुँचने पर वे लोक जनलोक के निवासियों की भांति सामर्थ्यवान रूप वान एवं ऐश्वर्यवान हो जाते हैं। जगत के विनाश होने तक वहां उसी रूप में निवास करते हैं। ब्रह्मा की महारात्रि समाप्त होने पर उनके दिन का प्रारम्भ होता है। तब वे मनु मरीचि आदि ऋषिगण पूर्ववर्ती पुरुषाओं की भांति पुनः जन्म लेते हैं। देव वंशों की सात विभूतियां कही गई हैं। इनमें से चार कल्पज देवता बीत चुके तीन शेष हैं। ये अपने अपने कथित तप के प्रताप से वैराजलोक को प्राप्त होते हैं। वैराज लोक में जो लोग निवास करते हैं वे दस बार जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार देवताओं के हजारों युग समाप्त हो गए हैं। ऋषियों के साथ मृत होकर वे देवगण वैराज लोकों में निवास करने के बाद ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं।

सूत जी बोले— हे ऋषिगणो! देवताओं का इस प्रलय एवं सृष्टि का वर्णन विस्तार से कथन नहीं किया जा सकता। काल का कोई आदि नहीं है। संख्याओं की भी कोई गिनती नहीं है जैसा मैंने आप लोगों से वर्णन किया वैसा ही वैसा सब कुछ हुआ है इसमें सन्देह नहीं।

ऋषि बोले—हे सूतजी ! वैराज नामक लोकों में निवास करने वाले जो आहार करते हैं। तथा जो पराक्रमी हैं, जितने समय तक वे स्थित रहते हैं ये सब बातें यथार्थतः सुनना चाहते हैं सो कृपा कर बतलाइये।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! जो धर्माचरण द्वारा परम शुद्ध एवं निर्विकार लोग होते हैं वे उस वैराज नामक लोक में दस कल्प तक निवास करते हैं। वे सब परम ज्ञानी सूक्ष्मदर्शी, सूक्ष्म, स्वच्छ शरीर वाले होते हैं। अनन्त काल तक वहाँ रहने के कारण उनके शरीरों से भूतों का सम्पर्क नहीं होता है। दस कल्प के बाद वैराज लोक का परिवर्तन का समय आता है, तब वे वैराज लोक में निवास करते हैं शुद्ध बुद्धि योगाभ्यास परायण सनत्कुमार, सिद्धगण उस लोक को छोड़ने के एक साथ उत्सुक होकर आपस में वे इस प्रकार बातचीत करते हैं हे प्रतिभाशालियो ! अब हम लोग प्रणव का सहारा लेकर ब्रह्मलोक में निवास करेंगे, उससे हम सबों का कल्याण होगा। इस प्रकार वे योगधर्मा महात्मा योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा ब्रह्म में सन्नियोजित करके ब्रह्म पद की प्राप्ति करते हैं और उसी स्थान में लीन होजाते हैं। सब प्रकार की सुख देने वाली कल्पनाओं से पूर्ण अनामय ब्रह्मलोक को प्राप्त ब्रह्मानन्द में मग्न होकर वे अमृत्व को प्राप्त करते हैं। वे ब्रह्मलोक में प्रसिद्ध हैं उनके पुरोहित ब्रह्माजी हैं वहाँ के रहने वाले शुद्ध बुद्धि विचार वाले परम तपोनिष्ठ होते हैं। बीत राग, के जीतने वाले क्रोध को निर्मोह, सत्यवादी, शान्त, आत्मा को वश में रखने जितेन्द्रिय, दयावान् पवित्रात्मा वाले मनुष्य को ही ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। यह ब्रह्मपद परम दिव्य गुण सम्पन्न और आकाश परम चमकीला है, वहाँ जाकर वे अमर होकर ब्रह्माजी के साथ निवास करते हैं और सुख का अनुभव करते हुये शोक से छूट जाते हैं।

ऋषि बोले—हे महामति सूतजी ! ये पराद्ध क्या है ? पर किसको कहते हैं। आप कृपा करके हमको इनके विषय में बतलाइये।

सूतजी बोले— हे ऋषियो ! मैं आपको पराद्ध और पर के बारेमें बतलारहा हूँ। दस हजार का एक अयुत होता है। सौ हजार का एक नियुत होता है। दस सौ हजार वर्ष का दस नियुत की एक कोटि होती है। दस करोड़ का एक अरब होता है, सौ करोड़ का एक पदम होता है हजार करोड़ का एक खर्व होता है, दस हजार करोड़ का एक निखर्व होता है, सौ हजार करोड़ का एक शङ्ख होता है हजार हजार कोटि के गुणा करने पर उसके गुणनफल को समुद्र कहते हैं। सहस्र अयुत कोटि की एक मध्य, सहस्र नियुत कोटि का एक अन्त और सहस्र कोटि का एक पराद्ध होता है और दो पराद्ध की संख्या को एक पर कहते हैं। सौ की संख्या को परिद्दढ और सहस्र को परिपदमक कहते। ऋषियों ने बतलाया है कि ब्रह्मा के कल्प काल की परिमाण संख्या सृष्टि शुरू होने के समय तक एक पराद्ध मानी जाती है। इसके बाद एक पराई काल सृष्टि रहित स्थिति में बीत जाता है। उसके बाद पुनः सृष्टि शुरू होती है। इस तरह एक सृष्टि के शुरू के समय से दूसरी सृष्टि के शुरू होने तक दो पराद्ध या एक पर काल होता है। मैंने आपको पर और पराद्ध काल को बतला दिया है। महर्षियों की इस प्रकार वाणी को सुन कर वायु देव ने मीठे स्वर में ब्रह्मलोक के बारे में जो कुछ सुना और देखा था, मैं उसी के विषय में आपलोगों को बतला रहा हूँ।

वायुदेव बोले— हे ऋषियो ! मैं आप लोगोंको अन्यान्य वक्तव्य के विषय में बतलाऊंगा। अव्यक्त की अपेक्षा व्यक्तभाग महास्थूल होता है। महत् के दस भाग जितना स्थूलभूतादि बताये जाते हैं, भूतादि से दस भाग अधिक स्थूल परिमाण कहाजाता है। यह परिमाण भी बहुत सूक्ष्म होता है। लोक में सबसे सूक्ष्म परम अवेध वस्तु होती है, उसी को परमाणु कहते हैं। सूर्य की किरणों में जो बहुत सूक्ष्म धूल के कण दिखाई देते हैं वे प्रथम परमाणु होते हैं ऐसे आठ परमाणुओं का जब आपस में मिलन होता है उसे तब त्रसरेणु कहते हैं, इस को पदन रज भी कहते हैं।

आठ त्रसरेणुओं को बलाग्र कहते हैं आठ बलाग्रों को एक लिक्षा कहते हैं। आठ लिक्षा की एक यूका होती है, आठ यूका को एक जब कहते हैं। आठ जब का एक अंगुल होता है। आठ अँगुलियों के पोरों को एक वितस्ति कहते हैं। इक्कीस पोरों की एक रत्नि होती है। चौबीस अंगुल का एक हाथ होता है। ब्यालीस अंगुल का एक किष्कु होता है। छियानवें अंगुल का एक धनुष होता है। यह धनुष दो कोस के परिमाण को नापने के काम आता है। विद्वान लोग दण्ड धनुष युग नाली को एक समान ही बतलाते हैं। ये चारों परिमाण छियानवें अँगुलों के माने जाते हैं, तीन सौ धनुष का एक नल्व होता है और दो सहस्र धनुष का दो कोस होता है। इसी योजन के परिमाण द्वारा ब्रह्मलोक की दूरी नापी जाती है। जैसे—

पृथ्वी से एक लाख योजन पर सूर्य का निवास स्थान है सूर्य से सौ हजार योजन पर चन्द्रमा का निवास स्थान है। चन्द्रमा से हजार योजन दूर नक्षत्रों का प्रकाश होता है, इस नक्षत्र लोक से मेरु मण्डल दो लाख योजन दूर है। इन मण्डल से ऊपर एक ग्रह है वह भी दो लाख योजन दूर है। सभी तारागणों में बुध सबसे निचले भाग में रहते हैं। बुध के निवास स्थान से ऊपर शुक्र का निवास स्थान है। शुक्र से ऊपर मंगल का निवास स्थान है, मङ्गल के ऊपर वृहस्पति जी का निवास स्थान है, वृहस्पति जी से ऊपर शनैश्चर जी का निवास स्थान है। शनैश्चर जी से एक लाख योजन दूर सप्तऋषियों का निवास स्थान है। इन सप्तऋषियों से एक लाख योजन पर ध्रुवजी का निवास स्थान है। जनलोक से चार कोट योजन दूर तपोलोक है। तपोलोक में वैराज नाम के देवता निवास करते हैं। तपोलोक से छः योजन दूर सत्यलोक स्थित है, वहां पर जन्म मरण विहीन सिद्ध लोग निवास करते हैं। इनका सिद्धों को ब्रह्मलोक कहते हैं सिद्धों का ब्रह्मलोक से कभी पतन नहीं होता। वे ब्रह्माजी की उपासना में लीन रहते हैं। मैंने आप लोगों को लोकों की दूरी इत्यादि का वर्णन तथा ध्रुव लोक से ऊपर बसे हुये नक्षत्र ग्रहादियों

के निवासस्थल का वर्णन सुना दिया है। अब मैं आपको अधोगति को प्राप्त होने वाले जीवों के निवास स्थान का वर्णन करूँगा, जिस जगह को घोर पाप कर्म करने वाले पापी मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार प्राप्त करते हैं।

रौरव, रौध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शवलविभोचन, कृमी, कृमिभक्ष, लालाभक्ष विशंसन, अधःशिरा पूयवह, रुधिरान्ध वैतरण कृष्ण, असिपत्रवन अग्निज्वाल, महाघोर, संदेश, श्वभोजन तम कृष्णासूत्र लोह, असिज, अप्रतिष्ठ, वीचिअश्व इत्यादि घोर अन्धकार मय नरक लोक हैं। इन सबके स्वामी यमराज हैं। इन्हीं नरकों में पापी लोग अपने कर्म के अनुसार पृथक पृथक निवास करते हैं। जो मनुष्य झूठी गवाही देता है और झूठ बोलने में जो निरत रहता है या किसी कारण वश एक पक्ष का समर्थन करता है वह मनुष्य घोर रौरवनरक में जाता है। गौ की हत्या करने वाला गर्भ की हत्या करने वाला किसी के घर या गांव में आग लगाने वाले पापी मनुष्य को रौध नाम के नरक में जाना पड़ता है। जो मनुष्य ब्राह्मण की हत्या करता है, शराब पीता है सोने को चुराता है वह पापी मनुष्य सूकर नाम के नरक में स्थान प्राप्त करता है, जो मनुष्य क्षत्रियों की हत्या करता है, या किसी भी जाति के मनुष्य को मारता है गुरू की स्त्री के साथ समागम करता है वह घोर ताल नाम के नरक में जाता है। जो पापी मनुष्य बहिन के साथ व्यभिचार करता है या वह राजा की हत्या करता है वह तप्त कुम्भ नामक नरक में स्थान प्राप्त करताहै। एक दूसरेके घोड़े को चुरा कर बेचने पर तप्त लौह नाम के नरक में जाता है। जो अपनी स्त्री को बेचता है तथा अपने अनुगामी भक्त को छोड़ देता है, अपनी पुत्री या पुत्र वधु के साथ समागम करने वाले को महा ज्वाल नाम के नरक में स्थान प्राप्त होता है। जो मनुष्य वेदों का विक्रय करता है अपने गुरुओं की बुराई करता है वह पापी मनुष्य शबल नाम के नरकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य किसी के दीवार भवन इत्यादि में छेद करता है, वह विमोह

वह विमोह नाम के नगर में स्थान पाता है। जो किसी का दुख चाहता है वह कीटलोह नाम के नरक में जाता है। जो मनुष्य देवता या ब्राह्मण से द्वेष करता है, वह कृमिभक्ष नाम के नरक में स्थान प्राप्त करता है। जो मनुष्य किसी ब्राह्मण, मित्र और कन्या के सामने अकेला भोजन करता है, वह अतिशय दुर्गन्धमय लालाभक्ष नामक नरक में जाता है। जो पापी मनुष्य काराकर्त्ता होते हैं, दूसरों का धन चुराते हैं, अच्छी दवा जानते हुए भी जो लालच वश बुरी दवादेते हैं वे मनुष्य विशसन घोर नरक में जाते हैं। जो किसी के बाग बचीचे में आग लगा देते हैं, जो अपने असत् कर्म से धन कमाते हैं, जो मनुष्य नीच कर्म करने वालों से दान लेता है या जिसे यज्ञादि कार्य करने का अधिकार नहीं है उनसे यज्ञ कर्म कराने वाले को अधोमुख नाम के नरक में स्थान प्राप्त होता है। दूध, मास, मदिरा लाक्षा, सुगन्धित पदार्थ, तैल, इक्ष, रस और तिल आदि वस्तुओं को बेचता है वह पूयवह नाम के नरक में जाता है। जो मनुष्य मुर्गों को मारता है, बिल्ली और सूकर का वध करता है, पक्षियों और बकरों को मारता है वह पापी मनुष्य भी पूयवह नाम के नरक में जाता है।

जो मनुष्य ब्राह्मण होकर भी बकरा, बकरे, भेड़, महिष, इत्यादि को पालता है, चक्र और ध्वजा को धारण करता है गांवों में इधर उधर झूठमूठ ही यज्ञ करता फिरता हो, जो रंगों की बिक्री से जीविका लाता है, जो मनुष्य मित्रों की हत्या करता है, वह रुन्धिरान्ध नामके में निवास करता है। जो मनुष्य एक ही लाइन में कराने वालों में भेद रखता है वे पापी मनुष्य घोरविड्भुज नामक नरक जो मनुष्य सदा झूठ बोलता है तथा दूसरे को गाली कीर्ण नाम के नरक में जाता है। इसी प्रकार पाप कर्म ो उनके पाप कर्म के अनुसार नाना प्रकार के घोर है। इन सब नरकों में रौरव नरक सबसे महान से शीतल और भीतर से ऊष्ण होता है। का नरक स्थित है।

हैं
वह मूत्र।
ाले मनुष्यों
में जाना पड़ता
विस्तृत है, यह ऊपर

इस पृथ्वी तल पर सात नरक लोक स्थित हैं। अधर्म से उत्पन्न होने वाले नरकों का नाम अन्धतामिस्त्र है, दूसरा महा रौरव नाम का नरक है तीसरा कालसूत्र नाम का नरक है चौथा अप्रतिष्ठ नाम का नरक है, पांचवां अवीची नाम काघोर नरक है छठा लोह पृष्ठ नाम का नरक है सातवां अविधेय नाम का नरक है। अतिशय घोर दुखदायीप्रद होने के कारण इसका रौरव नाम पड़ा है। ऊपर रहने वाले सभी देवता और नीचे रहने वाले सभी प्राणी अपने धर्म के अनुसार शरीर ग्रहण करते हैं, इन औपोत्तिक कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए वे शरीर ग्रहण करते हैं। देवता लोग इन अधोभाग में स्थिति नरक में रहने वाले प्राणियों को औंधे मुख हुए देखते हैं और इसी प्रकार नरक के प्राणी भी देवताओं को उल्टे मुख देखते हैं। वायुदेव की इस प्रकार बातों को सुनकर यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों ने कहा—

ऋषि बोले—हे वायुदेव! इस लोकालोक में निवास करने वाले प्राणियों की संख्या कितनी है। वे कौन हैं, आप हमको इन सबके बारे में बतलाइये।

वायु बोले—हे ऋषियो! उन सब प्राणियों की संख्या बताना सम्भव नहीं है। वे प्रवाह अनादि हैं वे अनन्त हैं हम इतना ही कह सकते हैं उनके विषय में कि वे अनन्त हैं। जो पाप कर्म में निरत रहने वाले दुरात्मा मनुष्य मृत्यु के वश में होकर उन नरकों में निवास करते हैं। सात्विक गुण सम्पन्न धार्मिक मनुष्य परम दुर्लभ होते हैं। धार्मिक मनुष्यस्वर्गलोक में निवास करते हैं। स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्माजी ने इनसब आनुपातिक की संख्या निश्चित की है, उसके विषय में मनुष्यों की निश्चित की गई संख्या की निबृति है, केवल ब्राह्मी संख्या ही ऐसे स्थलों पर प्रमाणभूत है।

ऋषि बोले—हे वायुदेव! आपने मह, जन, तप, सत्य, भूत, भाव्य इन सातों लोकों की स्थिति एक के बाद एक की बतलाई है, अब आप बताइये कि इनमें क्या अन्तर है।

वायुदेव बोले—हे ऋषियो! योगी मनुष्य अपने योग बल द्वारा,

मनीषीगण अपने तर्क द्वारा क्रियानिष्ठगण अपने सद्धकर्म द्वारा दर्शन करते हैं। साधु सज्जन पुरुष भगवान के निवास स्थल का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, सत्य, क्षमा, धैर्य, दर्शकित्व, अधिष्ठानत्व और आत्मज्ञान ये दस शाश्वत धर्म परमात्मा भगवान में नित्य स्थित रहते हैं। वह प्रभु है। योगि जनों की योगाग्नि भी उसी परब्रह्म की आज्ञा से उद्दीप्त होती है। वह प्रभु शरीर धारण करके सभी का उपकार करते हैं। सम्पूर्ण लोकों का बनाने वाला ऐश्वर्य शाली परमात्मा लोक की सृष्टि और लोक की विधिवत स्थिति के लिये ही पृकृति की सहायता अपने शरीर द्वारा ब्रह्मलोक और ब्रह्माण्डादि का निर्माण करते हैं।

उन दोनों के बीच भाग में एक बहुत सुन्दर स्थान है, वह स्थान मनोमय नाम से प्रसिद्ध है। वह उस तेजस्वी शिव ईश्वर का पुर है। उस स्थान में जन्ममरण से डरने वाले मनुष्यों का स्थान है। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो ! वह शिव नामक पुर का विस्तार सौ हजार योजन तक है। इस महापुरी के चारों तरफ सुवर्ण की चहार दीवारी बनी है। उसकी चमक चारों ओर से चकाचौंध करती है। उस पुरी में चार द्वार बने हैं वे चारों द्वार सुवर्ण के बने है उन द्वारों की मोतियों की लड़ियां शोभा बढ़ा रही हैं। उस पुरी में मृत्यु का भय है न बुढ़ापे का ही। इस रम्यपुरी की सुन्दरता त्रैलोक्य और कहीं जगहपर नहीं है। वह पुरी दसों दिशाओं में एक लाख योजन तक फैली हुई है। महादेव जी, वृषभध्वज, की वह पुरी अपने तेज से स्थित है। उस सुवर्णमयी पुरी की सृष्टि मानसिक भाव भूमिपर हुई है। वृषभध्वज योगाभ्यास परायण महात्मा है, जिनका चित्त कभी चचल नहीं होता, वे ही ध्यान रख कर वृषभध्वज इस पुरी का दर्शन करते हैं। वहां पर अनेक इस प्रकार के रम्य स्थान बने हैं। वहां के सभी गृहों में कथा, गाना, बजाना, स्तोत्र इत्यादि मनोरंजन कार्य कर्म होते रहते हैं। इस प्रकार के अनेक सुन्दर भवनों में एक सुन्दर भवन है। वह भवन हजार स्तम्भों से बना है उसमें अनुपम रत्न जड़े हुये हैं।

उन रत्नों में से बहुत से रत्न चन्द्रमा के समान शुभ्र स्फटिक मणि के समान निर्मल, वैदूर्य मणि के समान तेजवान उदयकालीन सूर्य के समान, सुन्दर और अग्नि और सुवर्ण के समान कान्तिमान हैं। वायुदेव के इस प्रकार वर्णनको सुनकर ऋषि बोले।

ऋषियों ने कहा— हे श्रेष्ठ! उस पुर में शिव के अनुगामी महात्मा कौन कौन से रहते हैं जो वहां सभी प्रकार के सुखों का आनन्द लूटते हैं?

वायुदेव बोले— हे ऋषियो! भगवान शंकरजी में जो मनुष्य श्रद्धाभक्ति रखते हैं और सदा लज्जाशील होकर तपस्या के दुखों को सहन करते हैं जो पराक्रम शील हैं, अलोलुप, मिताहार हैं, जितेन्द्रिय हैं, सुख दुख इत्यादि से परे हैं सबके साथ मित्र या बन्धु का सा व्यवहार करते हैं। मत्सरादि से विहीन हैं, भावप्रवण है सभी जीवों में दया करने वाले हैं तथा सबके साथ एक सा व्यवहार करते हैं तथा जो मनुष्य अनन्य चित्त होकर शिवजी की शरण में जाते हैं उन्हीं मनुष्यों को रुद्र का सानिध्य पद प्राप्त होता है। सभी शिवपुर निवासी अग्नि के समान मुख वाले, सब तरह के रूप धारण करने वाले, जटा-जूट रखने वाले, नीलकण्ठ, श्वेतग्रीव, तीक्ष्ण दांत वाले, तीन नेत्र वाले हैं जो जटाओं के मुकुट से शोभित हैं और दस भुजाओं वाले हैं उनके शरीर से पदम की तरह भीनी भीनी खुशबू आती है, वे दोपहरी के सूर्य के समान परम तेजस्वी होते हैं। वे सभी पीले रंग के वस्त्रों को धारण करते हैं वे सब धनुष बाण को हाथों में धारण करते हैं। वे सभी श्वेतवर्ण के रथपर सवार होकर घूमते रहते हैं। इन सबों के साथ भक्त हितकारी भगवान शंकरजी आनन्द प्राप्त करते हैं। भगवान के मुंह से सुनी इस त्रयम्बक की इस कथा को वायुदेव ने उन परम तपस्वी ऋषियों को सुनाया, तो वे बहुत प्रसन्न हुये।

ऋषियो ने कहा— हे देवदेव! हे वायुदेव! आपने हमको महादेवजी का महात्म्य विधिपूर्वक सुनाया, जो देवताओं को भी दुर्लभ है। अमृतरूपी आपकी इस पुण्यदायी कथा को सुनकर हम पवित्र हो गये।

इसके सुनने के बाद अब कुछ भी शेष नहीं रह गया है। हे श्रेष्ठ वायुदेव ! अब आप इसके बाद हमारे एक दूसरे प्रश्न का उत्तर दीजिये।

सूतजी बोले—

हे ऋषिगणो ! नैमिषारण्य के रहने वाले ऋषियों की इस प्रकार बात को सुन कर वायुदेव ने कहा कि हे तपस्वी ऋषियो ! अब आप मुझे बतलाइये कि मैं आपको क्या सुनाऊँ।

ऋषियों ने कहा— हे वायुदेव ! भगवान शंकर के इस पार्श्व भाग में स्थित रहने वाले आदित्य उनके क्रोधमय वे सिंहगण, वैश्वानरगण भूतगण, अनुगामी व्याघ्रवन्द ये सब प्राणविनाशक उस घोर प्रलय काल में किस स्थित को प्राप्त होते हैं। आप हमको इनके बारे में बतलाइये।

वायुदेव बोले— उन समस्त सिद्धि प्राप्त करने वाले शिवपुर निवासी में जो ब्रह्माजी के कुमारपुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, बोढु, कपिल, आसुरि और मुनिवरपञ्च शिख ऋषि हैं। इनके अलावा जो और ऋषिगण हैं, वे सब के सब आदि कारण भूत अव्यक्त, सत्ता की महत्ता को जानकर पूर्व ही परमगति को प्राप्त हो जाते हैं। इसके बाद बहुत समय बीत जाने के बाद कल्प के समाप्त होने पर महाप्रलय आ जाता है। बहुत से रुद्रगण सत्य का सहारा लेकर शब्दादि विषयों से विरक्त होकर अपने ज्ञानमय तेजोबल से सभी जीवधारियों में शरीर धारण करते हैं। वे सब महात्मागण परमाणु रूपधारी महेश्वर को प्राप्त करते हैं। और इसके बाद वहाँ पहुँच कर जन्ममरण रूप जल से पूर्ण भीषण लहरों युक्त भवनदी को पार कर जाते हैं। फिर वहाँ पर प्राप्त होकर वे सर्व व्यापी परब्रह्म का दर्शन करते हैं। वे अपनी सात महादेवियों के साथ वहाँ स्थित रहते हैं। सिंह, आदित्य, वश्वानरभूत, व्याघ्र और अनुगामी रुद्रगण इन सबको अपनी आत्मा में प्रविष्ट करके इन सातों लोकों को तथा पांच महाभूतों को भी भगवान शंकरजी अपने में प्रविष्ट कर लेते हैं। इस प्रकार भगवान विष्णु के साथ सृष्टि का पैदा करना तथा सृष्टि का नाश करना दोनों ही कार्य करते हैं, वे रुद्र हैं, वे ही साममय हैं,

वेही यजुर्मय हैं। हे ब्राह्मणो ! वे बाहर भीतर सभी स्थान से ओत प्रोत हैं वे ही एकमात्र ससार के चराचर हैं। उनका न आदि है न अन्त है। वायुदेव की इस प्रकार मीठी वाणी को सुनकर नैमिषारण्य के रहने वाले ऋषिगण अपने अपने निवास स्थान में जाकर मन वचन और कर्म से भगवान शङ्कर जी की उपासना करने लगे। वे सभी व्रत उपवास करने लगे, सभी प्राणियों पर दया करने लगे, उनके सभी भ्रम दूर हो गए। उन सबको अपनी परम भक्ति, ज्ञान और तपोवल से शाश्वत रुद्र लोक प्राप्त हुआ जिसकी रुद्र में भक्ति बढ़ती है, उसके सारे दुख दूर हो जाते हैं। जो जितेन्द्रिय होकर शूद्रभव में श्रद्धा रखते हैं और जो कभी शराब नहीं पीते हैं वह मनुष्य भी इस वर्णन के पाठ करने से रुद्र के लोक को प्राप्त होता है, वह चाहे वैश्य हो, चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे शूद्र हो कोई भी जाति का मनुष्य हो उसके सभी दुख दूर होते हैं। जो मनष्य इसका पाठ करता है अथवा दूसरों को सुनाता है वह महाप्रलय तक परमायु प्राप्त करता है, तथा सभी मनोरथ पूर्ण करके गणेश जी के लोक को प्राप्त होता है। १०१

(इति श्री वायुमहापुराण का शिवपुर वर्णन नाम का एक सौ एक अध्याय समाप्त)

एक सौ दो अध्याय

(प्रतिसर्ग वर्णन)

सूत जी बोले—हे ऋषियो ! अब मैं इसके बाद पुरुषोत्तम भगवान स्वयम्भू के प्रत्याहार का वर्णन करूँगा। प्रजापति ब्रह्मा जी के स्थिति काल के समाप्त होने पर ईश्वर जिस प्रकार अपनी आत्मा में परम सूक्ष्म रूप में इस संसार को धारण कर लेते हैं मैं उसी का वर्णन करूँगा। उस प्रत्याहार में सभी अव्यक्त भूतों को व्यक्त ग्रस लेता है। कल्पों के नष्ट होने के समय को थोड़ा शेष रहने पर सृष्टि के इस प्रत्याहार का कार्य शुरू हो जाता है। सबसे अन्त में द्रुम नामक मनु के राज्य काल के समय पर कलियुग के नष्ट हो जाने पर यह घोर संकटकालीन समय आता है, उस समय यह सारी पृथ्वी अव्यक्त रूप में

बदल जाती है उसी को सृष्टि का संहार कहते हैं। उस संवर काल के समय जब सृष्टि का प्रत्याहार आता है, तो उस समय भूतों की तन्मात्राओं का भी विनाश होजाता है। सबसे पहले जल भूमि के गन्धगुण को खींच लेता है। जिससे पृथ्वी गन्ध रहित होकर जल में लीन हो जाती है और इस प्रकार जल में गन्ध तन्मात्रा के घुस जाने पर पृथ्वी जल रूप में बदल जाती है उसके बाद वह समस्त जलराशि संसार में फैलकर वेग से अति मुखरित होकर सब जगह पर फैल जाती है। इसके जल के रस का गुण तेज ज्योति में समाजाता है और इस प्रकार रस तन्मात्रा के नष्ट होजाने से जलराशि समाप्त होजाती है। तेज के द्वारा नष्ट हुआ रस ज्योतिमें बदल जाताहै और कहीं भी जल न दिखाई पड़ता है और सब तरफ तेज ही तेज दिखाई पड़ता है। सम्पूर्ण संसार में व्याप्त वह अग्नि समस्त जल अपने अन्दर सोख लेती है और इसकी लपटों में यह सम्पूर्ण संसार धीरे धीरे नष्ट होजाता है। चारों तरफ नीचे, ऊपर इधर उधर अग्नि की भयंकर लपटें ही दिखलाई पड़ती हैं, और फिर इस अग्नि की फैली हुई लपटों को वायु अपने में ग्रस लेती है। उस समय वायुमें वह तेज राशि दीपक की लौ की तरह लीन होजाती है। तन्मात्रा के नाश होजाने पर अग्नि का स्वरूप भी नष्ट होजाता है और जिससे अग्नि का तेज शान्त होजाता है। वायु से यह सारा संसार कम्पित हो उठता है, उस तेज के वायु रूप में बदल जाने पर समस्त लोक आलोक नष्ट हो जाते हैं। तब वायु अपने मूल उत्पत्ति स्थान का सहारा लेकर इधर उधर चारों दिशाओं को बार बार कम्पित करता है। इसके बाद वायु के स्पर्श गुण को आकाश अपने अन्दर ग्रस लेता है और फिर वायु का वेग शान्त होजाता है, उस समय सिर्फ अनावृत आकाश ही स्थिर रहता है, कोई भी रूप रस गन्ध स्पर्श और मूर्ति नहीं रहती है, अपने भयकर कोलाहल से गूंजता हुआ वह मण्डलाकार आकाश प्रकाशित होता है, उसका केवल शब्द ही रहता है, इस प्रकार केवल शब्द गुण से युक्त आकाश सभी भूतों और उनके आश्रित रहने वाली इन्द्रियों को ग्रस लेता है यह भूतादि तामस

के नाम से पुकारे जाते हैं। इस भूतादि तामस को भी बुद्धि रूपी महत्तत्व ग्रस लेता है। यह महत्तत्व ही संकल्प और अध्यवसायात्मक है तत्व परायण मनुष्य इसी को बुद्धि, मन, लिङ्ग, महान और अक्षर प्रभृति पर्यायवाची शब्दों से पुकारते हैं। इस प्रकार जब सभी भूत नष्ट हो जाते हैं, उनके गुणों में साम्यता आजाती है। सम्पूर्ण संसार तपोमय होजाता है, लोक के कारण भूत समूह आत्मा में स्थित होजाते हैं। सृष्टि भी निहित होकर प्रकृति में मिल जाती है। तब आदि अन्त किसी का भी कुछ ज्ञान नहीं होता, न कुछ दिखाई पड़ता है, न चिदाभास होता है, न भेदभाव का ज्ञान होता है, कारण स्वरूप भी नष्ट हो जाता है ऐसी दशा में किसीका कुछभी ज्ञान शेष नहीं रहता है। उस समय वे सब पदार्थ उस सदसदात्मक, शाश्वतपरम कारण में प्रतिष्ठित होते हैं। यह स्वात्मिका प्रवृत्ति कारण से अनिर्देश्य है सृष्टि से इन सातों उपादानों का इस प्रकार क्रमशः विलय कहते हैं।

प्रत्याहार काल में इसी प्रकार इन सातों प्राकृति पदार्थों का परस्पर अनुपवेश होता हैं। सातों द्वीप सातों लोक सभी समुद्र व पर्वत आदि सभी को जिन्होंने ढक रखा है वह समस्त ब्रह्माण्ड सबसे पहले जलराशि में विलीन होता है। इसके बाद वह जल ज्योति में विलीन होजाता है। इसके बाद वह तैजस आवरण वायु को ग्रस लेता है। वायु सम्बन्धी वह आवरण आकाश में लय होजाता है। आकाशीय आवरण को भूतादि तामस अहंकार तत्व ग्रसता है। भूतादि को बुद्धि रूपी महत्तत्व ग्रसता है। महत्तत्व को अव्यक्त ग्रसता है। इसके बाद महत्तत्व व अव्यक्त दोनों का एक रस व गुण सब प्रकार से समान हो जाता है। सृष्टि का यह विस्तार एवं संहार ब्रह्मनिष्ठ प्रकृतिसे होता है, सृष्टि के लिये वह प्रकृति सदैव इन विकारों को ग्रसा करती है एवं निर्माण किया करती है। समस्त कार्यों और कारणों को जानने वाले ईश्वर प्रेमी, ब्रह्मवेत्ता, महर्षि, सदाशिव एवं ज्ञानी लोग स्वयं आकृष्ट होजाते हैं और संहार के समय वियुक्त हो जाते हैं। अव्यक्त को ही क्षेत्र कहा है।

ब्रह्म को क्षेत्रा कहा जाता है। इनका सम्बन्ध (साधर्म्य और वैधर्म्य मूलक) सदा से ही है। हे ब्राह्मणो ! सभी सर्गों क्षेत्रज्ञों के विषय में यहीक्रम जानना चाहिये। जो इस क्षेत्र तत्व को जानता है वही ब्रह्म ज्ञानी कहा है। ब्रह्मा को विषय एवं क्षेत्र को अविषय जानना चाहिये। क्षेत्र क्षेत्राज्ञ द्वारा अधिष्ठित है। शरीर को अधिकता के कारण शरीरी भी अनेक कहे हैं। अतः ज्ञानी लोग पुरुष को अनेक मानते हैं। बहुत काल के बाद जब सबके भेद की प्रवृत्ति घट जाती है तब स्वायंभू की स्थितिवृत्ति भी समाप्त हो जाती है। उस समय सभी ब्रह्मलोक निवासी अपनी अपनी स्थितिवृत्ति में दोष देखकर वैरागी होते हैं। जिससे उनके आत्मा के अहंकार का नाश होता है। वे ब्रह्मलोक के निवासी अलग अलग क्षेत्र के ज्ञान को जानने से क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। वे सभी प्रकृतिगत कारणों से परे हैं। और वे सबके अनेकत्व को देखने वाले हैं। चेतना, चेतनात्मक, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, निरंजन, प्रकृति में निर्वाण पाने वाले तथा फिर लौटने वाले नहीं हैं। प्रकृति से निर्गुण और निरात्म होने के कारण वे मुक्त हो जाते हैं। स्वयम्भू का प्राकृत प्रतिसर्ग इसी प्रकार का कहा है। तत्वों का कारणों के साथ ऐसा ही संयम होता है जिस तत्वसंयम को 'आवर्तनशील कहा गया है।

सूतजी बोले— हे ऋषिवृन्दो ! धर्म, अधर्म, तप, ज्ञान, सत्य, झूँठ, ऊँच, नीच. सुख-दुख, प्रिय. अप्रिय ये सभी गुणमात्रात्मक कहे गये हैं। इन्द्रिय ज्ञान से परे जो शुभा शुभ कर्म हैं वे सब प्रकृति वश ही हैं। प्रकृति ही देहधारियों के स्वभाव की उत्पत्ति की जगह है। अव्यक्त प्रकृति में जन्तुओं के पुण्य पापादि कर्म समूह अन्यशरीर धारण करने प फिर संयुत हो जाते हैं। देहधारियों के धर्म अधर्म गुणमात्रक हैं। कायदशा में अपने अपने कारणों द्वारा देहधारी के स्वभाव में वृद्धि को प्राप्त होते हैं। सभी प्राणियों में राजसी. तामसी और सात्विकी तीन गुणमात्रिक प्रवृत्तियां होती हैं। ऊर्ध्वभाग देवात्मक एवं सत्व गुण सम्पन्न है। अधोभाग तमोगुणमय है। दोनों का मध्यवर्ती एवं प्रवर्तक भाग रजोगुणमय है। समस्त त्रिलोकी ने सब जीवों

में यही तीन भाव बदलते रहते हैं। ज्ञानी पुरुष को जीवन में समस्त जीवों के स्वभावों की आलोचना नहीं करनी चाहिए। मनुष्य अविद्या के कारण ही शुभ अशुभ तथा दोनों के बीच की गतियों को प्राप्त होते हैं। जन्तुगण तमोगुण की अधिकता के कारण तत्वज्ञान नहीं प्राप्त कर पाते हैं। तत्व को न जानने पर ही बन्धन में पड़े रहते हैं। प्रथम प्राकृत, दूसरा वैकारिक, तीसरा दक्षिणात्मक बन्धन कहा है इन तीनों से बँधकर जन्तुगण दुःख का अनुभव करते हैं। ये तीनों अज्ञान मूलक बँधन कहे गये हैं। अनित्य पदार्थों में नित्यता का दर्शन, दृश्य में सुख देखना दूसरे की वस्तु में अपनापन देखना, अपवित्र में पवित्रता देखना–जिसके मन में इस प्रकार के दोष रहते हैं, उनकी विपरीतिता के कारण ज्ञान में भी दोष होजाते हैं। राग द्वेष से पूर्ण रूपेण निवृत होजाना ही ज्ञान कहा गया है। ऐसे ज्ञान का अभाव तमोगुण का मूल है। शुभ अशुभ गुणों का प्रेरक रजोगुण है। शरीर कर्मों के कारण धारण करना पड़ता है। जिससे महादुख की प्राप्ति होती है। कान से, नेत्र से, नाक से, त्वचा से जीभ से पुनर्जन्म के कारण भूत कर्मों का जन्म होता है। अपने अपने किये गये कर्मों के फल से ही अज्ञ जीवों को इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषयों की तृष्णा में फँस कर दुखों का अनुभव करना पड़ता है। बार बार वह उन्हीं विषयों में तेली बैल की भांति चक्कर काटते हैं। इसी कारण सभी अनर्थों के मूल भूत अज्ञान से बचने का प्रयोग करते हैं। अज्ञान को शत्रु समझकर ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए। ज्ञान द्वारा ही समस्त अज्ञानों से मुक्ति मिलती है। अज्ञान छोड़ देने पर सांसारिक विषय वासनाओं से विराग होता है। विराग से मन की शुद्धि होती है। मनकी शुद्धि से सात्विक भावनाओं का उदय होता है। जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है।

इसके बाद राग के विषय में कहूंगा जो सभी प्राणियों को अज्ञान में डालता है। राग के द्वारा सभी प्राणी विषय वासना में पड़ते हैं। ऐसे अनुराग से प्रीति, ताप, एवं विषाद का जन्म होता है। इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति न होने पर या बाधा पड़ने पर दुख होता है।

उससे रात दिन याद करने पर सुख मिलता है। यह सब विषयगत राग ही है। जो उसकी उत्पत्ति का कारण है। ब्रह्म से लेकर स्थावर जीव समूह तक सभी इस विषयगत अज्ञान मूलक राग के कारण ही जन्म धारण करते हैं। अतः अज्ञान से सदा बचना चाहिये। यह अज्ञान वर्णाश्रमधर्म विरोधी और सद् साहित्यों के विपरीत है। यह अज्ञान पथ अस्थिर एवं तिर्यक योनि में जन्म देने के कारण है। उस तिर्यक योनि में जन्म लेने से जो यातनायें अनुभव करनी पड़ती हैं। उससे भी अधिक कष्ट इस अज्ञान के कारण मिलता है। भूतादिकों की चार प्रकार की तामसी वृत्तियां बताईं जाती हैं। सात्विक भावनाओं के द्वारा चित्त को सत्व प्रधान माना गया है। सत्व और क्षेत्र का नाना प्रकार का ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान कहा गया है। ज्ञान से ही योग की उत्पत्ति होती है। संसार में फँसे रहना बन्धन और उससे मुक्ति वास्तविक मुक्ति होती है। उस मुक्त अवस्था में जीव का किसी से भी कुछ सम्बन्ध नहीं रहता उसकी एक अचैतन्य अवस्था रहती है। वह केवल आत्मनिष्ठ रहता है। जीव की इस अवस्था को विरूप कहते हैं। मैंने यह आपको ज्ञान और मोक्ष का परिचय कराया।

तत्वदृष्टा लोग मोक्ष को तीन प्रकार का कहते हैं। उसमें पहली मोक्ष ज्ञान बल के द्वारा सांसारिक विषय वासना से वियोग होना कहा है। दूसरी मोक्ष राग द्वेष आदि का निर्मूल करना। जिससे लिङ्गभाव दशामें जीव को कैवल्य की प्राप्ति होती है। कैवल्य से निरंजनत्व और निरंजनत्व से परमशुद्धत्व की प्राप्ति होती है। उस मोक्ष अवस्था में जीव को किसी मार्ग दर्शक की आवश्यकता नहीं होती। तीसरी मोक्ष है तृष्णा का सब प्रकार से अभाव। तृष्णा का अभाव मोक्ष का मूल कारण है। अभिगत शब्दों में प्रतिघात जन्य दुःखानुभूति मुक्त आत्माओं को नहीं होती है। अब इसके उपरान्त दोष दर्शन के द्वारा वैराग्य का लक्षण कहता हूँ। पांच प्रकार के दिव्य एवं मानुष विषयादिकों में अनासक्ति एवं द्वेषाभाव का व्यवहार करना चाहिये क्योंकि इनमें दोषके दर्शन होते हैं। सन्ताप, प्रीति एवं विषादको वर्जित करना

चाहिये। इस प्रकार इन्हें छोड़ देने पर शरीरधारी सांसारिक पदार्थों में ममत्व रहित होता है। यह संसार अनित्य है, अमंगलकारी है, दुख-दायी है। ऐसा सोचकर कार्य एवं कारणों के विशुद्ध तत्व को जानकर ही विज्ञों को चित्तके कषायकी तरह परिपक्वहो जाने पर समस्त दोषों का दर्शन होता है। यह शरीरके समस्त दोषोंको रोकता है। प्राणोंके स्थानों का भेदन एवं मर्मस्थलों का छेदन करता है। और शीतलता से अधिक जगी हुई वायु ऊपर को उठती है। सभी प्राणियों में प्राण-स्थलों में यह वायु की दशा अन्त समय में होती है। संक्षेप में चेतना हीन तथा किये गये कर्मों के संकुचित हो जाने पर यह जीव स्वकृत कर्मों के साथ शरीर से अलग होजाता है। आठों अंग के प्राणों की वृत्तियां छूट जाती हैं। इस प्रकार शरीर छोड़ता हुआ जीवात्मा श्वास रहित दशा में होजाता है। और अन्तमें वह शरीर मृतक नाम से कहा जाता है। जैसे खद्योत जीवित इधर उधर चमकता रहता है। और मर जाने पर उसकी चमक भी नष्ट हो जाती है उसी प्रकार प्राणों और शरीर की दशा जाननी चाहिये। तृष्णा का विनाश तीसरी मोक्ष माना गया है। शब्दादिक पांचों दोषों से द्वेष, और न अतिसय आसक्ति रखना, प्रीति एवं सन्तान से अलग रहना, ही वैराग्य और प्रकृति के विलय के मुख्य कारण हैं। अव्यक्त से लेकर महाभूतों तक कही गई आठ प्रकृतियों को यथाक्रम जानना चाहिये। यही आठ प्रकृति के लय होते हैं। शास्त्रों का विरोध न करने वाले वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी लोग शिष्ट कहे जाते हैं। ब्रह्मा से लेकर पिशाचों तक आठ देवयोनियां कही गई हैं। अणिमा आदि ऐश्वर्य शालिनी सिद्धियां भी आठ होती हैं। वर्षाकाल में आकाश के मेघों में छिपा जल आदि दीखता नहीं परन्तु उसको अनुमान से ही जाना जा सकता है। उसी प्रकार सिद्ध लोग जीवात्मा को दिव्य नेत्रों से देखते हैं सामान्य लोग उसे नहीं देख सकते। यह जीवात्मा द्विजाति उच्चयोनियों से लेकर श्वानों को बांधने वाले चाण्डालों तक की योनियों में प्रवेश करता है। इस प्रकार ऊर्ध्व अधः, तिर्यक योनियों में वह जीव अपने कर्मवश दौड़ता है

चौदह प्रकार के ज्ञानों से परिवित होकर वह शुद्धात्मा प्रकृति का अनुवर्तन करता है। विद्वान लोग केवल प्रकृति को ही सत्य बताते हैं। उनकी दृष्टि से विकार मिथ्या हैं। जिनका कोई अस्तित्व नहीं है वह असत्य या मिथ्या है तथा जिनका सद्भाव है वे सत्य कहे गये हैं। क्षेत्रज्ञ नाम व रूप से रहित है किन्तु नाम व रूप की परम्परा उसी से चलती है। क्षेत्र के जानने के कारण क्षेत्रज्ञ मंगलदायी कहा गया है। इसी से जीव मंगलकारी क्षेत्रज्ञ का स्मरण करते हैं। क्षेत्र की भावना केवल क्षेत्रज्ञों द्वारा होती है। यह क्षेत्र प्रत्यय है। क्षेत्रज्ञ उसका प्रत्ययी है। क्षय, करण, क्षतत्राण, भोज्य और विषयत्व के कारण उस को क्षेत्र बतलाया गया है। महत् से लेकर सम्पूर्ण क्षर अक्षर पदार्थ निश्चय विकार कहे गये हैं। विकारों के कारण पुनः क्षरण होता देखा जाता है इससे इन्हें क्षर कहते हैं। संसार एवं नरकों से पुरुष की रक्षा करता है, दुखों से बारम्बार बचाता है। अतः उसे क्षेत्र कहते हैं। वह सुख दुख एवं मोह उत्पन्न करता है इसलिये उसे भोज्य नाम से भी कहा गया है। अचेतन विषय होने के कारण उसे विभु नाम से भी कहा जाता है। वे सब विकार समूह कभी क्षय नहीं होते अतः वह अक्षर नाम से प्रसिद्ध है।

पुर में सदा शयन करने के कारण पुरुष नाम पड़ा। वह पुरुष शुद्ध, निरंजन की तरह परम निर्मल, ज्ञान, एवं अज्ञान दोनों से विवर्जित, अस्ति तथा नास्ति इन विशेषणों से रहित हैं। उसके लिये बद्ध, मुक्त, गतिशील एवं स्थिति कोई भी विशेषण लागू नहीं होता। परम शुद्धता के कारण वह आनन्द स्वरूप कहा जाता है। परम हृष्ट होने के कारण समदर्शी कहा गया है। आत्म प्रत्यय कर्त्ता होने के कारण उसमें कोई हेतु बाद नहीं रहता। वह भावनाओं द्वारा ग्राह्य, अनुमानों एवं चिन्तनों द्वारा गम्य है इन उपायों द्वारा उसे देखने वाले मोह के वश नहीं होते इस दृश्य एवं अदृश्य विश्व प्रपंच में एक मात्र निर्देश्य परमश्रेष्ठ, ज्ञानमय, शान्तिमय सर्वज्ञपुरुष को जब प्राणी देखता है तभी वह समस्त तत्वों का ज्ञान प्राप्त करता है। उसे तभी सच्ची शान्ति

मिलती है। आत्मा द्वारा वह उस कारणात्मासे संयुक्त होता है प्रकृति एवं कारण में वह सर्वत्र अपनी ही आत्मा में उपासना करता है। इस लोक तथा परलोक में वह विद्यमान रहता है। और नहीं भी रहता। वह एक है या अनेक, क्षेत्रज्ञ है या पुरुष, आत्मवान है या निरात्मा, चेतन है या अचेतन, कर्त्ता है या अकर्त्ता, भोक्ता है या भोज्य इन्हीं किन्हीं विशेषणों से युक्त है। उस निरंजन को जानने के बाद संसार में जन्म नहीं होता।

उसकी कोई संज्ञा नहीं अतः वह अवाच्य है। उसका कोई हेतु नहीं इस कारण वह अग्राह्य है। व्यक्त और अव्यक्त सृष्टि का संहार, एवं विस्तार उसी परम पुरुष से होता है। वही क्षेत्रज्ञ इस संसार की सृष्टि करता है। प्रलय में वही उसे ग्रस लेता है। बुद्धि पूर्वक सृष्टि और लय उसी के द्वारा होती है। उसका आदि नहीं वह चिरकालीन है। सृष्टि के आदिमकाल से प्रलय तक उस परम पुरुष को प्रकृति ढके रहता है उस समय वह परम पुरुष अबुद्धि पूर्वक रचना करता है। उसे पुरुष का पुरुषार्थ ही मानना चाहिये। जगत के इस सृष्टि एवं लय को कोई ईश्वर कृत मानते हैं कोई प्रकृति कृत। परन्तु सृष्टि का यह व्यापार अनादि एवं अनन्त है। इस प्रकार यह प्रकृति जन्य सृष्टि का तीसरा कारण मैंने आपको सुनाया। इसमें निष्ठावान व्यक्ति मुक्ति लाभ करता है। इस प्रकार मैंने आप लोगों से तीन सर्गों की चर्चा की अब आगे आप लोग क्या सुनना चाहते हैं, वह बतलाइये।

इति श्री वायु महापुराण का प्रतिसर्ग वर्णन नाम का एक सौ दो वां अध्याय समाप्त ॥१०२॥

एक सौ तीन वां अध्याय

[सृष्टि वर्णन]

ऋषि बोले—हे सूतजी! आपने यह महान आख्यान हमें सुनाया। मनु के सहित समस्त प्रजाओं, ऋषियों समस्त देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, भूतों, पिशाचों उरगों राक्षसों दैत्यों, दानवों यक्षों, गन्धर्वों पक्षियों आदि के कर्म, जन्म धर्म आदि की विचित्र कथायें

सुनाई जो मन एवं कानों को अत्यन्त सुख देने वाली हैं। हे सूतजी ! ये कथायें सचमुच मनुष्यों को महाप्रलय तक प्रसन्न रखने वाली हैं। इस प्रकार बड़े आदर पूर्वक उन ऋषियों ने सूतजी से कहकर सृष्टि के वर्णन की कथा को पूछा।

हे सूतजी ! जब क्षेत्रज्ञ समस्त बन्धनों से मुक्त होजाता है। प्रकृति के सम्पूर्ण तत्व, रजत, तामस ये तीनों गुण समान अवस्था वाले हो जाते हैं, जीव ब्रह्म के साथ अव्यक्त में लीन हो जाता है तब फिर से सृष्टि किस प्रकार होती है। इसे आप अच्छी प्रकार बतलाइये। ऋषियों के द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर लोमहर्षण सूतजी पुनः सृष्टि की व्याख्या करने लगे।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! संक्षेप से पुनः सृष्टि का क्रम आपसे कहता हूं। सो ध्यान से सुनो इस विषय में जितनी युक्ति और तर्क हैं उन्हें सभी को बताता हूं। जिस प्रकार अव्यक्त परोक्ष एवं दुरधिगम्य है उसी प्रकार सृष्टि भी है। जब विकार विलीन हो जाते हैं उस समय पुरुष प्रकृति में साधर्म्य से प्रवेश करता है। प्राणियों के अव्यक्त तथा व्यक्त सभी कर्म भी लीन होजाते हैं। सत्व में सत्वमात्रिक धर्म लीन होता है। तम में तमोमात्रिक गुण लीन होता है। गुण साम्य में ये दोनों धर्म विभाग रहित होजाते हैं। उस समय प्रधान के सभी कार्यों में प्रवृत्ति बुद्धि पूर्वक होती है। क्षेत्रज्ञ उस समय गुणों को अबुद्धि पूर्वक ग्रहण करेगा। साम्य अवस्था में वे गुण सृष्टि के आरम्भ के समय क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित होकर विषमता को प्राप्त होते हैं। तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ दोनों व्यक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित सत्व विकारों को उत्पन्न करते हैं। वे विकार महत आदि चौबीस होते हैं। सभी युक्त आत्माओं का एक मात्र स्वामी, ब्रह्मा एवं ब्रह्ममय और महान है। आदि देव प्रधान प्रकृति के अनुग्रह के लिये उसका यह आविर्भाव कहा जाता है। वे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अनादि एक परम सूक्ष्म कहे जाते हैं। उन दोनों का अनादि कालीन संयोग है। मशक और उदम्बर (गूलर), जल व मछली के समान उनका सम्बन्ध नित्य है।

सत्य का व्रत रखने वाले ध्याननिष्ठ ब्रह्माजी की सृष्टि के आरम्भ काल के समय आपस में विधर्मी रजस सत्व, तमोगुण कार्य कारण वश व्यक्तावस्था को प्राप्त होते हैं। अभिमानी क्षेत्र और उसके जानने वाले क्षेत्रज्ञ आपस में व्यक्तभाव को प्राप्त होंगे। वे अपने गुणों के कारण ही विकार अवस्था को प्राप्त होते हैं। उनके पहले युग के गुण उनके पास स्वयं ही आते हैं, इसीलिए उनको वे अच्छे मालूम होते हैं। पूर्व सृष्टि में जो क्षेत्रज्ञों के गुण रहते हैं, उन्हीं गुणों को वे सृष्टि काल में भी पुनः प्राप्त करते हैं। हिंसा, अहिंसा मृदु, क्रूट, धर्म, अधर्म, सत्य असत्य, ये सभी गुण उनसे पूर्व सृष्टि के पास रहते हैं अतः इस कारण सृष्टि पर वे उन्हें प्राप्त होते हैं। इसी कारण वश उनको यह अच्छे मालूम देते हैं। महाभूत, इन्द्रियार्थ, मूर्त पदार्थ और प्राणिवृन्द की अनेकता, ये सब कार्य कलाप गणों की विचित्रता कारण ही होते हैं। मैंने आप को सूक्ष्म रूप में पुनर्वार सृष्टिका वर्णन सुनाया है, अब मैं आपको ब्रह्माजी की उत्पत्ति के विषय में बतलाऊँगा।

नित्य, सत, असत, उभयात्मक अव्यक्त, कारण स्वरूप प्रकृति पुरुष के संयोग के एक महान प्रतिभाशाली पुरुष पैदा होता है, उसी का नाम ब्रह्माजी होताहै वही समस्त सृष्टिके उत्पन्न पदार्थों को पैदा करते हैं, वे सबके पिताहैं। वे अभिमान गुणात्मक सभी लोकों को पैदा करता है। उसी को महत्पद से विशिष्ट कहते हैं। उसी महत् से अहङ्कार का उत्पन्न होता है और उसी की आत्मा से भूतों की सृष्टि पैदा होती है। वे सभी भूतचय एक साथ ही उत्पन्न होते हैं। अतः वे ही इन्द्रियों के नाम से पुकारे जाते हैं। उन भूत समूह से अन्यान्य भूत भेदों की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार सृष्टि का प्रवर्तन होता है। हे श्रेष्ठ ऋषियो! सृष्टि की यह कथा बहुत पवित्र और महान है। सूतजी ने कहा! जो और जैसा हमने सुना वैसा मैंने सब आपको बदलादिया है। इसके बाद सभी नैमिषारण्यवासी ऋषियों ने उसदीर्घ कालीनयज्ञ में स्नान किया और पुण्य लोकों को प्राप्त किया आप लोगभी देवताओं की पूजा इत्यादि करके दीर्घायु के भोगों को भोगकर पुण्यशाली लोकों को प्राप्त करोगे।

और वहां इच्छानुसार विहार करोगे। हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! नैमिषारण्य के ऋषियों के अनुसार तुम लोग भी अनेक यज्ञ करके स्वर्ग को प्राप्त करोगे। इस प्रकार प्रक्रिया अनुषंग, उपोद्घात और उपसंहार इन चार पादों से युक्त लोक सम्मत इस महापुराण को लोक कल्याण के लिये भगवान वायुदेव ने यज्ञ के प्रसंग में मुनियोंको सुनाया, इन्हीं की कृपासे इस लोक की प्रधान सृष्टि, भूतों की उत्पत्ति और विनाश की कथा को अच्छी तरह सुन कर बुद्धिमान पुरुष मोह में नहीं पड़ता है जो विद्वान पुरुष इस प्राचीन इतिहास को सुनता और सुनाता है अथवा अपने शिष्यों को सुनाता है वह अनन्त समय तक सुख भोगता है और ब्रह्मसाम्राज्य प्राप्त करके ब्रह्माजी के साथ मुक्ति प्राप्त करता है। इस समस्त भूमण्डल के अधीश्वर प्रजापतियों की गाथाओं का गान करने से ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। कृष्णद्वैपायन वेदव्यास रचित इस महा-पुराण को ब्रह्मवेत्ता लोग ही जानते हैं, यह आयु प्रदान करने वाला पूर्ण प्रदाता, वेदों द्वारा सम्मानित है। जो मन्वन्तरों देवताओं और ऋषियों का गुणागान करता है वह पापों से मुक्ति पाकर महान पुण्य प्राप्त करता है। जो विद्वान पर्वों के अवसर पर इस पवित्र कथा को सदा सुनाया करते हैं। वे स्वर्ग का सुख प्राप्त करके ब्रह्मत्व को प्राप्त करके ब्रह्मत्व को प्राप्त होते हैं। इस पुराण के अन्तिम उपसंहार पाद को जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाला और अक्षय फल देने वाला है, श्राद्ध के अवसर पर सुनाते हैं, वे अपने पितरों को बहुत ही तृप्त करते हैं। पुरा, अर्थात् प्राचीनकाल में इसकी प्रतिष्ठा थी इस लिये इसको पुराण कहते हैं, जो मनुष्य इस पुराण के इस अर्थ को जानता है वह पाप कर्मों से मुक्त होता है। तीनों वर्णों में जो श्रेष्ठ इतिहास को सुनकर धर्म कार्य करता है और धर्म की ओर मन लगाता है वह अपने शरीर में स्थित रोम कूपों की संख्या के बराबर करोड़ों सहस्रों वर्ष तक स्वर्ग का आनन्द प्राप्त करता है। इस पुण्य प्रदान करने वाले सभी पापों को दूर करने वाले इस पुराण को ब्रह्माजी ने मार्तण्डेश्वर को वायदेव को प्रदान किया था। वायु से इसे शुक्राचार्य ने

प्राप्त किया, शुक्राचार्य से बृहस्पति को प्राप्त हुआ, बृहस्पति ने सवित्ता को और सविता ने मृत्यु को, मृत्यु ने इसकी शिक्षा इन्द्र को दी, इन्द्र ने वशिष्ठ को, वसिष्ठ ने सारस्वत को, सारस्वत ने त्रिधामा को, त्रिधामा ने शरद्वत को फिर शरद्वत ने त्रिविष्ठ को त्रिविष्ट ने अन्तरिक्ष को इसे प्रदान किया, अन्तरिक्ष ने वर्षों को, वर्षों ने त्रय्यारुण को त्रय्यारुण ने धनंजय को, धनंजय ने कृतञ्जय को, कृतञ्जय ने त्रणजंय को त्रणजंय ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने गौतम को, गौतम ने निर्यन्तर को प्रदान किया। इसके बाद निर्यन्तर ने बाजश्रवा को, बाजश्रवा ने सोमसुष्मा को, सोमसुष्मा ने त्रणविन्दु को, उन्होंने दक्ष को, दक्ष ने शक्ति को, शक्ति से इस उपदेश को पराशर ने गर्भ में ही प्राप्त किया, पराशर से जातुकर्राय को और जातुकर्राय से भगवान द्वैपायन ने प्राप्त किया। हे ब्राह्मणो! उन्हीं द्वैपायन से इसका उपदेश मुझे मिला, और मैंने आप सबको सुनाया।

शांशपायनजी बोले—हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! मैंने भी इस कथा को व्यासजी से प्राप्त किया था, और इसको अपने पुत्र अमित बुद्धि को सुनाया था। इसके आदि गुरू ब्रह्माजी ही हैं। इस प्रकार यह पुण्य कथा आप लोगों को सुनाई। सर्व प्रथम गुरुजनों को प्रणाम करना चाहिए। धन, यश, आयु पुण्य देने वाले इस पवित्र वर्णन को ब्राह्मणों को सदानियम पूर्वक सुनाना चाहिये, तथा पवित्र और उत्तम कथा को भूलकर भी अपवित्र और अनजान मनुष्य को नहीं बतलाना चाहिये तथा जो एक वर्ष तक सेवा भाव से शिष्य रूप में न रहा हो, उसे भी नहीं सुनाना चाहिए। इसका उपदेश अश्रद्धालु, अपुत्री और अहित कारी मनुष्य को कभी भी उपदेश नहीं दे। जिसका उत्पत्ति स्थान अव्यक्त है जिसकी देह व्यक्ताव्यक्त काल है, जिसका मुख अग्नि है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र है, जिसके कान दिशायें हैं जिसकी नाक वायु है वेद जिसकी वाणी है, जिसका शरीर अन्तरिक्ष है पृथ्वी जिसके चरण हैं रोमावलियां जिसके तारे हैं सभी दिशायें जिसके अंग हैं, वेदों के अंग जिसकी पूँछ हैं। जो सब देवों के देव सबके पिताओं के भी पिता और

समस्त लोक में व्याप्त वरदायक महेश्वर ब्रह्मा को मैं सर्व प्रथम नमस्कार करता हूँ ॥ १०३ ॥

इति श्री वायु महापुराण का सृष्टि वर्णन नामका एक सौ तीन अध्याय समाप्त

एक सौ चार अध्याय

[व्यास की सन्देह-निवृति]

शौनकादि ऋषियों ने कहा—हे महामते सूतजी ! आप सत्य ही पाप रहित हैं, क्योंकि भगवान व्यासजी की कृपा से आप निखिल शास्त्रों के वर्णन को बतला चुके हैं। आपने अठारह पुराणों को इतिहास उपक्रम और उपसंहारादि सहित बतलाया है। आपने हमको बहुत स्पष्ट करके चौदह सहस्र श्लोकों में वर्णित इस मात्स्यपुराण को सुनाया है और उतनी ही संख्या वाले भविष्य महापुराण को भी आपने बतलाया है, भविष्य में मत्स्य की अपेक्षा पांच सौ श्लोक अधिक ही बतलाये जाते हैं। इसके बाद आपने पवित्र नौ हजार श्लोकों के मार्कण्डेय पुराण को भी सुनाया है। इसके बाद अठारह हजार ब्रह्मवैवर्त नामक पुराण को भी बतलाया है। बारह हजार एक सौ श्लोकों का ब्रह्माण्ड पुराण को भी हमें बताया, अठारह हजार श्लोकों का भागवत पुराण भी सुनाया, दस हजार श्लोकों का ब्रह्म पुराण को भी सुनाया है तथा दस हजार श्लोकों का बामन पुराणको भी सुनायाहै दस हजार छः सौ श्लोकों का आदि पुराण तथा तेइस हजार श्लोकों का वायुपुराण तेइस हजार श्लोकों का नारद पुराण, उन्नीस हजार श्लोकों का गरुड़ पुराण पचपन हजार श्लोकों का पाद्मपुराण को भी हमें बतलाया है। इसके बाद सत्रह हजार श्लोकों का कर्म पुराण, चौबीस हजार श्लोकों का बाराह पुराण, इक्यासी हजार श्लोकों का स्कन्द पुराण को भी हमने आप लोगों को बतलाया है। इस तरह परम विस्तृत अठारह पुराणों की गाथाका वर्णन आपने कियाहै। उन पुराणों में सभी धर्मों का निरूपण, रागी-वैरागी, यति, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, स्त्री, शूद्र विशेषतया ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य तथा अन्य वर्णसकर आदि के धर्मों का वर्णन है। गंगा आदि नदियों यज्ञों, व्रतों तपो जपों आदि के नियम उनमें वर्णित

हैं। उनमें अनेकों प्रकार के दान, यम, नियम, योग, सांख्य, भागवत धर्म भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, अनिल, नीरज, अनेक प्रकार की उपासनाओं आदि का विधि सहित वर्णन किया है। ब्राह्य,शैव, सौर, शक्त, आर्हत छः दर्शन का उनमें विवेचन किया गया है इन सब बातों के अलावा हमारी यह इच्छा शेष रह जाती है कि इन बातों के अलावा और कोई बात शेष रह जाती है कि नहीं, भगवन वेदव्यास को या आपको ऐसी कोई बात नहीं जो ज्ञात न हो, आप सब पुराणों के जानकार हैं कृपा करके हमारे इस सन्देह को दूर कीजिए।

सूतजी बोले—हे शौनकजी ! इस दुर्लभ प्रश्न के उत्तर को सुनिये। ये बहुत ही गोपनीय है भगवान वेदव्यास ने सभी पुराणों की रचना करके अपने मन में सोचा कि इन पुराणों में मैंने वर्णाश्रम धर्म के मानने वाले लोगों के कर्तव्यों का वर्णन कर दिया है। वेदों के अनुसार अनेक मोक्ष देने वाले मार्गों का वर्णन कर चुका, ईश्वर और जीव के भेदों का वर्णन कर चुका हूं, वेद सम्मत; परब्रह्मी निर्णय कर चुका, वह परब्रह्म कभी नष्ट नहीं होता, तथा वह शुद्ध, अनादि, अनन्त, अनामय नित्य, सर्वगत, कूटस्थ स्थाणु है समस्त इन्द्रियों में विचरण करने वाले नित्य चिन्ह मात्रा, अव्यय, अतीन्दिय है। इस अखिल ब्रह्मांड में व्याप्त है। जिस प्रकार केन, तरङ्ग बुलबुले जलके ही विकार हैं। ये जल से अलग कुछ भी नहीं हैं। इसी प्रकार ब्रह्म समस्त विश्व विभूतियों से पृथक नहीं है। सब कुछ ब्रह्म ही है। जगत में अनेक कुछ नहीं है। यही वेदों का तात्पर्य है। इसी से समस्त ब्रह्मांडों की उत्पत्ति होती है। उसी में ये पुनः समाविष्ट हो जाते हैं। उसी के उन्मेष और निमेष से जगत का प्रलय एवं उदय होता है। उसी के आधारभूत वह पराशक्ति है जो समस्त जगत की सृष्टि स्थिति एवं विनाशकर्त्री है। उसी में यह समस्त जगत अवस्थित है। इसी से इसकी उत्पत्ति, पालन और लय होती है। उसे न जानने से जगत सत्ता का बोध होता है उसको जान लेने पर सब झूँठा जान पड़ता है। वह असत्य जड़, दुःख एवं अवस्तु निरूपति किया गया है।

इसके विपरीत वह पर ब्रह्म सत् चित् आनन्द एवं मूर्तमान है। वह जीवों की जागरण अवस्था में विश्व, स्वप्नावस्था में तेजस एवं सुषुप्ति में प्राण संज्ञक है, सभी अवस्थाओं में उसका अस्तित्व स्मरण किया जाता है। वह नेत्रों का भी नेत्र है। कानों का भी कान है। त्वचा का भी त्वचा है। रसना का भी रसना है। अधिक क्या कहा जाय वह प्राणों का भी प्राण है। मनुष्य अपनी बुद्धि ज्ञान, प्राण एवं क्रिया शक्ति इन सबके द्वारा निरन्तर ध्यान करते हुये भी उसको नहीं पा सकता है। रस्सी में सांप, बालू में जल, गगन में नीलिमा की तरह अविधा के कारण' यह असत्य जगत सत्य की भांति मालूम पड़ता है। जैसे आकाश घटाओं आदि से ढका होने पर घटाकाश कहलाता है उसी प्रकार यह परब्रह्म भी कार्यों की उपाधि से ढका होने पर जीवात्मा आदि नामों से कहा जाता है। विचित्र गुणों वाली तथा चित्रकारिणी माया के द्वारा ब्रह्माण्ड रूपी चित्र पर ब्रह्म को चित्रित कर रखा है। यह अक्षर परब्रह्म अन्यदौड़ने वालों को भी आक्रान्त करने वाला तथा मुक्ति युक्त वक्ता की वाणी से भी परे है। वेदएवं वेदान्तों के सिद्धान्तों द्वारा उसका निर्णय किया जाता है सुना जाता है। कि अपनी अव्यक्तमें आत्मा रूप से स्थित, परमानन्द स्वरूप आनन्द विग्रह लीला विकास रूप में गोपियों के समूह में विचरण करने वाले, रत्नों से चमकीले मोर पंख के बने. मनोहर मुकुट को धारण करने वाले चमकती हुई बिजली के समान रेखाओं के तुल्य चमचमाते हुये कुण्डल धारण करने वाले कानों तक लम्बे सुन्दर खंजन के समान चंचल नेत्र वाले कुंजों में गोपिकाओं के साथ इतिक्रीड़ा करने वाले पीताम्बर धारण करने वाले चन्दन अंगरागादि से सुन्दर, अधरामृत द्वारा संसिक्त वेणु का नाद सुनाकर गोपियों को मोहित करने वाले, चित स्वरूप, रत्नपूर्ण गुजाओं और मृगों के द्वारा घिरे हुये पवित्र यमुना तट पर तमाल के रमणीय वनों में कदम्ब चम्पक अशोक और पारिजात के वृक्षों से मनोहर, मोर, कबूतर, शुक, पिक, आदि पक्षियों के कोलाहल से पूर्ण, वनप्रान्तों में गौओं के रक्षार्थ इधर उधर दौड़ते हुये, श्रीराधा के

विलास के प्रेमी, श्री कृष्ण ही वह परम पुरुष हैं। वेदों में भी यही कहा है उन्हीं से यह ब्रह्मान्ड प्रकाशमान है। वह परम पुरुष श्रीकृष्ण भगवान, चिन्मात्र निर्गुण भेद रहित गोलोक में विहार करते हैं। उनसे परे कोई वस्तु इस विशाल ब्रह्मांड में नहीं है। निगम आगम इसे प्रमाणित करते हैं। निगम के कहने पर वह परब्रह्म अक्षर से भी परे है। अक्षर से परे कौन हैं ऐसा श्रुतियां निरन्तर कहती हैं। श्रुति के वचनानुसार सत्यवती सुत भगवान वेदव्यास ने चिरकाल तक ध्यान किया परन्तु उसके तत्व चिन्तन तक नहीं पहुँचे।

सूतजी बोले—हे ऋषियो! बहुत समय तक विचार मग्न व्यासजी वेदार्थ निश्चय में समर्थ नहीं हुये वेद साक्षात् नारायण का रूप है। बड़े बड़े विद्वानभी मोह को प्राप्त होतेहैं। इसके बाद व्यासजी इस हृदय को आनन्द देने वाली चिन्ता में पड़े रहे। और बार बार यही सोचते रहे कि कहां जाऊँ क्या करूँ? कोई सर्वज्ञ द्रष्टा नहीं है जिसके पास जाकर अपना सन्देह दूर कर सकूँ। ऐसा विचार कर वे सुमेरु पर्वत की एक अन्धकारमय गुफा में जाकर तपस्या करने लगे। गुफा में आंखों को भी कष्ट कारक घोर अन्धकार था। वहां एक परम रमणीय जंगल भी था। जिसमें अनेक प्रकार के वृक्ष और लताओं के कुँज बने हुए थे। वहां पक्षी गण निरन्तर कलरव करते हैं। उस मनोहर वनप्रदेश में प्राणी क्षुधा, पिपासा, भय, क्रोध, सन्ताप, ग्लानि आदि मानसिक कष्टों से मुक्त होजाता है। कमामनियों के सुशोभित अनेक जलाशय वहां पर थे। उन जलाशयों के किनारे पर स्वर्ण जटित शिलाओं पर विचरण करने वाले पक्षियों की परछाईयां दिखाई पड़ती थीं। कमलवनों में विचरण करने वाला वायु वातावरण को अत्यन्त शुद्ध कर रहे थे हिंसक जन्तु भी अपनी हिंसा के भावों को छोड़कर वहां बैर रहित उपकारी कार्यों से जीवन बिता रहे थे। चारों ओर शान्त निर्जन वातावरण था। ऐसे परम रमणीय वनप्रान्त में अत्यन्त सुन्दर गुफा में प्रवेश करके व्यासजी आहार चित्त एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मन से चारों वेदों का ध्यान करने लगे। इस प्रकार उनको तीन

सौ वर्ष बीत गये। तब वहीं वेदव्यास जी को चारों वेदों के दर्शन हुये। वेद भगवान के मनोहर कमल के समान नेत्र थे। उनके शिरोभाग जटा मुकुट से अलंकृत थे। उनके हाथों में कुशा के स्तवक तथा कमल शोभायमान थे। मृगचर्म ओढ़ने पर अपूर्व शोभा सम्पन्न लग रहे थे। सोलह स्वरों तथा बीच बीच में प्रणवर (ॐ) के उच्चारण करने से उन के मुख की शोभा अधिक लग रही थी। कवर्ग तथा चवर्ग के सभी वर्णों के द्वारा उनके हाथों की पांचों उँगलियों समेत दोनों हाथ परम शोभायमान थे। पवर्ग उनके दाहिने चरण में तथा तवर्ग उनके बाँये चरण की शोभा कर रहे थे। उनके कुक्षि में अन्त के सभी वर्ण विराजमान थे। नवर्ण नाभि प्रदेश में क वर्ग पृष्ठ प्रदेश में, म उदर प्रदेश में तथा य र ल व केशपाशों के शोभा दायक थे। अग्नि बीज दक्षिण स्कन्ध पृथ्वी बीज ग्रीवा प्रदेश तथा भूत बाम स्कन्धमें विराजमान थे। सभी अन्तस्थ वर्ण (य र ल व) उनकी सन्धियों में शोभायमान थे। वेदव्यास ने उन वेदों के हृदय कमल प्रदेश में स्थित मथुरा पुरी का दर्शन किया क्योंकि वह पुरी स्वय भगवान को उत्पत्ति की स्थली है। उनकी भौहों के मध्य में काशी को देखा आधार स्थल में माया पुरी को देखा। लिङ्ग प्रदेश में काँची, नाभि मण्डल में अवन्ती, क प्रदेश में द्वारका एवं प्राणोंमें प्रयाग को स्थित देखा। उन वेदोंके दाहिनी तथा बांई ओर गंगा जमुना को बहते हुये देखा। मध्य में साक्षात् सरस्वती की धारा थी. मुख प्रदेश में गया क्षेत्र था दाढ़ी और कण्ठ के बीच में प्रभास क्षेत्र था। व्यास जी ने उनके ब्रह्मरन्ध्र में बदरिकाश्रम के दर्शन किये। दोनों नेत्रों में पौण्ड्रवर्धन और नैपाल को देखा तथा ललाट में पूर्णगिरि नामक पीठ के दर्शन किये। कण्ठ में मथुरा पीठ, कटि में कांची पीठ, स्तनों में जालन्धर पीठ का व्यासदेव ने दर्शन किया। कानों में भृगुपीठ नासिकापुर में अयोध्या, ब्रह्मरन्ध्र में ब्राह्मतीर्थ तथा सीमन्त में शैवतीर्थों के दर्शन किये। जीभ के अग्रभाग में शाक्ततीर्थ, हृदय कमल में वैष्णवतीर्थों का निवास था। चक्षु प्रदेशों में सौर और छायामें बौद्धतीर्थों को भी देखा। कण्ठ देशमें सौत्रामणि यज्ञ और उन प्रदेशों में पशुबन्धन देखा दक्षिण कटि प्रदेशमें वाजपेय

तथा मुख प्रदेशमें अग्निहोत्रका दर्शन किया। इसी प्रकार वाम कटिप्रदेश में अश्वमेध, उदरमें नरमेध, शिरोदेशमें राजसूय तथा अधरमें आवसथ्य का दर्शन किया। वेदों के ऊपरके होठों में दक्षिणाग्नि को मुखमध्य में गार्हपत्य अग्निको श्रुतियों में हवनकी अग्निको तथा रोम कूपों में सभी मन्त्र समूहों को देखा। समस्त पुराण वेदभगवानका पूजन कर रहे थे। संहितायें उनकी अलग-अलग उपासना कर रहीं थीं कर्म, उपासना एवं ज्ञान इन तीनों अंगों से उन वेद भगवानकी पूजाकी जारही थी। वे वेद भगवान भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हैं। ऐसे वेदों के दर्शन करके व्यासजी परम विस्मित हुये। वेद कोटि सूर्यके भान प्रकाशमान तथा कोटि चन्द्रमाके समान सुन्दर प्रकाशमान लगरहे थे। मुनिवर वेदव्यास उनके चरणों में गिर पड़े और बोले आजमैं कृतार्थ होगया, मेराज न्मसफल हो गया, मेरा मन मेरी आयु फलवती होगई। जो हे भगवन्! आपके आज दर्शन प्राप्त हुये। आपसे इस जगतके लौकिक और अलौकिक जो भी पदार्थहैं वे सब आपको ज्ञात हैं। भूत भविष्य सभी वस्तु आपको ज्ञात हैं। आप केवल प्रकृति मार्गके उपदेष्टा नहीं हो। आप रागासक्त प्राणियोंकी स्वेच्छा चारिताका विधान बनातेहो। आपके वचनइस जगत को मिथ्या और ब्रह्मके प्रतिपादन करने वालेहैं। आप लोक कल्याणके लिये परमार्थका निरूपण करतेहो। आपके शब्द ब्रह्मके द्वारा अधिकारियोंने भेद बनाकर कर्म एवं ज्ञानके उपदेशों द्वारा समस्त जगत की रक्षाकी है। आपमेरे ऊपर कृपा करतेहैं अतःमैं कुछ पूछना चाहता हूँ। कामना वाले मनुष्यों के सतकर्मोंके फलसे स्वर्ग प्राप्त होताहै। ईश्वरके चिन्तनमें मन लगाने वालों के कर्मोंके फल चित्तशुद्धिहै। चित्तशुद्धि से ही ज्ञानकी प्राप्ति होतीहै। ज्ञानसे ही मोक्ष प्राप्ति होतीहै। मोक्ष ही ब्रह्मके साथ एकता कहो है। वह सत् चित् एवं आनन्द रूप है। उसके बाद सभी कृत और अकृत समाप्त हो जाताहै। फिर उसका फल नहीं भोगना पड़ता। इसका निर्णय भली प्रकार आप लोगों ने ही किया है। मेरे हृदय में सन्देह है कि उस ब्रह्म से बढ़ कर कोई सत्ता है यानहीं व्यासजी के ऐसे वचन सुनकर वेद भगवान 'बहुत अच्छा' कह कर बोले

वेद भगवान ने कहा—हे परम बुद्धिमान व्यासजी आपको धन्यवाद है। आप साक्षात् विष्णु के स्वरूप ही हैं। आप शरीर धारियों की आत्मा हैं। आप अजन्मा है फिर भी लोक कल्याण को जन्म लेते हो। आपको संसार के बन्धनों का कोई भय नहीं है। भगवती माया से आप अपने ज्ञान के कारण छुये नहीं गये हो अपनी इच्छा से शरीर धारण करते हो तथा अपनी इच्छा से ही तिरोहित होते हो। आपने हमारे मतों का ही प्रतिपादन किया है। पुराणों, इतिहासों एवं सूत्रोंमें आपने अनेक प्रकार से हमारे ही सिद्धान्तों का वर्णन किया है। वह पर, अक्षर, ब्रह्म सभी कारणों का कारण है। उससे अलग और परे कुछ भी नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भांति वह आत्मा का भी आत्मा है। उसी को परम समझना चाहिए। हम लोग जो शब्द स्वरूप है उस परब्रह्म की महिमा को नहीं समझ पाते क्योंकि वह अक्षर ब्रह्म शब्दों के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता है।

इति श्री वायु पुराण का व्यास सन्देह निवृत्ति नामक एक सौ चार वां अध्याय समाप्त हुआ ॥१०४॥

एक सौ पांचवां अध्याय

[गया माहात्म्य]

वायु बोले—हे ऋषिगणो ! इस कथा को कहने के बाद अब मैं सर्वोत्तम गया के माहात्म्य को कहूंगा। जिससे प्राणी सब पापों से छूट जाते हैं।

सूतजी बोले—हे ऋषियो ! एक बार महाभाग्यवान सनक आदि देवर्षियों के साथ नारद जी ने सनत्कुमार को प्रणाम करके पूछा—

नारद जी बोले—हे सनत्कुमार जी ! आप हमें उत्तम से भी उत्तम किसी तीर्थ का माहात्म्य बतलाने की कृपा करिये जिसके पढ़ने सुनने से सभी प्राणी तर जाते हैं।

सनत्कुमार जी बोले—हे नारदजी ! हम आपकी प्रार्थना पर तीर्थों में श्रेष्ठ गयाके माहात्म्य को बतला रहे हैं। जो श्राद्ध आदि पैत्रिक कार्यों में तारने वाला है। गया तीर्थ सब तीर्थों में, सब देशों सबसे श्रेष्ठ है

निर्भय पूर्वक यज्ञ के समाप्त हो जाने पर ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में गृह इत्यादि प्रदान किये। श्वेत बाराह कल्प में उसी पवित्र स्थान पर गयासुर ने यज्ञ का अनुष्ठान किया तभी से यह परम पुनीत क्षेत्र गया के नाम से प्रसिद्ध है इस तीर्थ को ब्रह्माजी बहुत अधिक चाहते हैं। नरक से डरने वाले पितरगण भी इस पुण्यशाली तीर्थ की बहुत इच्छा करते हैं। वे पितरगण कहते हैं कि जो पुत्र गया की तीर्थयात्रा करेगा, वह हम सबका दुःख संसार से त्याग देगा। इस पुराण तीर्थ में पुत्र को गया देखकर पितरगण अपने घर में खुशियां मानते हैं, वे इस प्रकार कहते हैं कि इस पुनीत तीर्थ में अपने पैरों से भी जल के छूने पर पुत्रगण हमें सब कुछ दे देंगे। वे कहते हैं कि यदि हमारा एक पुत्र भी गया यात्रा कर आयेगा तो अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करेगा। यदि एक पुत्र भी नीले बृषभ का दान करेगा, तो हम सब का उद्धार करेगा। इस गया तीर्थ में जाकर जो पुत्र अन्न का दान करता है। पितरगण उसी सुपात्र पुत्र से अपने को पुत्रवान् समझते हैं। गया में तीन पक्ष तक निवास करने वाला पुत्र अपने सात पीढ़ी पितरों का उद्धार करते हैं। यदि तीन पक्ष तक न रह सके तो पन्द्रह दिन या सात दिन के निवास करने का भी बहुत फल होता है। महाकल्प काल से भी इकट्ठे किये हुए पाप कर्मों का भी गया तीर्थ यात्रा करने नाश होजाता है। वहां पर पितरों के उद्देश्य से पिण्डदान करना चाहिये, अपने लिए भी तिल के बिना पिण्डदान करने का विधान बतलाया है। ब्रह्महत्या, मदिरापान, चोरी, गुरुजनों की स्त्री के साथ समागम करना ऐसे कठोर महान पाप और पापियों के सत्संग होने वाले अन्य पाप कर्म भी गया श्राद्ध करने से नष्ट होजाते हैं। अपना औरस पुत्र हो अथवा किसी दूसरे का पुत्र हो, जब गया तीर्थ की पवित्र भूमि पर जिसके नाम से पिंडदान करता है, उसको वह पिंड शाश्वत ब्रह्म पर को प्राप्त करता है। इस गया तीर्थ में नाम और गोत्र का उच्चारण करके पिंडदान करता है, वह चाहे जिस किसी का जिस किसी के निमित्त से दिया हो वह मनुष्य परमगति को प्राप्त करता है।

ब्रह्मज्ञान, गयाश्राद्ध, गौशाला में मृत्यु प्राप्त करना, और कुरुक्षेत्र में रहने से मनुष्यों को मोक्ष को प्राप्त होता है।

इन सबों से ब्रह्मज्ञान, गौशाला में मृत्यु प्राप्त करना तथा कुरुक्षेत्र में रहने का भी इतना फल नहीं मिलता है जितना कि गया तीर्थ में सुपात्र पुत्र यात्रा करता है अथवा उस तीर्थ में मनुष्य पिण्डदान करने के फल को प्राप्त करता है। लेकिन मनुष्य को अधिकमास में, जन्म दिन के समय गुरु और शुक्र के अस्तकाल के समय तथा बृहस्पति के सिंह राशि में स्थित होने के समय गयो श्राद्ध को न छोड़ना चाहिए। चन्द्रमा और सूर्य ग्रहण के समय पर मृतक मनुष्य के लिये पिण्डदान देने से अक्षय फल प्राप्त होता है। इस पुण्य तीथ में जाकर क्षत को दोष नहीं लगता है। दुर्भाग्यवश किसी महान व्रण के हो जाने पर भी मनुष्य को गया तीर्थ में श्राद्ध कर्म करने से कोई पाप नहीं लगता है, और वह श्राद्ध कर्म करके ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। यदि मनुष्य जीवन में एक बार भी गया की यात्रा करले, और गया तीर्थ में पितरों को एक बार भी पिण्डदान दे देवे, तो उसके लिए संसार में कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं है अतः उसको स्वयं ही सब सिद्धियां प्राप्त होजाती हैं ब्रह्मादि देवताओं के इस पुण्य परम प्रिय गया तीर्थ में कोई अचानक मृत्यु को प्राप्त होता है, तो वह निःसन्देह ही मोक्ष को प्राप्त होता है। मगध देशों में मरने वाले पितरों को तारने के लिए विद्वान पुरुष को गया श्राद्ध करना चाहिये।

ब्राह्मणों को उस समय हव्य कव्यादि से सन्तुष्ट कराना चाहिए क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने पर ही सभी देवगण तथा पितरगण सन्तुष्ट होते हैं। विशाला, विरजा और गया को छोड़ कर सभी तीर्थों में पिण्डदान करने के लिये मुण्डन कराना चाहिए, गया में पिण्डदान करने वाले मनुष्य को केवल दण्ड धारण करना चाहिये. पिण्डदान नहीं करना चाहिये। विष्णुपद पर दण्ड रखकर वह अपने पितरों सहित मोक्ष प्राप्त करता है क्योंकि गया में पिन्डदान करने वाला

परमार्थिक दृष्टि से दण्डधारी पाप अथवा पुण्य का भागी नहीं होता है अतः सभी क्रियाओं को त्याग करके भाव प्रवण होकर एक मात्र भगवान विष्णु का ध्यान करना चाहिये। सन्यासी को सभी कर्मों को त्याग देना चाहिये, पर केवल वेद को नहीं त्यागना चाहिये। गयातीर्थ में जाकर उसे तीर्थ पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर दिशा में मुण्डन कराना चाहिये। ब्रह्माजी ने इस गयातीर्थ का विस्तार ढाई कोस का और गया क्षेत्र को पाँच कोस का तथा गया शिर का एक कोस का बताया है। संसार में जितने भी तीर्थ हैं वे सब तीर्थ इसी के अन्दर बसे हुये हैं। जो मनुष्य इस पुण्य गया क्षेत्र में श्राद्ध करता है, वह अपने पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है।

जो मनुष्य गयाशिर में श्राद्ध करता है वह अपने पूर्व सौ वंशों का उद्धार करता है। घर से गया तीर्थ यात्रा का प्रस्थान करने पर पितरों को पद पद पर स्वर्गारोहण की सीढ़ियां मिलने लगती हैं। श्राद्ध में दुग्ध मिश्रित खीर, सत्तू, पेठा, चावल, विविध प्रकार के पदार्थ फल, मूल को गया में दान करने का महान फल होता है। तिल, कल्क घृतसहित गुड़ खांड़ या सिर्फ दही, द्वारा गया में श्राद करने से पितरों को अक्षय तृप्ति प्राप्त होती है। जिस ऋतु में श्राद्ध हो उसी ऋतु के होने वाले भोज्य पदार्थ मुनियों द्वारा उद्दिष्ट हविष्यान्न और रसयुक्त मीठी वस्तुओं को एक ओर रख कर भगवान विष्णु के चरणारविन्दु में और फल्गु के पवित्र जल को धोकर पितरों के पिण्डदान करना चाहिये। पिण्ड के लिये आसन पिण्डदान दक्षिणा और अन्य संकल्प का तीर्थ श्राद्धों में इसी प्रकार का नियम है। विद्वान पुरुषों को विधि पूर्वक गया तीर्थ में श्राद्ध करना चाहिये। फल की कामना से तीर्थों में श्राद्ध करने वाले पुरुषों को काम, क्रोध और लोभ को छोड़ कर सारी क्रियायें करनी चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत रख कर एक समय भोजन करना चाहिये पृथ्वी पर सोना चाहिये, मन, वचन, काय से मनुष्य को

सदा सत्य वचन बोलना चाहिए, जो मनुष्य इन सब बातों का नियम पूर्वक पालन करता है। वही मनुष्य तीर्थ के वास्तविक फल को प्राप्त करता है। धीर पुरुष को तीर्थ की यात्रा करते समय पाषण्ड को छोड़ देना चाहिए। जो कामनाओं को उत्तेजित करता है, वह पाषण्ड है। जो मनुष्य धीरचित्त होकर पितरों में भक्ति और निष्ठा रखता है वह ब्रह्म वेत्ताओं की तरह अनन्यचित्त होकर सब कर्म करते हैं, वे ब्रह्मज्ञानी पुरुष ब्रह्मपद में स्थित होते हैं, वैतरणी नाम की नदी गयातीर्थ में पितरों को तारती है उस वैतरणी नदी में स्नान कर गोदान करने वाला अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है। अक्षयवट के पास जाकर जो ब्रह्मपरायण ब्राह्मणों हव्य कव्यादि वस्तुओं से जो मनुष्य पितरों की पूजा करता है वह अक्षय फल को प्राप्त होता है, क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने पर देवता और पितरगण सन्तुष्ट होजाते हैं। उस पवित्र गयातीर्थ में कोई ऐसा स्थान नहीं है, जहां कोई तीर्थ स्थित न हो, वहां सभी तीर्थों का मेल होता है, गया तीर्थ उन सबसे बढ़कर पुन्यदायी तीर्थ है। तीनों लोकों में गया का पिंडदान करना परम दुर्लभ माना जाता है। जब चन्द्रमा और सूर्य मकर राशि पर स्थित हो, उस समय तीनों में गया श्राद्ध परम दुर्लभ माना गया है। जो मनुष्य गया तीर्थ में श्राद्ध करता है उनको अक्षय फल प्राप्त है अतः गया तीर्थ में श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। मैं सैकड़ों कोटि कल्पों में भी गया तीर्थ का वर्णन नहीं कर सकता हूँ ॥१०५॥

[इति श्री वायु महापुराण का गया माहात्म्य नाम का एक सौ पांचवां अध्याय समाप्त]

—:❀:—

एक सौ छठवां अध्याय

गया माहात्म्य

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन्! यह गयासुर किस प्रकार पैदा हुआ, उसका स्वरूप और उसका प्रभाव क्या है। उसने किस प्रकार तपस्या की, किस प्रकार शारीरिक पवित्रता प्राप्त की।

सनत्कुमार बोले–हे नारदजी ! भगवान विष्णु नाभि से लोक पितामह ब्रह्माजी पैदा हुए थे, और पूर्व काल में भगवान के कहने पर उन्होंने प्रजाओं की सृष्टि की। उन्होंने आसुरभाव से असुरोंको उत्पन्न किया, और उदार भावों से देवताओं को पैदा किया। उन असुरों में महा बलवान और पराक्रमी गयासुर पैदा हुआ। उस असुर की ऊँचाई सवा सौ योजन की थी, उसकी मोटाई साठ हजार योजन की थी, वह भगवान विष्णु का परम भक्त था। उसने कोलाहल नाम के सुन्दर पर्वत पर कठोर तपस्या की, और वहां पर वह अनेक हजार वर्षों तक श्वांस को रोककर स्थित रहा, उसके इस कठिन तप को देखकर देवता बहुत दुखी हुए। अतः सभी देवता मिलकर प्रजापति ब्रह्माजी के पास गये और बोले हे देव ! आप हम लोगों को गयासुर से बचाइये। देवों की इस दुखभरी वाणी को सुनकर ब्रह्माजो ने उनसे कहा हे देव–इस कार्य के लिए हम तुम सब मिलकर शङ्करजी के पास चलें, ऐसा विचार करके ब्रह्मादि देवगण श्री भगवान शङ्करजी के पास कैलाश पर्वत पर आये। और वे सब शङ्करजीसे कहनेलगे हेभगवान आप हमको गयासुर से बचाइये। शङ्करजी ने उन सबकी बात को सुन कर कहा कि हम सब विष्णु भगवान के पास चलें वे ही हमारा सबका कल्याण करेंगे। इस प्रकार विचार करके ब्रह्माजी, महादेवजी और सभी देवों ने जाकर क्षीर सागर में भगवान विष्णु को प्रणाम किया और कहा हे देव ! हम सब आपकी स्तुति करते हैं।

देवताओं ने कहा— हे भगवान ! जो सभी जीवों को उत्पन्न करने वाले हैं और उनके पालन हार हैं परम शोभाशली और विजयी हैं राक्षसों को ग्रसने वाले हैं अखिल समस्त संसार के धारण करने वाले हैं और योगियों के उद्धार करने वाले हैं वे अनन्त महिमा शाली हैं उन भगवान विष्णु जी को हम प्रणाम करते हैं।

सनत्कुमार बोले— हे नारद जी ! ब्रह्माजो और देवताओं द्वारा इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान वासुदेव जी ने उनको दर्शन दिया और उनसे कहा कि हे देवगण ! आप सब यहाँ पर किस कारण वश

आये हो। भगवान के इस प्रकार पूछने पर देवों ने कहा कि हे देव ! आप हमारी गयासुर से रक्षा कीजिये। भगवान ने देवों से कहा कि हे ब्रह्मादि देवगण आप लोग जाइये, मैं भी उस दैत्य गयासुर के पास जा रहा हूँ। इस प्रकार कहकर भगवान विष्णु गरुड़ पर सवार होकर वरदान देने की इच्छा से गयासुर के पास आये और अन्य देवगण भी अपने अपने विमानों पर चढ़ कर उसी स्थान पर आये। भगवान वासुदेव और सभी देवों ने गयासुर से कहा, हे गयासुर ! तुम किस लिये इतना घोर तप कर रहे हो, तुम्हारी इस घोर तपस्या से हम सब सन्तुष्ट हुये हैं और तुम को वरदान देने के लिये यहां आये हैं। अतः तुम अपने मनोनुकुल वर प्राप्त करो।

गयासुर बोले— ब्रह्माजी, विष्णु महेश्वर इत्यादि सभी देवगण यदि सत्य ही मुझ पर सन्तुष्ट हुए हैं तो मुझे यह वर दीजिये कि मैं सभी देवों, तीर्थों यज्ञों, पर्वतीय प्रान्तों से भी पवित्र हो जाऊँ, मुझ को मनुष्य सभी देवताओं से भी पवित्र समझें। धर्म में रत रहने वाले ऋषि और अविनाशी शिव से भी बढ़ कर पवित्र होने की मेरी इच्छा है। सभी प्रकार के उत्तम वेदों, मन्त्रों, देवी, देवताओं से तथा सभी प्रकार के सन्यासी और गृहस्थों, धर्मिष्ठों, यतियों से भी जो बहुत पवित्र माने जाते हैं, मैं उनसे भी बढ़ कर पवित्र होऊँ, यही मेरी इच्छा है। सभी देवों ने कहा कि हे गयासुर ! तुम अपनी इच्छा के अनुसार ही वर प्राप्त करोगे, इस प्रकार कह कर सभी देवगण गयासुर को पुनः देख कर और पवित्र करने की भावना से स्पर्श करके अपने स्वर्ग लोक को चले गये। गयासुर के इस अनोखे और महान कार्य से तीनों लोक और यमपुरी सूनी हो गई, तब इन्द्रादि देवों के साथ यमराज ब्रह्मा जी के पास गये। गयासुर द्वारा अपदस्थ होने के कारण देवों ने प्रजापति से कहा कि पितामह ! तुम ने ही हम सब को अधिकार दिया था, अब उसे तुम्हीं ग्रहण करो। ब्रह्मा जी ने देवों की इस प्रकार बात सुन कर उनसे कहा कि हम सब मिलकर विष्णु भगवान के पास चलें यह निश्चय कर के भगवान विष्णु पास सब देवगण आये और कहने लगे कि हे देव !

आपने गयासुर को जैसा वरदान दे दिया है, उसके प्रभाव से प्रतिदिन प्राणी उनका दर्शन करके स्वर्ग को चले जाते हैं। और उसके फलस्वरूप तीनों लोक सूने हो गये हैं। देवों के इस प्रकार कहने पर भगवान वासदेव ने कहा कि आप यज्ञ करने के लिये गयासुर से प्रार्थना करें, कि वह अपना शरीर हमको देदे। विष्णु भगवान के इस प्रकार कहने पर ब्रह्माजी सभी देवों सहित उस महान गयासुर के पास गये। सभी देवों के साथ ब्रह्मा जी को आया देखकर गयासुर ने उनको प्रणाम किया, और श्रद्धापूर्वक उनकी पूजा आदि की।

गयासुर बोला— आज मेरा जन्म धन्य हुआ; जो कि स्वयं प्रजापति ब्रह्मा जी मेरे घर अतिथिरूप में आये हैं, आज मैंने सब कुछ पा लिया, हे योगीश्वर ! योग वेत्ता ! सभी लोकों के नाथ ! गुरुदेव ! ब्रह्मन् ! आप किस प्रयोजन से हमारे यहां पधारे हैं, मैं उस कार्य को पूरा करना चाहता हूँ।

ब्रह्माजी बोले— हे महाभाग गयासुर ! सम्पूर्ण संसार में घूम घूम कर मैंने जिन जिन तीर्थों को देखा है, वे तुम्हारे शरीर की पवित्रता के कारण यज्ञ के लिये पवित्र नहीं रहे हैं भगवान विष्णु की कृपा से तुमने अपने शरीर में परम पवित्रता प्राप्त की है, अतः में यज्ञ करना चाहताहूं, और उस यज्ञ के लिये तुम मुझे अपने पवित्र शरीर को देदो।

गयासुर बोला— हे देव देवेश ! आप हमारे शरीर को मांग रहे हैं। यह हमारा अहोभाग्य है। यदि आप हमारे इस शरीर से यज्ञ कार्य सम्पन्न करेंगे, तो हमारा पितृकुल कृतार्थ हो जायगा। हे देव ! आप ही ने इस नश्वर शरीर को बनाया है, और तुम्हीं ने इस को इतनी पवित्रता प्रदान की है। सभी जीवों के लाभ के लिये यह अवश्य ही दूंगा। श्वेत कल्प ने ऐसी बात सुनकर गयासुर नैर्ऋत दिशा की ओर धराशायी हो गया, उस समय सभी पर्वत प्रान्त में शोर मच गया। दैत्य ने अपने शिर को उत्तर दिशा में दोनों पैरों को दक्षिण दिशा में किया। यज्ञ की सभी सामग्री और साधनों

यज्ञ की सभी सामग्री और साधनों सहित ब्रह्माजी ने यज्ञ को सम्पन्न करने के लिये मानस पुरोहितों को पैदा किया। उनके नाम इस प्रकार हैं। अग्निशर्मा, अमृत, शौनक, जाञ्जलि, मृदु, कुमुथि वेदे कौड़िल्य हारीत काश्यप, क्रुर, गर्ग, कौशिक, वसिष्ठ, तपस्वी भार्गव, पराशर, कण्व, माण्डव्य. श्रुतिकेवल, श्वेत, सुनाल दमन सुहोत्र, कङ्क, लोकाक्षि जैगिषव्य, दधिपत्रमुख, ऋषभ. कर्क, कात्यायन. गोमिल, उग्र सुपालक, गौतम जयमाली चाटुहास, दारुण, आत्रेय, अंगिरस, उपमन्यु, गौकर्ण गृहावास, शिखण्डी. उमाव्रत इन सब ऋषियों के अलावा और बहुत से ब्राह्मण को भी लोक पितामह ब्रह्माजी ने सृष्टि की और गयासुर के शरीर पर यज्ञ का कार्य शुरू किया। इन सब ऋषियों में से अग्निशर्मा ने अपने मुख से दक्षिणग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य, और असभ्य नाम की पांच अग्नियों की रचना की। हे देवर्षि! इन्हीं पांच अग्नियों ने यज्ञ की प्रतिष्ठा की, यज्ञ सभी प्रतिष्ठापना के लिये ब्राह्मणों को बहुत सी दक्षिणाऐं दीं। यज्ञ के अन्त में ब्रह्माजी ने पूर्णाहुतदान के बाद अवभृथ स्नान किया और सभी देवों के साथ यज्ञ स्तम्भ को आरोपित किया। उस पवित्र स्तम्भ को ब्रह्माजी ने उत्तम सरोवर में निमज्जित करके उसी में प्रतिष्ठित भी किया। यज्ञ भूमि के चलायमान होने पर ब्रह्माजी चकित होकर धर्मराज से बोले—यमराज तुम्हारे घर एक शिला है, उसे बिना किसी वितर्क के यहां लाकर उस पर दैत्य के शिर को स्थित करो। गयासुर के शरीर को निश्चल स्थापित करने के लिये यमराज ने शिला लाकर उस के मस्तक को रखा, लेकिन उस शिला पर रखने पर भी असुर राजा उस शिला सहित विचलित हो गया। तब ब्रह्मादि देवों ने रुद्रादि देवों से कहा कि आप इस शिला को निश्कल करने के लिये स्थित हो जायँ। देवों ने 'बहुत अच्छा' कह कर उसी शिला पर स्थित हो गये। देवों के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महाबलवान असुर विचलित होता रहा। तब चिन्ताकुल होकर ब्रह्मा जी भगवान विष्णु के पास गये और उनसे बोले—

ब्रह्माजी बोले— हे अखिलेश प्रभु! हम आप को नमस्कार करते हैं।

आप ही मनुष्यों को यश देने वाले हैं आप ही मुक्ति भुक्ति के देने वाले हैं। ब्रह्माजी की इस प्रकार स्तुति सुन कर विष्णु बोले हे देव! किस कारण से आप यहां पधारे हैं।

ब्रह्माजी बोले— हे भगवन्! आपकी आज्ञानुसार यज्ञ सम्पन्न तो हो गया, पर गयासुर अभी तक चंचल बना हुआ है। हम सबों ने उसके शिर पर देवरुपिणी शिला लाकर रखी है, फिर भी वह चलायमान है। रुद्रआदि देवगणों के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महान असुर चंचल ही बना रहा। हे माधव! अब आप उसके निश्चल रहने के उपाय बतलाइये। ब्रह्माजी की इस प्रकार वाणी सुन कर भगवान विष्णु ने अपने शरीर से खींच कर एक मूर्त्ति ब्रह्माजी को गयासुर के निश्चल करने के लिये दी। ब्रह्माजी ने उस मूर्त्ति को लाकर गयासुर के मस्तक पर रख दी, किन्तु उस पर भी वह चलायमान ही रहा तो फिर विष्णु भगवान आये। ब्रह्माजी के स्तुति करने पर विष्णु क्षीर सागर से आकर उस गयासुर के मस्तक के ऊपर शिलापर स्थित हो गये। स्वयं भगवान जनार्दन ने उस को निश्चल करने के लिये स्वयं उस पर स्थित हुये। उसी शिला को अधिकाधिक निश्चल करने के लिये ब्रह्मा जी ने उसको पांच भागों में बांट दिया। वे पांचों वहां प्रपितामह, पितामह, फल्गवीश, केदार और कनकेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हुये। उसी शिला पर गज रूपधारी विनायक भी स्थित हैं। सूर्य, गयादित्य, उत्तरार्क, और दक्षिणार्क इन तीन नामों से प्रसिद्ध हुये। लक्ष्मीजी सीता के नाम से सावित्री और त्रिसन्धा इन तीनों रूपों में वहां स्थित हुईं। इन्द्र, वृहस्पति, पूषा आठों वसुगण, विश्वेदेवगण, दोनों अश्विनीकुमार विश्व नामक मारुत, यक्ष, गन्धर्व, उरगादिकों के साथ साथ अपनी शक्ति सहित उस शिलापर विद्यमान हुये। अतः भगवान विष्णु की गदा से वह असुरराज स्थिर हुआ अतः भगवान वहां गदाधर के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस समय सभी आये हुये देवगणों से गयासुर ने कहा हे देववृन्द! आप लोगों ने किस कारणवश हमको अलग किया है, मैंने यज्ञ के लिये अपने शरीर को ब्रह्माजी को प्रदान किया था, क्या मैं भगवान

विष्णु के वचन मात्र से निश्चल न हो जाता ? देवों तथा भगवान विष्णु की गदा से मैं बहुत दुखी हो चुका हूँ। आप सभी देवगण प्रसन्न रहें। गयासुर की इस प्रकार वाणी सुन कर सभी देवता बहुत प्रसन्न हुये। वे बोले—हे गयासुर हम सब तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, तुम चाहो जो वरदान मांगो। गयासुर ने देवों से कहा कि—हे देवगण! जब तक यह पृथ्वी स्थिर है जब तक सूर्य चन्द्रमा, पर्वत, तारागण विद्यमान हैं तब तक इस शिला पर विष्णु, ब्रह्माजी, महेश्वर जी का निवास बना रहे, और इनके साथ सभी देवगण यहां निवास करें। इस क्षेत्र का नाम मेरे नाम पर पड़े। गया क्षेत्र की मर्यादा पांच कोस की है और गया शिर की मर्यादा एक कोस की है। इन दोनों के मध्य भाग में मानव हितकारी समस्त तीर्थों का निवास हो, आप लोग मुझ को ऐसा वरदान दें। इस बीच में स्नान आदि तर्पण करके और पिण्डदान करने से अयज्ञ फल की प्राप्ति होती है। इस महान प्रभाव शाली क्षेत्र में पिण्डदान सम्पन्न करने वाला मनुष्य अपने हजारों कुलों का उद्धार करता है। यहां पर सभी देवलोग अव्यक्त और व्यक्त रूप धारण करके निवास करें भगवान गदाधर भी यहां पर निवास करके समस्त पाप पुञ्जोंका नाश करें। इस पवित्र क्षेत्र के सेवन करने से ब्रह्म हत्या के घोर पाप भी नष्ट हो जाते हैं। इस पवित्र क्षेत्र में नैमिष, पुष्कर, गंगा, प्रयाग, काशी, जितने भी उत्तमोत्तम तीर्थ हैं तथा जितने भी तीर्थ स्वर्ग भूमण्डल, अन्तरिक्ष में हैं वे सभी हमारे इस तीर्थ में आकर प्राणियों का कल्याण करें। गयासुर के इस प्रकार बचन सुन कर विष्णु आदि देवों ने गयासुर से कहा हे गयासुर! तुमने जो कुछ कहा है वैसा ही होगा इसमें सन्देह नहीं है। इस क्षेत्र में आने वाले मनुष्य गण हमारी सभी देवों की पूजा करके परम गति को प्राप्त होंगे देवताओं के इस प्रकार वरदान देने पर दैत्य परम हर्षित होकर निश्चलता को प्राप्त हुआ। उस शिला पर देवगणों के स्थित हो जाने पर ब्रह्माजी ने यज्ञ कर्त्ता ब्राह्मणों को पचपन ग्राम प्रदान किये। उन्होंने गया पुरी को भी उत्सर्ग कर दिया। गृहस्थी के सभी साधनों से युक्त गृहों को बनवाया। इनके अलावा कामधेनु गाय, कल्पवृक्ष, पारिजात

देवतरु, क्षीर वाहिनी, महा नदी घृत पूर्ण छोटी छोटी बावड़ियां मधु प्रवाह करने वाली मनोहर नदी, सुवर्ण की बनी बावड़ी, अनेक अन्नादिकों से बने हुये पर्वत भोजन का फलादि सामग्री भी उन्हें निर्माण करके प्रदान की। दान करते समय अयोनिजा ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणों से कहा कि हे श्रेष्ठ ब्राह्मणो! आप लोग किसी दूसरे से याचना न करें। इस प्रकार सभी प्रकार के दान देने के बाद भगवान गदाधर को नमस्कार करके ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। धर्मारण्य में धर्म ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया, उस यज्ञ में उन्हीं गयापुरी में निवास करने वाले ब्राह्मणों ने लोभवश धन की इच्छा की ओर उसे ग्रहण किया। उनके इन निषिद्ध कर्म से असन्तुष्ट होकर ब्रह्मा जी ने शाप दे दिया, कि तुम लोगों ने मेरे निखिल दिव्य सम्पत्ति के दान करने पर भी लोभ नहीं छोड़ा, अतः तुम सदा ऋण ग्रस्त बने रहोगे। वे नदियां जो मधु और क्षीरादि पदार्थों को देने वाली थीं, अब केवल जल बहाने वाली होंगी। सभी पर्वत पाषाणमय हो जायेंगे। वे दिव्य वस्तुओं सहित सुन्दर गृह मिट्टी के हो जायेंगे। कामधेनु और कल्पवृक्ष हमारे लोक में आ जायेंगे। अजन्मा ब्रह्माजी ने इस प्रकार ब्राह्मणों को शाप दे दिया और तब अभिशप्त होकर ब्राह्मणों ने प्रार्थना की कि हे देव! आपने जो वस्तुएँ कृपा पूर्वक हमको दीनी वे आपके शाप के कारण नष्ट हो चुकीं। हे भगवन् हम लोग किस प्रकार अपनी जीविका चलायेंगे। ब्राह्मणों की इस आर्त वाणी को सुनकर ब्रह्माजी को दया आ गई और वे बोले कि 'अच्छा' जब सूर्य चन्द्रमा तारागण स्थित हैं तब तक तुम लोग तीर्थों द्वारा अपनी जीविका चलाओगे। जो पुण्यशाली मनुष्य इस गयापुरी में आकर श्राद्ध कर्म करेंगे, हमारी पूजा आदि करेंगे, वे मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त करेंगे! इस गयापुरी में बिरज नामक गिरि से दैत्य का उदर भाग आक्रान्त है, उसके नाभि के पास विरजा देवी नामक पवित्र स्थान पर सिण्डदान करके मनुष्य अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है तथा वर्तमान अपने सम्पूर्ण कुल को स्वच्छता के साथ तारता है।

महेन्द्र नाम के पर्वत ने दैत्य के दोनों पैरों को निश्चल किया है अतः उस पवित्र स्थान पर जो मनुष्य पिण्डदान करता है वह अपने सात कुल के मनुष्यों का उद्धार करता है ॥१०९॥

[इति श्री वायु महापुराण का गयामाहात्म्य नामक एक सौ छटवाँ अध्याय समाप्त]

—:❀:—

एक सौ सातवां अध्याय

गयामाहात्म्य

नारदजी बोले—हे ब्रह्मन् ! वह प्रसिद्ध शिला किस प्रकार पैदा हुई, जिससे गयासुर का शरीर दबाया गया था उसका स्वरूप और माहात्म्य क्या है। यह सब बात हमको बतलाइये।

सनत्कुमार बोले—प्राचीन काल में महान प्रतापी तेजस्वी, धर्म वेत्ता धर्म नाम के देवता थे। उनके पतिव्रत विश्वरूपा नाम की पत्नी थी। उस पत्नि में धर्म के संयोग से धर्मव्रता नामकी एक कन्या पैदा हुई, वह सती कन्या रूप, यौवन से भरपूर लक्ष्मी के समान गुणवती थी। धर्मव्रता के लिये धर्म ने वरदान से सिद्ध प्राप्त करने के लिये अपनी कन्या धर्मव्रता से कहा हे बेटी ! तुम अपने अनुरूप वर के लिये तपस्या करो। कन्या ने अपने पिता की आज्ञा मानकर वन में जाकर तपस्या आरम्भ की, और उसने दस हजार वर्षों तक केवल वायु का आहार किया। ब्रह्माजी के मानस पुत्र मरीचि जो बहुत प्रसिद्ध थे, वे पृथ्वी पर घूमते हुए वहां आ पहुँचे, और रूप और यौवन से पूर्ण कन्या को देखा, जो तपस्या करने में निरत थी। ऋषिवर मरीचि ने उस कन्या से कहा कि हे कल्याणि तुम कौन हो ? तुम किसकी कन्या हो ! हे सदव्रत परायणे ! तुमने सुन्दर रूप से हमारा मन मोह लिया है। हे भीरु ! तुम डरो मत। मैं ब्रह्माजी का पुत्र हूँ, मुझे इस समस्त संसार में मनुष्य मरीचि नाम से पुकारते हैं। मरीचि के वचनों को सुनकर कन्या बोली। हे मुनिवर ! मैं धर्म की पुत्री हूँ ! मेरा नाम धर्मव्रता है। अपने अनुरूप पति और पतिव्रत धर्म की प्राप्ति के लिए मैं

यह कठिन तपस्या कर रही हूं। धर्मव्रता की इस प्रकार बातों को सुन कर मरीचि ने प्रेम पूर्वक कहा हे शुभव्रते! मेरे दर्शन मात्र से ही तुम पतिव्रता हो जाओगी। केवल मैं पतिव्रता नारियों की इच्छा से ही रात दिन पृथ्वी पर घूमा करता हूं। यदि तुम पतिव्रता हो तो मुझको पति रूप में स्वीकार करो, मैं तुमको पत्नि रूप में स्वीकार करता हूं। इस लोक में न तो तुम्हारे समान कोई कन्या है और न मेरे समान कोई पुरुष है हे धर्म व्रते! अब तुम हमारी धर्म पत्नि हो जाओ। मुनिवर मरीचि की इस प्रकार बात सुनकर धर्मव्रते ने कहा कि इस विषय में आप हमारे पिता से बात चीत करें। धर्मव्रता के कहे अनुसार मरीचि धर्म के पास आये, धर्म ने तेजस्वी ऋषि मरीचि को आसन और अर्घ्यादि प्रदान किया। और बोले कि हे मुनिवर! किस प्रयोजन से आप का यहां आना हुआ? मरीचि बोले महानुभाव सुनो! मैं अपने योग्य पत्नि की खोज के लिए समस्त पृथ्वी पर घूमता फिर रहा था। कि तभी तुम्हारी परम सुन्दरी और धर्मशीला कन्या का दर्शन हुआ, तुम अपनी कन्या का विवाह मेरे साथ कर दो। तुम्हारा बहुत कल्याण होगा। ऋषि की इस प्रकार बातें सुनकर धर्म ने अर्घ्यादि से पुनः पूजन किया, और उनकी आज्ञा का पालन किया। वन से धर्मव्रत कन्या को घर पर लाकर विधि पूर्वक विवाह कर्म सम्पन्न करके मरीचि को समर्पण किया। उस मंगल कार्य के उपलक्ष में धर्म ने ब्राह्मणों को रत्न आदि भेंट किये। इसके बाद अपनी नवविवाहित पत्नि धर्मव्रता को अग्निहोत्रादिक वैवाहिक धार्मिक विधियों से विधिवत् अनुष्ठान करके अपने आश्रम में ले गए और वहां उनके साथ इस प्रकार आनन्द भोगने लगे, जिस प्रकार विष्णु भगवान ने लक्ष्मी के साथ, और शंकरजी ने पार्वती के साथ, ब्रह्मा जी ने सरस्वती के साथ, आनन्द भोगा था। धर्मव्रता के संयोग से ऋषि मरीचि ने परम तेजस्वी सौ पुत्रों को पैदा किया। एक बार मुनि फल फूलादि लेने वन को चले गये और वहां से लौट कर आये तो बहुत थक गये थे, भोजन के बाद उन्होंने अपनी पत्नि से कहा कि

प्रिये ! मैं शय्या पर लेट गया हूँ, तुम मेरे पैर दबा दो। ऋषि पत्नि ने पति की आज्ञा मान शय्या पर लेटे हुये अपने पति के पैर दबाने लगी सर्वप्रथम घी लगाकर वह तन्मयता पूर्वक पैर दबाने लगी, थोड़ी ही देर में मुनि को नींद आ गई तो उनके पिता ब्रह्माजी उनके आश्रम में पधारे। ब्रह्मा जी को आया जानकर साध्वी धर्मव्रता ने मन में प्रभु की सेवा का ध्यान किया। उसके मनमें तक वितर्क होने लगा, और वह सोचने लगी कि ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिये, जब कि उसके पति सो रहे हैं। मैं पतिदेव के पैर दबाती रहूंगी पूज्य पिता ब्रह्मदेव की पूजा करूँ। ऐसा विचार करके उसने शीघ्र ही उठ कर जगदगुरू ब्रह्मा जी को अर्घ्यपाद्यादि प्रदान किया और विधि पूर्वक पूजा करी। विधि पूर्वक सत्कार पाने पर ब्रह्माजी दूसरी शय्या पर विश्रम करने लगे। दुर्भाग्यवश इसी बीच ऋषि की आंख खुल गई, वे अपनी शय्या पर से उठ बैठे। और धर्मव्रता को पैर दबाते नहीं देखा, तो क्रोध में आकर उन्होंने शाप दे दिया। कि बिना मेरी आज्ञा के पैर दबाना छोड़कर तू कहीं और चली गई अतः इस पाप कर्म के कारण मैं तुझे शाप दे रहा हूं कि तू शिला हो जाय। पति के इस प्रकार शाप देने पर धर्मव्रता को भी क्रोध आगया, और बोली तुमको नींद आगई थी, उसीसमय तुम्हारे पिताजी यहां पर पधारे. तुमको सदा उठ कर गुरू का पूजन वन्दनादि करना चाहिये। अतः मैंने धर्म का विचार करके तुम्हारे ही कर्त्तव्य का पालन किया है। मैं इसमें बिल्कुल निर्दोष हूँ तुमने मुझको व्यर्थ ही में शाप दिया है। अतः मैं भी तुमको शाप दे रही हूँ कि तुमको श्री महादेवजी शाप देंगे, इसमें सन्देह नहीं है। अपने पति को शाप के भय से व्याकुल देख कर धर्मव्रता भी व्याकुल हो गई, वह प्रजापति ब्रह्माजी के पास गई उस समय संयोगवश ब्रह्माजी को नींद आ गई। उनको नमस्कार करके वहीं पर ईंधन से अग्नि को जलाकर और उसी में आहपत्याग्नि में स्थित होकर परम दारुण तप में लीन हो गई। उधर मरीचि भी अभिशप्त होकर विष्णु भगवान के पास गये उस समय श्री विष्णु भगवान भी लक्ष्मी जी सहित क्षीर सागर में शयन कर रहे थे।

इन दम्पत्तिकी दारुण घोर तपस्यासे इन्द्र आदि देवगण बहुत दुखी हुये, और सोचा कि यह दम्पति जो घोर तप कर रही है इसका क्या उपाय किया जाय जिससे इनका यह घोर तप भंग हो अन्त में विचार कर विष्णु भगवान के पास जाकर भगवान से कहा कि भगवान हमारी रक्षा कीजिये। सभी देवों की इस प्रकार आर्तवाणी सुनकर विष्णु धर्मव्रता के पास आये और बोले कि हे पतिव्रते! अग्नि में स्थित होकर कठोर दारुण तपस्या को किसी ने नहीं किया. तुमने संसार को भयभीत करने वाले परमदारुण तप का अनुष्ठान कियाहै, जिसे कोई भी नहीं कर सकता है। तुम धर्म के अर्थ को जानने वाली हो। तुम अपनी इच्छा के अनुरूप वरदान मांगो। विष्णु प्रभृति आदि देवताओं के वचनों को सुनकर साध्वी धर्मव्रता ने कहा कि हे देववृन्द! मैं अपने स्वाभाविक तेज से ऋषि पति के शाप का निराकरण नहीं कर सकती थी, अतः उसी शाप को मिटाने के लिये ही मैंने इतना दारुण तप किया है। पतिदेव मुनिवर मरीचि ने मुझे शाप दे दिया है, वह दूर हो जाय यही मेरी अभिलाषा है! पवित्रता धर्मव्रता की बातों को सुनकर देवताओं ने पुनः महा, धर्म पुत्रि धर्मव्रता! यह शाप परम ऋषि मरीचि का दिया हुआ है, इस शाप को देवताओं और ब्राह्मणों में निष्फल करने की शक्ति नहीं है। इस कारण तुम हमसे कोई और वरदान मांगो। जिससे धर्म की मर्यादाभंग न हो। हे शुभव्रते! तीनों लोकों में चाहे परम दुर्लभ क्यों न हो ऐसा वरदान तुम मांग सकती हो। देवों की इस प्रकार वाणी सुनकर धर्मव्रता ने कहा हे देववृन्द! यदि आप पति के शाप को हटाने के लिये असमर्थ हैं तो आप मुझ को इस प्रकार का वरदान दीजिये कि मैं निखिल ब्रह्माण्ड में परमपावन शिला के रूप में प्रकट होऊँ। जितने भी नदी, नद, सरोवर, तीर्थ, एवं देवादि हैं, उन सबसे अधिक पवित्रता का निवास मुझ में हो। जितने भी ऋषि मुनि पंडित, ज्ञानी, वाजपेयी, यज्ञहोत्री, यजुर्वेदी, वेदपाठी, गन्धर्व यक्षादि-बृहस्पति, आदि प्रमुख देवगण हैं, उन सबसे भी अधिक पवित्रता निर्मलता मेरे अन्दर हो। तथा मैं इतनी पवित्र हो जाऊँ कि

सम्पूर्ण त्रैलोक्य में जितने जितने व्यक्ताव्यक्त लिङ्गादि हैं, वे सब तीर्थ रूपधारण करके हमारे शरीर पर निवास करें। भूमण्डल के समस्त तीर्थ प्रमुख नक्षत्र, सभी देवगण, देवियां और मुनिगण सभी हमारे अन्दर निवास करें। शिला पर स्थित उन तीर्थों को स्नान और तर्पण करके जो पिण्डदान करते हैं वे ब्रह्मलोक को प्राप्त होंगे। उस शिला पर दृश्यतीर्थ गदाधर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ हों, वहां श्राद्ध कर्म करने से पितरों को मोक्ष प्राप्त होता है। जरायुज, अण्डज, स्वेदज, और उद्भिज सभी प्रकार के जीव निकाय पवित्र शिला पर प्राण त्याग कर विष्णु लोक को प्राप्त हों। जिस प्रकार विष्णु भगवान की पूजा करने पर सभी प्रकार के यज्ञ पूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार श्राद्ध, तर्पण और स्नान करने से यहां अक्षय फल प्राप्त हो। मेरे शरीर पर देवेशों के मन्त्रों का जो जाप करे, वे मनुष्य थोड़े ही समय में सिद्धि प्राप्त करें। अपने सहित पितरों और सहस्रों कुलों का वह मनुष्य उद्धार करने वाला हो। उस पवित्र शिला पर श्राद्ध इत्यादि कार्य सम्पन्न करके पितरों को तृप्त करने वाला विष्णु लोक को प्राप्त करे। गंगा प्रभृति श्रेष्ठ नदियां, मनोहर झाने, सरोवर, समुद्रादि पवित्र मानस तीर्थ इन्द्रादि देवगण हों, वे श्राद्ध कर्त्ता को मोक्ष प्रदान करने के लिये मेरे शरीर पर निवास करें। देवगण आप मूर्ति रूप में यहां पर स्थित रहें, कहीं और जगह नहीं जांय। विद्वान पुरुष तीन स्वरूपों में व्यक्त होने वाले एक मात्र भगवान विष्णु का जब तक वर्णन करें, तब तक उस शिला पर सभी देवता तथा तीर्थ स्थित रहें। मुनियों और गन्धर्वों का भी वहां पर निवास हो। जब तक यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित है, तब तक इस शिला का अस्तित्व रहे। पत्थर रूपी मेरे इस शरीर पर स्थित हो कर जो मनुष्य जप, पूजा, ध्यान, तपस्या और हवन इत्यादि करें, वे अक्षयफल को प्राप्त करें। हे देवगणो! आप लोग शिलाओं और पर्वतों का रूप रख कर मेरे इस पत्थर रूप शरीर पर स्थित रहें। पतिव्रता धर्मव्रता के शुभ वचनों को सुन कर देवगणों ने कहा, हे धर्मव्रते! तुम्हारी सब मनोकामनाऐं पूर्ण होंगी, इसमें सन्देह नहीं है।

जब तुम गयाशिर पर स्थित रहोगी, तब उस समय चरणादि स्वरूप से हम लोग तुम्हारे शरीर पर स्थित होंगे, इस प्रकार सभी देवता धर्म-व्रता को यह वरदान देकर अपने लोक को चले गये ॥ १०७ ॥

[इति श्री वायु महा पुराण का गया माहात्म्य नाम का एक सौ सातवां अध्याय समाप्त हुआ]

एक सौ आठवां अध्याय

[गया माहात्म्य]

सनत्कुमार बोले— हे नारद जी ! अब मैं आपको इस शिला के माहात्म्य के विषय में बतलाऊँगा इस शिला के माहात्म्य का वर्णन बड़े बड़े ऋषि, देवता, मुनिगण किया करते हैं जिस शिला के माहात्म्य को सुनने से अक्षय मोक्ष फल प्राप्त होता है ।

सनत्कुमार बोले— हे नारद जी ! वह परम पवित्र शिला पृथ्वी पर देव स्वरूप से स्थित थी । उस शिला का नाम विचित्र था, और इसी विचित्र नामसे वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध थी । उसके स्पर्श मात्रसे ही सभी लोकोंके प्राणी विष्णु धाम को जाते हैं । इस प्रकार जब तीनों लोक शून्य हो गये, यमपुरी भी सूनी हो गई तो यमराज इत्यादि सभी देवगणों को बहुत चिन्ता हुई और वे सब प्रजापति ब्रह्माजी के पास गये और उनसे कहने लगे कि हे पितामह ! आप यम दण्ड और उन के अधिकारों को स्वयं ग्रहण कीजिये, ब्रह्माजी ने तब यमराजसे कहाकि उस शिला को तुम अपने घर पर स्थित करो । ब्रह्माजी की इस प्रकार आज्ञा पाकर धर्मराज ने उस शिला को अपने घर लाकर स्थित किया । और फिर पूर्ववत् शासन आदि की व्यवस्था उन्होंने कायम की । इस प्रकार वह महान पवित्र शिला समस्त संसार में प्रसिद्ध हुई, जिस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश का यश, कीर्ति सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, निखिल ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार सुमेरु पर्वत की महिमा फैली हुई है, उसी प्रकार यह देव स्वरूपिणी शिला भी संसार में अपने माहात्म्य से प्रसिद्ध है अपने भारीपन बोझ के कारण यह गयासुर के शिर पर स्थित है । इन दोनों पवित्र आत्मा का संयोग पितरों को मोक्ष प्रदान करने वाले

हैं। उन दोनों परम पवित्र आत्मा के संयोग स्थली पर अजन्मा ब्रह्मा जी ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था, यज्ञ में अपने भागों को प्राप्त करने के लिये समागत विष्णु आदि मुख्य देवों से शिला ने पुनः कहा कि हे देवगणों! इस शिला पर स्थित रहने की प्रतीज्ञा, पितरों की मुक्ति के लिये आप लोग करें विष्णु आदि देवों ने उनकी आज्ञा का पालन किया और यहां पर सदा के लिये स्थित हो गये। दैत्य के शिर की तरह वह शिला स्थित है। अतः उस स्थान को मुण्ड पृष्ठादि नाम से पुकारते हैं। वह स्थान पितरों को ब्रह्मलोक प्रदान करने वाला है। शिला का चरण भाग प्रभास नामक गिरि से शोभित है, सूर्य की किरणों से प्रकाशित होने के कारण वह गिरि प्रभास नाम से प्रसिद्ध है। उस प्रभास गिरि को भेदता हुआ शिला का अंगुष्ठभाग बाहर की तरफ निकला हुआ है। उस उठे हुये स्थान को शिलाङ्गुष्ठ के ईशप्रभाशेष के नाम से प्रसिद्ध है। शिलांगुष्ठ के एक छोर को प्रेत शिला कहते हैं। उस प्रेत शिला पर पिण्डादि दान करने से मनुष्यों के पितरगण प्रेत योनि से छूट कर मुक्ति पा जाते हैं। महानदी और प्रभास तीर्थ के संगम स्थल में मनुष्य को स्नान करना चाहिये, इस पवित्र स्थल पर श्री भगवान रामचन्द्र जी ने अपनी प्यारी पत्नि जानकी के साथ स्नान किया था, तभी से इस पुण्यस्थल को रामतीर्थ कहते हैं। इस पवित्र स्थल पर भगवान राम से स्वयं महानदी ने प्रार्थना की थी, कि हे भगवान राम! आप यहां स्नान करलें। इसी कारण वह पवित्र स्थान तीनों लोकों में रामतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। सैकड़ों जन्म के पाप कर्म भी इस पवित्र रामतीर्थ के स्नान करने से छूट जाते हैं। इस मन्त्र का उच्चारण करके जो मनुष्य रामतीर्थ में स्नान कर पिंडदान करे, वह भगवान विष्णु के धाम को जाता है। महानदी की इस प्रकार प्रार्थना को सुनकर राम के भाई भरत जी और भगवान राम वहां पर ठहर गये थे। महाबाहु, अभयदान करने वाले भगवान राम हम आपको बारबार प्रणाम करते हैं. हे देवेश! मेरे सभी पाप कर्मों का नाश हो जाय। इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये जो प्राणी इस राम

तीर्थ में स्नान कर पिंड सहित श्राद्ध कर्म को पूर्ण करते हैं। उनके पितरगण प्रेत योनि से छूट कर पितर लोक को प्राप्त होते हैं। हे देवेश ! आप ही जल स्वरूप हैं सूर्य चन्द्र ज्योति पदार्थों के पालन करने वाले आप हा हैं, हे देव ! मेरे मनसा वाचा कर्मणा के सभी पापों को नष्ट कर दीजिये।

इस मन्त्र से पुमासेश को बारबार नमस्कार करने के बाद परम ज्योतिर्मय शिव के पास जाना चाहिये और वहां शिव को नमस्कार करके यमराज के लिये बलिकर्म करना चाहिये। श्री राम जी के वन चले जाने के बाद उनके भाई भरत जी पर्वत पर आकर रहने लगे, और वहीं पर उन्हो ने पिता के पिंडदानादि कार्य को सम्पन्न कर श्री राम सीता, लक्ष्मण और दूसरे ऋषि मुनि गणों की प्रतिमा की स्थापना की थी। महात्मा भरत के उस पवित्र आश्रम में सदा पवित्रात्मा निवास करते हैं। वहीं पर मतंग ऋषि का आश्रम भी है जो सभी मनुष्यों को दिखाई देता है। उस मतंग पद में श्राद्ध करने वाला मनुष्य अपने सभी पितरों का उद्धार करता है। पुण्य पवित्र राम तीर्थ में स्नान करके मनुष्य राम और सीता की पूजा करके श्री रामेश्वरको प्रणाम करके पुनः दूसरा जन्मधारण नहीं करता अतः उसको मोक्ष पद प्राप्त होता है उस शिला का जघन प्रान्त पर्वत से आक्रान्त है स्वयं धर्मराज ने उससे कहा था कि तू मत जा। इसी कारण वश उसका नाम नग पड़ा था। उस स्थान पर यमराज और धर्मराज गयासुर को निश्चल करने के लिये स्थित हैं। पितरों को मोक्ष प्राप्त हो, इस इच्छा से मैं उन दोनों को बलि प्रदान करता हूं। दो श्वान, श्यामल और भूरे भी वहां पर स्थित हैं वे दोनों वैवस्वत कुल में उत्पन्न हुये थे। मैं उन दोनों को बलि प्रदान करता हूं। यहां ब्रह्म योनि में स्नान करने पर ब्रह्म लोक की प्राप्ति होती है। इससे ब्रह्म की प्राप्ति तथा संकटों से मुक्ति मिलती है। तथा उसके पित्रीगण स्वर्गको प्राप्त करते हैं। सर्व सिद्धि प्राप्त होती है।

इस कारण वे अपनी हिंसक प्रवृति छोड़ दें। शिला के दाहिने हाथ पर कुण्ड नामक पर्वत स्थित है। वहाँ पर तिमिरादित्य, ईशान, भर्ग, महेश्वर अग्नि दोनों वरुण चारों रुद्र स्थित हैं वे पितरों को मोक्ष प्रदान करते हैं। भरत के पवित्र आश्रम में जाकर जो मनुष्य उनकी पूजा वन्दनादि करते हैं उनको अक्षय फल प्राप्त होता है। देवर्षि भरत के पवित्र आश्रम में स्नान कर मनुष्य श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करे, वे श्राद्धादि कल्प पर्यन्त तक फल देने वाले होते हैं। भरत जी के इस पवित्र आश्रम में जो भी कुछ दान देते हैं उससे अनन्त अक्षय फल प्राप्त होता है। चारों युगों का स्वरूप धारण कर सूर्य की चार मूर्तियाँ वहां पर प्रतिष्ठित हैं। उनके दर्शन और स्पर्श पूजन से पितरों को मुक्ति प्राप्त होती है। वहाँ पर मुक्ति और वामन तारक नाम की दो मूर्तियां और भी स्थित हैं। वे समस्त संसार के दुखों को पार लगाने के लिये देवरूपी नौका हैं। सभी मृत और जीवित प्राणियों के उद्धार करने वाले एकमात्र भगवान ब्रह्मा ही हैं। जो मनुष्य त्रिविक्रम वामन देव का दर्शन करते हैं वह धर्मात्मा अपने पितरों सहित परम गति को प्राप्त होते हैं। शिला के बांये चरण पर भी अभ्युद्यन्तक नामक गिरि स्थित है, उस स्थान पर पिण्डदान करने से मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचाता है। पवित्र नैमिषारण्य के पास दूसरे देवताओं के साथ ब्रह्माजी ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था, इस कारण उस तीर्थ का नाम मुख्य तीर्थ पड़ा, उसके चरणों में देवगण स्थित हैं। हे श्रेष्ठ नारद जी! उस पवित्र तीर्थ के सिर्फ तीन चरण भूमि में मनुष्य के जो कुछ भी पाप कर्म होते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। वह पवित्र तीर्थ नैमिषारण्य पुण्य ऋषि मुनियों द्वारा सेवित है। वहां व्यास मुक, पैल, कण्व, वेधा, शिव, हरि इत्यादि देवगणों का निवास स्थान है। उनके केवल दर्शन करने से ही मनुष्य के सभी पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं। शिला के बांये हाथ पर उद्यन्तक नामक गिरि स्थित है। अगस्त्य ऋषि ने उस पर्वत को यहां लाकर स्थित किया था। उस पर्वत प्रान्त पर स्वयं

प्रजापति ब्रह्मा जी और शंकर जी ने कठिन तपस्या की थी। वहाँ अगस्त्य ऋषि का परम रमणीक कुण्ड स्थित है। जिसमें आठ ऋषियों ने कठोर तपस्या कर सिद्धि को और शिव का दर्शन प्राप्त किया था। उस कुण्ड में अगस्त्य ऋषि ने आठों मुनियों को प्रणाम करके मनुष्य के पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाया था। उस कुण्ड में अगस्त्य ने शिला के बांये हाथ पर उदयाचल पर्वत से लाकर इस पर्वत को स्थित किया था। उस पर्वतीय प्रान्त में स्वयं ब्रह्मा जी ने तपस्या की थी। यह परम कल्याण देने वाला है। इस पुण्यमय पर्वत पर अनेकों प्रकार के बाजों एवं संगीत की ध्वनि होती रहती है। वह सर्व प्रथम वादित्रक गिरि के नाम से प्रसिद्धि है। उस पर्वत की शिखिर पर विद्याधर गन्धर्व और अप्सराओं के झुण्ड आज भी गान किया करते हैं। मोहन, सुनीथ, शैलूज, मोहनोत्तम, पर्वत नारद, ध्यानी, संगीती, पुष्यदन्तक, हा हा हू हू आदि गन्धर्वगण वहां पर संगीत का दान करते रहते हैं। वहां चित्ररथ अन्य गन्धर्वों के साथ रहता है। वे सब गन्धर्वगण इस पवित्र और मनोहर पर्वत पर गीत गा गा कर महान उत्सव करते हैं। इसी कारण से यह पर्वत देवों द्वारा सेवनीय रहा है। गीत एवं वाद्यों से निनादित इस पर्वत पर महादेव जी पार्वती के साथ आनन्द करते हैं। इनकी पूजा करने से पितृगण परमगति को देते हैं। अतः उन महादेव जी का ध्यान अवश्य करना चाहिये। हे मुने! भगवान रुद्र की पूजा करने पर मनुष्य वैष्णवी माया से छूट जाता है। इस गया क्षेत्र में गदाधारी अथवा गोपालक भगवान वास करते हैं। शिला के दाहिने हाथ पर 'भस्म कूट' नामक पर्वत है। उस पर महर्षि अगस्त तथा उनकी पत्नी और धर्मराज बिराजते हैं। अगस्त के चरण प्रान्त में पिण्डदान करने वालों को ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। महर्षि अगस्त ने लोपा मुद्रा के लिये यहीं वरदान ब्रह्मा जी द्वारा प्राप्त कराया था। यह स्थल पितरों को परम गति प्रदान करता है। वहां अगस्तेश्वर के दर्शन कर मनुष्य की ब्रह्म हत्या के पाप से मुक्ति होजाती है। स्त्री सहित अगस्त ऋषि की पूजा करने से

वह्मलोक की प्राप्ति होती है। सीताचल के दक्षिण की ओर पर्वत पर दण्डी ऋषि ने तप किया था। वहां पर वटेश्वर नाम का बट का वृक्ष है। उसके नीचे प्रजापति ब्रह्मा का स्थान है। उससे आगे रुक्मिणी कुण्ड नामक तीर्थ है। पश्चिम में कपिला नाम की नदी है। उस नदी के तट पर कपिलेश का स्थान है। सोमवती अमावस्या के अवसर पर कपिला नदी में स्नान करके कपिलेश की विधि पूर्वक पूजा करके पिण्डदान और श्राद्ध आदि कर्म करके पितरगणों को सन्तुष्ट करना चाहिये। उद्यन्तक पर्वत के पास लगी हुई एक अग्निधारा बहती है। वहीं एक सारस्वत नामक कुण्ड है जिसे सरस्वती ने स्थापित किया था। उस स्थान पर शुक्राचार्य जी अपने पुरोहितों द्वारा बिराजते हैं। हे श्रेष्ठ मुनि उस पवित्र स्थान पर मुनियों की पूजा और श्राद्ध पिण्डदान करने वाले मनुष्य के पितरों का उद्धार हो जाता है। शिला के बांये ओर गृध्रकूट नामक पर्वत है। अनेक महान ऋषियों ने गृध्र का रूप धारण करके वहां पर तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्त की थी। इसी कारण इस पर्वत का नाम गृध्रकूट पर्वत है। यहीं गृध्रेश्वर का निवास है यहां गृध्रेश्वर भगवान का पूजन करने से मनुष्य शम्भु के लोक को प्राप्त करते हैं गृध्रगिरि की गुफा में पिण्डदान करने वाला मनुष्य शिवलोक को जाता है। उसी स्थान पर एक वट है उस वट को नमस्कार करने से सभी मनोकामनायें पूर्ण होती हैं तथा स्वर्ग मिलता है। वहां पर भगवान शंकर के दर्शन करके मनुष्य ऋण और पापों से छूट जाता है, उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। एक शूलक्षेत्र नामक तीर्थ है। उसमें पिण्डदान करने से पित्रीश्वरों की तृप्ति होती है तथा वे स्वर्ग को जाते हैं।

गयासुर के ऊपर रखी गई शिला का उदर देश 'आदिपात्र' नामक पर्वत से व्याप्त है। उस पर विघ्नेश्वर गणेश जी गज का रूप धारण करके विराजमान हैं उनके दर्शन विघ्नों को दूर करते हैं पितरों को स्वर्ग प्रदान करते हैं। उसी शिला के बांये चरण की ओर एक धर्मराज द्वारा स्थापित प्रेतगिरि नामक पर्वत है। यह पापों के कारण

अधिक मलिन था। तब इसे प्रेतशिला कहते थे। धर्मराज ने इसे पैरों के द्वारा फैंक दिया। तब यह उक्त शिला से स्पर्श पाकर पवित्र होगया। यहीं पर एक प्रेतकुंड है। इसमें पिंडदान करने से मनुष्य अपने पितरों को मुक्त करता है। गया तीर्थ में पितरों की मुक्ति के लिये पिंडदान करते समय अनेक प्रेत लोग विघ्न बाधा डाल कर वहां मनुष्य के रूप में आ जाते हैं। धनुष धारण किये वे बहुत ही विघ्न डालते हैं, हाथ पकड़ लेते हैं। एक वहीं पर 'मुण्डपृष्ठा' नाम की शिला है, जो महादेव जी के चरणों से अंकित है। महादेव जी यहीं निवास करते हैं। उसका दर्शन करने पर सभी पाप छूट जाते हैं। यहीं 'गयाशिर' अति पवित्र स्थान है जो समस्त प्रेतों से रहित है। उसे सबसे पवित्र और सुन्दर कहा है। मगध के सम्पूर्ण तीर्थों में गया सबसे पुण्य शालिनी है। आश्रमों में च्यवन का आश्रम बहु पुण्यप्रद है। नदियों में पुनपुना नदी सबसे पुनीत है। इसी प्रकार बैकुंठ, लोहदंड, गृध्रकूट तथा शोणक भी पुण्यमय हैं। इन सभी स्थानों में पिंडदान व श्राद्ध करने से मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाते हैं। मुण्ड पृष्ठ पर मुनि ने कौआ का रूप धारण करके तपस्या की थी। उनके चरणों के चिन्हों से यह चिन्हित है। इसी कारण इसका नाम 'क्रौंचपाद' पड़ा है। वहां के जलाशय में स्नान करने पर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। काक शिला पर कौआ का बलिकर्म ऋण से मुक्ति दिलाने वाला है। मुण्डपृष्ठ की उसी तलहटी में लोमश ऋषि और लोमहर्षण दोनों का तप स्थान है, जहां उन्हें परम सिद्धि प्राप्त हुई थी। लोमश ने यहां की नदियों में श्रेष्ठ महानदी, शरावती, होजवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, कावेरी, सिंधुवीरा, चन्दना वाशिष्ठी, सरयू, गंगा, यमुना, गंडकी, इन्दिरा, स्वर्ग की निराञ्जरा वैतरिणी, अलकनन्दा, उदीची कनका, कौशिकी, ब्रह्मदा आदि जो सभी श्रेष्ठ तथा पापों को नष्ट करती हैं, इन सबका आवाहन किया था। लोमहर्षण ने मुक्ति प्रदायनी कृष्णवेणी और चर्मवती नामक दोनों नदियों को अपने तपोबल से आवाहन किया था। इन सभी नदियों में स्नान करके पिंडदान करने वालों के पाप छूट जाते हैं।

नियम पूर्वक तीन दिनों तक वहां निवास करना चाहिये। ऐसा करने से व्यक्ति पांचों प्रकार के पापों से छूट कर पितरों को स्वर्ग दिलाता है।

भस्मकूट पर जनार्दन भगवान का निवास है। उनको अपासक हो कर तिलोंका दान अपने लिये तथा अन्य लोगों के लिये करना चाहिये। जीवित लोगों के लिये दही मिलाकर विण्डदान करे। ऐसा करने वाले सभी विष्णु लोक को जाते हैं पिण्डदान करते समय निम्न प्रकारसे कहे

"हे प्रभो! हे जनार्दन! यह पिण्ड मैं जिसके नाम से दे रहा हूं उसकी मृत्यु के बाद आप उसे यह पहुँचा दें। हे जनार्दन! यह पिण्ड मैं अपना आपके हाथों में प्रदान करता हूं, जब मेरा अन्त हो जाय तो इसे गयाशिर में मुझे प्रदान करना। हे जनार्दन! आप पितरों को मुक्ति देने वाले हैं। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप पितरों के स्वामी हैं तथा स्वयं पितृरूप हैं। आपको नमस्कार है।

इस गया क्षेत्र में जनार्दन भगवान स्वयं ही विराजमान रहते हैं उन पुण्डरीकाक्ष प्रभु का दर्शन तीनों पापों (दैहिक, दैविक व भौतिक) से मुक्ति प्रदान करता है। हे लक्ष्मीकान्त! आप तीनों ऋणों से मुक्ति देने वाले हैं हमारे पितरों को मुक्ति प्रदान करो, आप को नमस्कार है। भीम ने अपना बायां घुटना टेक कर जनार्दन भगवान को नमस्कार किया था। और पिण्डदान करके भाइयों समेत ब्रह्मलोक को प्राप्त किया था उनधर्मात्मा भीम ने पितरों समेत सौ कुलों का उद्धार भी किया था। वह पवित्र शिला देवमयी है वहां पर लक्ष्मीपति विष्णु भगवान देवगणों के साथ सदा व्यक्ताव्यक्त रूप से विराजमान रहते हैं।

[इति श्री वायु महा पुराण का गया माहात्म्य नामक एक सौ आठवां अध्याय समाप्त ॥ १०८ ॥

एक सौ नौवां अध्याय

[गया माहात्य]

नारदजी बोले— हे सनत्कुमार जी! वहां पर (गया में) भगवान गदाधार व्यक्त रूप से किस तरह विराजमान हैं। वह गदा किस

प्रकार उत्पन्न हुई जिससे वे आदि गदाधर कहलाये ? सब पापों को हरण करने वाली उस गदा को चंचलता किस प्रकार मिली ?

सनत्कुमार जी बोले—बहुत पुराने समय की बात है कि एक 'गद' नाम का बज्र से भी कठोर असुर था। जिसने अपनी हड्डियां ब्रह्मा जी को उनके द्वारा माँगे जाने पर प्रदान करदीं। ब्रह्मा जी के कहने पर विश्वकर्मा ने उन हड्डियों की एक गदा बनाई। वह गदा बड़ी अद्भुत थी। उन हड्डियों की विश्वकर्मा ने बज्र को भी भेदन करने वाले यन्त्रों से काट छाँट कर सुन्दर गदा का निर्माण कर स्वर्ग में स्थापित किया। बहुत काल के बाद एकबार स्वायंभु मन्वन्तर में ब्रह्मनन्दन हेति नामक राक्षस ने कठोर तपस्या की। उसने एकलाख दिव्य वर्षों तक केवल वायु का भक्षण किया। एक पैर के अंगूठे पर खड़े होकर, मुँह और दोनों भुजाओं को ऊपर उठाकर शान्त चित से ध्यान में तत्पर रहा। उस समय उसने पुराने पेड़ों से गिरे पत्तों को खाया। फिर केवल वायु का ही आहार किया। इस तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा एवं अन्य देवों ने उसे वरदान माँगने को कहा। उसने वरदान की याचना की कि मैं समस्त देवों दैत्यों तथा अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों, मनुष्यों, कृष्ण, शिव, सुदर्शन चक्र आदि किसी से भी न मारा जाऊँ। मेरे समान बलवान दूसरा कोई न हो। देवगण उस हेति की प्रार्थना को स्वीकार करके अन्तर्धान हो गये।

उसने इस वरदान से देवों को हराकर इन्द्र का पद भी छीन लिया। ब्रह्मा महादेव आदि इससे भयभीत होकर विष्णु भगवान की शरण में गये और बोले–हे प्रभो ! इस हेति का बध कीजिये। विष्णु ने देवों से कहा हे देववृन्द 'हेति' को समस्त देव एवं असुर भी नहीं मार सकते। मुझे कोई ऐसा महान अस्त्र दीजिये जिससे मैं उसे मार सकूँ। भगवान विष्णु के इस प्रकार कहने पर देवों ने वही गदा लाकर उन्हें प्रदान की। देवताओं की प्रार्थना पर देवपति विष्णु भगवान ने सबसे पहले उस गदा को धारण किया। उसी गदा से हेति को मारकर विष्णु भगवान देवताओं के साथ स्वर्गलोक को गये।

गयासुर को निश्चल करने के लिये ऊपर रखी गई शिला पर विष्णु भगवान ने इसी गदा को स्थित किया था। इसी कारण से भगवान का नाम गदाधर पड़ा। शिला पर्वत रूप से भगवान उस गयातीर्थ में व्यक्त हुये। शिला के अलावा मुण्डपृष्ठ गिरि, प्रभास उद्यन्त, गीतनाद, भस्मकूट, गृध्रकूट, प्रेतकूट आदिपाद, अरिविन्दक, पंचलोक, सप्तलोक, वैकुण्ठ, लोहदण्डक, क्रौंचपाद, अक्षयवट. फलगूतीर्थ, मधुश्रवा, दधिकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी, वैतरिणी आदि के रूप में भगवान गदाधर आदि व्यक्त हैं। विष्णु पद, रुद्रपद, उत्तमब्रह्मपद, दिव्यगुणयुक्त कश्यप पद जहां पर दो हाथ निकले हुये हैं, पंचाग्नियों के पद, इन्द्र के पद, अगस्त के पद, सूर्य के पद, कार्तकेय के पद, मातङ्ग के पद, और अनेक मुख्य लिंग वहां व्यक्ताव्यक्त रूप से विराजमान हैं। वहां गदाधार भगवान स्वयं इन रूपों में व्यक्त रूप से विद्यमान हैं। गायत्री, सावत्री, संन्ध्या, सरस्वती, गयादित्य, उत्तरार्क दक्षिणार्क, नैमिष, श्वेतार्क गणनाथ आठों वसुगण, मुनिगण ग्यारह रुद्रगण, सातों ऋषि सोमनाथ सिद्धेश, कपर्दीश, विनायक, नारायण, महालक्ष्मी, श्री पुरुषोत्तम, ब्रह्मा जी, मार्कण्डेयेश, कोटीश, अंगिरेश, पितामह जनार्दन, मंगला पुण्डरीकाक्ष इत्यादि रूप से गदाधर भगवान वहां विद्यमान हैं।

हेति नाम के राक्षस ने मृत्यु के बाद भगवान विष्णु के लोक को प्राप्त हुआ। गयासुर को निश्चल करने पर ब्रह्मा रुद्र इन्द्र इत्यादि सभी देवगण बहुत प्रसन्न हुये। गदाधर भगवान की सभी ने मिलकर इस प्रकार स्तुति की—

ब्रह्मा जी बोले— इस पुण्य गयाक्षेत्र में सभी गुणों से पले, पापों से विहीन, पूजित गदाधारण करने वाले, पर्वतराज हिमालय की गुफा में विराजमान रहने वाले भगवान विष्णु को मैं नमस्कार करता हूं देवों को विजय प्राप्त कराने वाले, दिन की शोभा, महादेवजी को यश देनेवाले दैत्यों का नाशकर देवताओं को प्रसन्न करने वाले कलि के घोर पापों को नाश कर यश बढ़ाने वाले कलियुगमें भी शोभा सम्पन्न, शरणागत रक्षक भगवान गदाधर को मैं प्रणाम करता हूं। परमपुष्टिमय भक्ति

रखने वाले भक्तजन जिसकी अधिक भक्ति से स्तुति करते हैं उन भगवान को, अद्भुत कर्म शील, परमविक्रम शील, अजन्मा होकर भी, शरीर होकर भी शरीर धारण करने वाले कठोर पाप कर्मों को नष्ट करने वाले पूज्यों में भी अग्रणी, पापियों को प्राप्त न होने वाले भगवान को हमारा नमस्कार है। जो वाणी एवं मन से अगोचर हैं, श्रेष्ठ वंशों में उत्पन्न हुये हैं, उन शरीर रहित, कारण एवं कलाओं से विहीन, अजन्मा, सूर्य की भांति कान्तिमान, ध्वनि मुख से रहित, अनादि परम ऐश्वर्यवान भगवान को हमारा नमस्कार है। मन से परे बुद्धि की गति से अगम्य, परात्पर, द्वैत रहित जिनकी विद्वान लोग सदा स्तुति करते हैं उन चित्स्वरूप कलि काल के कारणों से परे, हृदय में विराजमान गदाधर भगवान को हम नमस्कार करते हैं। सनत्कुमार बोले—देवताओं केसहित ब्रह्माजी के द्वारा इसप्रकार प्रार्थना एवं स्तवन करने पर भगवान विष्णु बोले—वरदान मांगिये। तब ब्रह्मा ने याचना की कि हे देव! इस स्वरूपिणी शिला पर आपके बिना हम लोग नहीं रहेंगे। व्यक्त आदि स्वरूप सम्पन्न आपके साथ ही हम लोग सदा इस शिला पर रह सकते हैं। तब भगवान आदि गदाधर ने कहा कि ऐसा ही होगा। तभी से भगवान विष्णु लक्ष्मी जी के साथ वहां पर विराजमान हुये। वे भगवान समस्त लोकों के रक्षक, जगत जीवों को मुक्ति प्रदान करने वाले भगवान गदाधर पुण्डरीकाक्ष जनार्दन नाम से प्रसिद्ध हुये। श्वेत कल्प वेदों द्वारा अगम्य जो आदि भूत हैं और भगवान की व्यक्त मूर्ति थी वही भविष्य में वाराह कल्प के आने पर अदृश्य हो जायगी। लोक के उद्धार करने के लिये और देवगणों की रक्षा करने के लिये वह गयासुर के शिर पर स्थित होगी। जो मनुष्य सदा श्रद्धा सहित भगवान गदाधर का दर्शन प्राप्त करेंगे वे कुष्ठ आदि महान घोर रोगों से छूट कर निरोगी काया प्राप्त करेंगे बाद में वे विष्णु लोक को प्राप्त होंगे। जो मनुष्य भक्ति पूर्वक गदाधर का दर्शन करेंगे उनको धन, यश आयु और दीर्घायु प्राप्त होंगे। वे पुत्र पौत्रादि से सुख पाकर अक्षय फल प्राप्त करेंगे। जो गया तीर्थ में सुगन्धि युक्त पदार्थों को दान करेगा वह धन द्रव्य व सर्व सुखों को

प्राप्त होगा। उस स्थान पर पुष्प के दान करने से सौभाग्य प्राप्त होता है। दीपक दान करने से कान्ति प्राप्त होती है। ध्वजा के दान करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य इस गया तीर्थ की यात्रा करेगा, वह ब्रह्मलोक को प्राप्त होगा। जो मनुष्य यहां श्राद्ध कर्म और पिण्ड-दान करते हैं वे अपने पितरों को विष्णु लोक में पहुँचाते हैं। जो व्यक्ति इस स्तोत्र को पढ़कर भगवान गदाधर को श्रद्धा पूर्वक स्तुति तथा पूजनादि करके प्रणाम करेगा, वह पितरों को स्वर्ग लोक में पहुँचायेगा।

शिवजी ने कहा— जो भगवान! अव्यक्त रूप धारण कर मुण्ड-पृष्ठ पर्वत पर और फल्गुतीर्थ में परमात्मा विष्णु को श्रद्धा सहित प्रणाम करेंगे, वे अनन्त अक्षय फल को प्राप्त होंगे। जो अव्यक्त रूप धारण करने वाले हैं वे भगवान विष्णु मुण्डपृष्ठ पर जनार्दन का रूप रख कर विद्यमान हैं हम उन जनार्दन भगवान को प्रणाम करते हैं जो देव स्वरूपिणी शिला पर ब्रह्मा इत्यादि देवों द्वारा पूजित होकर स्थित हैं, हम उन गदाधर भगवान का प्रणाम करते हैं।

सनत्कुमार बोले— हे नारद जी! इस प्रकार शिवजी द्वारा स्तुति करने के बाद गदाधर भगवान ब्रह्मा इत्यादि देवगणों के साथ वहाँ स्थित हुये। मुण्डपृष्ठ पर्वत पर स्थित गदाधर भगवान की जो पूजा, वन्दना और स्तुति करते हैं, वे इस मनुष्य लोक में सुख भोग कर अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं धर्म की इच्छा रखने वाले मनुष्य को धर्म प्राप्त होता है। अर्थ की इच्छा रखने वालों को धन प्राप्त होता है। राजा को युद्ध में विजय प्राप्त होती है। ब्राह्मण मनुष्य को सभी प्रकार की शिक्षाओं का शीघ्र ही ज्ञान प्राप्त होता है सन्तान हीन मनुष्य को सुन्दर विद्वान पुत्र प्राप्त होता है। जो मनुष्य गदाधर भगवान की भक्ति पूर्वक पूजा और स्तुति करते हैं वे इस लोक में सब सुख भोग कर वैकुण्ठ पद को प्राप्त करते हैं॥ १०६॥

[इति श्री वायु महा पुराण का गया माहात्म्य नामक एक सौ नवां अध्याय समाप्त हुआ]

एक सौ दसवां अध्याय

(गया माहात्म्य)

सनत्कुमार जी बोले—हे नारद जी ! अब मैं आपको गया यात्रा करने की विधि को बतलाऊँगा, वह मोक्ष प्रदान करने वाली है। प्राचीन समय में ब्रह्माजी ने कहा था कि गया तीर्थ के श्राद्ध कर्म करने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है। गया यात्रा करने वाले मनुष्य को सबसे पहले कौपीन वस्त्र पहनना चाहिये और फिर गांव की परिक्रमा करके दूसरे गांव में जाकर श्राद्ध के बचे हुये अन्न का भोजन करे, फिर दान इत्यादि न लेकर प्रतिदिन यात्रा करे। प्रतिग्रह से बचकर, शुद्ध चित्त होकर इन्द्रियों को वश में रख कर पवित्रात्मा से गया की यात्रा करने से तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त होता है। जिसके हाथ पैर और मन वश में रहते हैं उसे धन, विद्या, तप और कान्ति प्राप्त होती है। गया क्षेत्र में घुसने से पहले महानदी के निर्मल स्वच्छ जल में स्नान करना चाहिये, फिर विधिविधान देवादिकों का तर्पण और श्राद्ध करके वेद मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये। फिर दूसरे दिन शुद्ध होकर प्रेत पर्वत की यात्रा करनी चाहिये, फिर ब्रह्म कुण्ड में स्नान करके देवों के लिये तर्पण करना चाहिये। प्रेत पर्वत पर श्राद्धादि और पिण्डदान करने चाहिये। श्राद्ध कर्म दक्षिणाभिमुख होकर करना चाहिये। कव्य वाह, चन्द्रमा, यम, अग्नि, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद् और सोमपान करने वाले पितृगण आप यहां पधारे ! मैं आप लोगों की कृपा से अपने सभी पितरगणों का श्राद्ध करने गया पुरी में आया हूँ। आप हमारे इस श्राद्ध कर्म से सन्तुष्ट होइये। इस प्रकार विनती करके आचमन करे, और पांचों अंगों सहित पांच प्राणायाम करके श्राद्ध कर्म को विधिवत् पूर्ण करना चाहिये। श्राद्ध के समय मंत्रों द्वारा पितरों का आवाहन करके पिण्डदान करना चाहिये। प्रेतशिला तीर्थ पर घृत सहित खीर का पिण्डदान करना चाहिये। श्राद्ध कर्म में मनुष्य जितने तिलों का दान करते हैं उतने ही सिंह मृगों से डर कर दूर भाग जाते हैं। सभी अष्टकाओं में, वृद्धि श्राद्ध में, गया तीर्थ में, मृत्यु के दिन

माता का श्राद्ध पिता के श्राद्ध के साथ ही करना चाहिये। वृद्धि श्राद्ध में पहले माता का श्राद्ध कर फिर पिता का श्राद्ध करना चाहिये। दक्षिणाभिमुख होकर कुश के आसन पर पिता के श्राद्ध के निमित्त पाद्यादि प्रदान करे। भली प्रकार कुशासन बिछाकर तिल सहित जल का दान करने के बाद दक्षिण दिशा से लेकर पिण्डों को श्राद्ध प्रदान करे। हाथ की अञ्जलि में पितृतीर्थों का जल लेकर उनको जल दान करना चाहिये। थोड़ा सत्तु लेकर अक्षय पिण्ड दान करना चाहिये। ब्रह्मा जी से लेकर स्तम्ब तक सभी देवगण हैं वे हमारे पितर गण हैं, वे इस जल दान से तृप्त हों, इस प्रकार कह कर जल दान करना चाहिये। पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मातामही, तथा प्रपितामही तथा उनके भी पिता जो हमारे पूर्व पुरुष हैं, उन्हीं सब के लिये मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ आप सब इससे सन्तुष्ट हो जाइये। जो व्यक्ति गया शिर पर हरे आंवले भर या शमी के पत्ते के समान पिण्डदान करता है वह अपने सात कुल के पितरों का उद्धार करता है। ये सात गोत्र माने जाते हैं पिता, माता, बहिन, अपनी स्त्री, पुत्री, बुआ, मौसी इत्यादि हैं। चौबीस, बीस, सोलह, बारह, ग्यारह, सात और आठ इतने क्रम पूर्वक पिण्डदान करने चाहिये। इस प्रकार दान करने से मनुष्य के सौ कुलों का उद्धार होता है। श्राद्ध कर्म में इस प्रकार विधि से पिण्डदान करना चाहिये। पिण्ड का आसन, पिण्डदान, पिण्डदान दक्षिणा और अन्नदान। पिण्डदान के पूर्व मनमें इस प्रकार संकल्प करना चाहिये कि अपने कुल के सभी मृतकों तथा नाना के कुल के सभी मृतकों को मैं इस कुशासन पर तिल मिश्रित जल द्वारा पिण्डदान कर रहा हूँ। इसके बाद पूजनादि करके फिर पिण्डदान करें। अपने कुल के मरे हुये लोगों की जिनकी गति नहीं हुई है, उनका उद्धार करने के लिये मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ। अग्नि में जल कर मर जाने वाले व्यक्ति हों, बिजली से मर जाने वाले व्यक्ति, चोर, डाकुओं से मारे जाने वाले व्यक्तियों के लिये मैं यह पिंडदान कर रहा हूँ। जो बिना दांत निकले

ही मर गये हों, अचानक दीवार से गिर कर दबने से मृत्यु हो गई हों, कुए में गिर कर मर गये हों, नशीली या मादक वस्तु के प्रयोग करने से मर गये हों, किसी ने अपहरण करके मार डाले हों या सफर करने में मर गये हों या जो गर्भ में ही मर गये बन में अग्नि से जलकर मर गये. सिंह और व्याघ्र से मारे जाने वाले, फांसी से मरने वाले, आत्म हत्या करके मरने वाले, भूख प्यास से तड़प कर मरने वाले, भूत प्रेत और पिशाचों के मारे जाने वाले व्यक्तियों के उद्धार करने के लिये मैं यह श्राद्ध कर्म में पिंडदान कर रहा हूं। रौरव, अन्धनामिस्त्र कालसूत्र, असिपत्र वन, कुम्भीपाक इत्यादि नरकों से अपने पितरों का उद्धार करने के लिये ही मैं यह पिंडदान कर रहा हूं। पशु योनि में उत्पन्न होने वाले नीच पक्षी, कीट, सरकने वाले सर्प, वृक्षों की योनि में उत्पन्न होने वाले तथा और अनेक जातियों में उत्पन्न होने वाले पितरों के उद्धार के लिये मैं यह कर्म कर रहा हूँ। पिता के वंश में मरने वाले तथा माता के वंश में मरने वाले जिनके स्त्री पुत्रादि न हों, जिसके कोई बन्धु बान्धव न हों. अन्धे, लँगड़े हों, कुरूप हों, उन सबके उद्धार के लिये मैं यह पिंडदान कर रहा हूं। इस प्रकार इन शब्दों में कह कर माताओं के लिये स्त्रीलिंग लगाकर पिंडदान करना चाहिये। अपने गोत्र के तथा किसी दूसरे गोत्र के स्त्री पुरुष के लिये अलग अलग पिंडदान करने की रीति है। पिंड रखने के वर्तन में तिल छोड़कर और पवित्र जल से सिंचन करके इन मन्त्रों का उच्चारण करके, परिक्रमा करके पिंडदान करना चाहिये। तीनबार सिंचन के बाद प्रणाम करके पिंडदान करना चाहिये। पितरों को विसर्जित करके हाथ जोड़कर आचमन करके देवताओं से इस प्रकार कहना चाहिये ब्रह्मा, शिव इत्यादि देवगण इस कार्य के साक्षी हैं कि मैं गया तीर्थ में आकर पितरों के श्राद्ध कर्म को सम्पन्न कर चुका हूं। हे गदाधर भगवान्! मैं सिर्फ इसी कार्य के लिये ही गया तीर्थ में आया था। इसी प्रकार तीर्थयात्रा में जाकर पिंडदान करना चाहिये। मैं अपने ऋण से मुक्त हो गया हूं। हे नारद जी! सबसे पहले

प्रेत पर्वत पर श्राद्ध कर्म करें, फिर अन्य पवित्र स्थान में श्राद्ध कर्म को पूर्ण करें। प्रेत पर्वत पर सत्तु तिल मिलाकर दान करने से पितरों को अक्षय फल प्राप्त होता है। हमारे कोई भी पितरगण प्रेत योनि में पड़े हों, वे इस तिल सत्तु के दान से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त करेंगे। गया शिर में यह प्रेत शिला प्रेतों की मुक्ति करने वाली है और इसमें श्राद्ध करने से कोई भी मनुष्य प्रेत योनि में नहीं जाता। इस पवित्र तीर्थ में गदाधर भगवान अन्य देवगणों के साथ वहां स्थित हैं ॥११०॥

[इति श्री वायु महा पुराण का गया माहात्म्य नामक एकसौ दसवां अध्याय समाप्त हुआ]

एक सौ ग्यारहवां अध्याय

(गया माहात्म्य)

सनत्कुमार बोले—हे नारद जी! अब मैं आपको उत्तर मानस तीर्थ में किस प्रकार श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिये। मैं आपके इसके विषय में बतला रहा हूं। हाथ धोकर आचमन करके हाथ में कुशा लेकर शिर पर जल से छींटे मारे। फिर उत्तर मानस तीर्थ की यात्रा करे। वहां जाकर इस मन्त्र को पढ़ कर स्नान करके आत्मा शुद्ध करने के लिये मैं उत्तर मानस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ। सूर्य आदि देवों की सिद्धियां प्राप्त करने के कारण तथा अपने पितरों का उद्धार करने के लिये मैं इस पवित्र तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ। स्नान कर तर्पण करके पिण्डदान करना चाहिये। यहां पर मानस नामक सरोवर स्थित है, इसी कारण इस तीर्थ का नाम उत्तर मानस पड़ा है। उस स्थान पर जो मनुष्य सूर्यदेव को प्रणाम करके पूजन करता है उस कर्म से प्रसन्न होकर उसके पितरगण सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं। इसके बाद सभी देवों को ब्रह्मा जी विष्णु, चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु को प्रणाम करके मौन व्रत धारण करके उत्तर मानस से दक्षिण मानस की यात्रा करनी चाहिये। वह उदीची का तीर्थ है और औदिच्य तीर्थ नाम से प्रसिद्ध है वह तीर्थ मोक्ष प्रदान करने वाला है।

इस तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सशरीर स्वर्ग को प्राप्त करता है इसके मध्य भाग में कनखल नामक तीर्थ बसा हुआ है वहां स्नान करने से मनुष्य सुवर्ण की तरह कान्तिवान शरीर को प्राप्त करता है। इन तीर्थों में विधि पूर्वक स्नान करके श्राद्ध कर्म करना चाहिये।

हे सूर्य देव मैं इस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ और फिर सूर्यादि देवों को प्रणाम करके पूजा करे। मैं आपको प्रसन्न करने के लिये नमस्कार करता हूं तथा अपने पितरों के तारने के लिये भी आपको प्रणाम करता हूं। इसके बाद फल्गु तीर्थ में स्नान करने से पुत्र, पौत्रादि, धन धान्य, आरोग्य और दीर्घायु के लिये मैं आप सब देवों को प्रणाम करता हूँ। ब्रह्मा जी के अनुरोध पर विष्णु भगवान इस फल्गु तीर्थ में स्थित हुये। यज्ञ की दक्षिणाग्नि में पड़ा हुआ रज फल्गु तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। फल्गु तीर्थ तो स्वय भगवान गदाधर स्वरूप है। गंगा से अधिक महात्म्य इस तीर्थ के स्नान करने से होता है। इसके स्नान करने से इतना फल प्राप्त होता है, जितना कि एक लाख अश्वमेध यज्ञ करने पर भी नहीं होता है। इस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य को पिण्डादि दान करना चाहिये। पितामह को प्रणाम करके पूजा आदि करनी चाहिये। फल्गु तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य अपने दस पीढ़ी पूर्व दस पीढ़ी बाद में होने वालों का उद्धार करता है। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, श्रीधर इत्यादि सभी देवों को हम प्रणाम करते हैं।

जो मनुष्य पंचामृत में स्नान करा कर सुन्दर फल फूल तथा वस्त्रों को पहना कर गदाधर भगवान की पूजा करते हैं। उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है। दूसरे दिन धर्मारण्य की यात्रा करनी चाहिये। इसी धर्मारण्य तीर्थ में प्रजापति ब्रह्माजी ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था हे। नारद जी इस धर्मारण्य तीर्थ में पिन्डदान करने से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है। इसके बाद मतंग में स्नान करना चाहिये, और मतंगेश को प्रणाम करके पितरों के उद्धार के लिये इस तीर्थ में पिन्डदान करने चाहिये। वहाँ पर धर्म धर्मेश्वर को प्रणाम करके

महाबोधि वृक्ष को प्रणाम करना चाहिये। ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप, अश्वत्थराज, बोधिवृक्ष को हम प्रणाम करते हैं। मैं अपने पितरों का उद्धार करने के लिये यहां श्राद्धादि कार्य सम्पन्न कर रहा हूँ। हे वृक्षराज! इस गया तीर्थ में आकर मैं आपकी कृपा से सब पापों से छूट गया हूँ। तीसरे दिन ब्रह्म सरोवर में स्नान करना चाहिये सभी प्रकार से विधि पूर्वक पिण्डदान करके इस प्रकार कहे कि हे देव! मैं आपकी कृपा से तीनों ऋणों से मुक्त हो गया हूँ। इस प्रकार कूप और यूप के मध्य भाग में श्राद्ध कर्म को पूर्ण करे। ब्रह्म सरोवर में श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरों का उद्धार करता है। यूप की परिक्रमा करने से बाजपेय यज्ञ के फल के समान फल प्राप्त होता है। अजन्मा ब्रह्मा जी को हम प्रणाम करते हैं। ब्रह्म सरोवर के पास आम के वृक्ष लगे हुये हैं, वे सभी आम के वृक्ष ब्रह्ममय हैं। वे स्वयं भगवान विष्णु के स्वरूप हैं। उनकी इस प्रकार प्रार्थना करके कि–मैं पितरों के उद्धार के लिये आप सब देवों को प्रणाम करता हूँ। इसके बाद यमराज को बलिदान करना चाहिये। धर्मराज और यमराज ये दोनों देव गयासुर को निश्चल करने के लिये यहां स्थित हुए हैं। मैं अपने पितरों की मुक्ति की इच्छा से उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ। इसके बाद कुत्तों को बलि देनी चाहिये। वैवस्वत कुल में उत्पन्न होने वाले दोनों कुत्ते श्यामल रंग के तथा चितकबरे हैं। मैं पितरों के उद्धार के लिये उन दोनों को बलि दे रहा हूं। चारों दिशाओं में रहने वाले वायस गणों को मैंने पिण्डदान किया है। चौथे दिन फिर फल्गु तीर्थ में स्नान करना चाहिये। फिर गयाशिर पर स्थित विष्णु पद पर पिण्डदान करना चाहिये। वहां पर गयासुर का साक्षात शिर भाग स्थित है। यह फल्गु तीर्थ उसी पर स्थित है। नाग, जनार्दन, ब्रह्म यूप और उत्तर मानस तक यह गयाशिर माना जाता है इसी कारण इसको फल्गु तीर्थ कहते हैं।

यहां पर गदाधर भगवान स्थित हैं। पितरों को मोक्ष प्रदान करने के लिये वहां विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र आदि देवगणों के चरण चिन्ह स्थित हैं। उस दिव्य विष्णु पद का दर्शन करने से घोर पापों का नाश होता है। उस स्थान पर दान करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। विष्णु पद पर पिण्डदान करने से मनुष्य के सौ कुलों का उद्धार होता है। रुद्र के चरण पद पर श्राद्ध करने वाला मनुष्य भी अपने सौ कुलों का उद्धार करते हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा जी के चरण पद पर श्राद्ध कर्म सम्पन्न करने से सौ कुल के पितर गणों का उद्धार होता है और आप ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है। कश्यप के चरण प्रान्त पर श्राद्ध कर्म करने से ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। गार्हपत्य के चरण प्रान्त में श्राद्ध कर्म करने से बाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। आहवनीय अग्नि पद में श्राद्ध कर्म करने से अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। शुक्र के चरण प्रान्त में श्राद्ध करने से पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। अगस्त्य के चरण पद पर श्राद्ध करने से इन्द्रलोक प्राप्त होता है। सूर्य के चरण पर श्राद्ध करने से पितरगण सूर्यलोक को प्राप्त होते हैं। कार्तिकेय के चरण प्रान्त पर श्राद्ध करने से शिव लोक प्राप्त होता है। गणेश के चरण प्रान्त में श्राद्ध करने से पितर शिव लोक को जाते हैं। गज कर्ण नामक तीर्थ में तर्पण करने से मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त होता है। इसी प्रकार सभी देवों के चरण प्रान्त में श्राद्ध कर्म सम्पन्न करने से मनुष्य के पितरगण स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं। इन सभी चरण प्रान्तों में ब्रह्माजी, विष्णु, रुद्र, कश्यप के चरण प्रान्त श्रेष्ठ माने जाते हैं। हे मुनि! गया तीर्थ में यात्रा के शुरू और अन्त में श्राद्ध कर्म करने का विधान माना गया है।

प्राचीन समय में कश्यप जी के चरण प्रान्त में भारद्वाज ऋषि श्राद्ध कर्म सम्पन्न कर रहे थे, उसी समय वे पिण्डदान देने

के लिये तैयार हुऐ दो श्यामल और गौरवर्ण के दो हाथ बाहर निकले आये। भारद्वाज दोनों हाथों को इस प्रकार बाहर निकले देखकर आश्चर्य में पड़ गये और अपनी माता शान्ता से पूछने लगे हे माता! कश्यप के चरणों में ये कृष्ण और गौरवर्ण के दो हाथ निकले हुये हैं, मैं किस हाथ पर पिण्डदान करूँ, आप मुझ को अच्छी तरह बतलाइये, क्योंकि आप इन सब के बारे में अच्छी तरह से जानती हो, अतः मेरे इस भ्रम को दूर कीजिये।

शान्ता बोली— हे भारद्वाज! तुम काले रंग के हाथ पर पिण्डदान करो, माता की आज्ञा पाकर भारद्वाज ने उसी श्यामल हाथ पर पिण्डदान किया, तो उसी समय श्वेत रंग का हाथ अन्तर्धान हो गया, और कहने लगा कि तू तो मेरा औरस पुत्र है अतः तू मुझ को पिण्डदान कर। कृष्ण हाथ ने कहा कि तू मेरा क्षेत्रपुत्र है मुझे पिण्डदान दो। तब उनकी माता ने कहा कि हे पुत्र दोनों के हाथ पर पिण्डदान करो। तब ऋषि भारद्वाज ने कश्यप के चरण प्रान्त में पिण्डदान किये। उसके माहात्म्य से वे दोनों ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये। इसी प्रकार जब रामचन्द्रजी दशरथजी के लिये रुद्र के चरण प्रान्त पर पिण्डदान करने लगे तो उनके पिता दशरथ जी स्वर्ग से हाथ फैलाकर आ गये, लेकिन रामचन्द्रजी ने उनके हाथ पर पिंडदान नहीं किया उन्होंने रुद्र के चरण में पिंडदान किये। मर्यादाभंग होने के डर से दशरथ जी ने रामचन्द्रजी से कहा कि हे पुत्र! तुमने मेरा उद्धार कर दिया अब मैं शिवलोक को जा रहा हूँ और तुम भी अनन्त समय तक राज्य सुख, तथा सभी प्रजा ब्राह्मणों इत्यादि का पालन और अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके विष्णु लोक को प्राप्त करोगे। इस प्रकार कह कर राजा दशरथ जी रुद्र लोक को चले गये।

भीष्मजी जब विष्णुपद पर पिंडदान करने को तयार हुये, तो राजा शन्तनु के दोनों हाथ भी बाहर निकल आये। किन्तु उन्होंने भी हाथ पर पिंडदान नहीं किया और विष्णु के चरणों पर ही पिंडदान किया। उनके इस प्रकार पिंडदान करने से शन्तनु को बहुत प्रसन्नता

हुई और उन्होंने पुत्र से कहा हे पुत्र ! तुम धर्म की मर्यादा का पालन करने वाले हो तुम विष्णु लोक को प्राप्त हो ओगे। इसके बाद कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन भगवान की भलीप्रकार पूजा कर के पिंडदान करके पितरों का उद्धार करना चाहिये। गयाशिर में जाकर मनुष्य जिनके नाम लेकर पिंडदान करता है उनके वे पितरगण नरक से स्वर्ग में चले जाते हैं। असुर राज हेति के शिर को भगवान गदाधर ने दो भागों में बांट दिया था, और वहीं भगवान ने गदा को धोकर स्वच्छ किया था। इसी कराण उस तीर्थ में श्राद्ध कर्म करने से मुक्ति प्राप्त होती है सभी पवित्र तीर्थों में वह तीर्थ स्थान है वह तीर्थ स्थान गदालोल के नाम से भी प्रसिद्ध है उस गदालोल नामक महातीर्थ में गदा धोने का ही माहात्म्य है।

उस गदालोल तीर्थ में स्नान करके यह विचार करें कि मैं अपनी सिद्धि प्राप्त करने के लिये तथा पितरों का उद्धार करने के लिये इस पवित्र गदालोल नामक तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ। मुझे अक्षय फल की प्राप्ति हो। इस तरह पांचवें दिन गदालोल नामक तीर्थ में स्नान करके पिंडदानादि कार्य सम्पन्न करने चाहिये। इस प्रकार पिंडदान करने से मनुष्य को ब्रह्मलोक प्राप्त होता है। श्राद्ध कर्म के बाद ब्राह्मणों को हव्य कव्यादि से तृप्त करना चाहिये। क्यों कि उनके तृप्त होने से ही समस्त देवगण पितरगण सन्तुष्ट होते हैं। अक्षय वट में विविध प्रकार के अन्य और पकवानों से श्राद्ध करने वाला मनुष्य अक्षय फल को प्राप्त करता है। वटवृक्ष के पास शाक, फलफूल मूल अथवा जल से एक ब्राह्मण को भी भोजन कराने से करोड़ों ब्राह्मणों के भोजन का फल प्राप्त होता है। गयातीर्थ के विद्वान पुरोहितों को सोलह प्रकार का दान देना चाहिये। पुत्रों सहित उनकी विविध प्रकार से पूजा करनी चाहिये। इस सम्पूर्ण संसार के समुद्र रूप में बलदने पर भगवान विष्णु वटवृक्ष के एक पत्ते पर बालक रूप में योनि निद्रा धारण कर शयन करते हैं। हम अक्षय ब्रह्मपद करने वाले वटवृक्ष को नमस्कार करते हैं। जो मनुष्य शिव के भक्त होकर कलियुग में

निवास करते हैं, उन्हीं के लिये भगवान गदाधर सब स्थान पर लिंग रूप में स्थित हैं। उन गदाधर भगवान को हम प्रणाम करते हैं ॥ १११

[श्री वायु महो पुराण का गया माहात्म्य नामक एक सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त]

एक सौ बारहवां अध्याय

[गया माहात्म्य]

सनत्कुमारजी बोले—हे नारद जी गय राजा ने अपने राज्य काल के समय बहुत यज्ञों का अनुष्ठान किया, उन सब यज्ञों में प्रचुर अन्न और दक्षिणा में द्रव्य का व्यय किया। जितने आकाश में तारे हैं उतने ही रत्न और सुवर्ण की मुद्राऐं ब्राह्मणों को दक्षिणा में दीं। सभी प्रदेशों के रहने वाले विद्वान पुरुष उन की यशोगाथा का गान करते हैं। उनके इस पुण्य कार्य से सभी देवगण प्रसन्न होकर उन से बोले कि हे राजा गय ! तुम हमसे कोई वरदान मांगो इस प्रकार देवों के कहने पर राजा गय ने कहा हे देवगणो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि जिन यज्ञों में प्रजापति ब्रह्माजी ने जिन जिन ब्राह्मणों को शाप दिया था, वे आज से सब यज्ञों में पूजे जांय और पवित्र होकर निवास करें। ब्रह्मपुरी की तरह इस पुरी का नाम मेरे नाम के ऊपर ही पड़े। सभी देवों ने कहा कि हे राजा ! तुमने जिस प्रकार कहा है वैसा ही होगा। इस प्रकार कह कर सभी देवता अपने अपने लोक को चले गये। इस के बाद सर्व सुख प्राप्त करके वह गय राजा विष्णु धाम को चला गया। इसके बाद विशाला नामक नगरी में विशाल नाम का एक राजा पैदा हुआ। उस राजा के कोई सन्तान न थीं उसने ब्राह्मणों से कहा कि महाराज मुझे पुत्र प्राप्ति के लिये कोई उपाय बतलाइये। ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि हे राजन् ! यदि आप गया में जाकर पिंडदान करें तो आप के निश्चय ही पुत्र पैदा होगा। तब राजा विशाल ने गया में पिंडदान करके पुत्र प्राप्त किया। राजा विशाल ने आकाश में श्वेत वर्ण, रक्त वर्ण और कृष्णवर्ण के तीन पुरुषों को देखा, फिर राजा ने उन पुरुषों

से पूछा कि तुम कौन हो, श्वेतवर्ण के पुरुष ने कहा कि मैं तुम्हारा पिता हूं, मैं इन्द्र लोक से आया हूं और यह रक्त वर्ण वाले हमारे पिता हैं इन्होंने ब्रह्महत्या की, जिसके कारण ये महान पापी हैं और कृष्ण वर्ण वाले हमारे पितामह हैं। इन्होंने बहुत से ऋषियों की हत्या की थी, ये दोनों अवीची नामक नरक में दुखभोग रहे हैं। यदि तुम इन को पिण्डदान करो तो इनको मुक्ति मिल जायगी। तब राजा ने उन दोनों के निमित्त पिण्डदान करके उनको मोक्ष दिलाया। इस प्रकार विचार करके जो जल दान करता है उसके सभी पितरगण तृप्त होकर स्वर्ग लोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वे तीनों स्वर्ग लोक को चले गये। सभी पुत्रों को अपने पितरों को इस प्रकार सन्तुष्ट करके मोक्ष दिलानी चाहिये। इस प्रकार विशाल राजा अनन्त समय राज्य सुख-भोग कर स्वर्ग लोक को चले गये।

प्रेतराज अनेक प्रेतों के साथ स्वर्ग लोक को गये, एक प्रेत ने अपने उद्धार के लिये एक बनिये से कहा हमारे नाम से यदि गयाशिर पर पिण्डदान करोगे तो हमारी प्रेत योनि छूट कर हमको मोक्ष मिल जायगा। तुम मेरे सब धन को लेकर गया में जाकर श्राद्ध करो। प्रेत ने अपने गोत्रादिक भी बतला दिये। प्रेत के अनुरोध करने पर बनिये ने अपने परिवार के साथ गयाशिर के तीर्थ की तीर्थ यात्रा की और प्रेत के निमित्त पिण्डदान किया। इस प्रकार बनिये के पिण्डदान करने पर प्रेत प्रेतियोनि से छूट गया और बनिया श्राद्ध कर्म सम्पन्न करके अपने घर लौट आया। इस प्रकार गय, शम्भु, विष्णु और सूर्य के क्षेत्र में पिण्डदान करने का फल होता है। गायत्री तीर्थ में व्रत करके गायत्री के सामने स्नान करके प्रातः कालीन संध्या का ध्यान करना चाहिये। इसके बाद फिर गायत्री के सामने स्नान करके मध्याह्न की संध्या का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार ध्यान करने से मनुष्य को स्वर्ग प्राप्त होता है।

मध्याह्न संध्या के बाद मोक्ष प्राप्ति की इच्छा से पितरों के लिये पिन्डदान करना चाहिये। इसके बाद प्राची सरस्वती में स्नान करके सायंकालीन संध्या का ध्यान करना चाहिये। इस प्रकार करने से मनुष्यों के पितरगण स्वर्गलोक को जाते हैं। तीनों समय संध्याओं के करने वाले के सभी पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं। इसके बाद मुन्ड पृष्ठ पर्वत, गिरि कर्ण मुख, देवनदी, वैतरणी पुण्य तीर्थों में स्नान करके पिन्डदान करना चाहिये, वैतरणी में स्नान करके गौदान करने वाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है। गया क्षेत्र में पितरों को उद्धार करने के लिये वैतरणी नदी प्रवाहित हुई है। इस पुण्य तीर्थ की यात्रा करके तीन दिन का उपवास करना चाहिये जो मनुष्य यहां आकर सुवर्ण दान करता है तथा गौदान करता है वह महान धनवान होता है। घृत कुल्या, मधु कुल्या, देविका, महानदी तथा शिला के संगम पर मधुश्रवा स्थित हैं। इन सब तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य को दस हजार अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। इस स्थान पर श्राद्ध कर्म और पिण्डदान करने से मनुष्य के सौ कुलों के पितरों का उद्धार होजाता है और वे सब विष्णु लोक को प्राप्त होते हैं। दशाश्वमेध, हस तीर्थ, अमरकंटक, कोटितीर्थ, रुक्म कुंड, मार्कन्डेय कोटीश्वर को प्रणाम करते हैं। एक समय रुक्म पारिजात नामक बन में श्री भगवान शंकर पार्वती जी के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, संयोगवश उसी बन में मरीचि ऋषि फल फूलादि लेने गये। अपने सुख में बाधा देख कर महादेव ने मरीचि ऋषि को शाप दे दिया कि तुम दुख पाओगे। शाप से भयभीत होकर मरीचि ने शंकर जी की स्तुति की, स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी ने कहा कि तुम कोई बरदान मांगो। मरीचि ने शिवजी से कहा कि भगवान यह वरदान दीजिये, जिससे कि इस शाप से मेरी मुक्ति हो जाय। शिव जी ने कहा तुम गया तीर्थ की यात्रा करोगे तो तुम्हारा शाप मिट जायगा। शिव के इस प्रकार कहने पर मरीचि ऋषि ने गया की यात्रा की उन्होंने वहां आकर शिला पर खड़े होकर कठिन

तपस्या की। महादेव जी के शाप से मरीचि कृष्ण वर्ण के हो गये थे लेकिन अपनी तपस्या के प्रभाव से फिर वह गौर वर्ण के हो गये। विष्णु ने मरीचि ऋषि से कहा तुम मुझसे कोई वरदान मांगो। मरीचि ऋषि ने भगवान के इस प्रकार कहने पर उनसे कहा—हे भगवान् यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मैं आपकी भक्ति ही चाहता हूँ इस शिला पर तप करने से मैं महादेव जी के शाप से छूट गया हूं। वह शिला बहुत पवित्र है। तथा पितरों को मोक्ष प्रदान करने वाली है। मरीचि ऋषि की स्तुति सुनकर भगवान अपने लोक को चले गये। स्वर्ग में निवास करने वाले देवताओं की पुष्करणी नदी मनुष्य को पवित्र कर देती है वहां पर दान करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। वहां पर पवित्र पाण्डु शिला भी स्थित है उस पाण्डु शिला पर श्राद्ध करने से अक्षय फल प्राप्त होता है। हे नारद जी! प्राचीन समय में जब युधिष्ठिर उस शिला पर श्राद्ध करने गये, तो स्वयं पाण्डु ने आकर अपने हाथों में पिण्डदान मांगा, लेकिन उन्होंने हाथ को छोड़ कर शिला पर ही पिण्ड प्रदान किया, शिला पर पिण्डदान करने से पाण्डु को बहुत तृप्ति हुई। उन्होंने पुत्र को बरदान दिया कि हे पुत्र! इस समस्त पृथ्वी पर तुम अनन्त समय तक राज्य करो, तुमने मेरा उद्धार किया है। तुम अपने भाइयों के साथ स्वर्ग प्राप्त करोगे। ब्रह्मा जी ने विष्णु आदि देवगणों के साथ शमी के गर्भ से मथ कर अग्नि पैदा की, इसीलिये वह तीर्थ तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। गया में वृषोत्सर्ग करने से मनुष्य के इक्कीस कुलों के पितरों का उद्धार होता है। संगम तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य सब पापों से छूट कर मोक्ष प्राप्त करता है। वशिष्ठ ऋषि ने यहां पर अश्वमेध यज्ञ किया था, उस यज्ञ से भगवान शंकर जी प्रकट हुए। वे वशिष्ठ ऋषि से बोले कि तुम कोई वरदान मांगो, तब शंकर जी ने कहा कि ऐसा ही हो यह कह कर अन्तर्धान हो गये। वशिष्ठ ने शंकर जी से कहा कि इसी स्थान पर निवास करें। धेनुकारण्य तीर्थ के कामधेनु के पद पर पिण्डदान करने से मनुष्य पितरों के

ऋण से मुक्त हो जाता है वहां पर फल्गु, चन्डी, शवशानाक्षी और मंगला आदि देवियों की पूजा करनी चाहिये उस स्थान पर गदाधर भगवान का ध्यान करके श्राद्ध कर्म और पिण्डदान करने से मनुष्य के सौ कुलों का उद्धार होता है। गयाग्य, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया, गयासुर आदि छः पवित्र स्थान मुक्ति देने वाले हैं। जो मनुष्य इस गया क्षेत्र की पवित्र कथा पढ़ता तथा सुनता और दूसरों को सुनाता है वह मोक्ष को प्राप्त होता है। जो मनुष्य एकाग्र शुद्ध पवित्र चित्त से गया की महिमाओं का वर्णन सुनता है वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। जो मनुष्य गया व्याख्यान की इस पुस्तक को पढ़ता तथा लिखता है उसके घर में सदा लक्ष्मी बिराजमान रहती है। हे नारद जी! गया के इस उत्तम कथा को सुनने से चोर, सर्प, अग्नि, भूत, प्रेत आदि किसी का डर नहीं रहता है यह गया तीर्थ सारे त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है और सारे संसार भर के तीर्थ यहां विद्यमान हैं। हे मुनि! इस गया तीर्थ के विषय में जितना जानता था मैंने आपको बतला दिया।

सूत जी बोले—इस प्रकार उस पुण्य कथा को सुनाने के बाद श्रद्धा सहित हर्षित होकर भगवान सनत्कुमार को साष्टाङ्ग प्रणाम करके सम्पूर्ण नारदादि ऋषिगण अपने अपने स्थान को प्रस्थान कर गये।

[इति श्री वायु महापुराण का गया माहात्म्य नाम का एकसौ बारहवां अध्याय समाप्त]

❀ सम्पूर्ण भाषाबद्ध वायु महा पुराण समाप्तम् ❀

मुद्रक—पं० गजराजसिंह शर्मा द्वारा श्री गोपाल प्रेस, हाथरस में मुद्रित।